परामर्ष-मंडल के सदस्य-

(१) डा० मोतीलाल मेनारिया एम्० ए०, पी एच्० डी०, उदयपुर

(२) डा० गोपीनाथ एम्० ए०, पी एच्० डी०, उदयपुर

(३) प्रो० विष्णुराम नागर एम्० ए०, उदयपुर

(४) श्री रत्नचन्द्र अग्रवाल एम्० ए०, उदयपुर

सम्पादक—

श्री मोहनलाल व्यास शास्त्री, निर्देशक सा० सं०

श्री नाथूलाल व्यास, सहायक निर्देशक सा० सं०

दो शब्द

साहित्य-संस्थान, राजस्थान-विद्यापीठ, उदयपुर ने वर्षों के परिश्रम से "पृथ्वीराजरासौ" का कविराव श्री मोहनसिंहजी द्वारा सम्पादन करवाया, इस प्राथमिक सम्पादन के वाद यह अनुभव किया गया कि पृथ्वीराजरासौ के सम्बन्ध में "अवलोकन" प्रकाशित किया जाय।

"पृथ्वीराजरासौ" ऐतिहासिक दृष्टि से विवादास्पद काव्य-ग्रन्थ है, सच तो यह है कि पृथ्वीराजरासौ भारतवर्ष के एक महत्त्वपूर्ण सन्धि-काल का महा-काव्य हो गया है। भारतीय साहित्य में यह परम्परा अविच्छिन्न मिलती है कि युग का समस्त प्रतिविम्ब करने वाले महाकाव्य प्रणीत होते रहते हैं। महाकवि चन्द वरदाई और उनका महाकाव्य तत्कालीन भारतीय समाज का जीता-जागता प्रतिविम्व ही है। रामायण और महाभारत के वाद यदि किसी महाकाव्य ने जाति के जीवन का प्रतिनिधित्व किया है, तो मेरे मत से वह पृथ्वीराज रासौ है।

हिन्दी-काव्य के वीज ग्रन्थ के रूप में भी पृथ्वीराज रासौ का आधारभूत महत्त्व है। भाषा एवं युगीन जीवनाऽभिव्यक्ति की 'दृष्टि से हम 'पृथ्वीराज रासौ' द्वारा तत्कालीन भारत का मानो सजीव अनुभव कर सकते हैं।

परन्तु यह सव होते हुए भी "पृथ्वीराज रासौ" ऐतिहासिक दृष्टि एवं कसौटी से शंकाओं और उनके अनेक समाधानों एवं पुनः शंकाओं का विवाद और विवेचना का ग्रन्थ हो पड़ा है। ऐतिहासिक दृष्टि से "पृथ्वीराजरासौ" से ही तथ्य खोजना वैज्ञानिक ऐतिहासिक दृष्टि से ठीक नहीं ठहरता। फिर प्रमुखतया काव्य-ग्रन्थ से इतिहास वटोरना जहाँ सम्यक् नहीं, वहाँ इतिहास के मूलाधारों एवं उनकी कसौटियों की दृष्टि से भी काफी दुस्साहसपूर्ण प्रयत्न होगा। इतिहास के सिद्ध ग्रन्थों के भी पुनर्सम्पादन की आवश्यकता रहती है और नये सिद्ध तथ्यों से मण्डित उनके संस्करण करने अनिवार्य हो जाते

हैं। तब हम "पृथ्वीराजरासौ" से महाभारत की भाँति शुद्ध और ठोस ऐतिहासिक तथ्य खोजने का प्रयत्न करें, मेरे मत में उचित नहीं है। बहुत तो, "पृथ्वीराजरासौ" हमें तत्कालीन ऐतिहासिक मार्ग-दिशाओं की सूचना कर सकता है; और कुछ तथ्य जो काव्य-कथानक के अभिन्न अंग की भाँति अंगीकार किये गये हों, उनको बता सकता है।

अतः इस अवलोकन-ग्रन्थ के सम्पादन की नीति स्पष्टतः यही रही है कि ऐतिहासिक विवादास्पद मतों को देदिया जाय, और "पृथ्वीराज रासौ" सम्बन्धी अधिकारी विद्वानों के प्रसिद्ध एवं अन्य आवश्यक लेखों को सम्पादित कर यह "पृथ्वीरारासौ अवलोकन" तैयार किया गया है।

साहित्य-संस्थान के विद्वानों ने इस ग्रन्थ को तैयार करने और विद्यापीठ प्रेस के कार्यकर्त्ताओं ने इसे मुद्रित करने में जो अथक परिश्रम किया है, उसकी दाद दिये बिना मैं नहीं रह सकता।

राजस्थान विद्यापीठ,
उदयपुर (राजस्थान)

जनार्दनराय नागर
वाइस चांसलर

प्रस्तावना

'पृथ्वीराजरासो' हिन्दी साहित्य की महान् निधि है, इसमें कोई सन्देह नहीं है; परन्तु यह स्पष्ट होगया है कि इसमें बहुत कुछ प्रक्षिप्त अंश भी प्रवेश पागया है।

इस दीर्घकाय रासो ग्रन्थ के विषय में आज से कई वर्ष पूर्व तक यह मान्यता रही कि मध्यकालीन भारतीय इतिहास के लिए वह प्रामाणिक वस्तु है। इसकी विशिष्ट काव्य शैली सदैव ही लोगों को मुग्ध करती रही। राजपूत जाति का यह निस्सन्देह गौरवाङ्कित कीर्तिभण्डार है। फलतः उन्होंने तथा उनके आश्रयी कवियों ने उसे अपने संग्रह में स्थान देना अपना पुनीत कर्त्तव्य समझा। आज से लगभग सातसौ पच्चास वर्ष का रचित मूल ग्रन्थ वस्तुतः उसी रूप में सुरक्षित रहना कठिन बात है। इसलिए कालान्तर में अठारहवीं शताब्दी विक्रमी तक उसके मूल रूप में बड़ा परिवर्तन होकर क्षेपक अंश इतना घुल-मिल गया कि इसका ठीक-ठाक दिशा में तारतम्य निकालना सहज बात नहीं है।

युद्धकालीन अवसरों पर रासो के छन्द वीरों का साहस उद्दीपन करने में संजीवन शक्ति का काम देने लगे। इस निधि को प्रचारित और सुरक्षित रखने में भारत के जैन साधुओं की भी सुरुचि रही, जिससे संघर्षमय युग में भी रासो सुरक्षित रह सका। एवं पाश्चात्यदेशवासी कर्नल टॉड जैसा इतिहास और पुरातत्त्व का अनुरागी विद्वान् भी अपने गुरु यति ज्ञानचन्द्र के द्वारा उसका वर्णन, काव्यशैली तथा विशिष्टता आदि को देख इतना अधिक प्रभावित हुआ कि उसने समग्र ग्रन्थ को बड़े चाव से सुना और उसकी प्रशंसा अपने प्रसिद्ध राजस्थान के इतिहास ग्रंथ में इस प्रकार किये बिना नहीं रहा—

"दिल्ली के अन्तिम हिन्दू महाराजा के वीरतामय इतिहास में, जो उनके भट्टकवि चन्द ने लिखा है, हम लोगों को ऐसे चिन्ह दीख पड़ते हैं, जिनसे यह विदित होता है कि उसके जैसे ऐतिहासिक ग्रन्थ, महमूद और शहाबुद्दीन के बीच

के समय (सन् १०००-११६३ ई०) के पहिले उपलब्ध थे; परन्तु अब उनका लोप होगया[१]।"

"...चन्द जो भारत के नामी कवियों में से अन्तिम कवि था, अपने ग्रन्थ की भूमिका में लिखता है-'मैं राज्य शासन के नियम, व्याकरण और वाक्य-योजना के सूत्र देशी तथा विदेशी राजदूतों की व्यवहार सम्बन्धी बातें लिखूंगा' और वह अपना संकल्प उस ग्रन्थ में अनेक स्थलों पर उपाख्यानों के मिस (बहाने इन विषयों की व्याख्या देकर पूरा करता है[२]।"

"चन्द ने अपने रचे हुए पृथ्वीराज के वीरता विषयक इतिहास में बहुत सी ऐतिहासिक और भौगोलिक बातों का वर्णन, अपने महाराजा की लड़ाइयों के वृत्तान्त में दिया है, जिन लड़ाइयों को उसने स्वयं अपनी आँखों से देखा था; क्योंकि वह महाराजा का मित्र, राजदूत और एलची था। अन्त में अत्यन्त ही शोक-पूरित काम उसने यह किया कि वह महाराजा को अप्रतिष्ठा से बचाने के लिये उनके मरने में भी सहायक हुआ था। मेवाड़ के (महाराणा) बड़े अमरसिंह ने, जो साहित्य के सहायक, शूरवीर और नीतिज्ञ थे, चन्द के रचे हुए कवितावद्ध इतिहासों को एकत्र किया था[३]।"

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से भी कर्नल टॉड ने चौहानों के इतिहास में दिये हुए सम्वतों का थोड़ा बहुत परीक्षण किया और लिखा कि —

The cxploits of Beesildeo from one of books of Chund the bard. The date assigned to Beesildeo in the Rasa (S. 921) is interpolated– a vice, not uncommon with the Rajpoot bard, whose periods acquire verification from less mutable materials than those out of which he weaves his song. (Annals and Antiquities of Rajasthan, Vol. II, p. 582, Calcutta edition).

---

१ खड्गविलास प्रेस बांकीपुर (पटना) से प्रकाशित हिन्दी टॉड राजस्थान, भूमिका, पृ० ५ ।

२ वही, पृ० ११ ।

३ वही, पृ० ११-१२

आगे जाकर उन्होंने इस सम्बन्ध में हाड़ा वंश के इतिहास के प्रसङ्ग में अपने ग्रन्थ में स्पष्ट किया कि—

"The Hara Chronicle says S. 981, but by some strange, yet uniform error all the tribes of the Chohan antidate their chronicles by a hundred years. Thus Beesildeo's taking possession of Anhulpoor Patan in 'nine hundred fifty, thirty and six' (S. 986) instead of S.1086. But it even pervades Chund, the poet of Prithviraj, whose birth in made 1115 instead of S.1215, and here, in all probability, the error commenced, by the ignorance (wilful we can not imagine) of some raymer (Annals and Antiquities of Rajasthan, Vol. II, p.887. footnotes 3, Calcutta edition).

फिर भी, कर्नल टॉड इस ग्रन्थ पर इतने मुग्ध थे कि उन्होंने उसके २५,००० छन्दों का अँग्रेजी भाषा में अनुवाद कर ही डाला और वह एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल को प्रकाशन के लिये दे ही दिया।

कर्नल टॉड के समय में राजस्थान के बूँदी राज्य में एक महान् प्रतिभाशाली विद्वान् चारण महाकवि मिश्रण श्री सूर्यमलजी हुए थे, जिनका जन्म वि० सं० १८७२ और मृत्युकाल वि० सं० १९२५ है। उक्त विद्वान् महाकवि ने अपने आश्रयदाता तत्कालीन बूँदी नरेश महाराव राजा रामसिंहजी की इच्छानुसार चौहानों और उनकी हाड़ा शाखा के इतिहास को प्रकाश में लाने के लिये 'वंशभास्कर' नामक ऐतिहासिक काव्य की रचना की, जिसमें उपर्युक्त महाकवि ने चौहानों का प्राचीन इतिहास पृथ्वीराजरासो से ही ग्रहण किया है; वे रासो में दिये हुए बीसलदेव के श्राप वश राक्षस होने का वर्णन अप्रामाणिक मानते हैं और पृथ्वीराज के जन्म विषयक ग्रह स्थिति पर भी विचार करते हुए उसको भी ठीक नहीं बतलाते तथा कुण्ठित होकर कविचन्द की योग्यता पर भी आक्षेप करते हैं:—

(१) बीसल करि चालुक विजय, आलय निज इम आय।
राच्यो सतत अनंग रस, ललना जन हिय लाय ॥ ४३ ॥
सो गौरी उरुजा सुता, पुष्कर गिरि तप प्रीति ॥
कोउक सिद्ध प्रसंग करि, जोग भजत निज जीति ॥ ४४ ॥

वरखा गेह बिताय नृप, पुष्कर सरद पधारि ॥
गिरि कंदर छंदर गही, निलज सती वह नारि ॥ ४५ ॥
······अक्खिय रासे मांहि यह, बंदो चंदहु बत्त ॥
बनिक सुता के साप बल, रक्खस भो अघ रत्त ॥ ४७ ॥
मागध लोकहु यह हि मत. मन्नत लिखत समान ॥
भासैं मुहि ससय भरयो. अति समीप आख्यान ॥ ४८ ॥
······कहि चंद सुहि हम कहत, करहु प्रमांन न कोहु ॥ ५२ ॥

वंशभास्कर, चतुर्थराशि, दशम मयूख पृ० १२६८–६६ ।

सतरुद्र स संक्करि जात साल, क्रम लगत पद्रहम अब्दकाल ॥
पख अभित द्वितीया राध पाय उडुचित्रा गीष्पति बार आय ॥ ४ ॥
जिम सिद्धियोग गर करन जत्थ, तिम रहत रत्ति पल नवति तत्थ ॥
अंसादि त्रि ख ख अविलग्न आत, प्रकट्यो सिसु आवत ढिग प्रभात ॥ ५ ॥
दूजै कुज पंचम ससि उदार, बैठो सनि अष्टम लग्न बार ॥
सुर गुरु रु सुक्र बुध दसम संग, तम आय आय–व्यय तिम पतंग ॥ ६ ॥
ए खेट लग्न कुडलि अधीन, है चंद कथित निज भुक्ति हीन ॥
अंतर यह दीसत तदपि अत्थ. रवि कवि बुध मध्यम सतत सत्थ ॥ ७ ॥
जो चंद दसम भृगु बुध जताय, जंपिय रवि द्वादश भाव जाय ॥
बिनु गनित ह्वै न संसय विनास, श्रम अधिक कटावत व्यर्थ स्वास ॥ ८ ॥
माघहि के भृगु बुध राध मांहि, अक्खेसु असंगत बत्त आहिं ॥
वदि लग्न अविरु भख रवि वताय, निस जन्म कह्यो सो पैन न्याय ॥ ९ ॥
वलि चित्रा तारा तदिन बुल्लि, भाख्या ससि मृगपति रासि भुल्लि ॥
अरु चैत विसद अष्टम अनेह, इम अक्खि भरनि नच्छत्र एह ॥ १० ॥
नवमी दिन बहुला कहि निलज्ज, कहियो पुनि रोहिनि दसमि कज्ज ॥
कनउज्ज खंड बिच यह कुरीति, पै मूढ करत तो सहु प्रतीति ॥ ११ ॥
त्रिक्खहु सु सूरि रचि अंक मात, इन दिनन कबहु ए उडुन आत ।
इत्यादि असंगत बहुत ओर. जंपिय तिहि केवल प्रसभ जोर ॥ १२ ॥
सब कोन गनें लहि यह प्रसंग, भाख्यो सदीय विबुधत्व भंग ॥
कवि भो पढि प्राकृत शब्द केक, इतरन सक्यो सु कछु सिक्खि एक ॥ १३ ॥
कवि नप नट तनु पटि होत कूर, सब जानि वजत ए नाम सूर ॥

प्रभु कोन करत चंदहिं प्रमान, इत्यादि लिखी वुध वनि अजान ।। १४ ।।
वर इक्क तास रसवीर वानि, प्राकृत पद सगति कछु प्रमानि । ...।। १५ ।।

वंश भास्कर. चतुर्थ शि. चतुर्दशमयूख पृ० १३३१–१३३३ ।

ई० स० १८७६ के लगभग प्रसिद्ध पुरातत्वान्वेषक डा० व्हूलर संस्कृत ग्रन्थों की खोज के सम्बन्ध में काश्मीर गये । वहाँ उन्हें शारदालिपि में भोजपत्र पर लिखित 'पृथ्वीराजविजय' नामक अपूर्ण संस्कृत ऐतिहासिक काव्य मिल गया। वतलाया गया कि तेरहवीं शताब्दी में होने वाले जयानक नामक काश्मीरी विद्वान् ने प्रसिद्ध महाराजा पृथ्वीराज चौहान के दरवार में रहते हुए इस महाकाव्य की रचना की थी और चवदहवीं शताब्दी में वहीं के विद्वान् जोनराज ने जो द्वितीय राजतरंगिणी का रचनाकार था, उस पर संस्कृत की टीका की। इस प्रकार चवदहवीं शताब्दी विक्रमी तक निर्मित 'पृथ्वीराजविजय' महाकाव्य का अस्तित्व स्थिर हुआ और वह चौहानों के इतिहास के लिए उपयोगी माना गया; क्योंकि 'पृथ्वीराज-विजय' में अंकित चौहानों की वंशावली उसही समय के प्राचीन शिलालेखों आदि से प्रायः मिल गई तथा महाराजा पृथ्वीराज और उनके पिता सोमेश्वर आदि का समय भी शिलालेखों से ठीक-ठीक मिल गया। पृथ्वीराज की माता कर्पूरदेवी चेदि राजवंश की राजकुमारी होना लिखा मिला, जिसकी पुष्टि हम्मीर महाकाव्य और सुर्जन चरित से होगई-इत्यादि । डा० व्हूलर ने इस ग्रन्थ का अध्ययन कर यही सार निकाला कि अजमेर के अन्तिम चौहान नरेश पृथ्वीराज तृतीय और उनके पूर्वजों के इतिहास के लिये यही एकमात्र विशिष्ट वस्तु है, एवं उसके समक्ष पृथ्वीराजरासो की कोई उपादेयता नहीं है । फिर उन्होंने एशियाटिक सोसाइटी बंगाल को लिख कर रासो को छापना वन्द करवा दिया। वावजूद इसके कि जॉनबीम्स, हार्नली, ग्रियर्सन आदि रासो पर अधिक मान्यता रखते थे ।

रासो के विषय में डा० व्हूलर ने अपना विरोधी मत स्थिर करने में जोधपुर के कविराजा मुरारीदानजी और उदयपुर के कविराजा श्यामलदासजी से भी सम्मति ली थी। दोनों विद्वानों ने रासो की कथाओं को इतिहास के विरुद्ध वतलाया । तदनन्तर 'वीर विनोद' के इतिहास-निर्माण-समय में कविराजा श्यामलदास जी ने रासो का सम्पूर्ण रूप से अध्ययन कर उसके विरोध में कई तर्क उपस्थित कर एशियाटिक सोसाइटी बंगाल-कलकत्ता के जर्नल में अंग्रेजी भाषा में एक निवन्ध छपवाया, जिसमें रासो की कई भूलें प्रकट हुईं। फिर उन्होंने इस निवन्ध

का हिन्दी अनुवाद 'पृथ्वीराज रहस्य की नवीनता' शीर्षक से सन् १८८७ में प्रकाशित कराया उससे साहित्यिक जगत् में नूतन हल-चल उत्पन्न होगई।

उस समय सौभाग्य से रासो के समर्थक विद्वान् पं० मोहनलाल विष्णुलालजी पंड्या उदयपुर में ही मिल गये और उन्होंने कविराजा के तर्कों का समुचित रूप से उत्तर देने की चेष्टा की। अपनी दलीलों के साथ पंड्याजी को यह तो स्वीकार करना पड़ा कि रासो क्षेपक अंगों से विहीन नहीं है। उसमें जो सम्वत् दिये हैं वे विक्रम संवत से पृथक् सम्वत् हैं, जिसमें १०० वर्ष जोड़ने पर रासो में दिये हुए सम्वतों की संगति बैठ जाती है। पंड्याजी की युक्तियों में कितनीक ऐसी थीं, जो अधिक वज़नदार नहीं थीं। फलतः डॉ० स्मिथ जैसे इतिहासवेत्ताओं पर इनका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा और रासो के विषय में भ्रान्ति का निवारण नहीं हुआ। इस पर उन्होंने तथा बाबू श्यामसुन्दरदास ने मिलकर संयुक्त सम्पादन से पृथ्वीराजरासा का बृहत् संस्करण नागरी प्रचारिणी सभा काशी से प्रकाशित करवाया। कहा गया कि यह वि० स० १६४२ की लिखित वस्तु है; किन्तु इसके संवत के विषय में विद्वानों में मतभेद है।

उदयपुर के बाबू रामनारायणजी दूगड़ ने भी, जो विद्वान् और मनस्वी पुरुष थे, रासो ग्रन्थ का अध्ययन किया और उन्होंने रासो की कथाओं पर 'पृथ्वीराज चरित' नामक पुस्तक लिखकर उसकी भूमिका में सप्रमाण युक्तियाँ देकर रासो को अनियमित रीति से लिखित होना बतलाया (पृ० च० भूमिका, पृ० १-८८, प्रकाशित ई० स० १८९९)।

इसके बाद रासो के विषय में पक्ष और विपक्ष में अन्य कई विद्वानों ने कलम उठाई। एक पक्ष रासो का पूरा समर्थक और दूसरा रासो का पूरा विरोधी बना समर्थकों में श्री बाबूश्यामसुन्दरदास मिश्रबन्धु आदि प्रमुख थे और विरोधियों में श्री गौरीशंकर हीराचंदजी ओझा, आ० रामचन्द्र शुक्ल आदि। एक ऐसा भी दल रहा, जो निरपेक्ष भाव से था। उसने विरोधियों की दलीलों को ठीक समझा और रासो के संबंध में खोज का काम जारी रक्खा। येनकेन प्रकारेण सब ने ही यह तो मान लिया कि रासो क्षेपक अंशों से परिपूर्ण है और नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित रासो क्षेपकों से परिपूर्ण बृहद् कलेवर है।

इतिहास की कसौटी पर रासो की जाँच करने पर उसके विषय में विरोधी विद्वानों ने जो आक्षेप किये हैं, वे अनर्गल और उपेक्षणीय नहीं हैं। यदि विरोधी

विद्वान् रासो की भ्रान्ति मूलक बातों पर प्रकाश नहीं डालते तो 'बाबा वाक्यं प्रमाणम्' की भाँति 'पृथ्वीराजरासो' (ना० प्र० सभा, काशी द्वारा प्रकाशित) ही इतिहास का एकमात्र सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ माना जाता और तत्कालीन शिलालेखों आदि की सत्यता के आगे पृथ्वीराज रासो की भ्रान्ति मूलक बातें यनी ही रहतीं।

रासो के विषय में प्रायः सब ही अध्ययन शील विद्वानों ने यह भी मान लिया है कि इसके कई संस्करण हुए। परन्तु जब से श्री मुनि जिनविजयजी ने 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' से महाराज पृथ्वीराज चौहान तृतीय के मन्त्री कयमास वध सम्बन्धी चार छन्द खोज निकाले, तब से रासो के सम्बन्ध में विलक्षण क्रान्ति होकर अधिकांश प्रमुख विद्वानों की प्रबल धारणा होगई कि मूल रासो की रचना क्या आश्चर्य है कि अपभ्रंश में हुई हो, जो वर्तमान रासो की भाषा से बहुत दूर है, एवं अब तक रासो की जितनी भी प्रतियाँ उपलब्ध हैं, वे अपने को वि० सं० १६०० के पूर्व की होना सिद्ध नहीं करतीं। जोधपुर के श्री नैनूरामजी ब्रह्मभट्ट के यहाँ रासो की एक प्रति वि० सं० १४५५ आश्विनसुदि ४ की लिखित बतलाई जाती है, जो खरतरगच्छ के पंडित रूपजी (शोभा के शिष्य) द्वारा कपासन (मेवाड़) में लिखी गई। परन्तु यह प्रति साक्षर वर्ग के सामने नहीं लाई गई, ऐसी अवस्था में उसका मूल्य अंकित नहीं किया जा सकता कि वह किस कोटि की है और उसमें दिया हुआ सम्वत् १४५५ ठीक भी है। अभी थोड़ा ही समय हुआ उदयपुरस्थ प्रतापसभा के अवैतनिक प्रधान मन्त्री श्री शिवनारायणजी शर्म्मा के यहाँ पृथ्वीराज रासो की एक प्रति वि० सं० १७०२ की लिखी हुई देखने में आई है। इसमें ४४ समय हैं और वह मेवाड़ के खेराड़ प्रदेश के जहाजपुर स्थान के समीपवर्ती रामदुर्ग में लिखी गई। यह प्रति साक्षर वर्ग की दृष्टि में नहीं आई और बरसों तक लुप्त रही। उसके पत्र संख्या ३५३ में ग्रन्थ प्रशस्ति इस प्रकार दी है, जो अविकल रूप से उद्धृत करते हैं।

"... इतिश्री कविचन्द विरचिते प्रिथीराज रासौ पातिसाह साहबदीन गारा। राजा प्रिथीराज चंद वरदाई त्रय बधनोनाम चऊतालीसम षंडः ॥ ४४ ॥ इति प्रिथीराज रासा सम्पूर्णः" शुभ भवतु। लेखक पाठकयोः ॥ सम्वत् १७०२ वर्षे शाके १५६७ प्रवर्तमाने दक्षणायनगते श्री सूर्ये। वर्षारितौ। महामांगल्यप्रद भाद्रपद मासे शुक्लपक्षे १४ चतुर्दश्यां तिथौ। सोमवारे लिषतं श्री संडेरगछे। श्री यशभद्र सूरि अन्वये उपाध्याय श्री चारित्रराज तत्सिख्यउ मानसंघ अमरा-सहितेन लिषतं। स्ववाचनार्थं। परोपकाराय ...... श्री रस्तु। लिषतं रामदुर्गे। जाजपुर प्रत्या सन्ने। पैराट देशे।

रासो के क्षेपक अंशों के कथन पर विचारशील विद्वानों के मत से यह प्रत्यक्ष हो गया कि उसके भिन्न-भिन्न संस्करण, भिन्न-भिन्न स्थानों में होते रहे और मूल रासो का अंश प्रच्छन्न होगया। रासो में छन्द संख्या का उल्लेख करते हुए कोई-कोई विद्वान् उसकी पांच हजार[1] अथवा सात हजार[2] तथा एक लाख[3] छन्द संख्या तक होना बतलाते हैं। इनमें से कौनसी बात ठीक है, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। क्योंकि प्राप्त रासो की प्रतियाँ तथा वृत्तविलास में इसी प्रकार के पाठ मिलते हैं। इनसे निश्चय होगया कि वर्तमान नागरीप्रचारिणी सभा काशी से प्रकाशित रासो ही नहीं, प्रायः सब ही प्रतियाँ क्षेपक-अंश से खाली नहीं है। यही-नहीं क्षेपक अंशों ने मूल रासो के छन्दों में भी, जो अपभ्रंश में थे, उसको दूर लेजाकर खड़ा कर दिया। उस ग्रन्थ में जिसमें इतनी अधिक मिलावट होगई हो और मूल रूप से दूर चला गया हो,उसको कोई-कोई विद्वान् कृत्रिम कहदें,तो कह भी सकते हैं और हम को उनसे असंतुष्ट नहीं होना चाहिए। क्योंकि रासो प्राचीन और प्रामाणिक वस्तु थी. जिसमें पीछे से विद्वानों ने नये-नये छन्दों में रचना कर मिलावट करदी और उसका रूप विकृत कर उसको भ्रष्ट कर दिया। अस्तु, उसका प्रभाव उतना नहीं रहा, जितना कि होना चाहिए। रासो के मूल रूप में विकृति होने का दोष हम चन्द पर नहीं लगा सकते और न यह भी कह सकते हैं कि चन्द नामका कोई कवि हुआ ही नहीं; क्योंकि पुरातन-प्रबन्ध-संग्रह से प्राप्त छन्दों में 'चन्द बरद्दिया' नाम स्पष्ट रूप से उल्लिखित है। एक बात और भी है कि पुरातनप्रबन्ध के केवल मात्र चार छन्दों से ही उसकी वास्तविकता एवं कलेवर

---

१ देखो ऊपर पृ० ५१४-१५, कविराव मोहनसिंहजी द्वारा लिखित 'पृथ्वीराज रासो की शंकाओं का समाधान' नामक निबंध, बीकानेर तथा देवलिया वाली प्रतियों का उल्लेख, जिनमें 'पंचसहस' शब्द पाठ होना बतलाया है।

२ सत्त सहस नख सिख सरिस, सकल आदि मुणि दिक्खि।
घटि बढि मत्तह को पढौ, मुहि दूसन न विसिक्खि॥
रासौ, वि०सं० १७०२ की प्रति, आ०प०, पत्रा ?, पृ० १

३ एक लाख रासो कियो, सहस पंच परिमान।
पृथ्वीराज नृप को सुजसु, जाहर सकल जिहान॥
ना०प्र०सभा द्वारा प्रका० ना०प्र०पत्रिका, भाग ५, पृ० १६७।

आदि पर निश्चयपूर्वक कोई मन्तव्य ठीक-ठीक स्थिर नहीं हो सकता है। इतना सब होते हुए भी यह बात साफ है कि रासो की कथाएँ क्षेपकों से परिवेष्टित होने पर भी धारावाही रूप से चलती हैं और ओज कम नहीं होता। "श्री दशरथ शर्मा, श्री अगरचन्द नाहटा, कविराव मोहनसिंह आदि विद्वानों की इस मान्यता से सहमत होना चाहिये कि मूल में रासो का इतना अधिक विशाल कलेवर न रहा होगा।

उदयपुर के कविराव मोहनसिंहजी ने रासो का अध्ययन कर मन्तव्य प्रकट किया है कि मूल रासो को संख्या पाँच हजार छन्द से अधिक नहीं होनी चाहिए। स्वयं कविवर चन्द अपनी रचना दोहा, छप्पय, साटक और गाथा छन्दों में होने का उल्लेख करता है। अस्तु अवशेष छन्द प्रक्षिप्त अंश है, जो कालान्तर में रचकर मिला दिये गये हैं। अपने सम्पादित टीका सहित पृथ्वीराज रासो में (जो साहित्य-संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर द्वारा प्रकाशित हुआ है) उन्होंने उपर्युक्त चार जाति के छन्द ही ग्रहण किये हैं और अवशेष निकाल दिये हैं। कविरावजी की धारणा के अनुसार अन्य जाति के छन्द ग्राह्य न होने एवं बाणवेध को छोड़ देने पर भी बृहद् रासो के सारे समय की पूर्ति हो जाती है जो ठीक है; क्योंकि कथानक में अन्तर नहीं आता है। चौहानों के अग्निवंशी नहीं होने के कथन का भी समाधान होकर रासो से ही चौहान सूर्यवंशी प्रकट होते हैं। इनके सम्पादित रासो से एक बात और नई ज्ञात हुई कि रासो में महाराजा पृथ्वीराज चौहान तृतीय की बहिन पृथाबाई का विवाह मेवाड़ के गुहिलवंशी नरेश समरसिंह से होना लिखा है, वह वि० सं० १३३०-५८ तक होने वाला गुहिलवंशी नरेश समरसिंह (तेजसिंह का पुत्र) नहीं था। प्रत्युत् बारहवीं शताब्दी के आस-पास होने वाला गुहिलवंशी राजा विक्रमसिंह या विक्रमकेसरी था और उसका पुत्र रणसिंह था, जिससे मेवाड़ के गुहिलवंशी नरेशों की दो शाखा—'राणा और रावल' हुई। इसकी पुष्टि में तर्क का ही आश्रय लिया गया है, एवं रासो के छन्दों को ही प्रमाणरूप में ग्रहण कर विक्रमसिंह को समरविक्रम', 'समरसाहस' पराक्रमराज आदि नामों से उल्लिखित होना बतलाया है। विक्रमसिंह के मेवाड़ तथा अन्यत्र कोई शिलालेख नहीं मिले हैं। अजाहरी के वि० सं० १२२३ के लेख में 'रणसिंह' की महामंडलेश्वर और राजकुल

उपाधि देख डा० देवदत्त रामकृष्ण भांडारकर ने बतलाया है कि वह 'रणसिंह' मेवाड़ का गुहिलवंशी नरेश हो[1]।

मान्यवर ओझाजी, अजाहरी को अजारी होना लिखकर उसको सिरोही प्रदेश के अन्तर्गत होना बतलाते हैं। तथा उल्लेख करते हैं—"इस (गोपालजी के) मन्दिर से बाहिर एक बावड़ी के पास परमार राजा यशोधवल के समय का वि० सं० १२०२ (ई० स० ११४५) का, चंद्रावती के राजा रणसिंह के समय का वि० सं० १२२३ (ई० स० ११६६) का, तथा परमार राजा धारावर्ष के समय का वि० सं० १२४७ (ई० स० ११६०) का, लेख पड़ा हुआ मिला है" (सिरोही राज्य का इतिहास, पृष्ठ २७, ई० सन् १६११)।

इस लेख में रणसिंह का वंशसूचक कोई शब्द नहीं होने से यह ठीक-ठीक निश्चित नहीं किया जा सकता कि अजाहरी के लेख का रणसिंह मेवाड़ का गुहील-

---

1 "Appendix to Epigraphia Indica and record of the Archaeol ogical survey of India, Vol. XIX to XXIII. A list of the Inscriptions of Northern India and Brahmi and derivative scripts from about to A. C. by Prof. D. R. Bhandarkar M. A.,Ph. D.

P. 41, No. 324. V. 1223 Ajhahari (Jodhpur State, Rajputana) now Ajmer,Musium, Inscripttion referring it self to the reign of Mahamanadale svara Rajakula Ransideve * regeigning Cha (m) dapali (probably the same at Chamdravati) Noticed by D.R. Bhandarkar, P. R. A. S. W. C. 1910-11, P. 39.

Sambat 1223 Phalgunasudi 13, Ravau=Sunday, 5 th March, A. D. 1167.

Foot notes * To be identified with the Raval Ramsimhadeve of the Guhilot dy nasty over Mewar.

वंशी नरेश रणसिंह हो, क्योंकि इधर का सारा (अर्बुद) प्रदेश, तैरहवीं शताब्दी विक्रमी में परमार नरेशों के अधिकार में था और उनकी राजधानी आबू के नीचे चन्द्रावती नामक नगरी थी। ये परमार नरेश इस काल में बड़े शक्ति-शाली थे, जो इतिहास प्रसिद्ध बात है।

चौहान नरेश महाराजा सोमेश्वर और पृथ्वीराज के समय का निर्धारण करते हुए श्री ओझाजी, मेवाड़ तथा वागड़ के नरेश सामन्तसिंह को सोमेश्वर तथा पृथ्वीराज का समकालीन मान कर अनुमान करते हैं कि रासो में वर्णित समरसिंह, सामंतसिंह हो; क्योंकि दोनों के नामों में अधिक अन्तर नहीं है। श्री ओझाजी के अनुमान पर अथवा अपनी विवेक बुद्धि से श्री गोवर्द्धन शर्मा तथा कुंवर देवीसिंह मंडावा, रासो के समरसिंह को सामन्तसिंह होना निश्चित रूप से मानते हैं।

पुरातत्वानुसंधान से अब तक प्राप्त मेवाड़ तथा वागड़ के शिलालेखों और दानपत्रों से प्रकट है कि अजमेर नरेश सोमेश्वर और पृथ्वीराज तृतीय के समकालीन निम्नलिखित मेवाड़ के गुहिलवंशी नरेश थे, जिनकी राजधानी एकलिङ्गजी के निकटवर्ती नागदा नामक स्थान था—

(१) महाराजधिराज सामन्तसिंह।

क—मेवाड़ के सायरा पर्गने के अन्तरगत तरावलीगढ़ के निकटवर्ती घंटा-माता के मन्दिर के छबने का वि० सं० १२२४ चैत्रसुदि ४ रविवार, रोहिणी नक्षत्र का लेख। इस प्रस्तर लेख को श्री नरेन्द्र व्यास एम० ए०, ने जो वर्तमान समय में दिल्ली में सेन्ट्रल गवर्नमेन्ट के मिनिस्टर ऑफ एज्यूकेशन के साइंटीफिक रिसर्च विभाग में असिस्टेन्ट हैं, देखा और उनके द्वारा ही साहित्यसंस्थान में सूचना मिली है।

ख—मेवाड़ के जगत गाँव के देवी के मन्दिर का वि० सं० १२२८ फाल्गुनसुदि ७ गुरूवार का लेख।

ग—डूंगरपुर के वोरेश्वर के शिवमन्दिर का वि० सं० १२३६ का लेख।

(२) कुमारसिंह (सामन्तसिंह का छोटा भाई) इसका लेख नहीं मिला। वह जालोर के सोनगरा चौहान कीतू (कीर्तिपाल) का समकालीन था और वि० सं० १२३६ के पूर्व मेवाड़ का शासक था।

(३) महाराजाधिराज महणसिंह या मथनसिंह—

क—मेवाड़ के कुरावड़ गाँव के समीपवर्ती आट गाँव के टूटे हुए शिवमंदिर का वि० सं० १२३६ चैतसुदि ११ शुक्रवार का लेख, जिसमें महणसिंह की राजधानी नागद्रह (नागदा) होना लिखा है। यह शिलालेख राजस्थान सरकार के पुरातत्वविभाग के वर्तमान स्थानापन्न डाइरेक्टर श्री रत्नचंद्रजी अग्रवाल एम्० ए० ने अभी जुलाई १९५९ में आट गांव में जाकर देखा और पढ़ा है।

ख - मेवाड़ के ईवाल (ईसवाल) गाँव का वि० सं० १२४२ का लेख ईसवाल जो गोगून्दे जाने वाली सड़क पर स्थित एक प्राचीन विष्णुमंदिर के छवने पर अङ्कित है और उपर्युक्त श्री अग्रवालजी ने ही प्रथम उसको देखा और उन्हीं के द्वारा साहित्यसंस्थान को पता मिला।

(४) महाराजाधिराज पद्मसिंह–वि० सं० १२५१ का कदमाल गाँव का से प्राप्त दानपत्र। इस दानपत्र का फोटोचित्र साहित्य संस्थान राजस्थान विद्यापीठ–उदयपुर में सुरक्षित है।

इन शिलालेखों आदि से महाराजा पृथ्वीराज चौहान तृतीय के समकालीन मेवाड़ के इन चारों गुहिलवंशी नरेशों का होना पाया जाता है। इन में से सामन्तसिंह के साथ पृथाकुंवरी का विवाह हुआ या विक्रमसिंह के साथ, यह विषय अनिर्णयात्मक ही बना रहेगा। क्योंकि एक पुरानी ख्यात में पृथ्वीराज की बहिन का विवाह विक्रमसिंह के साथ होना और उसकी चौहान रानी से उत्पन्न पुत्र का नाम रणसिंह होना उपर्युक्त बाबू रामनारायणजी दूगड़ बतलाते हैं। साथ ही ये लिखते हैं आश्चर्य नहीं कि सामन्तसिंह के साथ पृथ्वीराज चहुवाण का सम्बन्ध हो (रा० रत्नाकर, भाग १, तरङ्ग २, प्रकाशित वि० सं० १९७० =ई० सं० १९१३, पृ० ४३, ६०, ६१ और ६२)।

कविराव मोहनसिंहजी का यह कथन साधार है कि महाराजा पृथ्वीराज चौहान तराइन के अन्तिम युद्ध में वि० सं० १२४९ में वीरगति को प्राप्त हुआ। रासो में इसही प्रसङ्ग में उसकी रानियों के सती होने का उल्लेख विद्यमान है। इस अवस्था में बाणवेध की सारी की सारी कथा प्रक्षिप्त होकर कोई महत्त्व नहीं रखती। इस कारण से उन्होंने यह वर्णन अपने सम्पादित रासो से बिल्कुल ही हटा दिया है।

साहित्य-संस्थान राजस्थान विद्यापीठ से पृथ्वीराज रासो का नवीन संस्करण प्रकाशित होने पर यह आवश्यक समझा गया कि आलोचनात्मक दृष्टि से रासो पर विवेचना स्वरूप एक स्वतन्त्र ग्रन्थ प्रकाशित किया जावे, जिससे भ्रान्ति-मूलक सारी बातों का निराकरण होकर उसकी विशेषताएँ, भाषा, काव्य-सौष्ठव आदि विषयों पर समुचित रूप से सही-सही प्रकाश पड़े, एवं इसके ठीक-ठीक रूप का दिग्दर्शन होजावे। तदनुसार राजस्थान विद्यापीठ द्वारा भारत सरकार के सामने यह योजना प्रस्तुत कीजाने पर वह स्वीकार कीगई और भारत सरकार के शिक्षा विभाग ने इस ग्रन्थ के प्रकाशनार्थ दस हजार रुपये प्रदान किए।

एक वर्ष से अधिक समय तक राजस्थान विद्यापीठ उदयपुर. इस बात के लिए प्रयत्नशील रही कि कोई योग्य अधिकारी विद्वान् इस गहन विषय को हाथ में लेकर आलोच्यरूप से रासो पर विवेचनात्मक ग्रन्थ की रचना करे और राजस्थान विद्यापीठ उसको प्रकाशित करे; परन्तु कोई भी समर्थ विद्वान् उसके लिए उद्यत नहीं हुआ। कारण कि रासो जैसे विशालकाय और विपद् काव्य-ग्रन्थ की विवेचना लिखना सामान्य बात नहीं है। उसके लिए गंभीर अध्ययन और पर्याप्त समय चाहिये। अतएव इस कार्य को राजस्थान विद्यापीठ ने अपने ही तोर पर उदयपुर के विद्वानों के परामर्श के अनुसार जिनमें डा०मोतीलालजी मेनारिया, एम० ए०, पी एच० डी०, श्री विष्णुरामजी नागर एम०ए०, श्री रत्नचंद्रजी अग्रवाल एम० ए० और डा० गोपीनाथजी एम० ए०, पी एच० डी० सम्मिलित हैं— सम्पूर्ण कराना स्थिर किया, एवं साहित्य संस्थान के निर्देशकश्री मोहनलाल व्यास शास्त्री के संयोजकत्व एवं सामान्य संपादन में साहित्य संस्थान द्वारा ही कार्यारंभ किया गया। श्री नाथूलाल व्यास ने ऐतिहासिक सामग्री के संचय एवं सम्पादन कार्य में सहयोग दिया। साहित्य-संस्थान के "पृथ्वीराजरासो" के सम्पादक कविराव श्री मोहनसिंहजी ने ग्रन्थ सम्पादन में महत्वपूर्ण सहकार किया है।

साहित्य संस्थान की ओर से आगे रासो के साहित्यिक तथा ऐतिहासिक अध्ययन सम्बन्धी दो और भाग प्रकाशित करने की योजना है।

प्रस्तुत प्रथम भाग के तीन विभाग किये गये हैं—प्रथम विभाग में विरोधी विचार धारा के विद्वानों के महत्वपूर्ण निबन्ध रखे गये हैं, जो इस प्रकार हैं—

१ कविराजा श्यामलदास उदयपुर–'पृथ्वीराजरासो की नवीनता'।

२ बाबू रामनारायण दूगड़ उदयपुर–'रासो की ऐतिहासिकता'।

३ गौरीशङ्कर हीराचंद ओझा अजमेर–'अनंद विक्रम संम्वत् की कल्पना' और 'पृथ्वीराजरासो का निर्माणकाल'।

द्वितीयविभाग में रासो के समर्थक विद्वानों की विचारधारा और मन्तव्यों का समावेश किया गया है–,जिसका क्रम इस प्रकार है–

१ पं० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या,उदयपुर 'पृथ्वीराज रासे की प्रथम संरक्षा'।

२ श्री गोवर्द्धन शर्मा–'महाकविचन्द और पृथ्वीराज रासौ'।

३ कविराव मोहनसिंह उदयपुर–'पृथ्वीराज़रासो पर की गई शंकाओं का समाधान'।

तृतीय विभाग में निरपेक्ष विद्वानों की सम्मतियाँ और विचारधारा है। इनमें पाश्चात्य और भारतीय दानों हो प्रकार के विद्वान् हैं, जिन्होंने रासो पर अध्ययन किया है। इसका क्रम इस प्रकार है–

(१) पाश्चात्य विद्वानों को संम्मतियाँ–गार्सां द तासी जेम्स मोरिसन, प्रो० व्हूलर, और जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन।

(२ भारतीय विद्वान्–

श्री गणेश विहारी मिश्र, एम्० ए०
श्री श्याम विहारी मिश्र, एम्० ए० } महाकवि चंदवरदाई'
श्री शुकदेव विहारी मिश्र. एम्० ए०

बाबू श्यामसुन्दरदास–'पृथ्वीराजरासो'।

डा० दशरथ शर्मा एम० ए०, डी० लिट्–१ पृथ्वीराज रासो की कथाओं का ऐतिहासिक आधार, २ रासो की एक पुरानी प्रति और उसकी प्रामाणिकता, ३ पृथ्वीराजरासो, ४ सम्राट् पृथ्वीराज चौहान की रानी पद्मावती, और ५ पृथ्वीराज रासो सम्बन्धी कुछ विचार।

श्री अगरचंद नाहटा बीकानेर–१ पृथ्वीराज रासो और उसकी हस्तलिखित प्रतियाँ २ पृथ्वीराज रासो के बृहद् संस्करण के उद्धारक अमरसिंह द्वितीय थे?

श्री नरोत्तमदास स्वामी,एम०ए०,–'सम्राट् पृथ्वीराज के दो मन्त्री,'–'पृथ्वीराज रासो के लघु रूपान्तर का उद्धारकर्त्ता'।

श्री उदयसिंह भटनागर एम० ए०,–पृथ्वीराज रासो संबंधी कुछ योग्य बातें'।

श्री झाबरमल शर्मा, जसरापुर–१ 'शेखावाटी के शिलालेख', २ 'चौहानों के अग्निवंशी कहलाने का आधार'।

श्री कुंवर देवीसिंह मंडावा–'मांमंतसिंह ही रासो के समरसिंह'।

श्री गंगाप्रसाद कमठान–'पृथ्वीराज रासो के बृहद् संस्करण के उद्धारक पर पुनः विचार'।

श्री कृष्णदेव शर्मा शास्त्री एम० ए०, देहरादून–'क्या पृथ्वीराज रासो जाली है'?

श्री कृष्णानंद (सं०ना०प्र०पत्रिका, काशी) 'पृथ्वीराजरासो संबंधी शोध'।

श्री तारकनाथ अग्रवाल,एम०ए०, कलकत्ता–'वीरकाव्य में अग्निकुलपरंपरा'।

श्री प० मोतीलाल मेनारिया एम० ए० उदयपुर–१ 'चन्दवरदाई' २ 'चन्द'।

आचार्य डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी 'रासो पर व्यापक दृष्टिकोण'।

कहना पड़ेगा कि इस विभाग में दिये गये प्रायः सारे निबंध महत्वपूर्ण है। रासो की प्राचीन उपलब्ध प्रतियाँ शेखावाटी के शिलालेख, चौहानों के अग्निवंशी कहलाने का आधार और सम्राट् पृथ्वीराज के दो मन्त्री शीर्षक निवन्ध में शोध का पूरा समावेश है और यह स्पष्ट है कि महाराजा सोमेश्वर और पृथ्वीराज के मन्त्री नागर जाति के व्यक्ति भी थे। आचार्य डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी का मन्तव्य तो बड़ा ही गंभीर और अध्ययन पूर्ण है। वस्तुतः इनके समान निरपेक्ष रूप से रासो का विचार कर्ता और गंभीर अध्ययनशील व्यक्ति दूसरा कोई नहीं है।

ये सारे के सारे निबन्ध और मन्तव्य पूर्व प्रकाशित हैं। कितनेक निबन्ध सम्पूर्ण रूप से ज्यों के त्यों पत्र-पत्रिकाओं से लिये गये हैं और कितनेक मन्तव्य उनकी पुस्तकों से लिये गये हैं, जिनका उल्लेख यथा स्थान किया गया है, जो निर्णयात्मक दृष्टि से पूर्ण उपादेय हैं। साहित्यसंस्थान, राजस्थान विद्यापीठ इनके लेखकों तथा प्रकाशकों का हृदय से आभारी है, जिन्होंने भारतीय साहित्य की अपूर्व निधि पृथ्वीराज रासो पर अध्ययन कर उसकी वास्तविक स्थिति एवं महत्व

स्थिर करने का सतत: प्रयत्न किया है और चौहानों के सही-सही इतिहास की सामग्री को सुरक्षित तथा प्रस्तुत करने का स्तुत्य कार्य किया है।

अब तक जो रासो पर विवाद चल रहा था, उसका ठीक-ठीक निर्णय इस ग्रन्थ से हो जायगा, क्योंकि इसमें संकलित निबन्ध और मन्तव्य प्रमुख विद्वानों की विचार धारा है, जो एक साथ दी गई है। इनसे यह निष्कर्ष निकलता है कि रासो मूल में अपभ्रंश में था। उसमें समयान्तर से क्षेपक अंश की अत्यधिकता के कारण विकृति होगई और पिछले विद्वान् कवि लोगों ने अवसर पाकर उसका और भी कलेवर बढ़ा दिया। यह इतिहास का ग्रन्थ नहीं होकर काव्य ग्रन्थ है, जो उपमा अलंकार एवं विविध रसों से गुंफित है। इस में उल्लिखित कई व्यक्ति-चौहाननरेश महाराजा सोमेश्वर, पृथ्वीराज, गुजरात का चालुक्य(सोलंकी) नरेश भीमदेव, गाहड़वाल-राष्ट्रकूट नरेश जयचंद्र, अनंगपाल तँवर, मन्त्री कयमास, शहाबुद्दीन गोरी, आदि ऐतिहासिक पुरुष हैं, इसमें किसी को कोई सन्देह नहीं है। काव्य के नियमानुसार काव्य में कल्पना का पुट दिया जाता है, वह रासो में यथा स्थान सर्वत्र विद्यमान है। उसमें उल्लिखित महाराजा पृथ्वीराज तृतीय विषयक सम्वत्, महाराजा पृथ्वीराज चौहान प्रथम के सम्वत हो सकते हैं, जो वि० सं० ११६२ में विद्यमान था। रासो के इस प्रकार के सम्वत् मूल रचना में न हो और पीछे से मिला दिये गये हो, तो भी आश्चर्य की बात नहीं है।

डॉ० श्री हजारीप्रसादद्विवेदी का यह कथन कि 'पृथ्वीराजरासो, आरम्भ में ऐसा कथा-काव्य था, जो प्रधान रूप से उद्धत-प्रयोग, प्रधान-मसृण-प्रयोग-युक्त-गेय रूपक था' ठीक भी हो। श्री प्रभुदयाल मित्तल ने बतलाया है कि बंगीय विश्व-कोष के निर्माता सुप्रसिद्ध श्री नगेन्द्रनाथ वसु ने 'रागकल्पद्रुम' के द्वितीय संस्करण का सम्पादन करते हुए उसके प्रथम खण्ड की विज्ञप्ति में लिखा कि रागकल्पद्रुम (भारतीय संगीत का मुद्रित सब से बड़ा गौरव ग्रंथ) का कर्त्ता श्री कृष्णानंद पिता श्री हीरानंद व्यास, पितामह श्रीअमरानंद व्यास मेवाड़ के जोहेनी (मोही ?) गाँव का निवासी था। व्रज के वृंदावन और गोकुल में उसने संगीत की शिक्षा ग्रहण की थी। वह उदयपुर के महाराणा का दरबारी गायक था और उसका सम्बन्ध व्रज के वल्लभ संप्रदायी गोस्वामियों से था। उसका जन्म वि० सं० १८५१ और मृत्यु संवत् १६४५ में हुई। एक मात्र वही ऐसा व्यक्ति था, जो कवि चंद के 'पृथ्वीराजरायसे को उपयुक्त रूप से गा सकता था। उसके कलकत्ता आनेपर

जब पृथ्वीराज रायसा सुनाने का आग्रह किया तो उसने स्वीकार किया। पहले अपना परिधृत परिच्छद समस्त खोल-खाल कर लंगोटा पहिना। पीछे वीररसात्मक कविचंद का एक पद गाया। वैसा हृदय-उत्तेजक और वीररसात्मक गान फिर कभी सुन न पड़ा (सम्मेलन पत्रिका. प्रयाग, भाग ४०, अङ्क १. पृ० ६३-७०, भारतीय संगीत का गौरव पूर्ण ग्रन्थ)। इससे स्पष्ट है कि रासो लय युक्त गेय काव्य भी रहा हो।

रासो का अस्तित्व प्राचीन है और मूल ग्रन्थ अपभ्रंश के अन्तिमकाल में कवि चंद द्वारा रचा गया हो। पृथ्वीराजविजय (जयानक रचित) नामक संस्कृत काव्य ग्रन्थ में पृथ्वीराज का वन्दीभट्ट, 'पृथ्वीभट्ट' वतलाया है। इससे पाया जाता है कि राज दरबारों में वन्दीभट्ट रहने की प्राचीन प्रथा थी, जिनका इस काल के पूर्व के लेखों में भी उल्लेख मिलता है। पृथ्वीभट्ट, संभवतः चंद हो और 'चंद-वरदाई,चंद वरद्दिया'नाम से अपनी रचना करता हो। मूल रासो इस समय तक लुप्त प्रायः है। पिछले विद्वानों ने उसमें अवश्य ही विकृति पैदा कर कलेवर बढ़ा दिया है। इससे रासो का रूप विकसित होगया और उसको उन्हीं विद्वानों ने इतिहास की टक्कर में लाकर खड़ा होने योग्य बना दिया। कथानक भले ही बढ़ गये हों, भाषा में भी परिवर्त्तन होगये हों और छन्द संख्या भी बढ़ गई; परन्तु उसका धारावाही वर्णन चमत्कारिक दीख पड़ता है। निस्सन्देह रासो की श्रेणी का हिन्दी साहित्य में उन्नीसवीं शताब्दी तक कोई ग्रन्थ नहीं था। अतएव उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

जैन विद्वानों द्वारा किये गये वर्णन से यह प्रतीत होता है कि पृथ्वीराज तृतीय विद्याव्यसनी राजा था। 'पृथ्वीराजविजय'में उसके प्रेमांकुर का वर्णन भी है,जिससे उसकी युवावस्था का आरम्भिक चांचल्य प्रकट होता है। इतिहास तथा रासो से यही निष्कर्ष निकलता है कि इस राजा ने अधिक आयु नहीं पाई और वह युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुआ। रासो में जिस प्रकार वर्णन है, उसको देखते हुए उसे इतिहास की कसौटी पर कसना तथा सर्वथा प्रमाण रूप ही मान लेना सङ्गति युक्त नहीं है एवं, उसकी ऐतिहासिक विवेचना करना भी अनुपयुक्त है; क्योंकि वह सर्वथा इतिहास का ग्रन्थ नहीं है। काव्यग्रन्थों में कल्पना की प्रचुरता होती है, पृथ्वीराजविजय भी उससे मुक्त नहीं है। उसमें पृथ्वीराज की माता कर्पूरदेवी के गर्भ धारण समय के ग्रहों की स्थिति दीगई है, परन्तु सम्वत् का अभाव है। पृथ्वीराज का जन्म सम्वत् नहीं देकर केवल ज्येष्ठ मास की द्वादशी तिथि दी गई

है। गर्भ धारण के समय ग्रहों की स्थिति से वैशाख मास आता है, फिर ज्येष्ठ मास में पृथ्वीराज का जन्म होना संतति शास्त्र के नियम से भी विपरीत है, जिस पर विद्वानों ने कोई ध्यान नहीं दिया है। वस्तुतः यह वर्णन कवि-कल्पना प्रसूत ही है और इस प्रकार के वर्णन से पृथ्वीराज के जन्म सम्वत् का सही-सही निर्णय नहीं हो सकता है। निरपेक्ष दृष्टि से विचारक विद्वानों का कर्त्तव्य हो जाता है कि चौहानों के इतिहास-लेखन में सङ्गति युक्त ग्राह्य बातों को ही विजय और रासोग्रन्थ से ग्रहण करें।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में जिन-जिन विद्वानों के निबन्ध और मन्तव्य ग्रहण किये गये हैं, उनके प्रति साहित्यसंस्थान राजस्थान विद्यापीठ उनका पूर्णतः कृतज्ञ है। इसही प्रकार परामर्षदातृ मंडली जिनके नाम ऊपर दिये गये हैं? और साहित्य संस्थान के कार्यकर्ताओं का, जिन्होंने इसके सम्पादन कार्य में सहयोग दिया है, धन्यवाद प्रदर्शित करना आवश्यक है। विशेषतः साथी कार्यकर्ता श्री शान्तिलाल भारद्वाज का भी इसमें पूर्ण योग रहा है।

भूल-चूक मनुष्यमात्र से होती है। अस्तु, प्रूफ संशोधन आदि में कितनी ही गलतियां रह गई हैं, उसके लिये क्षमा याचना आवश्यक होगया है।

भगवतीलाल भट्ट
अध्यक्ष
साहित्य-संस्थान

विषय-सूची

परिशिष्ट–



पृथ्वीराज रासो की विवेचना

विभाग प्रथम

वर्णित विषय

रासो के विपक्षी विचारकों के मत—



कविराजा श्यामलदास

पृथ्वीराज रासा की नवीनता*

यह बहुत प्रसिद्ध हिन्दी काव्य—जिसे बहुधा विद्वान[1] लोग चन्दवरदई, पृथ्वीराज चौहान के कवि, का बनाया हुआ मानते हैं और जो पृथ्वीराज का इतिहास जन्म से मरण पर्यन्त वर्णन करता है—असल नहीं है; पर मेरी बुद्धि के अनुसार चन्द के कई सौ वर्ष पीछे जाली बनाया गया है। बनाने वाला राजपूताने का कोई भाट था, जिसने इस काव्य से अपनी ज्ञाति का[2] बड़प्पन दिखलाना चाहा; ये लोग हिन्दुस्थान के दूसरे प्रदेशों से चौहानों के साथ राजपूताने में आये थे,

---

* यह निबन्ध जर्नल ऑव दि एशियाटिक सोसायटी ऑव बंगाल–जिल्द ५५–भाग १–१८८६ ई० में अंग्रेजी भाषा में 'दि एन्टीक्विटी ओथेन्टीसीटी एन्ड जिनीनेस ऑव दि एपिक काल्ड दि पृथ्वीराज रासा एन्ड कोमनली एस्क्राइब्ड टू चन्दवरदाई' नाम से प्रकाशित किया गया।

१. जान बीम्स साहब इस काव्य को हिन्दी भाषा के काव्यों में सब से प्राचीन मानते हैं। जैसा उन्होने बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल में लिखा है कि "चंद इस भाषा में सबसे पहला कवि है" (जर्नल १८७२ हिस्सा १ नम्बर १ पृष्ठ १६७) 'इन्डियन एन्टिक्वेरी' नाम के मासिक पत्र की पहली जिल्द में उन्होंने लिखा है कि यह काव्य सन् १२०० ईस्वी के लगभग लिखा गया है। यदि चंद ने इस काव्य को बनाया होता, तो विद्वान् महाशय का विचार यथार्थ होता—परन्तु यह पीछे लिखा गया, जैसा कि मैं आगामी पृष्ठों में दिखलाऊंगा। अनेक हिंदी भाषा के काव्य रासा से पहले लिखे तुलसीदास का रामायण, रायमल्लरासा आदि मिलते हैं।

२. चंदवरदई का, जो पृथ्वीराज का भाट था, इस किताब नें बड़प्पन लिखा है।

जिनकी इस देश के क्षत्रियों में समान प्रतिष्ठा बतलाने के लिये यह काव्य कोठारिया या वेदला के चौहानों के घराने के किसी पढ़े लिखे भाट ने शूरवीर राजा पृथ्वीराज के यश के जीर्णोद्धार के आधार से बनाया। 'उसने मेवाड़ के राजाओं की प्रशंसा इसलिये की कि वे उसके वर्णन को सत्य मान लेवें, जिसमें कि दूसरे राजा भी उस पर विश्वास करें, और वैसा ही हुआ।

ग्रन्थ कर्त्ता ने चन्दवरदई के नाम से काव्य को प्रसिद्ध किया, अपना नाम ऊपर लिखे कारणों से अथवा इस भय से नहीं लिखा कि उस पर कोई विश्वास न करेगा।

इस काव्य के राजपूताने में बनाये जाने के विषय में कुछ भी सन्देह नहीं, क्योंकि इसमें राजपूताने की कविता के शब्द और मुहावरे बहुत पाये जाते हैं; जो ब्रज भाषा या हिन्दुस्थान की और किसी पूर्वी भाषा में नहीं मिलते।

आदि पर्व के दूसरे छप्पय छन्द में यह लिखा है—

(१) सत फुल्लयौ चावद्दिसि।

(२) हूती भारती व्यास
भारत्थ भाख्यौ।
जिने उत्त पारत्थ
सारत्थ साख्यौ। } आदि पर्व चौथा भुजंगप्रयाति छन्द, दूसरा चरण

इन पंक्तियों में सत्त, चावद्दिसि–भारत्थ–पारत्थ–सारत्थ यह शब्द राजपुताने की कविता के हैं।

'आखेट चूक' प्रसंग में यह लिखा है—

यह बात सद्ध गोरी सुरन
करू चूक कै सज्जरन } पत्र ५ छप्पय छन्द ५

यहाँ चूक करने का आशय दगा करके मार डालना है; जिस मतलब में यह शब्द हिन्दुस्थान के और किसी प्रदेश में नहीं बरता जाता।

उक्त जर्नल में जॉन बीम्स साहिब कहते हैं कि पृथ्वीराज रासा के बनाने वाले ने शब्दों के अंत में अनुस्वार इस तात्पर्य्य से लगाया कि वह संस्कृत बन जावें।

यह उसका मतलब नहीं था, उसने चाहा कि अपनी इबारत मागधी या बाल भाषा की सी बनावे, क्यों कि ३०० वर्ष पहिले के काव्य प्रायः उसी भाषा में लिखे जाते थे।

ग्रन्थकर्ता, स्वयं तो वह भाषा नहीं पढ़ा था पर ऐसा मालूम होता है कि किसी मागधी काव्य का वर्णन उसने सुना होगा और अपना ग्रन्थ प्राचीन जनाने के लिये उसने अनुस्वार लगाया—परन्तु यह खेद का विषय है कि इस प्रकार से बने हुए शब्द न तो हिन्दी के रहे न मागधी के। अनुस्वार लगाने से यह स्पष्ट जान पड़ता है कि वह संस्कृत कुछ भी नहीं जानता था; क्योंकि उसको विन्दु विसर्ग का भी ठीक ज्ञान न था।

इतने ही उदाहरण लिखे जाते हैं, जिससे कि लेख बहुत बढ़ न जाय—सहस्रों शब्द इसकाव्य में दिखलाये जा सकते हैं, जो केवल राजपूताने की कविता में मिलते हैं। कोई भाषा का चतुर कवि विचार करे तो इस काव्य की भाषा बिलकुल राजपूताने के कवियों की सी पावेगा, जो दो प्रकार की कविता बनाते हैं; पहली मारवाड़ी भाषा में जो 'डिंगल' कहलाती है और दूसरी ब्रज भाषा या किसी पूर्वी भाषा में, जिसको राजपूताने में 'पिंगल' बोलते हैं; परन्तु पिंगल का शब्दार्थ कविता के तौल की किताब है। सब प्रकार की कविता वास्तव में कवित्त हैं, पर यह शब्द यहाँ पर केवल दो प्रकार की कविता का नाम है अर्थात् 'छप्पय' (षट्पदी) और 'मनोहर,' उसी प्रकार राजपूताने में ब्रजभाषा की कविता पिंगल कहलाने लगी।

डिंगल सदैव एक ही प्रकार से लिखी जाती है; परन्तु राजपूताने के कवि लोग डिंगल के मुहावरे और अपने देशीय शब्द पिंगल में मिला देते हैं। इसलिये इस देश की कविता आगरा, दिल्ली, बनारस इत्यादि प्रदेशों की कविता से कुछ भी नहीं मिलती। यह याद रखना चाहिये कि राजपूताने की बोलचाल और कविता की भाषा में कुछ अन्तर है।

इस प्रकार यह काव्य राजपूताने का बना हुआ सिद्ध हो गया।

(२ क)

पृथ्वीराज रासा पृथ्वीराज या चन्द के समय में नहीं, पर पीछे बना।

मैं इस बात को इस रीति पर सिद्ध करूँगा—पहले बहुत से उदाहरण लिखकर और तब उनको अशुद्ध ठहरा कर।

इस काव्य में लिखे हुये साल सम्वत् विशेष करके अशुद्ध हैं। जैसे पृथ्वीराज का जन्म सम्वत् इस प्रकार से लिखा है—

दो० एकादससें पंचदह ।   हस्ताक्षरी
विक्रम साक अनंद   पुस्तक पत्र १८
तिहि रिपुपुरजय हरन को   पृष्ठ १
भे पृथिराज नरिंद ।

अर्थात् शुभ सम्वत् विक्रमी १११५ में राजा पृथ्वीराज अपने शत्रु का नगर अथवा देश लेने को उत्पन्न हुआ। उसी पत्र के दूसरे पृष्ठ पर निम्न-लिखित पद्धरी छंद है:—

१ दर्वार बैठि सोमेस राय
लीने हजूर जोतिग बुलाय।
२ कह्यो जन्म कर्म बालक विनोद
सुभलग्न मुहूरत सुनत मोद।
३ संबत्त इक्कदश पञ्च अग्ग
वैसाख तृतीय पखकृष्ण लग्ग।
४ गुरु सिद्ध जोग चित्रानखत्त
गुरुनाम करन सिसु परम छित्त।
५ ऊषा प्रकास इक घरिय राति
पलतीस अंश त्रय बालजाति।
६ गुरु बुद्ध सुक्र परि दसैं थान
अष्ठमेवार शनिफल विधान।
७ पंचमे थान परिसोम भोम
ग्यारहें राहु खलकरन छोम।
८ वारमें सूर सो करन रंग
अनमी नमाइ तिनकरैं भंग॥

इस छंद में पृथ्वीराज के जन्म समय पर जोतिपियों की कही हुई जन्मपत्री की बातें लिखी हैं:—

अर्थ

१ राजा सोमेश्वरदेव (पृथ्वीराज का पिता) एक दर्बार करके विराजमान हुआ और ज्योतिषियों को अपनें साम्हने बुलाया—

२ और उनसे कहा कि बालक के जन्मकर्म और चरित्र बतलावें, उसका अच्छा लग्न और अच्छा मुहूर्त सुनते ही सब लोग हर्षित हुए।

३ सम्वत्[1] १११५ वैशाखवदि तृतीया के दिन जन्म हुआ।

४ गुरुवार सिद्धयोग और चित्रा नक्षत्र था। गुरु ने बड़े प्रेम से बालक का नाम रखा।

५ जन्म होनें के समय एक घड़ी ३० पल ३ अंश उषाकाल के[2] व्यतीत हुए थे—

६ बृहस्पति, बुध और शुक्र १० वें भवन में थे। आठवें शनैश्चर का फल बालक के लिये बतलाया गया—

७ चंद्र और मंगल पांचवें स्थान में थे और राहु ११ वें स्थान में था, जो दुष्ट वैरियों को जलाने वाला है।

८ सूर्य बारहवें भवन में था, जो बड़ा प्रताप (नूर) या बड़ी कांति देने वाला, और नहीं (झुकने) नमने वाले वैरियों को झुकाकर नष्ट करनें वाला है।

---

१. इक्कदशपञ्च १११५ देहली दीपक न्याय के अनुसार दश का शब्द जो इक्क और पंच के बीच में है, दोनों शब्दों में लगता है अर्थात् इक्कदश और दशपंच ऐसा रूप हो जाता है—

२. चार घड़ी रात का समय जो सूर्योदय के पहले होता है, उसको ऊषाकाल कहते हैं।

उसी छंद में आगे ज्योतिषियों ने पृथ्वीराज की अवस्था के विषय में राजा सोमेश्वरदेव से भविष्यत् वाणी कही है:—

चालीस तीन तिन वर्ष साज
कलि पुहमि इन्द्र उद्धार काज ॥

इसका अर्थ यह है कि तेंतालीस वर्ष की अवस्था होगी। कलियुग में वह पृथ्वी का उद्धार करने वाला इन्द्र होगा।

फिर एक छप्पय छंद पत्र ६० के १ पृष्ठ में लिखा है, जिसमें यह वर्णन है कि पृथ्वीराज को उसके नाना दिल्ली के राजा अनंगपाल तंवर ने गोद लिया, जिसके कोई पुत्र न था—

कवित्त १ एकादश संवतह, अट्ठ अग्गहति तीस भनि।
प्रथम सुऋतु तहँ हेम, सुद्ध मगसिर सुमासगनि ॥
२ सेतपक्ख पंचमिय, सकलवासर गुरु पूरन।
सुदि मगसिर सम इंद, जोगसिद्धहि सिधचूरन ॥
पहु अनंगपाल अप्पिय पुहमि पुत्तियपुत्त पवित्तमन।
छंड्यो सुमोहसुख तन तरुनि, पति वद्री सज्जेसरन ॥

[दिल्लीदान प्रस्ताव पत्र ६० पृष्ठ १ अंत]

अर्थ

१ सम्वत् ११३८ हेमंत ऋतु का आरंभ शुभ मार्गशिर महीने का शुक्ल पक्ष—

२ पंचमी तिथि सकल कला करके पूर्ण बृहस्पतिवार—मंगलदायक मृगशिर नक्षत्र का अखंडित चन्द्रमा और सिद्धियोग जो मांगलिक चूरण है—

३ राजा अनंगपाल ने अपना राज्य अपनी पुत्री के पुत्र अर्थात् दौहित्र को प्रसन्नता पूर्वक शुद्ध मन से दिया। अनंगपाल अपने शरीर

का और स्त्रियों का सब सुख त्याग कर बद्रिकाश्रम को गया, अर्थात् श्री बद्रीनाथ के चरण कमलों का उसने आश्रम लिया।

फिर माधोभाट की कथा के पर्व (पत्र ८४ पृष्ठ १) में यह दोहा लिखा है।

ग्यारहसै अठतीस भनि, भो दिल्ली पृथिराज।
सुन्यो साह सुरतानवर, बज्जै बज्ज सुवाज ॥

अरिल— ग्यारहसै अठतीसा मानं, भे दिल्ली नृपरा चौहानं ॥
विक्रम बिन शक बंधी सूरं. तपै राज पृथिराज करूरं ॥

अर्थ

१ पृथ्वीराज सम्वत् ११३८ में दिल्ली का राजा हुआ, इस बात को सुनकर सुल्तान शहाबुद्दीन गोरी ने लड़ाई के अच्छे बाजे बजवाये—

२ सम्वत् ११३८ में (पृथिराज) चौहान दिल्ली का राजा हुआ। विक्रमादित्य के बिना भी यह राजा सम्वत् चलाने के योग्य है। अर्थात् इसका पराक्रम विक्रम के समान है—इसका बड़ा क्रूर राज तपता है अर्थात् इसकी आज्ञा को कोई मेंट नहीं सकता—

पृथ्वीराज के नौकरों में से एक बुद्धिमान राजपूत 'कैमास' ने, जिसका नाम अभी तक प्रसिद्ध है, शहाबुद्दीन से जो लड़ाई की, उसका वर्णन १८० पत्र के पहले पृष्ठ में इस प्रकार लिखा है—

हनूफाल छंद

(१) सम्बत हरचालीस—वदिचैत एकमदीस ॥
रविवार पुष्य प्रमान—साहाब दिय मैलान ॥

कवित्त

(२) ग्यारहसै चालीस—चैत वदि ससिसय दूजो ॥
चढयौ साह साहाब आति पंजाबह पूज्यो ॥
(३) लक्खतीन असवार—तीन सैंहस मदमत्तह ॥
चल्योसाह दरकूंच—कढिय जुग्गिनि धुर वत्तह ॥

(४) सासन्त सूर निकसे उञ्चर—कायर कंपे कलह सुनि ॥
कैमास मंत्रि मंत्रह दियो—ढिग बैठे चामंड पुनि ॥

अर्थ

१ सम्वत् ११४० ('हर' ज्योतिष में ११ को कहते हैं) चैत्र वदी प्रतिपदा रविवार के दिन पुष्प नक्षत्र के समय शहाबुद्दीन गोरी ने अपने सैन्य के डेरे दिये।

२ सम्वत् ११४० में चैत्रवदी[1] २ के चंद्रमाके दिन शहाबुद्दीन गोरी ने चढ़ाई की और पंजाब में पहुँचा, अथवा वहां के लोगों ने उसको पूजा अर्थात् मान लिया।

३ उसके साथ तीन लाख सवार और तीन सहस्र मतवाले हाथी थे। वहां से निकल कर मञ्जिल दर मञ्जिल (जुग्गिनी) दिल्ली की ओर गुर्राता हुआ चला।

४ योद्धा और बहादुरों का मन प्रसन्न (खुश) हुआ, कायर लोग लड़ाई का नाम सुनकर कांपने लगे। मंत्री कैमास, जिसने पृथ्वीराज को सलाह दी थी और चामंडराय जो उसका वीर योद्धा था, दोनों उसके पास बैठे थे।

कवित्त

(१) ग्यारह सै चालीस—सोम ग्यारस वदि चैतह ॥
भये साह चहुआन—लरनठाढ़े बनिखेतह ॥

(२) पंचफौज सुरतान—पंचचौहान बनाइय ॥
दानव देव समान—ज्वान लरने रिन धाइय ॥

(३) कहिचंद दंद दुनिया सुनो—
वीर कहर चच्चर जहर।
जोधान जोध जंगह जुरत—
उभय मध्य बीत्यो पहर ॥

} पत्र १६१ पृष्ठ १ छप्पय छंद

---

१. एकम के दिन २ का चंद्रमा उग गया होगा, इससे ऐसा कहा। क्योंकि संध्या के समय प्रतिपदा में द्वितीया आजाती है, तो चंद्रमा उग जाता है।

अर्थ

१ सम्वत् ११४० चैत्रवदी ११ सोमवार के दिन पृथ्वीराज चौहान दिल्ली का शाह यानी राजा, बन सज कर रणरंग में लड़ने को खड़ा हुआ—

२ सुल्तान की फौज के ५ व्यूह थे। यह देखकर चौहान ने भी अपनी फौज के ५ पृथक् पृथक् समूह बनाये। दानवों के समान मुसल्मान और देवताओं की नाईं राजपूत जवान लड़ने के लिये रण को धाये।

३ चन्द कवि कहता है, हे दुनियां के लोग सुनो, कि लड़ाई किस प्रकार की हुई; वीरों के ललाट से क्रोध का जहर (विष) चमकने लगा।

लड़ाई में बहादुरों के बहादुर जुड़ते हैं और दोनों दल के बीच एक प्रहर तक लड़ाई हुई।

फिर ६ ऋतु के वर्णन के अध्याय (पत्र २४२) के दूसरे पृष्ठ में यह दोहा लिखा है—

ग्यारहसै एक्यावनै चैत तीज रविवार।
कनवज देखन कारणे चल्यो सु संभरिवार॥

सम्वत् ११५१ चैतवदी ३ रविवार के दिन संभरी अर्थात् चौहान राजा कनौज देखने को चला।

पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन गोरी की आखिरी लड़ाई का वृत्तान्त ३६० पत्र के पहले पृष्ठ में इस प्रकार लिखा है:—

१ शाक सुविक्रम सत्तसिव अट्ठ[1] अग्र पंचास।
शनिश्चर संक्राति कर्क—श्रावण अद्धोमास॥

२ श्रावण मावस सुभ दिवस उभै घटी उदियत्त।
प्रथम रोस दुव दीनदल मिलन सुभर रनरत्त॥

---

१. किसी २ पुस्तक में यहाँ पर पंच लिखा है, परन्तु पंच और अट्ठ दोनों अशुद्ध हैं।

अर्थ

१ सम्वत् ११५८ ('शिव' ज्योतिष में ११ को बोलते हैं) शनिवार के दिन लड़ाई हुई, जिस समय कर्क संक्रान्ति थी और श्रावण का आधा महीना व्यतीत हुआ था।

२ श्रावण की अमावास्या को जो एक शुभ का दिन है, सूर्य निकलने पर दो घड़ी के पीछे दोनों दीन (धर्म) के दलों में अर्थात् हिंदू और मुसलमानों में पहला क्रोध इसलिये किया गया कि वीरों को लाल रंग मिले, संक्षेप में—दोनों दलों के अंगों का रंग क्रोध से रक्तवर्ण हो गया।

पत्र ३८० पृष्ठ १ बड़ी लड़ाई के अध्याय में लिखा है:—

कवित्त

(१) एकादस से सत्त, अट्ठ पंचास अधिकतर।
सावन सुकल सुपुक्ख, बुद्ध एका तिथि वासर॥

(२) वज्रयोग रोहिनी, करन बालव धिक तैतल॥
प्रहरसेष रस घटिय—आदि तिथि एक पंचपल॥

(३) बिथ्थुरिय वत्त जुद्धह सरल—जोगिनि पुरवासर विषम॥
संपत्ति थान सुरसतिय जुरि रहसि रवी कीनो विरम॥

अर्थ

(१) सम्वत् ११५८ श्रावण शुक्ला प्रतिपदा बुधवार के दिन।

(२) वज्रयोग, रोहिणीनक्षत्र, कर्ण बालव और उससे अधिक तैतल, जिस समय पिछली रात में ६ घड़ी बाकी रही और एकम तिथि की १ घड़ी ५ पल बीते थे।

(३) लड़ाई की बात बड़ी सरलता से फैल गई; वह दिन दिल्ली के लिये बड़ा खोटा था। लड़ाई इस तरह पर हुई कि मानो लक्ष्मी के स्थान पर[1]

---

१ सरस्वती और लक्ष्मी का परस्पर विरोध पुराणों में प्रसिद्ध है, अगर एक की कृपा किसी मनुष्य पर होवे तो दूसरी उसके ऊपर अप्रसन्न रहती है।

सरस्वती ने उससे परस्पर युद्ध किया। लड़ाई देखने के लिये सूर्य ने भी ठहर कर विश्राम किया।

ऊपर लिखे हुए उदाहरण राज पुस्तकालय की पृथ्वीराज रासा की पुस्तकों को मिला कर लिखे गये हैं; जो पुस्तकें वेदले की पुस्तक के अनुसार हैं।

सिर्फ एक ही जगह का सम्वत् लिखना वस होता, पर अनेक सम्वत् इस तात्पर्य से लिखे गये हैं कि किसी को यह सन्देह न हो कि कदाचित् लिखने वाले ने भूल की हो; और मैं आशा रखता हूँ कि पाठकों को इस तरह संतोष हो जायगा कि ऐसी गलती नहीं हुई।

(२ ख)

अब ऊपर लिखे हुए उदाहरणों के सम्वतों पर विचार करना चाहिये।

१. पहले यह देखना चाहिये कि पृथ्वीराज शहाबुद्दीन गोरी के साथ किस सम्वत् में लड़ा और दिल्ली में किस समय राज करता था।

पृथ्वीराज रासा में लड़ाई का सम्वत् ११५८ लिखा है, परन्तु यह ठीक नहीं है। क्योंकि सम्वत् १२४६ में पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन गोरी के साथ पंजाब में लड़ाई की और उस समय के पहले दिल्ली में राज करता था।

इसके प्रमाण नीचे लिखे जाते हैं:—

तबकात नासरी (जो हिज़री सन् ६०२=ईसवी १२०५=सम्वत १२६१ में बनाई गई) का ग्रन्थकर्त्ता शहाबुद्दीन के विषय में इस तरह लिखता है:—

"शहाबुद्दीन गोरी ने हिजरी सन् ५७१ (=ई. ११७५=सम्वत १२३२) में मुल्तान लिया और हि. सन् ५७४ (=ई. ११७८=सम्वत १२३५) में ओरछा और मुल्तान होकर नहर वारा की ओर आया; नहर वारे के राजा भीमदेव या वतु (सु) देव की फौज से साम्हना हुआ। वादशाह की फौज भाग गई और वह वेमुराद लौट गया।

उसने हि. सन् ५७७ (=ई. ११८१=सम्वत् १२३८) में सुल्तान महमूद की सन्तान से लाहौर लिया।

हि. सन् ५७८ (=ई. ११८२=सम्वत् १२३६) में बादशाह देवल की ओर आया, समुद्र के किनारे का देश (इलाक़ा) और बहुतसा माल लेलिया।

हि० सन् ५८० (ई० ११८४=सम्वत् १२४०) में दुबारा लाहोर को आया, सब इलाका लूट लिया। महमूद की सब संतानों को कैद किया। सियालकोट का किला बनवाया। सेनापति अलीकमरख को लाहोर का हाक़िम किया और इस किताब के लिखने वाले के बाप सिराजुद्दीन मिनहाज को हिन्दुस्थान के सैन्य का क़ाजी बनाया।

हि० सन् ५८७ (ई० ११६०=सम्वत् १२४७) में उसने सरहिन्द का क़िला जीत लिया और क़ाज़ी जियाउद्दीन को सोंपा, जो इस किताब के लिखने वाले का चचेरा भाई था।

क़ाज़ी ने १२०० आदमी क़िले में रक्खे, जिनसे बादशाह के आने तक क़िले की रक्षा हो सके। लेकिन राय कोलापि थौरा पास आ गया था, सुल्तान भी आ पहुँचा। हिन्दुस्थान के सब राजा पिथौरा के साथ थे। सुल्तान ने दिल्ली के राजा गोविन्दराय पर हमला किया, जो हाथी पर सवार था और नेजा अर्थात् भाला मारकर गोविन्दराय के दो दांत तोड़ डाले।

राजा ने एक पत्थर मारा, जिससे सुल्तान की भुजा में बड़ी चोट लगी। उसको घोड़े से गिरते हुए एक खिलजी सिपाही ने सम्भाल लिया, बादशाह की सब फौज भाग निकली।

राय पिथौरा ने क़ाजी तोलक को सरहिन्द के क़िले में आघेरा और १३ महीने तक लड़ाई रही। बादशाह बदला लेने को फिर हिन्दुस्थान में आया। इस किताब के लिखने वाले ने एक विश्वासी आदमी मुइजुद्दीन से जो बादशाह के साथ था, यह सुना कि उस समय मुसल्मानी सेना की संख्या में १२०००० सवार थे।

साम्हना होने के पहले सुल्तान ने अपनी फौज के ४ टुकड़े कर दिये और सिपाहियों को कहा कि "हर तरफ से तीरन्दाजी करो और जब नालायकों के हाथी और आदमी इत्यादि चढ़ाई करें तो हटजावो"

मुसल्मानी फौज ने ऐसी काररवाई से काफ़िरों को (हिन्दुओं को) हरा दिया। खुदा ने बादशाह को जय दिया और काफिरों ने भागना शुरू किया। पिथौरा हाथी से उतर कर घोड़े पर चढ़ा और एकदम भागा, लेकिन सरस्वती की हद में पकड़ा गया और उसका प्राण लिया गया। दिल्ली का गोविंदराय लड़ाई में मारा गया, जिसकी सूरत बादशाह ने पहचानली। क्योंकि उसके दो दाँत पहली लड़ाई में टूटे थे।

दिल्ली अजमेर सरस्वती इत्यादि जिले लिये गये, वह जय हि० सन् ५८८ (=ई० ११९२=सम्वत् १२४८ विक्रमी) में प्राप्त हुआ। सुल्तान ने कुतुबुद्दीन ऐबक को कहराम के क़िले पर नियत किया; उसने मीरठ; दिल्ली आदि ले लिया।

हि० सन् ५८९ (=ई० ११९३=सम्वत् १२४९ विक्रमी) में कुतुबुद्दीन ने कोल का क़िला ले लिया।

हि० सन् ५९० (=ई० ११९४=सम्वत् १२५० विक्रमी) में सुल्तानगजनी से कनौज और बनारस को आया। चंडावल के पास राय जयचन्द को मार भगाया। इस जीत में ३०० से ज्यादा हाथी हाथ लगे।

सुल्तान की मातहती में कुतुबुद्दीन ने नहरवाड़ा, कालेवा, बदाऊं वग़ैरह बहुत से इलाके फ़तह किये। खुदाने चाहा तो इन सब लड़ाइयों का हाल 'फ़तूह कुतबी' में लिखा जावेगा। (यह किताब सुल्तान कुतुबुद्दीन ऐबक के हाल की मालूम होती है)।

अब यह देखना चाहिये कि हि० सन् ५८७ =ई० सम्वत् ११९१ = सम्वत १२४८ है और हि० सन् ५८८ =ई० ११९२ =सम्वत् १२४९ होता है।

इससे सिद्ध हुआ कि शहाबुद्दीन और पृथ्वीराज की लड़ाई, जिसमें पृथ्वी-राज का देहान्त हुआ, सम्वत् १२४९ में हुई अर्थात् पृथ्वीराज रासा में लिखे हुए सम्वत् ११५८ विक्रमी से प्रायः ९० वर्ष पीछे।

यद्यपि 'तबक़ातनासरी' का लिखने वाला विदेशी था, पर वह सम्वतों में भूल नहीं कर सकता, यदि नामों में गलती हुई।

(२ ग)

'अबुल्फ़िदा' किताब[१] की जिल्द दूसरी में शहाबुद्दीन के हिन्दुस्थान में आने का हाल लिखा है और उसमें सन् ५८६, ५८७, व ५८८ में जो जो बातें हुईं, उनका संक्षेप में वर्णन लिखा है, पर पृथ्वीराज की लड़ाई का हाल नहीं लिखा है; तो भी शहाबुद्दीन ग़ोरी का उस समय में होना तो अच्छी तरह सिद्ध है और पीछे के इतिहासों में भी वही सम्वत् १२४६ पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन की लड़ाई का लिखा है।

राजा जयचन्द और शहाबुद्दीन गोरी का समय निश्चित हो गया, तो पृथ्वीराज के समय में भी कुछ सन्देह नहीं, क्योंकि वह उन्हीं के समय में हुआ था।

(३)

किताबों का प्रमाण देने के पश्चात् अब मैं पाषाण की प्रशस्तियों का प्रमाण देता हूँ, जो मेदपाट देश में पाई गई हैं और थोड़े से ताम्रपत्रों का भी जो बंगाले की एशियाटिक सोसाईटी के पत्रों में छपे हैं:—

१ प्रशस्ति[२]

यह प्रशस्ति मेवाड़ के इलाके में बीजोली गाँव में पाई गई, जो राजधानी से प्रायः ५० कोस पर है। प्रशस्ति एक महुवे के वृक्ष के नीचे एक चट्टान पर है, जो श्री पार्श्वनाथजी के कुण्ड से उत्तर कोट के निकट है। चट्टान की सबसे बड़ी लम्बाई १२ फ़ुट ६ इन्च और कम से कम ८ फ़ुट ६ इन्च है और चौड़ाई ३ फ़ुट ८ इन्च है।

इस प्रशस्ति में लिखा है कि पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वरदेव ने रेवणा ग्राम स्वयंभूपार्श्वनाथजी को भेंट किया। यह प्रशस्ति एक महाजन ने सम्वत् १२२६ विक्रमी की फाल्गुन वदि ३ को रखवाई।

---

१. यह किताब पहिले हि० सन् ७०० (=ई० १३००=सन्वत् १३५६ विक्रमी) में अरबी भाषा में लिखी गई और पीछे से इसका भाषान्तर फ़ारसी और उर्दू में हुआ।

२. प्रशस्तियों का मूल और भाषान्तर इसके शेष संग्रह में लिखा है।

इससे स्पष्ट मालूम होता है कि पृथ्वीराज सम्वत् ११५८ में कदापि नहीं हो सक्ता; पर पृथ्वीराज रासा में लिखा है कि वह उस सम्वत् में मारा गया, जो अशुद्ध है।

प्रशस्ति में चौहानों की वंशावली सोमेश्वरदेव के नाम पर रुकगई है, जिससे मालूम होता है कि उसका कुँवर पृथ्वीराज प्रशस्ति की तिथिपर्यन्त राजगद्दी पर नहीं बैठा था।

२ प्रशस्ति

यह मेदपाट में मेनालगढ़ के एक महल के उत्तरी फाटक के ऊपर के एक स्तंभ पर मिली, जिसमें यह वर्णन है कि भाव-ब्रह्ममुनि ने एक मठ सम्वत् १२२६ विक्रमी में बनवाया, जब पृथ्वीराज चौहान राज करता था।

पहली और दूसरी प्रशस्तियों के मिलान से अनुमान होता है कि पृथ्वीराज ने सम्वत् १२२६ के फाल्गुन वदी ३ और चैत्र वदि ३० के बीच राजगद्दी पायी होंगी। परन्तु यदि सम्वत् का आरंभ चैत्र के शुक्ल पक्ष को छोड़ कर किसी दूसरे महीने से मानने का प्रचार रहा हो, जैसा कि अभी तक कहीं २ प्रचलित है, तो फाल्गुन वदी ३ सम्वत् १२२६ और उसके सिंहासनरूढ़ होने के बीच अधिक अन्तर व्यतीत हुआ होगा क्योंकि दूसरे सम्वत् का आरंभ कई महीने पीछे हुआ होगा।

यह नियम है कि इतिहास तो समयानुसार बनते हैं, जिनमें बढ़ावा या झूठ भी होता है; परन्तु विशेष करके सच हाल लिखा जाता है और सम्वत् मिती में अन्तर नहीं होता और अगर होता है तो पृथ्वीराज रासा के समान ग्रन्थों में, जो कि अगले ग्रन्थकर्ताओं के नामसे कर्त्तबी (जाली) बना लिये जाते हैं, जैसा कि इस समय में भी धर्म्माधिकारी लोग प्राचीन समय का हवाला देने के लिये नई कितावें बनाकर पुरानी पुस्तकों के नामसे प्रसिद्ध करके पुराण बना देते हैं।

यदि पृथ्वीराज के कवि चन्दबरदाई ने पृथ्वीराज रासा को बनाया होता तो वह इतनी बड़ी भूल ६० वर्ष की नहीं करता और जान बूझकर अशुद्ध सम्वत् लिखने से उसको कुछ लाभ नहीं होता।

(४)

सन् १८७३ ई० के (बंगाले की एशियाटिक सोसाईटी के) जर्नल के ३१७ पृष्ठ में राजा जयचन्द्र कनौज वाले के ताम्रपत्रों[1] का वर्णन है, जिनका सम्वत् १२३३—१२४३ (ई० सन् ११७६—११८६) है। उसको मुसल्मानों ने सम्वत् १२४६ (सन् ११६३ ईसवी) की लड़ाई में हराया।

पृथ्वीराज ने जयचन्द्र की बेटी संयोगिता के साथ विवाह किया था। जयचन्द्र को शहाबुद्दीन गोरी ने कनौज में दिल्ली लेने के पीछे हराया, जैसा कि तबकातनासरी में लिखा है।

कर्नैलटॉड साहब ने अपनी 'राजस्थान' पुस्तक में सम्वत् १२४६ विक्रमी शहाबुद्दीन और पृथ्वीराज की लड़ाई के वास्ते लिखा है; पर उन्होंने पृथ्वीराज रासा में लिखे हुए सम्वत् ११५८ के अशुद्ध होने का कारण कुछ नहीं लिखा। अर्थात् उसको अशुद्ध ठहराने के लिये कोई सबूत या दलील नहीं लिखी।

फिर इन्होंनें रावल समरसी के प्रपौत्र राना राहप्प का होना विक्रम के १३ वें शतक में लिखा है; जो वास्तव में १४ वें शतक के चौथे भाग में हुए थे।

हम कर्नैलटॉड को कुछ दोष नहीं लगा सक्ते; क्यों कि पृथ्वीराज रासो से राजपूताने के इतिहासों में सम्वतों की भूल होगई; और उनके लिये दूसरा वृत्तान्त लिखना बहुत कठिन वरञ्च असंभव था, जब इतिहास की सामग्री बड़ी कठिनता से प्राप्त होती थी। अगर उनका दोष है, तो इतना ही है कि उन्होंने अपनी पुस्तक के पूर्वापर की ओर दृष्टि नहीं दी।

उनके वर्णन से बहुतेरे ग्रन्थकर्त्ताओं ने गलती खाई। जैसे फॉर्वस साहब ने अपनी 'रासमाला' में, प्रिनसिपल साहब ने अपनी 'एन्टिक्विटीज' किताब की दूसरी जिल्द में, और डाक्टर हन्टर साहब ने अपने इम्पीरियल गजेटियर की ६ वीं जिल्द में (लंदन का छापा सन् १८८१ का पृष्ठ ११६); जिसमें लिखा है कि

---

१. इन का मूल और भाषान्तर शेष संग्रह में लिखेंगे।

सन् १२०१ ई. (=सम्वत् १२५७–५८ विक्रमी) में राहप्प राणा चित्तौड़ के राजा थे; परन्तु रावल समरसी का भी कोई चिन्ह सम्वत् १३२४ (=सन् १२६७ ई.) के पहले नहीं मिलता, जैसा इस लेख की अगली प्रशस्ती से प्रकाशित होगा।

(५)

पृथ्वीराज रासा से जो अशुद्धता इतिहास में हुई उनका थोड़ा सा वृत्तान्त लिखा जाता है:—

इतिहास लिखने का व्यवहार मुसल्मान लोग रखते थे। हिन्दुओं में यह चाल नहीं थी. और अगर थी भी तो इतनी ही कि कवि लोग बढ़ावे से काव्य लिखते थे और बड़वा लोग वंशावली के साथ थोड़ा २ तवारीखी हाल भी अपनी पोथियों में लिखते थे।

यह ध्यान रखना चाहिये कि इन लोगों की पोथियों में सम्वत् १६०० विक्रमी के पीछे की वंशावली कुछ २ शुद्ध मालूम होती है। सम्वत् १४०० और सम्वत् १६०० के बीच के कुरसीनामे वंशावली) में कई गलतियां मिलती हैं; परन्तु सम्वत् १४०० से पहले की वंशावलियाँ जो उनकी पुस्तकों में पाई जाती हैं वह सब अशुद्ध और कयासी हैं अर्थात् अनुमान से बनाली गई हैं।

जब पृथ्वीराज रासा तैयार होकर पृथ्वीराज के कविचंद का बनाया हुआ प्रसिद्ध किया गया, तब भाट और बडवों ने पृथ्वीराज के स्वर्गवास का सम्वत् १२ वें शतक विक्रमी में मान कर राजपूताने की अपनी सब पुस्तकों में वही लिख दिया।

१ जैसे चित्तौड़ के रावल समरसीजी का विवाह पृथ्वीराज की बहन पृथा के साथ जो रासो में लिखा है, उससे रावल समरसी के गादी विराजने का सम्वत् ११०६ और पृथ्वीराज के साथ लड़ाई में १३००० सवारों के साथ उनके मारे जाने का सम्वत् ११५८ श्रावण शुक्ला ३ लिख दिया।

विचार करना चाहिये कि उन बड़वा भाटों ने रावल समरसिंह का मारा जाना सम्वत् ११५८ में लिख कर उसी को पुष्ट करने के लिये रावल समरसिंह से लेकर राणा मोकलजी के अन्तकाल तक सब राजाओं के सम्वत् अपनी किताबों में अनुमान से लिख दिये—

१. रावल रामसिंह. २. रावल रत्नसिंह, ३. रावल कर्णसिंह, ४. राणा राहप्प, ५. राणा नरपति, ६. दिनकरण, ७. यशकरण, ८. नागपाल, ९. पूर्णपाल, १०. पृथ्वीपाल, ११. भुवनसिंह, १२. भीमसिंह, १३. जयसिंह, १४. लक्ष्मणसिंह, १५. अरिसिंह, १६. अजयसिंह, १७. हमीरसिंह, १८. चेत्रसिंह, १९. लक्षसिंह, २०. मोकलजी।

राजपूताने के लोगों ने इन राजाओं के सम्वतों पर (जैसाकि बड़ाओं ने लिखा था) विश्वास कर लिया और अपनी किताबों में लिख दिया।

अब देखना चाहिये—कैसे आश्चर्य की बात है कि रावल समरसी का पृथ्वीराज की बहन के साथ विवाह करना पृथ्वीराज रासा में लिखा है; पर यह कदापि नहीं हो सकता; क्योंकि राजा पृथ्वीराज रावल समरसी से एक सौ वर्ष पहले हुआ था।

गंभीरी नदी के ऊपर,जो चित्तौड़ के प्रसिद्ध किले के पास बहती है,एक पत्थर का पुल बना हुआ है, जो महाराणा लक्ष्मणसिंह के कुँवर अरिसिंह का बनवाया हुआ कहा जाता है। यद्यपि मैंने किसी फारसी इतिहास में लिखा हुआ नहीं देखा है, पर कोई २ मुसल्मान लोग उसको अलाउद्दीन खिलजी के बेटे खिज़रखां का बनवाया हुआ कहते हैं। चाहे उस पुल को किसी ने बनवाया हो, पर यह तो निश्चय है कि वह विक्रम के चौदहवें शतक के समाप्त होते २ बनाया गया और इसकी बनावट से यही जान पड़ता है कि किसी मुसल्मान ने बनवाया।

३ प्रशस्ति

उस पुल में पानी के ६ निकास हैं और पूर्व से पश्चिम की ओर आठवें दर में १ पाषाण है, जिस पर एक प्रशस्ति सम्वत् १३२४ विक्रमी (=सन् १२६७ ई०) की है जिसमें रावल समरसी के पिता रावल तेजसिंह का नाम लिखा है।

मालूम होता है कि यह प्रशस्ति पहिले किसी मन्दिर में लगी थी और पुल बनने के समय प्रशस्ति का पत्थर वहां से निकाल कर पुल में लगाया अर्थात पुल बनाने के लिये कुछ मसाला उस मन्दिर से लाया गया।

प्रशस्ति के अक्षर इतने गहरे खुदे हैं कि कई सौ वर्ष तक पानी की टक्कर लगने से भी नहीं बिगड़े हैं। दो पंक्तियां विद्यमान हैं और उनकी प्रतिलिपि शेष संग्रह (तीन) ३ में लिखी है।

४ प्रशस्ति

उसी पुलके नौकोठे में एक प्रशस्ति और भी है, जिसका सम्वत १३–२ जेष्ठ शुक्ला त्रयोदशी है, उसमें यह मतलब है कि रावल समरसिंह ने लाखोटा वारी[1] के नीचे नदी के तीर पर पृथ्वी का एक टुकड़ा अपनी माता जयम(त)ल्लदेवी के मंगल के हेतु किसी को भेंट किया।

बड़े खेद का विषय है कि इस प्रशस्ति का प्रारंभ ही खंडित है और बीच २ में भी कहीं २ अक्षर टूट गये हैं। सम्वत् के ४ अंकों में दहाई का अंक खंडित हो गया; परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि यह प्रशस्ति रावल समरसी के समय की है और संवत् के शतक का अंक १३ साबित और एकाई के स्थान पर २ का अंक है इससे ऐसा अनुमान होता है कि यह प्रशस्ति संवत् १३३२ की होगी। क्योंकि रावल समरसी के पिता रावल तेजसिंह की संवत् १३२४ की प्रशस्ति से यह बहुत मिलती है और यह संभव है कि एक ही मनुष्यने दोनों प्रशस्तियों को लिखा हो। इस बात से १३४२ का सम्वत् होना असंभव है।

५ प्रशस्ति

एक प्रशस्ति चित्तौड़गढ़ के महल के चौक में मिट्टी में गड़ी हुई मिली, जिसका सम्वत् १३३५ वैसाख शुदी ५ गुरुवार है, यह रावल समरसी के समय में लिखी गई; जिन्होंने अपनी माता जयतल्लदेवी, रावल तेजसिंह की रानी, के बनवाये हुए श्री श्यामपार्श्वनाथजी के मंदिर को कुछ धरती भेंट की थी।

६ प्रशस्ति

आबूजी पर अचलेश्वर महादेव के मन्दिर के पास मठ में एक पत्थर पर जिसकी लंबाई ३ फुट २ इंच और चौड़ाई ३ फुट है; पाई गई। इसका संवत् १३४२

---

१. चित्तौड़ गढ़ के (किले के) उत्तरी किनारे पर यह दरवाजा है।

(=सन् १२८५ ई.) है। इसका मतलब यह है कि रावल समर सिंह ने मठ का जीर्णोद्धार अर्थात् मरम्मत किया और उसके लिये स्वर्ण का ध्वज-स्तंभ बनवाया।

७ प्रशस्ति

चित्रकूट[1] पर चित्रंगमोरी के बनाये हुए जलाशय में एक मंदिर बनाया गया, जिसमें एक प्रशस्ति संवत् १३४४ वैशाख शुदी ३ (=सन् १२८७ ई०) की है। जिसमें यह मतलब है कि वैद्यनाथ महादेव के मंदिर के लिये धरती भेंट की गई, जब रावल समरसिंह चित्तौड़ में राज करते थे।

यह प्रशस्ति एक श्वेत पाषाण के स्तम्भ पर है, जो सुरह का स्तम्भ है जिसमें महादेव की एक मूर्ति बनी है, मुझको चित्तौड़ के पूर्वी फाटक सूर्य पोल के रास्ते में तीसरे दरवाजे में मिली। उसको मैंने राजधानी उदयपुर में मँगवा लिया, जो यहाँ महलों में वर्तमान है।

इन प्रशस्तियों से सिद्ध होता है कि रावल समरसिंह के पिता रावल तेजसिंह संवत् १३२४ (=सन् १२६७ ई.) में चित्तौड़ और मेवाड़ का राज करते थे और यह भी कि रावल समरसिंह संवत् १३३२ से लेकर १३४४ (अर्थात् सन् १२७५ ई. से सन् १२८७ ई०) तक राज करते थे।

इस तरह हम देखते हैं कि रावल समरसिंह का राज्य समय सम्वत् १३२४ के पहले किसी तरह नहीं हो सकता, पर सम्वत् १३४४ के पीछे २ या ४ वर्ष राज किया हो तो आश्चर्य नहीं।

इस लिये सम्वत् में पृथ्वीराज के साथ रावल समरसिंह का मारा जाना, जो पृथ्वीराज रासा में लिखा है, किसी तरह ठीक नहीं हो सकता।

फिर रावल समरसिंह का होना सम्वत् १२४६ (= सन् ११९३ ई०) में भी निश्चित नहीं है; जिस वर्ष में पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन गोरी की लड़ाई हुई।

इससे पाया जाता है कि अगर पृथ्वीराज की वहिन का विवाह चित्तौड़ के किसी राजा के साथ हुआ हो, तो किसी दूसरे राजा के साथ हुआ होगा, समरसिंह के

१-चित्तौड़

साथ नहीं क्योंकि पृथ्वीराज सम्वत् १२४६ में मारा गया और समरसिंह की प्रशस्तियां सम्वत् १३३२ से लेकर सम्वत् १३४४ तक की मिलती हैं। अर्थात् समरसिंह का राज पृथ्वीराज के मारे जाने के ६३ वर्ष पीछे पाया जाता है, जिससे समरसिंह का विवाह पृथ्वीराज की बहिन के साथ होना, जैसा रासा में लिखा है, असम्भव है।

यदि यह विचार किया जावे कि चित्तौड़ पर समरसिंह नाम का कोई दूसरा राजा हुआ होगा, तो यह सन्देह नीचे लिखी हुई वापा रावल से समरसिंह रावल तक, शुद्ध वंशावली से बिलकुल मिट जाता है. क्यों कि यह वंशावली पत्थर की प्रशस्तियों से लिखी गई है।

वंशावली

१	वापारावल	१६	वैरड़
२	गुहिल	१७	वैरिसिंह
३	भोज	१८	विजयसिंह
४	शील	१९	अरिसिंह
५	कालभोज	२०	चौंडासिंह
६	भर्तृभट	२१	विक्रमसिंह
७	अवसिंह	२२	क्षेमसिंह
८	समहायक	२३	सामन्तसिंह
९	खुम्माण	२४	कुमारसिंह
१०	अल्लट	२५	मथनसिंह
११	नरवाहन	२६	पदमसिंह
१२	शक्तिकुमार	२७	जयसिंह
१३	शुचिवर्म	२८	तेजसिंह
१४	नरवर्म	२९	समरसिंह*
१५	कीर्तिवर्म	३०	रत्नसिंह

ऊपर लिखी हुई वंशावली में चित्तौड़ पर राज करने वाले केवल एक ही समरसिंह (नम्बर २६) हुए और रासा में भी यही लिखा है कि समरसिंह रावल तेजसिंह के पुत्र थे और रत्नसिंह (नम्बर ३०) उनके जेष्ठ और कुम्भकर्ण कनिष्ठ पुत्र थे। तो तेजसिंह के पुत्र और रत्नसिंह के पिता यही रावल समरसिंह हैं, जिनका नाम पृथ्वीराज रासा में भूल से बारहवें शतक में लिखा गया।

दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन खिलजी ने चित्तौड़ का किला बड़ी खूरेजी (रक्त प्रवाह) के बाद सम्वत् १३५६ (= सन् १३०२–३ ई०) में लिया जब समरसिंह के पुत्र रावल रत्नसिंह वहाँ के राजा थे। इस बात से पृथ्वीराज रासा का लिखना कभी सच नहीं हो सकता कि रावल समरसिंह ने पृथ्वीराज की बहिन के साथ विवाह किया था और वह पृथ्वीराज के साथ सम्वत् ११५८ में मारे गये, जो सर्वरीति असंभव है, क्योंकि यदि ऐसा हुआ होता, तो रावल समरसिंह के पुत्र रत्नसिंह सम्वत १३५६ में अर्थात् अपने पिता के देहान्त के २०० वर्ष पीछे किस तरह राज करते?

(१) पृथ्वीराज रासा के लेख से मेवाड़ के इतिहास में सम्वत् की बड़ी गलती हुई कि रावल समरसिंह सम्वत् ११०६ में मेवाड़ की गादी पर बैठे और सम्वत् ११५८ में शहाबुद्दीन गोरी से लड़कर पृथ्वीराज के साथ मारे गये।

इस बात से रावल समरसिंह का होना उनके ठीक समय से प्रायः दो सौ वर्ष[1] पहिले होता है, और राजपूताने के बड़वा भाटों ने पृथ्वीराज रासा को सच्चा मान कर ऐसा लिख दिया, तो अगली वंशावली (कुरसीनामे) में भी गलती हुई अर्थात् रावल समरसिंह और राणा मोकलजी के बीच का समय दोसौ वर्ष अधिक हो गया, और कवियों ने इन गलती के वर्षों को समरसिंह और राणा मोकलजी के बीच के राजाओं के सम्वतों में बाँट करके कुरसी नामे में अनुमान से सम्वत् लिख दिये।

(२) इसी तरह जोधपुर के लोगों ने भी राजा जयचन्द्र राठौड़ कनौज वाले के गादी पर बैठने का सम्वत् ११३२ (=सन् १०७५ ई०) लिख दिया क्योंकि पृथ्वीराज ने जयचन्द्र की बेटी संयोगिता के साथ विवाह किया था।

---

१. १३५४ में से ११५८ घटाया जावे तो १९६ बचते हैं। अर्थात् प्रायः दो सौ वर्ष।

उन्होंने भी गलती के एक सौ बरसों को राजा जयचन्द्र से लेकर मंडोवर के राव चून्डा के अन्तकाल पर्य्यन्त जो राजा हुए उनके सम्वतों में बाँट दिया।

राजा जयचन्द्र का गादी पर बैठना सम्वत् ११३२ में किसी तरह नहीं हो सकता। क्यों कि बंगाले की एशियाटिक सोसाईटी के जर्नल-जिल्द (३३. नम्बर ३ पृष्ठ २३२ सन् १८६४ ई०) में कनौज के राठौड़ों का एक नक्शा मेजर जनरल कनिंगहम साहब ने लिखा है:—

नाम	सम्वत्	ई० सन्
चन्द्रदेव	११०६	१०५०
मदनपाल	११३६	१०८०
गोविन्दचन्द्र	११७१	१११५
विजयचन्द्र	१२२१	११६५
जयचन्द्र	१२३१	११७५

इस नकशे से मालूम होता है कि जयचन्द्र उस सम्वत् से १०० वर्ष[1] पीछे हुआ, जोकि जोधपुर के लोगों ने उसके सिंहासन पर बैठने के लिये पृथ्वीराज रासा के आधार से लिख दिया; फिर उक्त सोसाईटी के जर्नल (नम्बर ३ पृष्ठ २१७–२२० सन् १८५८ ई०) में फिड्ज़ एडवर्डहॉल साहब ने ताम्रपत्रों की नकल[2] छापी है—

नम्बर १० मदनपालदेवका ताम्रपत्र सम्वत् ११५४ (=सन् १०६८ ई०) का पृष्ठ २२१—

नम्बर २० गोविन्दचन्द्र का दानपत्र सम्वत् ११८२ (= सन् ११२६ ई० पृष्ठ २४३।

इन सम्वतों से स्पष्ट ज्ञात होता है कि इन राजाओं का राज्य समय भी सम्वत् ११३२ से पीछे हुआ, जो सम्वत विजयचन्द्र के गादी विराजने के लिये मान लिया गया: जो कि राजा मदनपाल और गोविन्दचन्द्र के बहुत पीछे हुए।

१– १२३१—११३२=६१

२– शेष संग्रह में देखो—

(३) वैसे ही आंमेर (जयपुर) के बड़वा भाटों ने भी प्रजूनजी कच्छवाहा के (जिसका नाम पृथ्वीराजा रासा में पृथ्वीराज के शूर वीरों में लिखा है) सिंहासन पर बैठने का सम्वत् ११२७ (= १०७१ ई०) और उसके देहान्त का सम्वत् ११५१ (= सन् १०९५ ई०) लिख दिया।

यह सम्वत् भी किसी प्रकार शुद्ध नहीं हो सकते। यद्यपि मुझको प्रजूनजी के गादी पर बैठने का सम्वत् ठीक ठीक सबूती के साथ नहीं मिला है, और वह पृथ्वीराज के सर्दारों में से थे, तो उनका भी सम्वत् १२४९ (= सन् ११९३ ई०) के लगभग होना चाहिये, जो कि पृथ्वीराज के मारे जाने का ठीक सम्वत् है।

(४) इसी प्रकार बूँदी, सिरोही और जैसलमेर इत्यादि ठिकानों के इतिहासों में अशुद्ध सम्वत् लिखे गये जैसे कि पृथ्वीराज रासा के लेख से मालुम हुए। इस बात से इतिहास लिखने वालों के प्रयोजन में बड़ा भंग हुआ।

कोई यह कहे कि पृथ्वीराज रासा के लेखक ने भूल से १२०० की जगह ११०० लिख दिया, तो उसका उत्तर यह है—

(१) कविता में ऐसा होने से छंद टूटता है।

(२) 'शिव' और 'हर' यह ज्योतिष के शब्द जो रासा में ११ के लिये लिखे गये हैं, उनका मतलब १२ कभी नहीं हो सकता।

(३) वही वर्ष अर्थात् ११००, रासे की डेढ़ या २०० वर्ष पुरानी पुस्तकों में पाये जाते हैं, जैसे कि हाल की लिखी हुई पोथियों में मिलते हैं।

(४) सम्वत् केवल १ या २ ही स्थानों में नहीं लिखे हैं कि लेखक दोष आजावे; परंतु कई स्थानों में; और पृथ्वीराज की जन्मपत्री, जो रासे में लिखी है, उसमें सम्वत् मिती महीना ग्रह घटी मुहूर्त सब दोहे और छंदों में लिखे हैं। उस जन्मपत्री को पण्डित नारायणदेव शास्त्रीजी ने (जो काशी के एक विद्वान् पंडित ज्योतिषी श्री १०८ श्री मेदपाटेश्वर महाराणाजी के यहां नौकर हैं) गणित से देखा तो मालूम हुआ कि वह उस समय की नहीं हो सकती। गणित नीचे लिखा है—

प्रश्न.

सम्वत् ११९५ वैशाखकृष्ण २ गुरुवार चित्रानक्षत्र सिद्धियोग सूर्योदय में डेढ़घड़ी बाक़ी रहते जन्म हुआ। पृथ्वीराज ऐसा नाम होने से चित्रा का पूर्वार्द्ध कन्या राशि है। पंचम स्थान में चन्द्रमा और मंगल हुए एवञ्च कन्या राशि पंचम स्थान में है। अर्थात् वृष लग्न में जन्म है, अष्टमें शनि, दशमें गुरु शुक्र और बुध, एकादश में राहु; द्वादश में सूर्य, यह ग्रहव्यवस्था सब सही है या अशुद्ध है इसका उत्तर गणितसमेत कहो—

उत्तर

श्री सूर्य सिद्धान्त के अनुसार सम्वत् १११५ वैशाख कृष्ण ३ रविवार को होती है। कलियुगादि अहर्गण १५१६१०० स्पष्ट सूर्य ११।२१।२५।४६॥ स्पष्ट चन्द्र ६।१६।२७।१७, नक्षत्र स्वाती और योग वज्र होता है. और सूर्योदय के पहिले यदि जन्म है तो लग्न से द्वादश सूर्य किसी तरह नहीं हो सकता और वृष लग्न में द्वादश सूर्य तब होगा कि जब मेष का होगा। यहाँ तो मीन का है और अब भौमादि ग्रह स्थिति विचार करना कुछ आवश्यक नहीं। इतने सेही निश्चत होता है कि प्रश्न लिखित वार आदि तथा लग्न चन्द्र सूर्य स्थिति असंगत हैं।

ऐसे ही पृथ्वीराज रासा में शहाबुद्दीन और पृथ्वीराज की अंतिम लड़ाई, जिसमें पृथ्वीराज मारा गया, उसका सम्वत् ११५८ लिखा है और तिथि श्रावण वदी ३० कर्क संक्रान्ति रोहिणी नक्षत्र और चन्द्रमा वृष राशी का लिखा है।

यदि चन्द्रमा रोहिणी नक्षत्र पर हो तो सूर्य की वृष राशि होती है और नियम से अमावस्या के सूर्य और चंद्रमा एक ही राशि पर होते हैं। कर्क राशि पर सूर्य का होना तो शुद्ध मालूम होता है; परन्तु वृष का चंद्रमा जो पृथ्वीराज रासा में लिखा है, वह नहीं हो सकता, कर्क का चन्द्रमा चाहिये।

ऐसे जाना जाता है कि ग्रन्थकर्ता ज्योतिष नहीं पढ़ा था। अतः इस भूल पर दृष्टि नहीं दी और यह भी स्पष्ट है कि वह राजा सोमेश्वरदेव अथवा पृथ्वीराज चौहान का कवि नहीं था, क्योंकि होता तो पृथ्वीराज के जन्म की तिथि मुहूर्त और लग्न अवश्य ठीक २ जानता।

अब यह तो ऊपर लिखी हुई बातों से सिद्ध हो गया कि पृथ्वीराज रासा पृथ्वीराज के समय में नहीं बना और न चन्दबरदई इसका बनाने वाला था।

चन्दबरदई नाम के कवि का होना भी इसी पृथ्वीराज रासा से ही प्रसिद्ध है। फिर न जाने वह कोई कवि उस समय में था या नहीं।

(४)

अब यह प्रश्न स्थित हुआ कि यदि चन्दबरदई ने पृथ्वीराज रासा नहीं बनाया, तो कब और किसने इस ग्रंथ को रचा।

हम ऊपर लिख आये हैं कि राजपूताने के किसी कवि ने यह किताब बनाई तो मेरी बुद्धि के अनुसार इसके बनाने का समय भी नीचे लिखी हुई बातों से सिद्ध हो सकता है—

(१) क्योंकि अकबर बादशाह के समय से पहिले की बनी हुई राजपूताने की कविता जहाँ तक मिलती है, उसमें फ़ारसी भाषा के शब्द नहीं हैं; केवल संस्कृत, राजपूताने की भाषा, व्रजभाषा, मागधी या प्राकृत और कभी २ गुजराती के शब्द भी पाये जाते हैं।

राजपूताने के राजाओं का बादशाही दर्बार में आना जाना अकबर बादशाह के समय में होने लगा।

आंबेर के राजा भारमल कच्छवाहा का प्रचार बादशाही दर्बार में सम्वत् १६१९ (=१५६२ ई०) में पहिली बार हुआ। परन्तु जयपुर के राज में मारवाड़ी भाषा के कवि बहुत कम थे और उस राज्य में अब तक भी व्रजभाषा की कविता की चाल अधिक है। अगर जयपुर के राजाओं की या उनके भाई बन्धुओं की कविता प्राचीन समय की मिलती है, तो वह मारवाड़ या मेवाड़ के कवियों की बनाई हुई पाई जाती है। इससे सिद्ध होता है कि अव्वल नंबर मारवाड़ की भाषा की कविता करने वाले कवि मारवाड़ और दूसरे नंबर मेवाड़ के थे।

इन दोनों देशों के कवियों का आना जाना दिल्ली की ओर अकबर बादशाह के पिछले समय में हुआ। अर्थात् जोधपुर के राव मालदेव के बेटों का झगड़ा

मिटने पर उदयसिंह सम्वत् १६३६ (=सन् १५८२ ई०) में मारवाड़ के राजा होकर अकबर के दर्बार में रहने लगे। उस समय से मारवाड़ी कवियों का दिल्ली की ओर आना जाना अधिक होने लगा और उसी समय के पीछे और भी हिन्दी भाषा के बड़े २ कवियों ने उन्नति पाई।

जैसे गुसाईं तुलसीदास, केशवदास, सूरदास, ईश्वरदास, बारहट, लखा और नरहरदास इत्यादि, और उसी समय से हिन्दी कविता में फ़ारसी भाषा के शब्दों का मेल अधिक होने लगा।

अनुमान से पृथ्वीराज रासा में ८ या १० भाग में एक भाग फ़ारसी शब्द है और सम्वत् १६४० (= सन् १५८३ ई०) के पश्चात् मेवाड़ के महाराणा तो बादशाही दर्बार में नहीं गये, पर इनके भाई बेटे, जो उनसे विरुद्ध थे, गये। जैसे शक्तिसिंह, जगमाल और सगरसिंह इत्यादि; जिनके साथ कई एक कवियों का आना जाना रहा और मारवाड़ और मेवाड़ दोनों देशों की कविता में फ़ारसी शब्दों का बहुत मेलजोल हो गया। हमारे अनुमान से सम्वत् १६४० से १६७० तक ३० वर्षों के बीच यह काव्य बना:—

(१) क्योंकि रणथंभोर के चौहान राजा हम्मीर के पूर्वजों का तथा उनकी लड़ाइयों का वृत्तांत 'हम्मीर महाकाव्य' नाम के ग्रंथ में लिखा है, जो सम्वत् १५४० या १५४२ के लगभग बनाया गया। उसमें भी राजा पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन गोरी की लड़ाई का हाल लिखा है; परन्तु पृथ्वीराज रासा के वर्णन से कुछ भी नहीं मिलता और न पृथ्वीराज के पूर्वजों के नाम की शृङ्खला मिलती है; यदि पृथ्वीराज रासा पहले बना होता तो हम्मीर काव्य का बनाने वाला अवश्य उसके अनुसार लिखता।

(२) यदि रासा रावल समरसिंह के समय से एक या दो सौ वर्ष पीछे भी बनाया जाता तो इतनी अशुद्धता उसमें नहीं आती जितनी आगई है। अब भी दो या ढाई सौ बरस पहले जो राजा हो गये, उनके सम्वतों में इतनी अशुद्धता नहीं होती। इससे पाया जाता है कि पृथ्वीराज राजा रावल समरसिंह के ३००

वर्ष पीछे बनाया गया और रावल समरसिंह पृथ्वीराज से प्राय १०० वर्ष[१] पीछे हुए।

ऐसे सिद्ध होता है कि पृथ्वीराज रासा पृथ्वीराज या चन्दबर्दई से प्रायः ४०० वर्ष पीछे बनाया गया और ग्रंथकर्त्ता ने किसी अशुद्ध इतिहास पर अपने काव्य रूपी जाल की रचना की।

(क) अब मैं सिद्ध करूँगा कि यह काव्य सम्वत् १६४० के पीछे लिखा गया। क्योंकि इस किताब में मेवाड़ के राजाओं की बहुतसी प्रशंसा रावल समर-सिंहजी के नाम से की है और एक स्थान में उनको आशीस देने में यह शब्द लिखे हैं—

(१) कलंकिया राय केदार
(२) पापियां राय प्रयाग
(३) हत्यारां राय वाणारसी
(४) गदनग्रान राय राजानरी गंग
(५) सुल्तान ग्रहण मोखन
(६) सुलतान मान मलन

अर्थ

(१) कलंकियों के लिये श्री केदारनाथ के समान।
(२) पापियों के लिये प्रयागराज।
(३) हत्यारों के लिये बनारस अर्थात् काशी सदृश।
(४) मदोन्मत्त अथवा मदिरापान करने वाले राजाओं के लिये श्री गंगाजी के समान।
(५) सुल्तान को पकड़ करके फिर छोड़ देने वाला।
(६) सुल्तान के अभिमान को भंग करने वाला।

१—पृथ्वीराज सम्वत् १२४६ में मारा गया और रावल समरसिंह ने प्रायः सम्वत् १३४४ तक राज्य किया। इस तरह उनके समयों का अन्तर ६५ वर्ष का है।

इन सब पदवियों से मेवाड़ के महाराणा संग्रामसिंहजी (सांगा) की ओर संकेत है—

नम्बर ४ की पदवी से यह संकेत है कि राजपूताने के दूसरे राजा बादशाही नौकर बनकर अभिमान के सहित रहते और मदिरापान करते थे। मेवाड़ के राणा मदिरापान नहीं करते थे। इसलिये दोनों बातों का ताना देकर कहा गया है कि उन राजाओं को पवित्र करने के लिये उदयपुर के राणा गंगाजी के समान हैं।

नम्बर ५ की पदवी से मालूम होता है कि महाराणा संग्रामसिंहजी ने मालवा के सुल्तान महमूद को सम्वत् १५७४ (= सन् १५१८ ई० = ९२४ हिजरी) में कैद किया और पीछे छोड़ दिया।

(६) छठे नम्बर के नाम से गुजराती बादशाहों की ओर संकेत है, जिनका देश महाराणाजी ने जीतकर लूट लिया था।

उस समय के और भी कवियों ने इसी प्रकार कविता की है, जिसका उदाहरण नीचे लिखा है—

(१) दोहा— अइरे अकबरियाह—तेज तुहालो तुरकड़ा।
नयनय नीसरियाह-राण विना|शह|राजवी॥

(२) अकबर घोर अंधार, ऊंघाणा हिन्दू अवर।
जागे जग दातार, पोहोरे राण प्रतापसी॥

अर्थ

(१) अहो अकबर ! ए तुरक ! तेरे प्रताप के सामने महाराणा उदयपुर के सिवाय सब राजा नय २ कर निकल गये।

(२) अकबर बादशाह घोर अंधकार है, जिसमें दूसरे सब हिन्दू ऊंघने लगे; परन्तु जगत को सम्पत्ति देने वाले महाराणा प्रतापसिंहजी पहरे पर जागते हैं।

कवि लोग मुसलमानों की नौकरी करने और उनको बेटी व्याह देने का, राजपूताने के राजाओं पर अप्रतिष्ठा का दाग़ लगाते हैं, तो ऊपर लिखे हुये ६ नामों से मालूम होता है कि पृथ्वीराज रासा सम्वत् १५७४ (= सन् १५१८ ई०) के पश्चात् लिखा गया, जिस सम्वत् में महाराणा सांगा ने मालवा के बादशाह को हराया था, और इसमें फारसी भाषा के शब्द होने से जान पड़ता है कि यह सम्वत् १६४० के पीछे बनाया गया, जिस सम्वत् में प्रथम बार राजपूताने के कवि लोग बादशाही दर्बार में गये और अपने लेखों में फारसी शब्द मिश्रित करने लगे।

(ख) रसिका सम्वत् १६४० के पीछे, बनना तो सिद्ध हो गया। अब यह दिखलाया जायगा कि वह, सम्वत १६७० (= सन् १६१३ ई०) के पहले बना।

क्यों कि (पृथ्वीराज रासा के) दिल्ली कथा नामक प्रस्ताव में (पृष्ठ ३५) ३१ वां दोहा इस तरह है:—

दोहा

सौरे सै सत्तोतरे—विक्रम साकबदीत।
दिल्लीधर चीत्तौड़पत—लेखा गांवलजीत॥

अर्थ

विक्रमी सम्वत् १६७७ में चित्तौड़ के स्वामी दिल्ली की धरती जीत लेंगे।

इस दोहे से सिद्ध होता है कि भविष्यत् वक्ता होकर कवि ने यह बात लिखी कि दिल्ली पर चित्तौड़ के राजाओं का राज होगा। इसलिये सिद्ध हुआ कि यह काव्य सम्वत् १६७७ के पूर्व बना।

मेरा अनुमान ऐसा है कि सम्वत् १६७१ के पहले बनाया गया; क्यों कि उस सम्वत् में शाहज़ादाखुर्रम के द्वारा महाराणा अमरसिंहजी (१) और जहाँगीर बादशाह के बीच मेल हुआ। उसके पीछे तो यह दोहा नहीं कहा गया होगा; क्यों कि दिल्ली को जीतने का अभिमान जाता रहा था।

सम्वत् १६७१ के पूर्व महाराणा प्रतापसिंहजी के समय से, उदयपुर के राणाओं ने सिर के केश मुंडवाना, धातु के बरतन में खाना, और तलवार कमर में बाँधना तथा सवारी में नक्कारा आगे रखना छोड़ दिया था और यह प्रतिज्ञा की थी कि दिल्ली के बादशाह को जीतेंगे। तभी इन सब रीतियों को पुनः प्रचलित करेंगे अन्यथा नहीं और अद्यावधि वे रीतियां प्रचलित नहीं हुईं।

सम्वत् १६४० से सम्वत् १६७० के बीच इनकी बीरता और महाराणा सांगाजी तथा उनके पहिले के महाराणाओं के पराक्रम से राजपूताने के लोगों को विश्वास हो गया था कि उदयपुर के राणा अवश्य दिल्ली के बादशाहों को जीतेंगे और इसी कारण यह दोहा भविष्यत् वाणी की रीति से पृथ्वीराज रासा में लिख दिया गया।

४ इस लेख से मेरा तात्पर्य यह नहीं है कि पृथ्वीराज रासा का समस्त वृत्तान्त अशुद्ध है; क्यों कि ग्रंथ कर्ता ने कुछ हाल सुना होगा, तभी इतना लिखा है; पर यह तो स्पष्ट है कि उस को कोई अशुद्ध इतिहास मिला होगा और उसी के अनुसार उसने ग्रंथ बनाया।

मेरा मुख्य मनोरथ इस लेख से यही है कि विद्वानों पर विदित हो जावे कि रासा में सम्वतों की बड़ी अशुद्धता है और चंदबरदाई या उसके समय के किसी कवि ने इसको नहीं बनाया।

पृथ्वीराज रासा की प्राचीनता पर जो मेरा सन्देह है वह इस बात से और भी दृढ़ होता है कि इसका वृत्तान्त और मनुष्यों के नाम तथा सम्वत् जो इसमें लिखे हैं, वह पृथ्वीराज के समय की बनी हुई फारसी भाषा की पुस्तकों के अनुसार नहीं हैं।

[विन्सैन्ट ए० स्मिथ साहब ने बंगाले की एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल (नम्बर १ भाग पहिला, पृष्ठ २६ सन् १८८१) में लिखा है कि पृथ्वीराज रासा

वर्तमान रूप में बहकाने वाला है, और इतिहासकर्त्ता के तात्पर्य के लिये प्रायः निरर्थक है] मैं उक्त महाशय की बात स्वीकार करता हूँ।



शेषसंग्रह मूलप्रशस्ति

(१)

श्री पार्श्वनाथजी का कुण्डसूं उत्तर तरफ कोट नखे मोरडी नीचला अक्षर—

उंनमो वीतरागाय चिद्रूपंसहजोदितं निरवधिं ज्ञानैक निष्ठार्पितं। निरोन्मीलितमुल्लसत्परकलं स्यात्कारविस्फारितं॥ सद्युक्तंपरमाद्भुतं शिवसुखानंदास्पदं शाश्वतं। नौमि स्तौमि जपामि यामि शरणं तज्ज्योपिरात्मस्थितम्॥ १॥ नास्तंगतः कुग्रह संग्रहो वा नोतीव्रतेजा.................. वः॥.............. नैवसुदुष्टदेहो पूर्वारविस्तात्समुदेवृषोवः॥ २॥ भवेच्छ्री शातिः सा सुत विभवभंगी भव भृतां, विभोर्यस्याभातिस्फुरित नखरोचिः करयुगं॥ विनम्राणामेषाम खिल कृतिनां मंगलमयीं। स्थिरी कर्तुं लक्ष्मीमुपरचितरंगा व्रजमिव॥ ३॥ नासाश्वासेन येनप्रबलवल भृता पूरितः पांचजन्यः।..पदमाग्रदेशैः॥ हस्तांगुष्ठेनशार्ङ्गधनुरतुल वलंकृत्स्नमारोप्यविष्णो रंगुल्यांदोलितोयं हलभृदिवनतिं तस्यनेमेस्तनोमि॥ ४॥ प्रांशुप्राकार कान्तात्रिदशपरिवृढव्यूहवद्धावकाशां। वाचालांकेतुकोटीत्क्रणच्चु मणिमणिकिंकिणीभिः समन्तात्॥ यस्य व्याख्यानभूमिमहहकिंमिदमित्याकुलाः कौतुकेन। प्रेक्षंते प्राणभाजः सखलुविजयतांतीर्थकृत्पार्श्वनाथः॥ ५॥ वर्द्धतांवर्द्धमानस्यवर्द्धमान-

---

यह लेख अंग्रेजी भाषा में कविराजाजी ने जर्नल ऑव् दि बंगाल एशियाटिक सोसायटी कलकत्ता जिल्द १ नं० १ सन् १८८६ ई० में मुद्रित करवाया था, फिर उसको हिन्दी भाषा में 'पृथ्वीराज रहस्य की नवीनता' शीर्षक से सं० १९४३ में सज्जन यंत्रालय, उदयपुर में महाराणा फतहसिंह के आदेशानुसार छपवा कर प्रकाशित किया।

महोदयः ।। वद्ध तांवर्द्ध मानस्यवर्द्ध मान महोदयः ।। ६ ।। सारदांसारदांस्तौमि सारदानविसारदां ।। भारतींभारतींभक्तमुक्तिमुक्ति विशारदां ।। ७ ।। निः प्रत्यूहमुपास्महेनितपतोतंत्रानपिस्वामिनः । श्रीनाभेयपुरः सरान्पर कृपा पीयूपपाथोनिधीन् ।। यज्ज्योतिः परभागभाजनतयामुक्तात्मतामाश्रिताः । श्रीमन्मुक्तिनितंविनीस्तनतटेहारश्रियं विभ्रति ।।८।। भव्यानांहृदयाभिराम-वसतिः सद्धर्मतः संस्थितिः । कर्मोन्मूलन संगतिः शुभततिर्नि वधिवोधोदधृतिः ।। जीवानामुपकारकारणरतिः श्रेयः श्रियां संस्मृतिर्देयान्मे भवसंभृतिः शिवमतिर्जिने-चतुर्विंशतिः ।।६।। श्रीचाहमानाक्षिति राजवंश पौर्वोपिजडावतद्वः ।। विस्तोतयान-नृपरंभ्रयुक्तोनोनिः फलः सार युतोनतोनो ।।१०।। लावण्य निर्मल महोज्वलितांग-यष्टिरच्छोच्छ लच्छुचिपयः परिधानधात्री ।।·········गपर्वतपयोधरभारभुग्नां-साकं भराभ्रनिजनीवततोपिविष्णोः ।।११।। विप्रश्रीवत्सगोत्रेभूदहिछत्रपुरेपुरा । सामंतोनंत सामन्त पूर्णतल्लेनृपस्ततः ।।१२।। तस्माच्छ्रीजय राजविग्रहनृपौ श्रीचंद्रगोपेंद्रकौ तस्माद्दुर्लभगूवकौशानिन्टपो गूवाकसच्चंदनौ" श्री मद्वप्पयराज विंध्यन्ट पतिः श्रीसिंहराड्विग्रहो' श्रीमद्दुर्ल्लभ गुंदुवाकूपतिन्टपाः श्रीवीर्य रामोनुजः ।।१३।। श्रीचंडोवनिपेतराणकधर श्रीसिंहटोदूसलस्तद्भ्राताथ ततो पिवीसलनृपः श्रीराजदेवी-प्रियः" पृथ्वीराजनृपोथतत्तनुभवो रासल्य देवीविभु स्तत्पुत्रोजयदेवइत्यवनिपः सौमल्लदेवीपतिः ।।१४।। हत्वापधिगमिंचलाभिधयसो राजादिवीरत्रयं । क्षिप्रं-क्रूरकृतांतवक्त्रकुहरे श्री मार्ग दुर्गान्वितं 'श्रीमत्सोलण दंडनायकवरः संग्रामरंगांगणे । जीवन्नेवनियंत्रितः करभकेयेनण्टनि·····सात् ।।१५।। अर्णोराजोस्यसूनु-र्धृतहृदयहरिः सत्ववासिष्ठसीमोणांभीर्यौदार्यवर्यः समभवदपरा लब्ध मघ्योनदीत्सः।। तच्चित्रंजंतजाद्यः स्थितिरवृतमहापंकहे तुर्न्नमध्येनश्रीगुवतो न दोपाकरच्चितरतिनी-द्विजिह्वाधिसेव्यः ।।१६।। यद्राज्यंकुशरावणं प्रतिकृतं राजांकुशेनस्वयं येनात्रैवनचित्र-मेतत्पुनर्सन्यामहेतंप्रति । तत्चित्रं प्रतिभासतेसुकृतिना निर्वाणनारायणन्यक-काराचरणेन भंगकरणं श्रीदेवरानंप्रति ।।१७।। कुवलय विकासकर्ता विग्रह-राजोजनिस्ततो चित्रं ।। तत्तानयस्ताच्चित्रयत्रजडक्षीयसकलंकः ।।१८।। भादानस्वं—चकभादानपतेः परस्य भादानः ।। यस्यदधत्करवालः करालः करतला कलितः ।।१६।। कृतांतपथसज्जोभूत सज्जनो सज्जनो भुवः । वैकुंतंकुंतपालोगा हातोवैकुंत-

पालकः ॥२०॥ जाबालिपुरं ज्वालापुरं कृतापाल्लिकापि पल्लीवातत्तूलतुल्यंरोपात्तद्दलंयेन-सौर्येण ॥२१॥ प्रतोल्यांचवलभ्यांच येनविश्रामितंयशः ढिल्लिकाग्रहण श्रांतमाशि-कालाभलंभितः ॥२२॥ तज्ज्येष्ठभ्रातृपुत्रोभूत् पृथ्वीराजः अभूपमः। तस्माद्र्जितदीनागो-हेमपर्वतदानतः ॥२३॥ अतिधर्मरते ''पिपार्श्वनाथस्वयंभुवे। दत्तं मोराकरी ग्रामं भुक्तिमुक्ति स्वहेतुना ॥२४॥ स्वर्णादिदाननिवहैर्दशभिर्महद्भिस्तोलानरैर्नगरदान-चयैश्चविप्राः। येनार्चिता श्चतुरभूपतिवस्तपालमाक्रम्यचारुमनसिद्धिकरीगृहीतः ॥२५॥ सोमेश्वराल्लब्धराज्यस्ततः सोमेश्वरोनृपः। सोमेश्वर नतो यस्माज्जनसोमेश्वरो भवत् ॥२६॥ प्रतापलंकेश्वरइत्यभिख्यायः प्राप्तवान् प्रौढपृथुप्रतापः। यस्याभि-मुख्येवरवैरि मुख्या के चिमृताः केचिदभिद्रुताश्च ॥२७॥ येन श्री पार्श्वनाथाय रेवातीरेस्वयंभुव। शासने रेवणाग्रामो दत्तःस्वर्गायकांक्षया ॥२८॥ अथ कारापक-वंशानुक्रमः। तीर्थे श्रीनेमिनाथस्य राज्येनारायणस्यच। अंभोधिमथवादेव बलिभि-र्बलशालिभिः ॥२९॥ निर्गतः प्रवरो वंशोदेववृन्दैः समाश्रितः। श्रीमाल-पत्तनेस्थाने स्थापितःशतमन्युना ॥३०॥ श्रीमालशैलः प्रवरावचूल पृर्वोत्तरः सत्वमुरुः सुवृत्तः। प्राग्वाटवंशो स्तित्रभूवतस्मिन् मुक्तोपमावैश्रवणाभिधानः ॥३१॥ तद्रा-गभ्रस्तनेयेनकारितंजिन मंदिरं। त्यक्त्वा भ्रांत्यायत स्तत्व मेकत्वस्थिरतांगतांगतां ॥३२॥ योचीकरच्चंद्रसूरि प्रभाणिथा ग्रेरकाड़ौ जिनमंदिराणि। कीर्तिंद्रमारामसमृद्धि हेतोर्विभातिकंदाइव यान्य मंदाः ॥३३॥ कल्लोलमांसलित कीर्ति सुधा समुद्रः सद्बुद्धिवंधुरवधूधरणी धरेशः। वीरोपकारकरणप्रगुणांत रात्मा। श्रीचंचुलस्तत्रनयः पदेभूत ॥३३॥ शुभंकरस्तस्यसुतोनिष्ट शिष्टैर्महिष्टैः परिकीर्त्यकीर्तिः श्रीजाट-सोसूत तदंगजन्मायदंगजन्माखलु पुण्यराशिः ॥३५॥ मंदिरंवर्द्धमानस्य श्रीनाराणक संस्थितं। भातियत्कारितं स्वीयपुण्यस्कंध मिवोज्वलम् ॥ ३६ ॥ चत्वारश्चतुरा चाराः पुत्राः पात्रंशुभश्रियः। अमुष्यामुष्यधर्मणो बभूवुर्भार्ययोर्द्वयोः ॥ ३७ ॥ एकस्यां द्वावजायेतां श्रीमदाम्रटपद्मयौ। अपरस्यां ....

लक्ष्मरदेसलौ ॥ ३८ ॥ पाकाणां नृवरेवीरवेश्मकारणपाटवं। प्रकटितं स्वीय वित्तेन धातुनैवमहीतलं ॥ ३९ ॥ पुत्रौपवित्रौ गुणरत्नपात्रौ विशुद्ध गात्रौ समशील रात्रौ। बभूवतुर्लक्ष्मटकस्यजेत्रौ मुनींदुरामेंद्वभिधो यसस्रौ ॥ ४० ॥ षड्भेदें द्रियवश्यतापरिकराः षट्कर्मकृत्यादराः। षट्पंडावनिकीर्तिपालन पराः षाड्गुण्य

चिंताकरा: ॥ सद्दष्ट यंबुजभास्करा: समभवन् सद्देशलस्यांगजा: ॥ ४१ ॥ श्रेष्ठी-ढुद्दकनायक: प्रथमक: श्री मोसलो केगडि द्देवस्परो इतोऽपि सीयकवर: श्रीराहको-नामत: ॥ एतेतुक्रमतोनिनक्रस युगा भौजैक भूसोपमा मान्याराजशतैर्वदान्यमतयोराजंति जंबूत्सवा: ॥ ४२ ॥ हर्म्यं श्री वर्द्धमानस्या जय मेरोर्विभूषणं । कारितं यैर्महा भागै र्विमानमिवनाकिनां ॥ ४३ ॥ तेषा मंत श्रिय: पात्र .... क श्रेष्ठिभूषणं । मंडल करंमहादुर्गं भूषयामासभूतिना ॥ ४४ ॥ यो न्यायांकुरसेचनैक जलद: कीर्ति-र्निधानांपरां । सौजन्यांबुजिनीविकासन रवि: पापाद्रिभेदेपवि: । कारुण्यामृतवारिवे-र्विलसने राकाशशांको प:मो नित्यं साधु जनोपकार करणव्यापारबद्धादर: ॥ ४५ ॥ येना कारिजितारिनेमिभवनं देवाद्रिश्रृंगोद्धुरं । चंचत्कांचनचारुदंडकलसच्छोणी-प्रभाभास्वरं । खेलत्खेचर सुन्दरी श्रमभर भंजध्वजोद्वीजनै, र्वत्रेष्टापद शैल श्रृंग जिन भूत् प्रोद्दामसद्म श्रियम् ॥ ४६ ॥ श्रीसीयकस्य भार्येद्वे नाग श्री मामगंभिधे । आद्यायास्तुत्र: पुत्रा द्वितीयाया: सुतद्वयम् ॥ ४७ ॥ पंचाचार परायणात्म मतय: पंचांगमंत्रोज्ज्वला: पचज्ञानविचारणासु चतुरा: पंचेंद्रियार्थोज्वला: । श्रीमत्पंचगुरुप्रणाम मनस: पंचाणु शुद्धव्रता: । पंचैतेतनया गृहस्थविनया: श्रीसीयक श्रेष्ठिन: ॥ ४८ ॥ आद्य: श्रीनाम देवोभूल्लोलाक स्त्वोज्वलस्तया । महीधरोदेवधरोद्वावेतावन्य मातृ जौ ॥ ४९ ॥ उज्ज्वलस्यांगजन्मानौ श्रीमद्वल्लभलक्ष्मणौ अभूतांभुवनोद्-भासियसोदुर्लभलक्ष्मणौ ॥ ५० ॥ गांभीर्यंजलधे: स्थिरत्वमचलात्तेजस्विता भास्वत:, सौम्यं चन्द्रमस: शुचित्वममरस्रोतस्विनीत: परम एकैकं परिगृणविश्वविदितो योवेधसासादरम । मन्ये श्रीजकृतेकृत: सुकृतिना सल्लोलक: श्रेष्ठिन: ॥ ५१ ॥ अथागमन्मंदिरमेपकीर्ति । श्रीविंदमल्लोधनधान्यवल्ली । त्रपालुभावादभिगम्यसुप्त: कंचिन्नरेशपुरत: स्थित: स ॥ ५२ ॥ उवाचकस्त्वंकिमिहाभ्युपेत: कुत: ससंग्राह-फणीश्वरोहं । पातालमूलात्तवदेशनायश्रीपार्श्वनाथ: स्वयमेष्यतीह ॥ ५३ ॥ प्रातस्तत्र समुत्थाय नकंचनविवेचितं । स्वप्नस्यां तर्मतोभावायतोयातादिदृपिता: ॥ ५४ ॥ लोलाकस्यप्रियास्तिस्रोबभूवुर्मनस: प्रिया: । ललिता कमलश्रीश्चलक्ष्मीर्लक्ष्मीम्ननाभय: ॥ ५५ ॥ तत: सभक्तांललितांबभाषे । गत्वाप्रियां तस्यानिशिप्रसुप्तां शृणुस्वभद्रे-धरणोहमेहि श्री.........शंयामि ॥ ५६ ॥ तया सचोक्तो ....भद्रे सत्य-मेतत्तु श्रीपार्श्वनाथस्यसमुद्धृतेसं प्रासादमर्च चिकरिष्यतीह ॥ ॥ ५७ ॥ गत्वा-

पुनर्लेर्लिकमेवमूचे, भोभक्त सक्तानुगतातिरक्ताः देवेधनेधर्मविधौ जिनेष्टौ श्रीरेवतीतीरमिह्वापपार्श्वः ॥ ५८ ॥ समुद्धरैनंकुरुधर्मकार्यं त्वकारयश्रीजिनचैत्यनेहं, येनास्यसिश्रीकुलकीर्तिपुत्रपौत्रोरुसंतानसुखादिवृद्धिं ॥ ५६ ॥ त········माख्यंवन-मिह्निवसोजिनपते स्तएवैतेग्रावाणाः शठकमठमुक्ता गगनतः सधारामे········ ········परयतः कुंडसरित स्तदत्रेतत्स्नानं········गमं प्राप परमं ॥ ६० ॥ अत्रास्त्युत्तममुत्तमा दिशि परंसादुष्टमंचो स्थितं तीर्थं श्री वरलाइकात्र परमं देवोऽतिमुक्ताभिधः सत्यश्चात्रवरेश्चरः सुरनतो देवः कुमारेश्वरः सौभाग्येश्वरदाक्षिणे-श्वरसुरौ मार्कंड रिचेश्वरो ॥ ६१ ॥ सत्योंत्ररोश्वरोदेवो व्रह्ममह्मेश्वरावपि, कुटिलेशः कर्करेशो यत्रास्तिकपिलेश्वरः ॥ ६२ ॥ महानालमह्वाकाल········रथेश्वरसंज्ञकाः। श्रीत्रिपुष्करतां प्रापः········रित्रिभुवयार्चिताः ॥ ६३ ॥ कीर्तिनाथं चक्रे········मिस्वामिनः संगमीसः पुरीसश्चमुखेश्वर घटेश्वरः ॥ ६४ ॥ नित्य प्रमोदितोदेवोसिद्धेश्वरगयायुसः । गंगा भेदन सौमेस गगानाथ त्रिपुरांतकाः ॥ ६५ ॥ संस्तात्रिकोटिलिंगानांयत्रास्ति कुटिलानदी, स्वर्णजालेश्वरोदेवः ससंकपिल धारया ॥ ६६ ॥ नाल्प मृत्युर्नवारोगानदुर्भिक्षमवर्षणं यत्रदेव, प्रभावेनकलिपंकः प्रश्वर्षणं ॥ ६७ ॥ पण्मासे जायतेयत्रशिवलिंगाः स्वयं भुवः, तत्रकोटीश्वरेणा नकारलाघाक्रियतेमया ॥ ६८ ॥ इत्येवज········कर्त्तावर्त्तार-क्रियाकर्त्तापार्श्वजिनेश्वरोऽत्रकृपयासोथाद्यवास; पतेः शक्तेवैक्रियिकश्रियस्त्रिभुवन-प्रापिप्रबोधं प्रभुः ॥ ६६ ॥ इत्याकर्ण्यवचोविभाव्यमनसात स्योरगः स्वामिनः, सप्रातः प्रतिबुध्यपार्श्वमभितः चोणीविदार्यक्षणात्तावत्तत्रविभुंददर्शसह्सान्यप्राकृता-कारिणं कुंडाभ्यर्णतपवधानदवंत स्वायंभुवः श्रिश्चियं ॥ ७० ॥ नासीद्यत्रजिनें-द्रपादनमनं नोधर्मकर्मार्जनं नस्नानंनविलेपनंनचतपोध्यानंनदानार्चनं नो वासन् मुनिदर्शनं········॥७१॥ तत्कुण्डमध्यादय निर्जगाम श्रीसीयक स्यागमनेनपद्मा श्री चेत्रपालस्तदथांबिकाच श्रीज्वालिनी श्रीधरणोरगेशः ॥ ७२ ॥ यदावतारमाक्षा-र्षीदत्रपार्श्व जिनेश्वरः, तदानागह्रदयात्लगिरिस्तंवप्रपातसः ॥ ७३ ॥ यत्रोपिदत्तवान् स्वप्नंलक्ष्मणाब्राह्मणचारिणः । तत्रा इमपियास्यामियत्रपार्श्वविभुर्मम ॥ ७४ ॥ रेवती कुंडतीरेण यानारी स्नानमाचरेत् । सापुत्रभर्तृ सौभाग्यं लक्ष्मीचं लभतेस्थिरं ॥ ७५ ॥ ब्राह्मणःक्षत्रियोवापिवैश्योवा शूद्र एवच, अंत्यजो वापिस्नानंचसकर्त्तात्युत्तमांगतिं ॥७६॥

॥ ७६ ॥ धनं धान्यं ········धैर्ये धैरियतांधियां, धराधिपतिसन्मानं लक्ष्मीचाप्नोतिपुष्कलाम् ॥ ७७ ॥ तीर्थश्चैत्य मिदंजनेन विदितंयद्गीयतेसांप्रतं, क्रूरप्रेतपिशाचकुञ्जररुजाहीनागगंडा पहं, संन्यासंचचकारनिर्गत भयं य्र्कान्ट मालीद्वयं, काकीनाकमवापदेवकलया किंकिंमसम्पद्यते ॥ ७८ ॥ श्लाघ्यंजन्मकृतंधनंचसफलं नीताप्रसिद्धिंमतिः, सद्धर्मोपिचदर्शितस्तनुरुहस्वप्नोर्पित सत्यतां,········रत्नष्टि दूषितमनाः सद्दृष्टिमार्गेकृतो, जैन········तमाश्रीलोलकः श्रेष्ठिनः ॥ ७६ ॥ किंमेरोः शृंगमेतत्किमुत हिमगिरेः कूट कोटि प्रकांडं, किंवा कैलाशकूटं किमथसुरपतेः स्वर्विमानंधिमानं इत्थंयत्तर्कतेस्म प्रतिदिन ममरैर्मर्त्यराजोत्करैर्वा, मन्ये श्रीलोलकस्यत्रिभुवनभरणा दुच्छ्रितं- कीर्तिपुंजम् ॥ ८० ॥ पवनसुतपताकापाणितो भव्यमुख्यान्, पटुपटहनिनादादाह्वय त्येपजैनः; कलिकलुषभयोच्चैर्दूरमुत्सारयेद्वा त्रिभुवनविभु························भानूत्यतिवालयर्थि ॥ ८१ ॥॥········स्थानकमाधरंतिदधतेकाश्चिच्चगीतोत्सवं काश्चिद्विप्रतितालवंशललितं कुर्वंतिनृत्यंचकाः । काश्चिद्वाद्यमुपानयंति निवृतं वीणास्वरं काश्चन, यः प्रोच्चैर्ध्वजकिंकिणी युवतयः केपांसुदेनाभवन् ॥ ८२ ॥ यः सद् वृत्तयुत लुदीमिकलितस्त्रासा दिदायज्झितश्चिताख्यानपदार्थदानचतुराश्चितामणेः सोदरः सोभूः-च्छ्रीजिनचंद्रसूरिसुगुरुस्तत्पादपंकेरुहे, योभृंगायतपद्मलोल कवरस्तीर्थे चकोरपमः ॥ ८३ ॥ रेवत्याः सरिसस्तटेतरुवरायत्राह्वयंतेभृशं शाखा बाहुल तोत्करैर्नरसुरान् पुंस्को किलानांरुतैः, मत्पुष्पोच्चयपत्रसत्फलचयौ रानिर्मलैर्वारिभिर्भोभ्यर्चय-ताभिषेकयतवा श्रीपार्श्वनाथं प्रभुं ॥ ८४ ॥ यावत् पुष्करतीर्थे सैकतकुलं यावच्च गंगाजलं, यावत्तारक चंद्राभास्करकरायावच्चदिवंकुंजराः । यावच्छ्री जिनचंद्रशासन मिदं यावन्महेन्द्रंपदं । तावत्तिष्ठतुयः प्रशस्तिसहितं जैन स्थिरं मंदिरं ॥ ८५ ॥ पूर्वतो रेवती सिंधुर्देवस्यापिपुरंतथा । दक्षिणस्यां मठस्थानंमुदीच्यां कुंडमुत्तमं ॥८६॥ दक्षिणोत्तर तोवाटी नानावृक्षैरलंकृता । कारितं लोलिकेनैतत् सप्तायतन संयुता ॥ ८७ ॥ श्रीमन्म··········रसिंहोभूद्गुणभद्रोमहामुनि : कृताप्रशस्तिरेणाच कवि········भूषणा ॥ ८८ ॥ नैगमान्वयकायस्थ छीत्तिगस्यचसूनुनां । लिखिता केशवेनेयं मुक्ताफलमिवोज्वला ॥ ८६ ॥ हरसिंहसूत्रधारोथ तत्पुत्रोपाल्हणोभुवि । तदंगजेमाहडेनापि निर्मितं जिनमंदिरं ॥ ६० ॥ नानिगपुत्रगोविंद पाल्हणसुत-

देल्हणौ। उत्कीर्णा प्रशस्ति रेषा कीर्तिस्तभं प्रतिष्ठितं ॥ ६१ ॥ प्रसिद्धिमगमद्दे व कालेविक्रम भास्वतः। षड्विंशद्वादशशते फाल्गुने कृष्णपक्षके ॥ ६२ ॥ तृतीयायां तिथौवारे गुरौतारेचहस्तके। वृद्धिनामनियोगेच करणे तैतले तथा ॥ ६३ ॥ सम्वत १२२६ फाल्गुन विद ३ कामारेवणाग्रामयोःरंतराले गुहिलपुत्र रादान्वरमहंवण- सिंहभ्यां दत्तक्षेत्र डोहली १ खडुवराग्रामवास्तव्य गौड सौनीगवासुदेवाभ्यां दत्तडो- हलिका १ आंतरी प्रतिगणके रायता ग्रामीयमहंत लीबडीयोपलीभ्यां दत्तकूडो डोहलिका १ चडोवाग्राम वास्तव्य पारिग्रहा अल्हणेन दत्तक्षेत्र डोहलिका १ लघुविकौली ग्रामसं गुहिलपुत्रए १ प्राहरमहंतममा हवाभ्यां दत्तक्षेत्र डोहलिका १ वहुभिर्वसुधामुक्ता राज- भिर्भरतादिभिः। यस्य यस्य यदाभूमिस्तस्य तस्य तदाफलम ॥ १

यद्य शुद्धाक्षरा माला
अशुद्धा भणिति यंदा।
अनुस्वारा दिभिर्भेदे
अर्थे का भाषया स्थितिः ॥

प्रशस्ति २

मेनालगढ़ में महल के उत्तरी दरवाजे के एक स्तंभ में:—

ॐनमः शिवाय। मालवेशगतवत्सर शतैः द्वादशैश्चषट्विंश पूर्वकैः, कारितं मठमनुत्तमं कलौ भाव ब्रह्ममुनिनाम नह्यं, तस्मात्सत्यमयः सुभाषितमयः कंदर्पशोभामयः स्वस्वद्धर्म कुलाकुलमयः कल्याणमालामयः, धर्म्मज्ञंचमकल्मषंकृतधियं श्रीचाहमानान्वयं, साप्रक्ष्माधिप सुन्दरो वनिपतिः श्रीपृथ्विराजो भवत् ॥ तस्यधर्मवरिष्ठ स्यपृथ्वीराजस्यधीमतः पुण्येकुर्व्रातिवैराज्यंनिष्पन्नं मठमुत्तमम् ॥

प्रशस्ति ३

पुला के नीचे तलेटी के दरवाजे से आठमां कोठा में प्रशस्ति पश्चिम की फेट में ओलां २—

"सम्वत् १३२४ वर्षे इह चित्रकूट महादुर्गतलहट्टिका यांपवित्र श्री चैत्रंगणाधा गांगणतरणिस्व अपितामह प्रभु श्री हेमप्रभु सूरिभिः वे शितस्यसुविहित शिरोमणि

सिद्धांत सिंधु भट्टारक श्रीपद्मचन्द्रसूरि प्रतिष्ठितस्यास्य देव श्री महावीर चैतस्य प्रतिभा समुद्र कवि कुंजरः पितृतुल्यातुच्चवात्सल्यात्र राज्य श्री रत्न प्रभव सूरिणा मादेशात राज भगवन्नारायण महाराज श्रीतेजःसिंह देवकल्याण विजयी राजा विरुध मान प्रधान राज राजपुत्र कांगापुत्र परनारि साहा।"—

प्रशस्ति ४

पुलाका ६ कोठा में पूर्वकी फेट में—

·········स्फृतदुद्भाविनांभूपाः श्रीगुहिलान्वय मचवत्प्राप्ताद्य जन्मक्रम। ५ इच्छसच्छात······ ··पुरपुलप्रावपा

सिंहदेवः तत्सुधंपुण्य पत्तं पाताभिनव रुक्मांगदइव श्रीसमसिंह देवः। तेन श्रीसमरसिंहेनक्त कायजन चाश्रेयसे·········भर्तृ पुरीयगच्छे श्रीसामलारगच्छा-चार्याणां पद्मशालायां श्वभूमीदीयते ममगच्छा श्रीजयतल्लदेव्या साध्वी सूमलोपदेशेन कूर्म्मप्रविकल्पय य·········वधिप्रासादौई कारि आत्मीया कुकुंजन्या प्रति········· दितस्य मूलद्वारे प्रवेशे वामदक्षिण विभागे द्वेद्दे हट्टे ददात् तथाच श्री चित्रकूट तलहट्टिकायां·········सज्जनपुरमंडपिकायां वूढाडूर्ग समंडपिकायां श्रासुचतुर्पु मंडपिका प्रत्येकं वट कडीया द्रम्म २४ तुविंशति ४ दीयंते·········स्मादेव जगति-मध्यवर्त्ति सिंहनादक्षेत्र पाल योग्यं श्री चित्रकूट तलहट्टिकायां मंडपिकायां द्रम्म·········चकपिलकूपात्रागतायाः सारदाया योग्यं द्रम्म १४ चतुकडी श्रघाट मंडपिकायांतु श्रीपद्मवत्या योग्यं चउकडियां मत्रि·········राजा श्री समरसिंह··· ·········सेवन—

पुलाका ६ कोठा में अक्षर जोड़े संवत् १३—२ जेष्ट शुदी १३ श्री भुवन चंद्रसूरिश्रेयसे गटीका युग्मदत्त श्री··············

प्रशस्ति ५

नौकोठांके पाछे महलों का चोक में गड्यो थांवो नीकल्यो जीरा—

सम्वत् १३३५ वर्षे वैशाख सुदी ५ गुरौ श्री एकलिंग हराराधन पाशुपतान्वय हारीतर्षिक्षत्रिय गुहिलपुत्र·········हलपूच सहोदर्य व श्री चूडामणीच भर्तृ स्थानो-द्भव द्विजाप्तविभागातुच्छे श्री भर्तृपुरीयगच्छे श्री चूडामणि भर्तृपुरे श्री गुहिलपुत्र

विहार आदेश प्रतिपत्तौ श्री चित्रकूट मेदपाटाधिप ते श्री तेजःसिंह राज्ञा श्री च(ज)य तल्लदेव्या श्री श्याम पार्श्वनाथ वसहीस्वश्रेयसे कारिता ॥ तद्राज्ञीवसही पाश्चात्य भागे .... गच्छीय श्री प्रद्युम्नसूरिभ्यो महाराज कुल गुहिल पुत्रवंश तिलक श्री समरसिंहेन चतुरा घाटो पेतायदानयुताच मठभूमि .... घाटाः पूर्वोत्तरयो वोतिः साढलस्यावासः दक्षिणस्यां श्री सोमनाथः ॥ पश्चिमाणां श्री भर्तृपुर गच्छीय चतुर्विंशतिजिन .... लयो राज्ञीवसहिकाच ॥ अन्य चात्रदानानि ॥ श्री चित्रकूट तलहट्टिका मंडपिकायां चउद्रम्मा २४ तथा उत्तरायणे घृतकर्ष १४ तथा तैलकर्ष ६ आघाटमंडपिकायां द्रम्मा ३६ खोहर मंडपिकायां द्रम्मा ३२ सज्जनपुर मंडपिकायां द्रम्मा ३४ अमून्यान्य दानानिदत्तानि ॥ श्री एकलिंग शिवसेवन तत्पर श्री हारीत राशिवंश संभूत महेश्वर राशि तच्छिष्य श्री शिवराशि गोडजातीय द्विजदिवाकर वंशोद्भव व्यास रत्न सुतद्योतिः साढ लतव्वाच विप्रदेल्हणसुतभट्ट साढो सत्पुत्र द्वारभट्ट रविभट प्रसद्भ्यत्तं भीमासहितेन एभिर्मिलित्वा श्री भर्तृपुरीयगच्छे .... कारि ॥

प्रशस्ति ६

आबू पर्वत ऊपर अचलगढनीपासे अचलेश्वर महादेव नूं मंदीर छे तेनी पासेना मठनी अंदर ना शीलालेख नुं अक्षरांतर—

(१) ॥ ॐ० ॥ ॐ नमःशिवाय॥ ध्यानानंदपराः सुराः कति कति ब्रह्मादयोऽपि-स्वसंवेद्यं यस्यमहः स्वभाव विशदं किंचिद्धियां कुर्व्वते माया मुक्तवपुः स्वसंगत-भवाऽभावप्रद्रः प्रीतितो लोकाना मचलेश्वरः सदिशतुश्रेयः प्र—

(२) भुः प्रत्यहं ॥ १ ॥ स्वर्गार्थे स्वतनुं हुताशमनिशं पद्मासनेजुव्हतः प्राणैः प्राजनि नीललोहितवपुर्यो विश्वमूर्तेः पुरा दुष्टांगुष्ट नखांकुरेण हठत स्तेजोमयं पंचमं छिन्नं धातृशिरः करांबुजतले बिभ्रत्सवस्त्रा ।

(३) यतां ॥ २ ॥ अव्यक्ताक्षर निर्भर ध्वनिजय स्त्यक्तान्य कर्म्मश्रमः स्वंदेहात्सितिमानमुक्षितुमना दानांबुसंवर्धितः । यत्कुंभाचल गस्तपांसि वितनो-त्यद्यापि भृंगव्रजः प्रत्यूहापगमोन्नतिर्गजमुखोदेवः सवोऽस्तुश्रिये ।

(४) ॥ ३ ॥ किंच ॥ तुभ्य द्वारिधिर्दीर्यमाय शिखरि श्रेणिभ्रमद्भूतलं त्रुट्यद्व्योमदिगंत संहतिपतद् ब्रह्मांड भांड स्थिति। कल्पांतस्य विपर्ययेऽपिजगता-मुद्वेगमुच्चैर्दिशत् सिंधोर्लंघनमद्भुतं हनुमतः पायादपायात्सनः ॥ ४ ॥ शाखोप-शाखा।

(५) कुलितः सुपर्व्वा गुणोचितः पत्र विभूपितांशः कृतास्पदो मूर्द्धनि भूधराणां जयत्युदारो गुहिलस्यवंशः ॥ ५ ॥ यद्वंशो गुहिलस्य राजभगवन्नारायणः कीर्त्यते तत्सत्यं कथमन्य था नृपयस्तं संश्रयंते तरां। मुक्तेः कलिपतवेत।

(६) सः करतलव्यासक्तदंडोज्वलाः प्राणत्रायधियः श्रिय समुदयन्त्यस्ति पहस्ताः सदा ॥ ६ ॥ मेदःक्लेद भरेण दुर्ज्जनजनस्या प्लावितः संगरे देशः क्लेशकथा पकर्षणपटुर्यो वप्पकेनोच्चकैः। लावण्योत्कर निर्जितामरपु (७) रः श्री मेदपाटाभिधा माधत्ते स्मस एष शेषनगर श्रीगर्वसर्वंकपः ॥ ७ ॥ अस्तिनागह्रदं नाम सायाम मिह पतनं ॥ चक्रे तपांसि हारित राशिर्यत्र तपोधनः ॥ ८ ॥ केपि क्वापि पर प्रभावजनितैः पुण्यैर्हविर्भिर्विभुं प्रीणंति ज्वलनं हिता।

(८) यजगता मारब्ध याग क्रमाः। अन्ये प्राण निरोध बोधितहृदाः पश्यंति चात्मस्थितं विश्वं सांद्रजनस्थलीषु मुनयो दत्ताद्भुतावोदशाः ॥ ९ ॥ अस्मिन्नेववने तपस्विनि जने प्रायः सकलबंधने वृत्तांतं भुवनस्य योग जियतः प्रत्यक्षतः पश्यति। हा

(९) रीतः शिवसंगमंग विगमात्प्राप्तस्व सेवाकृते वप्पाय प्रथिताय सिद्धि निलयोः राज्यश्रियं दत्तवान् ॥ १० ॥ हारीतात्किल वप्पकोऽडिवलयव्याजेनलेभे महः क्षात्रं धात् निभा द्वितीये मुनये ब्राह्म स्वसेवाछला

(१०) त्। एतेद्यापि महीभुजः क्षितितले तद्वंशसंभूतयः शोभंत सुतरा मुपात्तवपुषः क्षात्राहि धर्म्मा इव ॥ ११ ॥ वप्पकस्य तनयोनयनेता संबभूव नृपति-गुहिलाख्यः यस्य नाम कलितां किलजातिं।

(११) भूभुजो दधति तत्कुलजाताः ॥१२॥ यत्पीयूष मयूख सुंदर मतिर्विद्या सुधालंकृति निः प्रत्यूह विनिर्जित स्मरगतिः प्राकाम्य रम्याकृतिः। गांभीर्येन्निति संभुतस्य जलधेर्विस्फोटिताहंकृतिस्तस्माद्भोज।

(१२) नरेश्वरः ससमभूत् संसेवित श्रीपतिः ॥ १३ ॥ शीलः सलील करवाल कराल पाणि र्भेजे भुजेन तदनु प्रतिपक्ष लक्ष्मीं। उत्साह भावगमकं पुलकं दधानो वीरः स्वयं रस इव स्फुटबद्धदेहः ॥ १४ ॥चोडस्त्रीर।

(१३) तिखंडनः कुलनृप श्रेणी शिरोमंडन कर्णाटेश्वरदंडनः प्रभुकला मैत्रीमनोनंदनः। तत्सूनुर्नयमर्मनर्म्मसचिवः श्रीकाल भोजः क्षमापालः कालकराल कर्कश धनुर्दण्ड प्रचंडोजनि ॥ १५ ॥ छाया

(१४) भिर्वनिताः फलै सुमनसः सत्पत्रपुंजैर्दिशः शाखाभिर्द्विजवर्ग मर्गल-भुजःकुर्व्वन् मुदा मास्पदं ॥ तद्वंशः प्रबलां कुरोतिरुचिरः प्रादुर्बभूवा वनीपालो भर्तृभटस्त्रि विष्टपतरोर्गर्व्वाभिहर्त्ता ततः ॥ १६ सुष्टिप्र

(१५) मेयमध्यः कपाटवक्ष स्थलस्तदनु। सिंहस्त्रासित भूधरमत्तेभोभू-पतिर्जयति ॥ १७ तज्जन्मा समहायिकं स्वभुजयोः प्रासैकसाहायिकः क्षोणीभारमुदार मुन्नतशिरा धत्ते स्म भोगीश्वरः यक्षो

(१६) धानल विस्फुलिंगमहसि– प्रत्यर्थिनोऽनर्थिनः प्रांचत्यक्त परिग्रहा कुलधियः पेतुः पतंगा इव ॥ पुंमाणस्य ततः प्रयाण विपति क्षोणीरजो दुर्दिने निस्त्रिंशांबुधरः शिपेच सुभटान् धारा।

(१७) जलैरुज्वलैः। तन्नारी कुचकुंकुमानि जगलुश्चित्राणि नेत्रांजनै रित्याश्चर्यमहोमनस्तु सुधिया मद्यापिविस्फूर्जति ॥ १८ ॥ अल्लटो जनिततः क्षितिपालः संगरेनुकृत दुर्जयकालः। यस्यैवरिपू।

(१८) तनां करवालः क्रीडयैव जयति स्मकरालः ॥ २० ॥ उदयतिस्म ततो नरवाहन समिति सहृत भूपति वाहनः। विनय संचयसेवितशंकरः सकलवैरिजनस्य भयंकरः ॥ २१ ॥ विक्रम विधूत विश्व प्रतिभ (१६) टनीते स्तथा गुणस्फीतेः कीर्तिस्तारकजैत्री शक्ति (कुमा) रस्य संजज्ञे ॥ २२ ॥ आसीत्ततो नरपतिः शुचिवर्म्म नामा युद्ध प्रदेश रिपु दर्शित चंडधामा उच्चैर्महीध्रर शिरः सुनिवे (२०) शितां हेः शंभोर्विशाख इव विक्रम संभृत श्रीः ॥ २३ ॥ स्वर्ल्लोके शुचिवर्म्मणि स्वसुकृतैः पौरंदरं विभ्रमं बिभ्राणे कलकंठ किन्नरवधू संगीत दोर्विक्रमे। साद्य न्मार विकार वैरितरुणी गंडस्थली पांडुरै र्व्रह्मांदं न।

(२१) र वर्म्मणा धवलितं शुभ्रैर्यशोभिस्ततः ॥ २४ ॥ जाते सुरस्त्री परिरंभ सौख्य समुत्सुके श्रीनर वर्म्मदेवे। ररक्ष भूमी मथ कीर्तिवर्म्मा नरेश्वरः शक्र समान धर्म्मा ॥ २५ ॥ कामधाम निकासतापि नितपे ऽमु (२२) ष्मिन्नृपेरागिणि स्वः सिंधोर्ज्जलसंप्लुते रमयति स्वर्लोक वामभ्रुवः । दोर्दंडद्वय भग्न वैरिवसतिः चोणीश्वरो वैरटश्चक्रे विक्रमतः स्वपीठ विलुठन्मूर्ध्नश्चिरं द्वेपिण ॥ २६ ॥ तस्मिन्नुपरते राज्ञि मुदिताशेषविद्विपि । वैरिसिं।

(२३) ह स्ततश्चक्रे निजं नामार्थं तद्भुवि ॥ २७ ॥ व्यूढोरस्क स्तनुमध्ये दवेडा कंपित भूधरः । विजयोप पदः सिंह स्ततो रिकरिणोऽवधीत् ॥ २८ ॥ यन्मुक्तं हृदयांग राग सहितं गौरत्व मेतद् द्विपन्नारीभि र्विरहात्ततोऽपि समभूत् किंकरिणका ।

(२४) रक्रमः ॥ धत्ते यत्कुसुमं तदीयमुचितं रक्तत्व माभ्यंतरे बाह्य पिंजरतां चकारण गुण ग्रामो पसंवर्ग्गणं ॥ २९ ॥ ततः प्रतापानलदग्ध वैरिक्षितीश धूमोच्छ मणीरसेन नृपोरिसिंहः सकलासु दिक्षु लिलेखवीर : स्वयशः प्रशस्ति ।

(२५) ॥ ३० ॥ लोचनेषु सुमनस्तरुणी नामंजनानि दिशता यदनेन वारिकाल्पित महोवत चित्रं कज्जलं हृत मराति वधूनां ॥ ३१ ॥ नृपोत्तमांगो पलकांतिकूट प्रकाशिताष्टा पटपादपीठः । अभूदमुष्मादथ चोडनामानरेश्व (२६) रः सूर्य समान धाना ॥ ३२ ॥ कुंभिकुंभ विलुठत्करवाल संगरे विमुख निर्मितकालः ॥ तस्य सूनिरथ विक्रमसिंहो वैरि विक्रम कथां निरमाद्रत् ॥ ३३ ॥ भुजवीर्याविलासेन समस्तोद्धृत कंटकः चक्रे भुवितत: क्षेम क्षे ।

(२७) मसिंहो नरेश्वरः ॥ ३४ ॥ रक्तं किंचिन्निपीय प्रमदपरि लसत्पाद विन्यासमुग्धाः कातेभ्यः क्षतवच्चो ददति रस भरोद्गार मुद्राकपालैः । पात्रं पात्रं तदुच्चैर्मुदित सहचरी हस्तविन्यस्त पात्रं श्रीता न्तेते रिशा (२८) चाः ममरभुवि यशो यस्य संध्याहरन्ति ॥ ३५ ॥ सामंतसिंह नामा कामाधिक सर्वसुन्दर शरीरः । भूपालोजनि तस्मा दपहृत सामंत सर्वस्वः ॥ ३६ ॥ पोमाण संतति वियोग विलक्ष लक्ष्मी सेना मद

(२९) ष्ट विरहां गुहिलान्वयस्य । राजन्वतीं वसुमती मकरोत्कुमारसिंह स्ततो रिपुगता मपहृत्य भूपः ॥ ३७ ॥ नामापियस्य जिष्णोः परवलमथनेन सान्वयंजज्ञे विक्रमविनीत शत्रू र्नृपति रभून्मथनसिं

(३०) ह्रोऽथ ॥ ३८ ॥ कोशस्थितिः प्रति भटद्दतजं नभुंक्ते कोशं नवैरि रुधिराणि नपीयमानः । संग्राम सीननि परिरभ्ययस्य पाणिं द्विसंश्रय मवाप फलं कृपाणः ॥ ३९ ॥ शेपनिःशेष सारेण पद्म

(३१) सिंहेन भूभुजा मेदपाट मही पश्चा त्पालिता लालिता पिच ॥ ४० ॥ व्यादीर्ण वैरिमद सिंधुर कुंभ कूट निष्टत मौक्तिक मणि स्फुट वर्ण भाजः। युद्धप्रदेश फलिकासु समुल्लिलेख विद्वा नयं स्वभुजवीर रसप्र

(३२) वंधान् ॥ ४१ नड्डूल मूलं कपबाहु लक्ष्मी स्तुरुष्क सैन्यार्णव कुंभ योनिः । अस्मिन् सुराधीश सहासनस्थे ररक्षभूमी मथ जैत्रसिंहः ॥ ४२ ॥ अद्यापि संधक चमू रुधिरावमत्त संघूर्णमान रमणीय रिरंभणेन आ—

(३३) नंद मंद मनसः समरे पिशाचाः श्रीजैत्रसिंह भुज विक्रम मुद्गृणंति ॥ ४३ ॥ धवलयतिस्म यशोभिः पुण्यैर्भू मंडलं तदमु । विहिता हित भृश शंक- स्तेजः सिंहोनिरातंकः ॥ ४४ ॥ उग्र

(३४) मौक्तिक वीज मुत्तम भुवि त्यागस्य दानांबुभिः सिक्तासद्गुरु साध- नेन नितरामादाय पुण्यं फलं । राज्ञाऽनेन कृपाणकोटिमटता स्वैरं विगाह्यश्रियः पश्चात्केपिविवर्द्धिता दिशि दिशि

(३५) स्फारा यशोराशयः ॥ ४५ ॥ आद्यः क्रोड वपु कृपाण विलसद्दंष्ट्रा- कुरोयः क्षणान्मग्नामुद्धरतिस्मगुर्जरमही मुच्चै स्तुरुष्कार्णवात् । तेजः सिंहसुतः स एप समरः क्षोणीश्वरग्रामणी राधत्ते वलिकर्णयोर्धु—

(३६) र मिलागोले वदान्योऽ धुना ॥ ४६ ॥ तालीभिः स्फुटतूर्य ताल रचना संजीवनीभिः करद्वंद्वोपात्त कवंधमुग्धशिरसः संनर्तयंतः प्रियाः अद्याप्यु न्नद राक्षसा स्तवयशः खंडं प्रतिष्टं रणे गायंति प्रति

(३७) पक्ष शोणित मदा स्तेजस्विसिंहात्मज ॥ ४७ अप्रमेय गुण गुंफ कोटिभिर्गाढ बद्ध वृप विग्रहा कृतेः । कीर्त्यतोः न सकला तवस्तुतिर्ग्रन्थगौरव भया न्नरेश्वरं ॥ ४८ अर्बुदो विजयते गिरि क

(३८) च्चैं दैव सेवित कुला चलरत्नं । यत्र षोडशविकार विपाकैं रुम्भितो-ऽकृत तपांसि वसिष्ठः ॥ ४६ ॥ क्लेशा वेश विमुग्ध दांतजनयोः सद्भुक्ति मुक्ति प्रदे लक्ष्मी वेश्मनि पुण्य जन्हु तनयासं ।

(३९) सर्गं पूतात्मनि । आप श्रागचलेश्वर त्व मचले यस्मिन् भवानी पति विश्व व्याप्ति विभाव्य सर्वं गतया देवश्चलोपि प्रभुः ॥ ५० ॥ सर्वं सौंदर्य सारस्य कोऽपि पूञ्ज इवा द्भुतः । अयं यत्रं ।

(४०) मठस्तिष्ठ त्यनादि स्तापसो (मो) चितः ॥ ५१ ॥ यत्र क्वापितप स्विनः सुचरिताः कुत्रापि मर्त्याः क्वचि द्गीर्वाणाः परमात्म निर्वृ ति मिव प्राप्ताः त्रयेषु त्रिपु । यस्यायोद्गति मर्बु देन सहितां गायं ।

(४१) ति पौराणिकाः संधत्ते सखलु क्षण त्रयमिपात त्रैलोक्य लक्ष्मी मिह ॥ ५२ ॥ जीर्णोद्धारमकारयन्मठमिमं भूमीश्वर श्राभणीर्देवः श्रीसमरः स्वभाग्य विभवा दिष्टो निज श्रेय से । किंचास्मि ।

(४२) न्परमास्तिको नरपतिश्चक्रं वसुभ्यः—कृपासंश्लिष्टः शुभ भोजन स्थिति मपि प्रीत्या मुनिभ्य स्ततः ॥ ५३ ॥ अचलेश दंड मुच्चैः सौवर्णं समर भूपालः । आयुर्वायु चला चल मिह दृष्ट्वा वारयामास ॥ ५४ ॥

(४३) आसीद्भावाग्निनामेह स्थानाधीशः पुरामठे हेलोन्मूलित संसार बीजः पाशुपतैर्व्रतैः ॥ ५५ ॥ अन्योन्य वैर विरहेण विशुद्धदेहाः स्नेहानुबंधिहृदयाः मदयाननेषु अस्मिन् तपस्यति मृगं—

(४४) द्रगजादयोपि सत्वाः समीहितविमोक्ष विधायितत्वाः ॥ ५६ ॥ शिष्य स्तस्या यमधुना नैष्टि को भाव शंकरः शिव सायोज्य लाभाय कुरुते दुष्करंतपः ॥ ५७ ॥ कल कुसुम सम्र ।

(४५) द्धि सर्वकालं वहंतः परमनियमनिष्टां यस्यभूमीरुहोऽमी । अपर-मुनिजनेषु प्रायशः सूचयंति स्खलित विपयवृत्तेरर्बु दादि प्रसूताः ॥ ५८ ॥ राज्ञा समरसिंहन भावशंक ।

(४६) रशासनात् मठः सौवर्णदंडेन सहितः कारितोऽर्बुदे ॥ ५६ ॥ योऽकार्पीदिकलिंगत्रिभुवन विदित श्रीसभाधीश चक्रस्वामि प्रासादवृन्दे प्रियपटुतनयो वेदशर्म्मा ।

(४७) प्रशस्तिः । तेनैषापि व्यधायि स्फुटगुण विशदा नागरज्ञातिभाजा विप्रेणाशेष विद्वज्जन हृदय हरा चित्रकूटस्थितेन ॥ ६० ॥ यावदर्बुदमहीश्वरसंगं संविभर्ति भगवा ।

(४८) नचलेश । तावदेव पठता मुपजीव्या सत्प्रशस्ति रियमस्तुकवीनां॥६१॥ लिखिता शुभ चन्द्रेण प्रशस्ति रिय मुज्वला उत्कीर्णा कर्मसिंहेन सूत्रधारेण धीमता ॥ ६२ ॥

सं० १३४२ वर्षे मार्ग शुद्धि १ प्रशस्तिः कृता ।

प्रशस्ति ७

[१] संम्वत् १३४४ वैशाख शुदि ३ [१

[२] अद्य श्री चित्रकूटे समस्त महारा [वल]

[३] [—..—] कुल श्रीसमरसिंह देवकल्या [ण]

[४] [—..—] विजय राज्यत्येवंकाले चित्रांग

[५] तड़ाग मध्ये श्री वैद्यनाथ कृते सक

[६] शा........लार राम्वटेन त्रौकड़ी दत्तद्रा

[७] ग्राम १ कायस्थ कुले पयंत सांग

[८] सुत वीजडेनकारायितं ॥ १ ॥



कन्नौजाधिपति मदनपाल देवका ताम्रपत्र

अकुण्ठोत्कंठवैकुण्ठकण्ठपीठलुठत्करः, संरम्भः सुरतारम्भे सश्रियः श्रेयसेस्तुवः ॥१॥ आसीदसीतद्युतिवंशजातक्ष्मापालमाला सुदि वंगतासु साक्षाद्विवस्वनिवभूरिधाम्ना नाम्नायशोविग्रहइत्यु दारः ॥ २ ॥ तत सुतोऽभून्महीचन्द्रः श्चन्द्रधामनिभ

निजम् येना ऽपारमकूपारपारे व्यापारितंयशः ॥ ३ ॥ तस्याऽभूत तनयो नयैक रसिकः क्रान्तद्विपन्मण्डलो विध्वस्तोद्धतवीरयोधतिमिरः श्रीचन्द्र देवो नृपः येनोदारतरप्रताप शमिता शेष प्रजोपद्रवं श्रीमदगाधिपुराधि राज्यमसमं दोर्विक्रमेणार्जितम् ॥ ४ ॥ तीर्थानि कोशिकुशिकोत्तर कोशलेन्द्र स्थानीयकानि परिपालयताऽभिगम्य हेमात्म-तुल्यमनिशं ददताद्विजेभ्यो येनांऽकितावसुमती शततस्तुलाभिः ॥ ५ ॥ तस्याऽऽत्मजो मदनपाल इति क्षितीन्द्र चूडामणिर्विजयते जिनगोत्रचन्द्रः यस्याऽभिषेक कलशोल्लसितैः पयोभिः प्रक्षालितं कलिरजः सकलं धरित्र्याः ॥ ६ ॥ यस्याऽऽसी-द्विजयप्रमाणसमये तुंगाचलोच्चैश्चलन् माद्यत्कुम्भिपदक्रमास मभरभ्रश्यन्मही मण्डले चूडारत्नविभिन्नतालुगलितस्त्यानासृगुद्भासितः शेषः पेपव शादिव क्षणमसौ क्रोडेनिलीनाननः ॥ ७ ॥ सोयं समस्त राज संसेवित चरणः-परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर परममाहेश्वर निजभुजोपार्जित श्री कान्यकुब्जा-धिपत्य श्री चन्द्रदेव पादानुध्यात परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर परमाहेश्वर श्रीमन्मदन पालदेवो विजयी वणेसरमौ अपत्तलाया मह्व आमग्राम निवासिनो निखिल जान पदानुपगतानपिच राज राज्ञी युवराज मन्त्रि पुरोहित प्रतीहार सेनाधिपति भाण्डागारि काक्ष पटालिकभिपड् नैमित्तिकान्तः पुरिकदूत करितुरगपत्तनाकरस्थान गोकुलाधिकारि पुरुपान् समज्ञापयति बोधयत्यादिशतिच ।

विदितमस्तुभवतां यथो परि लिखित ग्रामः सजलस्थलः सलोह लवणाकरः समधूकचूत वनवाटिका विटप तृणयूथिगोचरपर्यंतः सगर्तेविर सोर्ध्वाधश्चतुराघाट विशुद्धः स्वसीमापर्यंत श्चतुष्पांचाशदाधिक शतैकादशसंवत्सरे माघमासे शुक्लपक्षे तृतीयायां सोमदिने वाराणस्या मुत्तरायण संक्रान्तौ अंकतः सम्वत् ११५४ माघ सुदि ३ सोमे वाराणस्यां देव श्री त्रिलोचनघट्टे गंगायांस्नात्त्वा श्रीमद्राजाधिराज श्रीचन्द्रदेवेन विधिवन्मंत्र देवमुनि मनुजभूत पितृगणांस्त र्पयित्वा तिमिर पटल पाटन पटुमहस मुष्ण रोचिषमुपस्थायौषधिपति शकल शेखरं समभ्यर्चा त्रिभुवनत्रातुर्वासु-देवस्य पूजां विधाय प्रचुरपायसेन हविषाह वि र्भुजं हुत्वा मात्रापित्रोरात्मनश्च पुण्य यशोभिवृद्धये कौशिकगोत्राय विश्वामित्रौदल देवरात त्रिप्रवराय छन्दोगशाखि ब्राह्मण देव स्वामि पौत्राय ब्राह्मण श्री वामनस्वामिशर्मणे गोकर्णकुशलतापूत करतलोदकपूर्व-मापदमसञ्चनोहूहूकान्तंयावत् शासनीकृत्य प्रदत्त इति ज्ञात्वाऽस्माभिः पितृदान शासन

प्रकाशनार्थ निज नामांकित मुद्रया ताम्रपट्ट के निधाय । प्रदत्तोमत्वा यथादीयमान भाग भोगकर हिरण्यप्रभृति समस्तादादायानाज्ञा विधे यीभूयदास्यथ ।

भवन्तिचाऽत्रश्लोका:

भूमिं यः प्रतिगृह्णाति यश्चभूमिं प्रयच्छति ।
उभौतौ पुण्यकर्माणौ नियतं स्वर्गगामिनौ ॥ १ ॥

शंखो भद्रासनं छत्रं वराश्ववरवारणाः ।
भूमिदानस्य चिन्ह्यानि फलमेतत्पुरन्दर ॥ २ ॥

सर्वानेतान् भाविनः पार्थिवेन्द्रान् भूयो-
भूयो याचते रामभद्रः सामान्योऽयं
धर्मसेतुर्नृपाणां कालेकाले पालनीयो
भवद्भिः ॥ ३ ॥

बहुभिर्वसुधाभुक्ता राजभिः सगरादिभिः ।
यस्य यस्य यदा भूमि स्तस्य तस्य तदाफलम् ॥ ४ ॥

सुवर्णमेकं गामेकां भूमेरप्येक मंगुलम् ।
हरन् नरकमाप्नोति यावदाभूत संप्लवम् ॥ ५ ॥

स्वदत्तां परदत्तांवा यो हरेत वसुन्धराम् ।
स विष्ठायां कृमिर्भूत्वा पितृभिः सहमज्जति ॥ ६ ॥

षष्टिवर्ष सहस्राणि स्वर्गे व सति भूमिदः ।
आच्छेत्ता चानुमन्ताच तान्येव नरकं वसेत् ॥ ७ ॥

यानीह दत्तानि पुरा नरेन्द्रैर्दानानि धर्मार्थ ।
यशस्कराणि । निर्माल्य वान्त प्रतिमानि तानि ।
को नाम साधुः पुनराददीति ॥ ८ ॥

वाताभ्रविभ्रममिदं वसुधाधिपत्यम् आपातमात्रमधुरा विषयोपभोगाः ।
प्राणास्तृणाग्रजलबिंदु समा नराणां धर्मः सखा परमहो परलोकयाने ॥ ९ ॥

श्रीमन्मदनदेवेन पितृ दान प्रकाशकः ।
शासनस्यनिबंधोऽय कारित स्वीयमुद्रया ॥१०॥

लिखितं करणिक ठक्कुर श्री सहदेवेन । शिवमत्र मंगलं महाश्रीः । श्रीमदन पाल देवेन ॥



(२)

राजा गोविन्दचन्द्र देवका ताम्रपत्र

स्वस्ति

अकुण्ठोत्कण्ठवैकुण्ठ कण्ठपीठ लुठत्करः ।
सरम्भः सुरतारंभे सश्रियः श्रेयसेस्तुवः ॥ १ ॥

आसीदशीत द्युतिवंशजात क्ष्मापाल मालासु दिवंगता सु । साक्षाद्विवस्वानिभूरि धाम्ना नाम्नायशोविग्रह इत्यु दारः ॥ २ ॥ तत्सुतोऽभून्महीचंद्रश्चद्रधामनिभंनिजम । येनापारमकूपारपारेव्यापारितंयशः ॥ ३ ॥

तस्याभूत्तनयो नयैकरसिकः क्रान्तद्विपन्मंडलो विध्वस्तोद्धतवीरयोधतिमिरः श्रीचन्द्रदेवोनृपः । येनोदारतर प्रतापशमिता शेपप्रजोपद्रवं श्रीमद्गाधिपुराधिराज्यमसमं दोर्विक्रमेणार्जितं ॥ ४ ॥

तीर्थानिकाशिकुशिकोत्तरकोशलेन्द्र स्थानीय कानि परिपालयताभिगम्य । हेमात्मतुल्यमनिशं ददताद्विजेभ्यो येनांकितावसुमती शतशस्तुलाभिः ॥ ५ ॥

तस्यात्मजोमदनपाल इति क्षितीन्द्र चूडामणिर्विजयते निजगोत्रचन्द्रः । यस्याभिषेककलशोल्लसितैः पयोभिः प्रक्षालितंकलिरजः पटलं धरित्र्याः ॥ ६ ॥ यस्यासीद् विजयप्रयाणसमये तुंगावलोच्चै श्चलन् माद्यत्कुम्भिपदक्रमासमभर भ्रश्यन्महीमण्डले चूड़ारत्नविभिन्नतालुगलित स्त्यानास्टगुद्भासितः शेषः पेपवशा दिवक्षण मसौ क्रोड़ेनिलीनाननः ॥ ७ ॥ तस्मादजायतंनिजायत वाहुवल्ली वन्धा वरुद्ध नवराष्ट्र गजोनरेन्द्र सान्द्रा मृतद्रव मुचां प्रभवो गवांयो गोविन्द चन्द्र इति

चन्द्र इवाऽम्बु राशेः ॥ ८ ॥ नकथमप्यल मन्तरण क्षमांस्तिस्टपुदिक्षुगजानथव-ज्रिणः। ककुभिवभ्र मुरभ्रमुवल्लभ प्रति भटाइवयस्यघटागजा ॥ ६ ॥ सोऽमं समस्तराजचक्र संसेवितं चरणः परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर परममाहे-श्वर निज भुजोपार्जित श्रीकान्यकुब्जाधिपत्य श्रीचन्द्रदेवपादानुध्यात परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर परममाहेश्वर श्री मदनपाल देव पादानुध्यात परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर परम माहेश्वराश्वपति गजपति नरपति राजत्रयाधिपति विविध विद्या विचारवाचस्पति श्रीमदगोविन्द चन्द्रदेवौ विजयी हलदोय पत्तलायामा गोडलीग्रामनिवासिनो निखिल जनपदानुपगतानपिच राजराज्ञो युवराज मन्त्रि पुरोहित प्रतिहार सेनापतिभांडागारिकाक्षपटलिक भिषङ्नैमिति कान्तः पुरिक दूत करि तुरग पत्तना कर स्थान गोकुलाधिकारि पुरुषा नाज्ञापयति बोधयत्या-दिशति च।

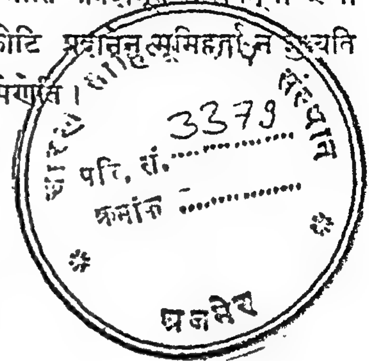
यथाविदितमस्तुभवतां यश्चोपरि लिखित ग्रामः सज़लस्थलः सलोहलवणाकरः समत्स्याकरः समर्तोषरः समधूकाम्रवन नाटिका विटप तृण यूति गोचर पर्यन्तः सोर्ध्वाध-श्च तुराघाट विशुद्ध स्वसीमापर्यन्तः द्ववशीत्य धिकैकादश शतसंवत्सरे माघमासिकृष्ण-पक्षे षष्ठयां तिथा वंकत सवत् ११८२ माववदि ६ शुक्रे श्रीशप्रतिष्ठाने गंगायांस्नात्वा विधिवन्संत्रदेव मुनि मनुजभूत पिन्टगणांस्तर्तयित्वा तिमिर पटल पाटन पटुमहस मुष्णरोचिष मुपस्थाय्यौषधिपति शकलशेखरं समभ्यर्च्च त्रिभुवनत्रातुर्वासुदेवस्य पूजाविश्चाय प्रचुर पायसेन हविषा हविर्भुजं हुत्वा मातापित्रो रात्मनश्च पुण्य यशोभिवृद्धयेऽस्माभिर्गोकर्ण कुशलतापूत करतलोदक पूर्व गोतमांगिरसौतथ्य त्रिप्रवराभ्यां ठक्कुरोत्तम पौत्राभ्यां ठक्कुर श्री श्चाल्हाण पुत्राभ्यां श्री छीछा श्रीवाछटशर्मभ्या माचन्द्रार्कं यावत् शासनीकृत्य प्रदत्तौमत्वा यथा दीयमान भाग-भोग कर प्रवणी करतुरुष्क दण्डप्रभृति सर्वदायानाज्ञा विधेयीभूय दास्यथेति।

भवन्ति चाऽत्र श्लोकाः।

भूमिंयः प्रतिगृण्हाति यश्चभूमिं प्रयच्छति। उभौतौ पुण्य कर्माणौ नियतं स्वर्गगामिनौ ॥ १ ॥ शंखं भद्रासनं छत्रं वराश्व वरवारणाः। भूमिदानस्यचिन्हानि फलमेतत्पुरन्दर ॥ २ ॥ सर्वानेतान् भाविनः पार्थिवन्द्रान् भूयो भूयो याचते रामभद्रः। सामान्योऽयं धर्मसेतुर्न्टपाणां काले काले पालनीयो भवद्भि ॥ ३ ॥ बहुभिर्वे

सुधासुक्ता राजभिः सगरादिभिः यस्य यस्य यदाभूमि स्तस्य तस्य तदाफलम् ॥ ४ ॥
गामेकां स्वर्णमेकं च भूमेरप्येकमंगुलं हरन्नरकमाप्नोति यावदाभूत संप्लवम् ॥ ५ ॥
तडागानां सहस्रेणाऽश्वमेध शतेनच। गवां कोटि प्रदानेन भूमिहर्त्ता न शुध्यति
॥ ६ ॥ लिखितं चेदं ताम्र पट्टकं ठक्कुर श्री विश्वरूपेणेति।





(३)

राजा गोविन्दचन्द्रदेव का ताम्रपत्र

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

तमाद्यं सर्वदेवानां दामोदर मुपास्महे। त्रैलोक्यं यस्य वक्षीव क्रोडान्तस्थ-वलित्रयी ॥ १ ॥ वंशे गाहड नालारव्ये वभूवविजयी नृपः। महि आल सुतः श्रीमान् नलना भाग सन्निभः ॥ २ ॥ याते श्रीभोज भूपे विबुधवरवधू नेत्रसीमा तिथित्वं श्रीकर्णे कीर्तिशेषं गतवतिच नृपे क्ष्मात्यये जायमाने। भर्तारं यं धरित्री त्रिदिव विभुनिभं प्रीतियोगा दुपेता त्राताविश्वस्यपूतं समभवदिह क्ष्मापतिश्चन्द्रदेवः ॥ ३ ॥ द्विषत्क्षिति भृतः सर्वान् विधाय विवशान् वशे। कान्यकुब्जेऽकरोद्राजा राजधानी-मनिंदिताम् ॥ ४ ॥ तत्राजनि द्विपदिलापति दन्तिसिंहः क्षोणीपतिर्मदनपाल इति प्रसिद्धः। येनाक्रियन्त वहुशः समरप्रवंधाः सन्नर्त्तित प्रहृत शत्रुकवन्धवन्धाः ॥ ५ ॥ तस्मादजायत नरेश्वर वृन्द वन्द्यं पादार विन्द युगलो ज्वलितः प्रतापः। क्षोणी पतीन्द्रतिलकोरिपुरंगभंगी गोविन्दचन्द्रइति विश्रुतराज पुत्रः ॥ ६ ॥ संवत् सहस्रै के एकषष्ठ्युत्तर शताभ्यधिके पौष मासे शुक्लपक्षे पंचम्यां रविदिने संवत् ११६१ पौषसुदि ५ रवौ ॥

अद्येहासतिकायां सकल कल्मष क्षयकारिण्यां यमुनायांस्नात्वा यथा विधानं मन्त्रदेव ऋषिमनुष्य भूत पितृं स्तर्पयित्वा। सूर्यं भट्टारकं सर्वकर्त्तारं भगवंतं शिवं विश्वाधारंवासुदेवं समभ्यर्च्य हुतवहंहुत्वा। जीआवनी पत्तणायां वसर्भीग्रामे समस्त महत्तम जनपदान् सम्बोधयति। यथा ग्रामोऽयं मया क्षेत्रवननधूकाम्राकाश पाताल सहितः सदशापराधदण्डः भागकूटक दशवंध, विंशति अगृप्रस्थान पटल

प्रस्थप्रतीहार प्रस्थाकर पुरुष्कदण्डधरकर, हिरण्य सर्वादायसंयुक्तः । पूर्वस्यां वान्धमौ अग्रामः पश्चिमायां वडवलाग्रामः दक्षिणस्यां पुसोणीग्रामः उत्तरस्यां सावहदग्रामः एवं चतुराघाट विशुद्धः । मातापित्रो रात्मनश्चयशः पुण्यविवृद्धये जलबुद्‌बुदाकारं जीवतं दान भोगफलां लक्ष्मी ज्ञात्वा । बह्वृचेशाखिने गौतमगोत्राय, गौतम, अवितथ, अंगिरस, त्रिप्रवराय, मेमोपौत्राय कुल्येपुत्राय ज्योतिर्विदे ब्राह्मण आह्लेकाय महाराजपुत्र श्रीमद्‌गोविंदचन्द्रदेवेन उत्तरायणसंक्रान्तौ कुशापूतेन हस्तोदकेन चन्द्रार्कयावत् शासनत्वेन प्रदत्तः ।

ये यास्यन्ति महीभृतो मम कुले किंवा परस्मिन् पुर स्तेषामेष मयाऽञ्जलि र्विरचितो नाद्रेय मस्मात् कियत् । दूर्वामात्रमपिस्वधर्मनिरता दत्त मयापाल्यतां वायुर्वास्यति तप्स्यति प्रतपनः श्रुत्वामुनीनांवचः ॥ १ ॥ वहुभिर्वसुधा भुक्ताराजभिः सगरादिभिः । यस्य यस्य यदाभूमि स्तस्य तस्य तदाफलम् ॥ २ ॥ स्वदत्तां परदत्तां वा योहरेतवसुन्धराम् । स विष्ठायां कृमिर्भूत्वा पितृभिः सहमज्जति ॥ ३ ॥ भूमिं यः प्रतिगृह्णाति यस्तु भूमिं प्रयच्छति तावुभौ पुण्यकर्माणौ नियतं स्वर्गवासिनौ ॥ ४ ॥ तड़ागानां सहस्रेण वाजपेयशतेन च । गवांकोटिप्रदानेन भूमिहर्त्ता न शुध्यति ॥ ५ ॥ लिखितञ्च पुरोहित श्री जागूकमेहत्तक श्री ब्राह्मण प्रतीहार श्री गौतमी एषां सम्मत्य-पण्डितः श्रीकूकेपुत्र विजयदासेनेति ॥



(४)

राजा जयचन्द्र का ताम्रपत्र

(१) ओंस्वस्ति (॥) अकुंठोत्कंठवैकुंठ कंठपीठलुठत्कर संरंभः सुरतारंभे सश्रि (य) : श्रेयसेस्तु वः ॥ १ ॥ आसीदशीत द्युतिवंशजात क्ष्मापाल मालम्सु दिवं ग (ता) (२) सु [।] साक्षाद्विवस्वानिवभूरिधाम्न ना म्ना यशोविग्रह इत्युदारः ॥ तत्सुतो भून्महीचन्द्रश्चन्द्र धामनिभं निजं । येनापारमकूपार पारे व्यापारितं यशः [॥] (३)

(३) तस्याभूत्तनयो नयैकरशिकः क्रान्तद्विषन्मंडलो विध्वस्तोद्धत (वीर) योधतिमिरः श्रीचन्द्रदेवोनृपः। येनो दारतरप्रताप शमि (ता) शेषप्रजोपद्रवं श्रीम (द्गा)—

(४) धिपुरा धिरा (ज्य) मसमं दोर्व्विक्रमेणार्जितं ॥ ४ ॥ तीर्थानि काशि कुशिकोत्तर कोशलेन्द्र स्थानीय कानि परिपालयताधिगम्य (।) हेमात्म-तुल्यमनिशं ददता—

(५) द्विजेभ्यो ये (नां) किता वसुमती (श) तश स्तुलाभिः ॥ ५ ॥ तस्यात्मजो मदनपालइति क्षितीन्द्र चूडा मणि र्विजयते निजगोत्रचन्द्रः। यस्याभि (षे) कक—

(६) लसोल्लसितैः पयोभिः प्रक्षालितं कलिरजः पटलं धरित्र्याः ॥ ६ ॥ तस्मादजायत निजायत वाहु वल्लिर्बंधा वरुद्ध नव राज्यगजो नरेन्द्रः (।) सांद्राभृतद्रवमुचां—

(७) प्रभवो गवां यो गोविंदचन्द्र इतिचन्द्र इवाम्बुरासेः ॥ ७ ॥ नकथ मप्यलभ (न्त) रणक्ष मां स्तिसृपुदिक्षु गजानथ वज्रिणः ककुभि (व) भ्रमु (रभ्र) मुवल्लभ प्रतिभटा—

(८) इव यस्यघटागजाः ॥ ८ ॥ अजनिविजय चंद्रो नामतस्मान्नरेन्द्रः। सुरपतिरिवभूभृत्पक्षविच्छेद दक्षः। भुवनदलनहेला हर्म्यं हम्मीरनारी नयन—

(९) जलदधाराधौत भूलोकतापः ॥ ९ ॥ यस्मिंश्चलत्युदधिनेमि मही जवाथ मावत्करीन्द्र गुरु भार निपीडितेव। यातिप्रजापति पदं शरणार्थिनी

(१०) भूस्त्वंगत्तुरंग निवहोत्थ रजश्छलेन ॥ १० ॥ सं यं समस्त राजन्य (क) संसेवितचरणः सचपरम भट्टारक महाराजा धिराज परमेश्वर परमाहेश्वर

(११) निजभुजोपार्जित कान्यकुब्जाधिपत्य श्रीचन्द्रदेव पादानुध्यात परम-भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर परममाहेश्वर श्रीमदनपाल देव

(१२) पादानुध्यान परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर (प) रम माहेश्वराश्वपति गजपति नरपति नरपतिराजत्रयाधिपति विविध विद्याविचार वाचस्प

(१३) ति श्रीगोविन्द चन्द्रदेवपादानुध्यात परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर परममाहेश्वराश्वपति गजपति नरपति राजत्रयाधिपति विविध—

(१४) विद्याविचार (वा) चस्पति श्रीमद्विजयचन्द्रदेवो विजयी। देव (ह) ली पत्तलायां न (ग) लीग्राम निवासिनो निपिल जनपदानुप गतानपि च राजराज्ञीयुव—

(१५) राजमन्त्रिपुरोहित प्रतीहार सेनापति भाण्डागारिकारि (का) च पटलिकभिषक् नैमित्ति कान्त पुरिकदूत फरितुरगपत्तनाकर स्थान गोकुलाधि—

(१६) कारि पुरुपानाज्ञापयति वाधय त्यादिशति च यथा। विदितमस्तुभवतां यथोपरि लिखित ग्रामः सजल (स्थ)लः। सलोहलवणाकरः सगर्तोपरः

(१७) सा (म्र) मधूक व (नः) समस्त्याकर (स्तृण) यूतिगोचर सहितः (स्व) सीमा सहितश्चतुराघाट विशुद्धः। पंचविंशत्यधिकद्वादश त संवत्सरेकेपि सं० १२२५ माघीपौर्ण—

(१८) मास्यां (वशिष्ठ) घट्ट यमुनायां स्नात्वा विधिवन्मन्त्र देवमुनि मनुजभूत पितृ गणांस्तर्पयित्वा तिमिर पटलपादनपटुसहस मुष्ण रोचिष मुपस्था-यौषधि पति।

(१९) शकल शेपरं समभ्य (र्च्य) त्रिभुवन त्रातुर्भगवतो वासुदेवस्य पूजां विधाय माता पित्रो रात्मनश्च पुण्य यशोर्वि वि (वृ) द्धयेऽस्मत्सम्मत्या समस्त।

(२०) राज (स्व) क्रियोपेत यौवराज्या निपिक्त महाराजपुत्र श्री जयच्चन्द्र-देवेन गोकर्ण कुशलता पूत करतलोदक पूर्वमाचन्द्रा (र्कं) यावत् कास्य—

(२१) पगोत्रभ्यां कास्यपावत्सारनै (ध्रु) वत्रिः प्रवराभ्याम् (१) ठक्कुर तिहु (ल) पौत्राभ्यां ठक्कुर श्रा (ल्हे) पौत्राभ्यां राउत गोठ पुत्राभ्यां राउत श्री अणते। राउत—

(२२) श्री (दादे) सर्म्मभ्यां ब्राह्मणाभ्यां (शुद्ध) पसा (द्) प्रदात्तो म (त्वा) य (था) दीयमान भाग भो (ग) क (रप्र) वणिकर गोकर (जात) कर तुरुष्क दंडप्र-मार (ग) दि श्राण (ण)

(२३) प्रभृति समस्त नियता (निय) तादायानाज्ञा वि (घेयीभूय) दास्यथ ॥ भवन्ति चात्रधर्मा (नु) शासनः पौराणिक श्लोकाः । भूमिं यः प्रतिगृ (ह्णा) ति यश्च भू

(२४) मिं प्रय च्छति (।) (उभौ) तौ पुण्य कर्म्माणौ नियतं स्व-र्गगामिनौ ॥ स्वत्रं भ (द्रा) सनं छत्रं वराश्वावरवारणा (: ।) भूमिदानस्य चिन्हानि फल (मे) तत्पुरन्दर ॥

(२५) षष्टिं वर्ष सहस्र (स्रा) णि स्वर्गो वसति भूमिदः (।) श्राच्छेत्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेत् ॥ स्वदत्तां परदत्तां वा योहरेत वसुन्धरां । सविष्टायां कृमिर्भूत्वा पितृ

(२६) भिः सह मज्जति ॥ गामेकां स्वर्ण मेकं च भूमे रप्येक मंगुलम । हरन्नरक मा (प्नोति) यावदाभूत सं (प्ल) वम् ॥ वाताभ्रविभ्रममिदं वसुधाधिपत्य मापात मात्र

(२७) मधुराविषयोप भोगाः (।) प्राणस्तृणाग्र जल विंदु समानराणां धर्म्मः सखा परमहो परलोक याने ॥ सर्वानेतान् भाविनः पार्थिवेन्द्रान्भूयोयाचतेराम

(२८) भद्रः (।) सामान्योयं धर्म (से) तुर्नृपाणां काले काले पालनीयो भवद्भिः ॥

लिखितं ताम्रकमिदं श्रीजयपालेन ।



(५)

जयचन्द्रदेव का ताम्र पत्र

ओं स्वस्ति

(१) अकुण्ठोत्कण्ठवैकुण्ठ कण्ठपीठ लुठत्करः। संरम्भः सुरतारंभे सांश्रयः श्रेयसोऽस्तुवः॥ १॥ आसीदशीतद्युतिवंशजात क्ष्मापाल

(२) मालासुदिवंगतासु। साक्षाविवस्वानिव भूरिधाम्ना नामायशोविग्रह इत्युदारः॥ २॥ तत्सुतोऽभून्महीचन्द्रश्चन्द्रधामनिभंनिजम्। येनापारमकूपार

(३) पारेव्यापारितंयशः ॥ ३ ॥ तस्याभूत्तनयोनयेक (र) सिकः क्रान्तद्विषन्मण्डजो विध्वस्तोद्धत वीरयोधतिमिर

(४) श्रीचन्द्रदेवोनृपः। येनोदारतरप्रताप शमिताशेष प्रजो पद्रवं श्रीमद्-गाधिपुराधिराज्यमसमं दोर्विक्रमेणार्जितं॥ ४॥ तीर्थानिकाशिकुशिकोत्तरकोशलेन्द्र स्थानीयकानि परिपाल यताभिगम्य। हेमात्मतु—

(५) ल्यमनिशं ददताद्विजेभ्यो येनांकितावसुमती शरशस्तुलाभिः॥ ५॥ तस्यात्मजो मदनपाल इति क्षितीन्द्रचूडामणिर्विजयते निजगो (त्र) चन्द्रः। यस्याभिषेक—

(६) कलशोल्लसितैःपयोभिः प्रक्षालितं कलिरजः पटलं धरित्र्याः॥ ६॥ यस्यासीद्विजयप्रमाण समये तुंगावलोच्चैश्चलन्

(७) माद्यत्कुम्भिपदक्रमासमभर (प्र) श्य—न्महीमण्डले। चूड़ारत्न विभिन्नतालु गलितस्त्यानासृसुद्भासितः (शे) पः शैष वशादिव क्षणमसौ क्रोड़े नि (ली) नाननः॥ ७॥ तस्मा दजायत निजायत बाहु—

(८) वल्लिवन्धा वरुद्धनवराज्य गजो नरेन्द्रः। सान्द्रा मृत (द्र) व मुचां प्रभवो गवां यो गोविन्दचन्द इति चन्द्रइवाऽम्बुरासेः ॥ ८॥ नकथमप्यलभन्तरण-क्षमाँ स्त्रि

(९) नृपु दिनु गजानथ वज्रिणः । ककुभिव(भ्र) मु र (भ्र) मुवल्लभ प्रतिभा इव यस्य घटागजाः ॥ ९ ॥ अजनि विजय चंद्रोनाम तस्मान्नरेन्द्रः। सुरपतिरि—

(१०) वभूभृत्पक्षविच्छेददक्ष(:) । भुवनदलनहेला हर्म्यह (म्मी) रनारी नयनजलदधाराधौतभूलोकतापः ॥ १० ॥ (लो) कत्रयाक्रमणकेलि विश्रृंखलानि प्र-

(११) (प्र) ख्यात कीर्त्ति कविवर्णित वैभवानि। यस्य (त्रि) विक्रमपदक्रम भांजि भांति प्रो (द्यो) तय (न्ति) वलि राजभयंयशांसि ॥ ११ ॥ यस्मिंश्च-लत्युदधिनेमि महीज—

(१२) याथे माद्यत्करीन्द्र (गु) रु भार निपीडितेव । याति प्रजापति पदं शरणार्थिनीभू स्त्वंगत्तरंगनिवहोत्थरजश्छलेन ॥ १२ ॥ तस्माददभुत विक्रमाद्थ-जयच्चं—

(१३) द्राभिधानः पति भूपानामवतीर्ण एप भुवनोद्धाराय नारायणः (द्वैधी) भावमपास्य विग्रह (रुचिं) धिक्कृत्य सान्ताशयाः यमुदग्र बन्धन—

(१४) भय (ध्व) न्सा (र्थि) नः पार्थिवाः ॥ १३ ॥ गच्छेन्मूर्च्छामतुच्छां न यदि कवलयेत्कूर्म पृष्ठाभिघात प्रत्यावृत्तश्रमार्त्तो नमदखिल फण श्वास वात्या सहस्त्रं उद्योगे

(१५) यस्यधाव द्धरणिधर धुनी निर्भर स्फारधार भ्रश्यद्दान द्विपाली दहल भरगल (श्वै) र्यमुद्रः फणी द्रः ॥ १४ ॥ सोयं समस्त राजचक्रसंसेवित चरणः।

(१६) स च परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर परममाहेश्वर निजभु-जोपार्जित श्री कन्यकुब्जा धिपत्य श्री चंद्रदेव पादानुध्यात परम भट्टारक

(१७) महाराजाधिराज परमेश्वर परम माहेश्वर श्रीमदनपालदेव पादा नु (ध्या) त परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर परममाहेश्वराश्वपतिगजप

(१८) ति नरपति राज (त्र) याधिपति विविध विद्याविचारवाचस्पति श्री जयचंद्रदेव पादानुध्यात परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर परममाहेश्वराश्व

(१६) पति गजपति नरपति राज (त्र) याधिपति विविध विद्या विचार वाचस्पचि श्री विजयचंद्रदेव पादानुध्यात परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर परममा (हे)

[२०] श्वराश्वपति गजपति नरपति राजत्रयाधिपति विविध विद्या विचार वाचस्पति श्रीमज्जय चन्द्रदेवोविजयी असुरेस पत्तलायां कमोली ग्रामनि–

[२१] वासिनो निखिल जनपदानुपगता नपिच राजराज्ञी युवराज मंत्रिपुरोहितप्रतीहार सेनापतिभांडागारि काक्ष पटलिक भिषग्नैमित्ति कान्तः पुरिक–

[२२] दूत करितु (र) गपत्तनाकर स्थान गोकुला धिकारि पुरुषानाज्ञापयति वोधय त्यादिशति च विदितमस्तु भवतां यथोपरि लिखित ग्रामः सजलस्थलः

[२३] सलोह लवणाकरः (स्या) करः सगर्तोपरः सगिरिगहन निधानः सम (धू) का (म्र) वन वाटिकाविटपतृण यूति गोचरपर्यन्तः सोर्द्धाधश्चतुरा घाटवि–

[२४] शुद्धः स्वसीमापर्यन्तः । त्रिचत्वारिंशदधिक द्वादश शत संवत्सरे आषाढ़े मासि शुक्ल पक्षे सप्तम्यां तिथौ रविदिने अंकतोपि सम्वत १२४३ आषाढसुदि ७ र–

[२५] वौ अद्येह श्रीमद्वाराणस्यां गंगायांस्नात्वा विधिवन्मंत्रदेव मुनिमनुजभूत पितृ गणांस्तर्पयित्वा तिमिरपटलपाटनपटु महस मुष्ण रोचिष मुपस्था यौषधि–

[२६] पतिशकल शेखरं समभ्यर्च्य त्रिभुवन त्रातु (भ) गवतो (वासु) देवस्य पूजां विधाय प्रचु (र) पायसेन हविषा हविर्भु (जं) हुत्वा माता पित्रो रात्मनश्च पुण्य यशोभिवृद्ध—

(२७) ये अस्माभिर्गोकर्ण कुशलतापूत करतलोदक पूर्व्वकं भारद्वाज गोत्राय भारद्वाजांगिरसवार्हस्प त्येति त्रिप्रवराय राउत श्री आढले पौत्राय राउत श्री दूंटा—

(२८) पुत्राय डोड राउत श्री अणंगाय चंद्रार्क्क यावच्छासनी कृत्य प्रदत्तो मत्वा यथा दीयमान भाग भोगकर (प्र) वणिकर प्रभृतिनियता नियत समस्ता दायानाज्ञा विधे—

(२९) योभूय दास्यथेति: ॥ ॥ भवन्ति चात्र (श्लो) का: । भूमि य: प्रतिगृ (हणा) ति यश्च भूमिं प्रयच्छति । उभौ तौ पुण्यकर्माणौ निय (तं) स्वर्ग्गगामिनौ ॥ संखं भद्रासनं छ (त्रं) वराश्वा वरवार—

(३०) णाः । भूमिदानस्य चिन्हानि फलमेतसुरन्दर ॥ पष्ठि वर्ष सहस्त्राणि (स्वर्गो) वसति भू (मि) दः । आच्छेत्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेत ॥ वहु भिर्व्वसुधा भुक्ता राजभिः सग

(३१) रादिभिः यस्य यस्य यदाभूमिस्तस्यतस्य तदाफलं ॥ स्वदत्तां परदत्तां वा यो ह (रे) त व (सु) धरां । स विष्ठायां कृमिर्भूत्वा पितृभिः सह मज्जति ॥ तडागा (नां) सहस्रेण वाजपेयशतेनच (।)

(३२) गवां कोटि प्रदादेन भूमिहर्त्ता नशुध्यति वारि हीनेश्वरण्येषु शुष्क कोटर वासिनः । कृष्ण (स) र्पाश्च जायन्ते देवब्रह्म (स्व) हारिणः ॥ नविषं विषमित्याहुर्ब्रह्म (स्वं) विष मुच्य—

(३३) ते । विषमेकाकिनं हन्ति ब्रह्मस्वं पुत्रपौत्रकं ॥ वाताभ्रवि (भ्र) ममिदं वसुधाधिपत्य मापातमात्र मधुरा विषयोप भोगाः (।) प्राणास्तृणाग्र जलबिंदु समानराणां धर्म्मः सखापर

(३४) महो परलोकयाने ॥ यानीह दत्तानि पुरानरेन्द्रै र्दानानि धर्मार्थ यशस्कराणि । निर्माल्य वान्तं प्रतिमानितानि को नाम साधुः पुन रा ददीत ॥



जबमूल पुस्तक लिखी गई उस समय यह भीमदेव का ताम्र पत्र, जो ६०[1] पृष्ठ में छपा है देखने में नहीं आया था, इस का पाठ इन्डियन एन्टिक्वेरी (सन १८८२) से लियागया है। इससे भीमदेव सोलंखी का संवत् १२५६ में वर्तमान होना सिद्ध है। पृथ्वीराज रासे में लिखा है कि पृथ्वीराज भीमदेव (भोला भीम) से लड़ा और उस लड़ाई में भीमदेव सोलंखी पृथ्वीराज के हाथ से मारा गया, सो पृथ्वीराज के शहाबुद्दीन की लड़ाई में मारे जाने का संवत १२४९ है, जिसके ७ वर्ष पीछे भीमदेव जीता था तो वह पृथ्वीराज के हाथ से किस तरह मारा गया।

---

१ प्रस्तुत पुस्तक में ६० पृष्ठ पर देखिये।

गुजरात के राजा भीमदेव सोलंखी का ताम्रपत्र

स्वस्ति राजावली पूर्ववत्—समस्त राजावली विराजित परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री मूलराज देवपादा नुध्यात परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री चामुन्ड राज देवपादानुध्यात परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीदुर्ल्लभराज देवपादानुध्यात परमभट्टारक महाराजाधिगाज परमेश्वर श्रीभीमदेव पादानुध्यात परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर त्रैलोक्यमल्ल श्रीकर्णदेव पादानुध्यात परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वरावंतीनाथ त्रिभुवनगंड वर्वरकजिष्णु सिद्ध चक्रवर्ति श्रीजयसिंह देवपादानुध्यात परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर प्रो (प्रौ) प्रताप उमापति वरलब्धप्रसाद स्वभुज विक्रम रणांगण विनिर्ज्जितशाकंभरी भूपाल श्रीकुमारपालदेव पादानुध्यात परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर परममाहेश्वर प्रबल बाहुदंडदर्प रूपकंदर्प कलिकाल निष्कलंकावतारित रामराज्य करदीकृत सपाद लक्ष क्ष्मापाल श्रीअजयपाल देवपदानुध्यात परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वराहवपरा भूतदुर्ज्जय गर्ज्जनकाधिराज श्रीमूलराजदेव पादानुध्यात परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वरा भिनवसिद्धराज श्रीमद्‌भीमदेवःस्वभुज्यमान दंडाहिपथकांतःपातिनः समस्तराज पुरुषान् ब्राह्मणोत्तरां स्तन्नियुक्ताधिकारिणो जनपदांश्च बोधयत्यस्तुवः संविदितं यथा ॥ श्रीमद्‌विक्रमादित्योत्पादित संवत्सर शतेषु द्वादशसु षट्‌पंचाशदुत्तरेषु भाद्रपद मास कृष्णपक्षामावास्यायां भो (भौ) मवारेऽत्रांकतोऽपि संवत् १२५६ लो० भाद्र पद वदि १५ भौमेऽस्यां संवत्सरमास पक्षवार पूर्व्विकायां तिथा वद्येह श्रीमदणहिलपाटकेऽमावास्यापर्वणि स्नात्वा चराचर गुरुं भगवन्तं भवानी—

पति मभ्यर्च्य संसारासारतां विचित्य नलिनी दलगत जल लव तरलतरं प्रामितञ्य माकलय्यैहिकमामुष्मिकं च फलमंगी कृत्य पित्रोरात्मनश्च पुण्य यशोभिवृध्दये कडाग्रामे पूर्व्वदिग्भागे महिसाणाग्रामीय श्री आनलेश्वरदेव सक्त भूमिसंलग्नपाश्व (श्च) उलिग्राम मार्ग वामपक्षे भूमि वि ६ नव विशेषकैः (?) र्जातहल ४ चतुर्णां हलानां भूयी स्वसीमापर्यन्ता सवृक्षमालाकुला सहिरण्य भाग भोगा काष्ठ तृणोदकोपेता सर्वादाय समेता रायक वाल ज्ञातीय ब्राह्मण ज्योतिसोढल

सुत आसधराय शासने नोदक पूर्व्वमस्माभिः प्रदत्ता अस्याभूमे रावाटा यथा पूर्वेता वारडवलयोः क्षेत्रेपु सीमा दक्षिणतो राजमार्गः पश्चिमतः श्री आनले श्वरदेव क्षेत्रेपु सीमा उत्तरतो वांऊय विशेपेक त्रा गासक डोहलिका ग्रामयोः सीमा एवममीभि रावाटं रुप लक्षिता भूमिमेनासवगम्य एतद्ग्राम निवासि जनपदै यथा दीयमानभाग भोगकरहिरण्यादिसर्व्वं सर्व्वदाज्ञा श्रवण विधेयै भुत्वाऽमुष्मै ब्राह्मणाय समुपतनेतव्यं सामान्यमेतत्पुण्यफलं मत्वाऽस्मद्वंशजैरन्यैरपि भाविभोक्तृभिरस्मत्प्रदत्त धर्मदायोऽयमनुमंतव्यः पालनीयश्च उक्तं भगवता व्यासेन पष्टि वर्षे सहस्राणि स्वर्गे तिष्टतिभूमिदः आच्छेत्ता चानुमंताच तान्येव नरके वसेत् १ यानीह दत्तानि पुरानरेन्द्रै दांनानि धमार्थं यश स्कराणि निर्म्माल्य तानि प्रतिमानि तानि को नाम साधुः पुनरा ददीत २ बहुभि र्वसुधाभुक्ता राजभिः सगरादिभिः यस्य यस्य यदाभूमि स्तस्य तस्य तदा फलं ३ दत्वा भूमिं भाविनः पार्थिवेन्द्रान् भूयो भूयो याचते रामभद्रः सामान्योऽयं दान धर्म्मो नृपाणां स्वे स्वेकाले पालनीयो भवद्भिः ४ लिखितमिदं शासनं मोढान्वय प्रसूत महाक्षपटलिक ठ० वैजलसुत ठ० कुंयरेण दूतकोऽत्र महासांधि विग्रहिक ठ० श्री भीमाक इति.

श्री भीमदेवस्य



बाबू रामनारायणजी दूगड़

रासो की ऐतिहासिकता

प्रगट है कि पृथ्वीराज रासा नामका पुस्तक भारतवर्ष के इस प्रान्त (राजपूताना) में अति ही प्रसिद्ध है और प्रत्येक क्षत्री व चारण भाट इसके लिये निर्विवाद ऐसा मानते चले आये हैं कि दिल्ली के अंतिम महाराजाधिराज पृथ्वीराज चौहान के प्रधान कवि व मित्र चन्दवरदाई ने इस पुस्तक को बनाया है। राजस्थान के क्षत्रियों में साधारणतः और चाहुवानों में मुख्यतः यह ग्रन्थ परम प्रामाणिक इतिहास माना जाता है और आज तक राजस्थान सम्बन्धी कितने ही अन्य इतिहासों में भी इसी पुस्तक से लेकर वृत्त लिखने में आये हैं।

यह तो प्रसिद्ध है कि भारतवर्ष के प्राचीन ऐतिहासिक पुस्तकों में केवल इतिहास पर लक्ष न करके कवि लोगों ने अपनी कविता के चमत्कार और रस वर्णन पर विशेष श्रम किया अतएव उन पुस्तकों से सत्यासत्य ऐतिहासिक वृत्तों का निर्णय करना अत्यन्त दुर्घट हो गया तिसपर भी काल पाकर उनमें क्षेपक अंग समय समय पर इतना मिल गया कि वे ऐतिहासिक पुस्तक अपने असली अभिप्राय से कोसों दूर होकर उनके सर्ववृत दैवी बन गये। उसी प्रणाली के अनुसार चन्द या किसी अन्य कवि ने इस रासे के पुस्तक को भी लिखा है क्योंकि इसमें दो प्रकार के वर्णन पाये जाते हैं एक तो ऐतिहासिक और दूसरे पौराणिक, पौराणिक वर्णन से हमारा यह अभिप्राय है कि जैसे पुराणादि ग्रन्थों में भूत, प्रेत, राक्षस, अप्सरा, सिद्ध, यक्ष, गंधर्व, किन्नर, देवी, देवता आदि की कथा श्राप और उद्धार लिखे हैं वैसे ही रासे के बनाने वाले ने भी अपने पुस्तक को ऐसे अद्भुत बनावों से खाली नहीं रक्खा है।

जब तक कि श्रीमती राजराजेश्वरी महाराणी विक्टोरिया एम्प्रेस आफ् इण्डिया (परमेश्वर सदा बढावे बल, वय और प्रताप उसका) के निष्कण्टक राज्य समय में पाश्चिमात्य विद्वानों के शोध व श्रम ने, इस देश की सत्य ऐतिहासिक वार्ताओं को दर्शानेवाले शिलालेख, दानपत्र, सिक्के आदि जो प्राचीन लीपियों में लिखे हुए स्थल स्थल पर यहां उपलब्ध होते थे, प्रगट न किये तब तक हमारे ऐतिहासिक वृत्तों का आधार केवल बड़वे भाटों की पुस्तकों, प्राचीन ख्यातों और दन्तकथाओं पर ही था और उस अवस्था में अज्ञानता वस इतर देशवासियों का उन्हीं को सत्य करके मानना कुछ अन्यथा भी नहीं था, परन्तु अब तो विद्या की वृद्धि और विद्वानों के परिश्रम से वे प्राचीन लिपियां पढी पढी जाकर शिलालेखादि के अभिप्राय जान लिये गये अतएव एतद्देशीय इतिहास में एक प्रकार का परिवर्तन हो गया। नवीन शोध के अनुसार अन्यान्य प्राचीन ऐतिहासिक पुस्तकों से जैसे वर्तमान समय के विद्वान सम्मत या असम्मत हुए हैं। वैसे ही इस पृथ्वीराज रासे के विषय में भी मतान्तर हैं कोई तो इसको जाली और पृथ्वीराज के समय का बना हुआ नहीं बतलाते और कोई अब तक भी इस पुस्तक की मूल सत्यता पर विश्वास रखते हैं यद्यपि अंग्रेजी भाषा में इस विषय पर बहुत कुछ वाद-विवाद और लेख छपचुके तथापि अपनी देश भाषा में ऐसे लेख बहुत कम होने और विद्वानों के मतभेद देखकर मैंने चाहा कि इस प्रसिद्ध पुस्तक का, जो छन्दबद्ध है, सरल साधु भाषा में कथा रूप से सारांश लिखकर इसके सत्यासत्य विषय में जो कुछ प्रमाण मिल सकें वे भूमिका में लिख दूं जिसके पढ़ने से सर्व साधारण मनुष्य भी लाभ उठा सकें तदनुसार रासे के पुस्तक का पृथ्वीराज चरित्र नाम धर एक उपाख्यान के ढंग पर मैंने लिखा है यद्यपि कहीं प्रचलित कुरीतियों को जतलाने या कथा रस को बढाने के लिये मैंने अपनी ओर से कुछ वर्णन मिलाया है तथापि ऐतिहासिक विषय में मूल पुस्तक के विरुद्ध कुछ भी नहीं लिखा गया है। अन्यान्य प्राचीन ख्यातों की भांति इस रासे के ग्रंथ में भी कई क्षेपक अंग मिल जाने से उसमें इतना तो अन्तर हो गया है कि रासे की दो पुस्तकों में समान पाठ नहीं पाया जाता। मैंने जो यह आश्य गद्य में किया वह उदयपुर राज्य के विक्टोरिया हाल के पुस्तकालय में रासे की एक लिखित पुस्तक से लिया है।

किसी पुस्तक के पौराणिक अंग पर उसके सत्यासत्य का निर्णय नहीं हो सकता; क्योंकि उन अपौरुपेय वार्तों का मानना न मानना तो केवल हमारी श्रद्धा व भक्ति पर अवलंबित है विद्या से उनका सम्बन्ध नहीं परन्तु पुस्तक में लिखे इतिहास के वृतों की जांच से कह सकते हैं कि यथार्थ में वह पुस्तक जैसा कि माना जाता है वैसा ही है या नहीं तदनुसार रासे में लिखे ऐतिहासिक वृत्तों की हम यहाँ यथा शक्ति जांच करेंगे जिससे पाठकगण स्वयं निश्चय कर सकें कि यह रासा कहाँ तक सत्य है और वास्तव में पृथ्वीराज ही के समय में उसके कवीश्वर चन्द ने इसको लिखा था या पीछे से किसी कवि ने बनाकर चन्द के नाम से प्रसिद्ध कर दिया है। रासे की पुस्तक में निम्न लिखित ६८ प्रस्ताव या पर्व हैं :—

(१) आदिपर्व—इसमें मंगलाचरण, आबू पर्वत की उत्पत्ति का पौराणिक वृत्तान्त, उसपर वशिष्ठ ऋषि का यज्ञ करना, और अग्नि कुण्ड में से प्रतिहार, चालुक, पंवार, और चाहुवान नाम के चवकुली क्षत्रियों का उत्पन्न होना, क्षत्रियों के छत्तीस वंश, चहुवान से लेकर पृथ्वीराज तक चौहानों की वंशावली, बीसलदेव, सारंगदेव आना या आनल देव आदि का वर्णन, वीसलदेव का गुजरात के चालुक राजा बालुकाराय से युद्ध और वणिक पुत्री गौरी का सतीत्व भ्रष्ट करना और गौरी के श्राप से वीसल का ढुण्ढा नामी नरभक्षी राक्षस होना, कन्नोज के राजा विजयपाल से दिल्ली के तँवर राजा अनंग पाल का युद्ध, अनंग पाल की पुत्री कमला से अजमेर के चौहान राजा सोमेश्वर का विवाह और उससे पृथ्वीराज का उत्पन्न होना आदि वर्णन है।

(२) दसम—इसमें मच्छ, कच्छ, वराह; नृसिंह, वामन, परशुराम, कृष्णचन्द्र, रामचन्द्र आदि दस अवतारों का संक्षेप चरित्र और गुणगान है।

(३) दिल्ली किल्ली कथा—इसमें अनंगपाल का दिल्ली बसाने का वर्णन है।

(४) कन्ह पट्टी—इसमें लिखा है कि गुजरात के राजा भीमदेव चालुक्य के काका सारंग देव के सात पुत्रों को पृथ्वीराज के काका कन्हराज ने अजमेर में मारा अतएव पृथ्वीराज ने उसकी आँखों पर सदा के लिये पट्टी बँधवाई।

(५) आखेट वीर वरदान—कवि चंद का किसी सिद्ध से मंत्र पाना जिसके प्रभाव से वीर हाजिर होते थे।

(६) लोहाना आजान बाहु—लोहाने का ऊँचे गोख से कूदना पृथ्वीराज का प्रसन्न होकर उसको पर्गना देना और लोहाने का जसवन्त राज से युद्ध।

(७) नाहर राय कथा—मंडोवर के परिहार राजा नाहर राय को सोमेश्वर को युद्ध में परास्त कर उसकी कन्या से पृथ्वीराज का विवाह करना।

(८) मेवाती मुंगल कथा—मेवात के राजा मुद्गलराय ने सोमेश्वर को खिराज देना बन्द कर दिया इसलिये सोमेश्वर का उसपर चढ़ाई कर उसको परास्त करना।

(९) हुसैन कथा—गजनी के सुलतान शहाबुद्दीन गोरी के भाई मीरहुसैन का सुलतान की पातुर चित्ररेखा को भगा लाकर पृथ्वीराज के शरण रहना, सुलतान का पृथ्वीराज को कहलाना कि हुसैन को निकाल दो और न मानने पर उस पर चढ़ाई करना और परास्त होकर पकड़ा जाना।

(१०) आखेट चूक—पृथ्वीराज का शिकार को जाना और वहाँ सुलतान गोरी पृथ्वीराज को पकड़ने के वास्ते कुछ सेना गुप्तरीति से भेजना।

(११) चित्र रेखा सम्यो—चित्र रेखा का सुलतान के हाथ आने का वृत्तान्त।

(१२) भोलाराय सम्यो—गुजरात के चालुक्य राजा भीमदेव का आबू के प्रमार राजा सलख से उसकी पुत्री इच्छनी की मांग करना, और अपनी इच्छा पूर्ण न होने से आबू पर चढ़ाई कर प्रमार राजा को जीतना, पृथ्वीराज का भीमदेव को परास्त कर पीछा आबू प्रमारों को दिलाना आदि।

(१३) सलख युद्ध सम्यो—सलख प्रमार का सुलतान गोरी पर जय पाना।

(१४) इच्छनी व्याह—आबूराजा की पुत्री इच्छनी से पृथ्वीराज का विवाह होना।

(१५.) मुंगल युद्ध—मेवात के राजा से पुनः युद्ध होना।

(१६) पुण्डीरी दाहिमी विवाह—बयाने के राजा की पुत्री से पृथ्वीराज का विवाह।

(१७) भूमि स्वप्न।

(१८) दिल्ली दान प्रस्ताव—पृथ्वीराज का अपने नाना अनंगपाल के दिल्ली गोद जाना आदि।

(१९) माधो भाट कथा—सुलतान के भाट का पृथ्वीराज के पास आना और फिर पृथ्वीराज का सुलतान गोरी से युद्ध होकर सुलतान का कैद होना।

(२०) पृथा विवाह—पृथ्वीराज की बहन पृथा कंवरी का चित्तौड़ के रावल समरसिंह से विवाह होना।

(२१) धन कथा— नागोर के पास पृथ्वीराज को गड़ा हुआ द्रव्य मिलना, तथा सुलतान गोरी से युद्ध होना और सुलतान का कैद होना।

(२२) होली कथा— ढुंढा दानव की बहिन ढुंढी को पार्वती का वर देना कि होली में तीन दिन तक जो गाली न बके उसी को तू भक्षण करना और तभी से होली के दिनों में कुवाक्य बकने का प्रचार होना।

(२३) दिवाली कथा— सतयुग में सत्यावती नगरी का सोमेश्वर नाम राजा था। एक ब्राह्मण ने राजा से वर पाया कि कातिक कृष्ण अमावस्या को उस ब्राह्मण के घर के सिवाय नगर में और कहीं दीपक न जलेगा। लक्ष्मी का ब्राह्मण पर प्रसन्न होना और तभी से दीपमालिका का प्रचार।

(२४) पद्मावती सम्यो— पूर्व दिशा में गढ़ समुद्र शिखर के राजा की पुत्री पद्मावती को पृथ्वीराज का हर कर ले आना, सुलतान गोरी से मार्ग मार्ग में युद्ध होना और सुलतान का परास्त होना आदि।

(२५) ससिव्रता प्रस्ताव— देवगिरि के यादव राजा भान की पुत्री ससिव्रता को जिसकी मंगनी कन्नौज के राजा जयचन्द के भतीजे से हुई थी- पृथ्वीराज का हर लाना आदि।

(२६) देवगिरी सम्यो— कन्नौज के राजा जयचन्द का देवगिरि पर चढ़ाई करना।

(२७) रेवातट सम्यो— रेवातट पर सुलतान गोरी के साथ पृथ्वीराज का युद्ध और सुलतान का पकड़ा जाना।

(२८) अनंगपाल सम्यो— पृथ्वीराज के नाना अनंगपाल का पीछा दिल्ली का राज मांगना और न मिलने पर सुलतान गोरी सहित दिल्ली पर चढ़कर आना, पृथ्वीराज के साथ युद्ध और सुलतान का कैद होना आदि।

(२९) घग्घर की लड़ाई— सुलतान गोरी से पृथ्वीराज का घग्घर के मुकाम पर युद्ध।

(३०) कर्णाटी पात्र सम्यो— पृथ्वीराज का कर्णाटक पर चढ़ाई कर वहां के राजा को जीतना और वहाँ से कर्णाटी नाम की एक पातुर का लाना।

(३१) पीपा युद्ध— पृथ्वीराज के सामन्त पीप परिहार का सुलतान गोरी व कन्नौज की सम्मिलित सेना से युद्ध।

(३२) इन्द्रावती ब्याह—मालवदेश में सारंगीपुर नगर के राव की पुत्री इन्द्रावती से पृथ्वीराज का ब्याहने जाना। मार्ग में चित्तौड़ पर गुर्जरपति भीम की चढ़ाई के समाचार सुन रावल की सहायतार्थ चित्तौड़ जाना और इन्द्रावती को पृथ्वीराज के साथ विवाह करा सामन्तों का दिल्ली आना।

(३३) तथा—

(३४) जैतराव सम्यो—जैत प्रमार का सुल्तान गोरी से युद्ध।

(३५) कांगुरा युद्ध—कांगुरे के राजा से पृथ्वीराज का युद्ध।

(३६) हंसावती विवाह—रणथंभ के यादव राजा की पुत्री हंसावती के साथ पृथ्वीराज का विवाह और सुलतान गोरी और चन्देल राजा से युद्ध।

(३७) पहाड़राय युद्ध—पृथ्वीराज का सुलतान गोरी के साथ युद्ध और सामन्त पहाड़राव का सुलतान को कैद करना।

(३८) वरुण कथा—पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर को दिल्ली में रात के वक्त जमुना जल में स्नान करते हुए वरुण के दूतों का पकड़ना और पृथ्वीराज का वरुण की स्तुति कर पीछा पिता को मुक्त कराना—

(३६) सोमवध सम्यो—गुजरात के राजा भीमदेव का अजमेर पर चढ़ाई कर सोमेश्वर को मारना।

(४०) पज्जून छोगा प्रस्ताव—पृथ्वीराज के सामन्त राव पज्जून का चालुक्य राजा भीमदेव से युद्ध कर उसकी पाग का छोगा ले आना।

(४१) पज्जून चालुक्य प्रस्ताव—पज्जून राव का चालुक्क भीमदेव से युद्ध।

(४२) कैमास जुद्ध नाम प्रस्ताव—पृथ्वीराज के मंत्री कैमास दाहिमा का सुलतान गोरी से युद्ध कर उसको कैद करना।

(४३) चन्द्र द्वारका सम्यो—चंद बरदाई का द्वारका जाना, मार्ग में मक्षा-समरसिंह से चित्तौड़ पर मिलना।

(४४) भीम बध सम्यो—पृथ्वीराज का गुजरात पर चढ़ाई कर वहाँ के राजा भीमदेव को मारकर अपने पिता का बैर लेना और भीम के पुत्र कचरा राय को गद्दी बिठाना।

(४५) विनय मंगल प्रस्ताव—संयोगिता की उत्पत्ति व पूर्व जन्म की कथा आदि।

(४६) विनय–कन्नोज के राजा जयचन्द की पुत्री संयोगिता का पृथ्वीराज के प्रेम में पड़ना।

(४७) शुकवर्णन— संयोगिता का वृत्तान्त।

(४८) बालुक राय सम्यो ! राजा जयचन्द का राजसूय यज्ञ आरम्भ कर उसमें पृथ्वीराज को बुलाना, यज्ञ में न आकर पृथ्वीराज का जयचन्द के भाई बालुकराय को युद्ध में मारकर यज्ञ विध्वंस करना।

(४९) पंग यज्ञ विध्वंस नाम प्रस्ताव।

(५०) संयोगिता नेम प्रस्ताव।

(५१) हांसी युद्ध— पृथ्वीराज का सुलतान गोरी के साथ हांसी के मुकाम पर युद्ध।

(५२) पज्जून महुवा नाम प्रस्ताव— महुवा में राव पज्जून का सुलतान से युद्ध।

(५३) पज्जून पतसाह युद्ध।

(५४) सामंत पंग जुद्ध प्रस्ताव।

(५५) समर पंग युद्ध—चित्तौड़ पर जयचंद की चढ़ाई और युद्ध में हारना।

(५६) कैमास वध—कैमास मंत्री का कर्णाटकी के साथ प्रीति करना और पृथ्वीराज के हाथ से मारा जाना।

(५७) दुर्गा केदार सम्यो—दुर्गा केदार भाट से पृथ्वीराज के भाट चन्द-बरदाई का विवा वाद।

(५८) दिल्ली वर्णन—

(५९) जंगम कथा—एक जंगम का संयोगिता की अवस्था पृथ्वीराज पर प्रकट करना।

(६०) षट् ऋतु वर्णन

(६१) कनवज पर्व—पृथ्वीराज का गुप्त रीति से कन्नोज जाना और संयोगिता को हर लाना, पंगुराजा की सेना से युद्ध और ६४ सामन्तों का मारा जाना।

(६२) आखेटकश्राप—आखेट करते समय एक ऋषि का पृथ्वीराज को श्राप देना।

(६३) सुख चरित्र—संयोगिता के साथ पृथ्वीराज का भोग विलास में लीन होना।

(६४) धीर प्रस्ताव—पृथ्वीराज के सामन्त धीर पुण्डीर का सुलतान के साथ युद्ध कर उसको पकड़ना।

(६५–६६) बड़ी लड़ाई—सुलतान शहाबुद्दीन गोरी के साथ पृथ्वीराज का अन्तिम युद्ध और पृथ्वीराज का कैद होना आदि।

(६७) बाण वेध—चन्द का गजनी पहुँच कर पृथ्वीराज से मिलना और पृथ्वीराज का सुलतान को तीर से मारना और फिर चन्द और पृथ्वीराज का आत्मघात करना।

(६८) रैणसी प्रस्ताव—पृथ्वीराज के पुत्र रैणसी का सुलतान के साथ युद्ध कर मारा जाना।

इन प्रस्तावों में से पौराणिक भाग को त्याग कर निम्न लिखित ऐतिहासिक वृत्तों की परीक्षा करेंगे:—

(१) चाहुवानों की उत्पत्ति।

(२) चाहुवानों की वंशावली।

(३) बीसलदेव का गुजराज के राजा बालुकाराय से युद्ध।

(४) बीसलदेव से सोमेश्वर तक हुए राजा और उनके संवत्।

(५) अनंगपाल तँवर का दिल्ली बसाना, उसकी पुत्री कमला देवी के साथ सोमेश्वर का विवाह और पृथ्वीराज का दिल्ली, अपने नाना के गोद, जाना।

(६) पृथ्वीराज का जन्म संवत।

(७) सोमेश्वर की पुत्री पृथा कँवरी के साथ चित्तौड़ के रावल समरसिंह का विवाह आदि।

(८) आबू के प्रमार राजा सलख की पुत्री से पृथ्वीराज का विवाह।

(९) सोमेश्वर का सोलंकी राजा भीमदेव के हाथ से मारा जाना और पृथ्वीराज का भीमदेव को वधकर उसके पुत्र कचरा राय को गद्दी बिठाना।

(१०) जयपुर के महाराज पज्जवन का राज समय।

(११) देवगिरि के यादव राजा भान की पुत्री से पृथ्वीराज का विवाह।

(१२) रणथम्भौर के यादवराजा की पुत्री से पृथ्वीराज का विवाह।

(१३) सुलतानगोरी का पृथ्वीराज को पकड़ कर गजनी ले जाना और पृथ्वीराज के तीर से सुलतान का मारा जाना आदि।

(१४) पृथ्वीराज के पुत्र रैणसी का सुलतान से युद्ध।

(१५) महोवा के चन्देल राजा से पृथ्वीराज का युद्ध।

(१) चाहुवानों की उत्पत्तिः—

अब प्रथम चाहुवानों की उत्पत्ति के विषय में विचार करते हैं। रासे में इनके मूल पुरुष चाहमान का अर्बुद गिरी पर वसिष्ट ऋषि के यज्ञ करने से अग्नि-कुण्ड में से उत्पन्न होना लिखा है तदनुसार चहुवान अपने तईं अग्नि वंशी बतलाते हैं परन्तु जब हम इसी विषय पर मिलते हुए अन्य प्रमाणों पर दृष्टि देते हैं तो रासे के कथन में शङ्का उत्पन्न हुए बिना रहती नहीं जैसे कि हम्मीर महाकाव्य में लिखा है (१) :—

एक समय ब्रह्मा यज्ञ करने के लिये पुण्य भूमि की खोज में फिरते थे उनके हाथ में से कमल का पुष्प एक स्थान पर गिर पड़ा, उस स्थान को पवित्र समझ कर ब्रह्मा ने वहीं यज्ञ करना आरम्भ किया परन्तु राक्षस गण आकर यज्ञ में विघ्न करने लगे तब ब्रह्माने सूर्य का आह्वान किया और सूर्य मण्डल से एक दिव्य पुरुष शस्त्र धारण किये उतरा जिसकी रक्षा में यज्ञ निर्विघ्नता पूर्वक समाप्त हुआ। यही पुरुष चाहमान नाम से चहुवानों के वंश का मूल पुरुष हुआ और जहाँ यज्ञ किया था वह स्थान पुष्कर तीर्थ के नाम से संसार में प्रसिद्ध हुआ।

आबू पहाड़ पर अचलेश्वर महादेव के मंदिर में घुसते हुए दाहिनी तरफ एक प्रशस्ति (२) सम्वत् १३७७ वि० की लगी है जिसमें चहुवान वंश की नाड़ोल शाखा की वंशावली दी है (३) इस प्रशस्ति में चहुआनों की उत्पत्ति विषय में जो श्लोक लिखे हैं वे हम यहाँ उद्धृत करते हैं:—

"क्षितौ प्रशान्तौ किल सूर्य्ये सोम,
वंशौ विशालौ प्रवरौ हि पूर्वौ।"
'तयोर्विनाशे भगवान् श्री वच्छ,
स्वचिन्तयद्दोष भयान्महात्मा॥"
"तं स्चिन्तया चन्द्रम सस्सु योगा—
द्ध्यानान्महर्षेरभवन्मुविसु"
·····················दिशासु सर्वासु,
दैत्यान्प्रविलोक्य वेगान॥"
"निजायुधे दैत्यवरान्निहत्य
संतोषयन क्रोध युतं तु वच्छं"
वच्छ्यास्तदारा धन तन पराश्च,

चन्द्रस्य.........चन्द्र वंश्या: ।।"
"एतेतदारभ्य विशाल वंशा:.
ख्याता: क्षितावत्र पवित्र गोत्रा: ।"
त्राणाय त्रासात्रपत्तात्र चित्रा,
क्षात्रं विधिं विधि वशान् प्रचरति चित्रा ।"

[भावार्थ] जब पृथ्वी पर सूर्य और चंद्र वंश अस्त हुए तो श्री वत्स ऋषि ने दोष भय से ध्यान किया। ऋषि के ध्यान और चन्द्रमा के योग से एक पुरुष उत्पन्न हुआ जिसने अपने चारों तरफ दैत्यों को देखा, उनका अपने शस्त्र द्वारा नाशकर उसने श्रीवत्स को शान्त किया। यह पुरुष चन्द्र के योग से उत्पन्न हुआ था। इसीसे चंद्रवंशी कहलाया।

ऐसे ही बिजोलिया की प्रशस्ति में भी (जिसका वर्णन आगे होगा) चहुवानों को श्री वत्स विप्र के गोत्र का होना लिखा है। कर्नल टाड साहब चाहुवानों का गोत्रोच्चार्य ऐसे लिखते हैं:—

"सामवेद, सोमवंश, माध्यन्दिनी शाखा, वत्स गोत्र. पञ्च प्रवर आदि,[1]

जनरल कन्हिंगम साहब लिखते हैं कि मिस्टर फैल साहब को मिले हुए कन्नौज के राजा जयचन्द के एक दान पत्र सन् ११७७ ई० (सं०१२३४ वि०) में लिखा है कि राजा ने राव राउधर वर्मा को कुछ पृथ्वी दी। इस राव का वत्स गोत्र, पञ्चप्रवर–भार्गव, च्यवन, अपनवन और्व और जमदग्नि ऋषि थे। इस छन्द से सिद्ध होता है कि पृथ्वीराज के समय तक चौहान अपने को अग्नि कुली होना नहीं मानते थे परन्तु जमदग्नि वत्सद्वारा अपने को महर्षि भृगु की सन्तान बतलाते थे[2]।

---

1. देखो–टाड राजस्थान पहिला एडीशन जिल्द २ पृष्ठ ४४१.
2. देखो–आर्कियालोजिकल् सर्वे की रिपोर्ट जिल्द २ पृष्ठ २५३।

☆ यह पुस्तक सं० १५०० वि० के लगभग जयचन्द्र सूरी के शिष्य नयचन्द्र सूरी ने बीरम तँवर की सभा में लिखा था जिसमें रणथम्भोर के चाहुवान राजा हम्मीर का वर्णन है।

☆ इस प्रशस्ति की नकल पं० गौरीशङ्कर हीराचंद ओझा ने की है।

☆ इसमें लिखा है कि महाराज लुण्ढा ने इस मंदिर का जीर्णोद्धार कराया जो माणिक्यराज के पुत्र लक्ष्मण से, जिसने नाडोल बसाई–दसवीं पीढ़ी में हुआ था।

सोलहवीं शताब्दी के पूर्व के जितने शिला लेखादि आज तक चहुवान वंश के पाये गये उनमें कहीं यह लिखा हुआ नहीं मिलता कि इस वंश का मूलपुरुष अग्नि कुंड में से उत्पन्न हुआ था। सोलहवीं शताब्दी के पीछे के लेखों में रासे से मिलता हुआ वर्णन अलबत्ता पाया जाता है। इसके अतिरिक्त रासे के कर्ता ने प्रतिहार चालुक्य और प्रमार चारों का एक ही समय में यज्ञ कुण्ड से उत्पन्न होना लिखा है परन्तु चालुक्यों के सैंकड़ों लेख दान पत्रादि छठी शताब्दी से चौदहवीं तक के मिले हैं। उनमें कहीं वर्णन तक नहीं कि चालुक्य अग्नि वंशी हैं। वे अपनी उत्पत्ति हारीत ऋषि से मानते हैं[1] ऐसे ही प्रतिहार हरिश्चन्द्र ब्राह्मण को अपना मूल पुरुष लिखते हैं[2] अतएव रासे का यह कथन भी अप्रामाणिक ही ठहरता है।

अब यदि यह जानना चाहें कि रासे के कर्ता ने चाहुवानों को अग्नि वंशी कैसे ठहराया? तो रासे ही में लिखे हुए प्रमारों के वर्णन पर इतना कह सकते हैं कि अग्नि कुली प्रमार की प्रसिद्ध कथा पर शायद कवि ने अपनी यह कथा घड़न्त करली हो। प्रमारों के प्राचीन पुस्तक शिलालेखादि में लिखा है कि इस वंश का मूल पुरुष प्रमार अग्नि कुण्ड में से उत्पन्न हुआ था जैसे कि—परिमिल कविकृत

---

१. यद्यपि इस कथन को सत्य ठहराने वाले चालुक्यों के अनेक लेख दान पत्रादि आज तक उपलब्ध हो चुके हैं तथापि हम प्रमाण के लिये केवल एक ही दान पत्र का वर्णन करना काफ़ी समझते हैं जो चालुक्य राजा राजराज के समय का सं० ११५० वि० का है। उसमें लिखा है कि चालुक्य चंद्र वंशी हैं। देखो एपि ग्राफिका इण्डिका जिल्द ४ पृष्ठ ३०० । इसके अतिरिक्त कश्मीर का प्रसिद्ध पण्डित विल्हण, जिसने चालुक्य राजा विक्रम (राजराज) के समय में 'विक्रमांक देव चरित' नामी पुस्तक लिखी, उसमें भी चालुक्यों की उत्पत्ति का वर्णन यों किया है कि एक समय इन्द्र ने असुरों से दुःखी हो ब्रह्मा के पास आकर सहायता चाही। ब्रह्माने अपनी अंजली की ओर देखा और उसमें से एक वीर पुरुष उत्पन्न हुआ क्योंकि वह चुलुक से उत्पन्न हुआ था, इसी से इसका नाम चालुक्य रक्खा गया। छठी शताब्दी से लेकर चवदहवीं तक के कितने ही दान पत्र चंद्र वंशी लिखा है।

२. देखो—पृथ्वीराज चरित्र के कथा भाग पृष्ठ ३ की नोट।

'नवसाहसांक चरित, में लिखा है कि प्रमारों का मूल पुरुष अग्नि कुण्ड में उत्पन्न हुआ था (यह पुस्तक सं० १०६० वि० के लगभग भोजराज के पिता सिन्धुराज के समय का बना हुआ है) । ऐसे ही बाँसवाड़ा राज के अथूँणा नामी ग्राम में एक तेली के कोल्हू पर रखा हुआ एक प्राचीन लेख सं० ११५७ वि० चैत्र विद २ सोमवार का पण्डित गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा लाइब्रेरियन विक्टोरिया हाल राज उदयपुर को मिला है जिसमें बागड़ के प्रमार राजा मण्डन व उसके पुत्र चामुण्ड राज का वर्णन है । उस लेख में प्रमारों की उत्पत्ति विषय के ये श्लोक लिखे हैं:—

"तत्र वशिष्ट मुनि प्रवरस्य तीव्र तपो भिरतस्य जहार"
"गाधि नृपस्य सतो वरधेनुं सातुशयो हुतवान् मुनिरग्निम ॥ ३ ॥
"अथ पराभवजात रुपा मुना हुतस मंत्र हुताशन कुण्डतः"
"हृतमुपान्त गुरुत्थितवान भरोजित परः परमार कृताभिधः ॥ ४ ॥

[भावार्थ] वशिष्ठ ऋषि की गौ गाधिराजा का पुत्र (विश्वामित्र) बल पूर्वक हर ले गया । उसको वापस लाने के लिये वशिष्ठ ने अग्नि कुण्ड में से प्रमार नामी पुरुष उत्पन्न किया ।

रासे में भी इसी कथा से मिलती हुई कथा कुछ फेरफार के साथ इस प्रकार लिखी है कि वशिष्ठ ऋषि की गौ एक खड्डे में गिर पड़ी, ऋषि ने गंगा की स्तुति की और गंगा के खड्डे में प्रगट होने से गौ तैर कर बाहर निकल आई । फिर ऋषि हिमालय पर्वत के पास गये और वहाँ से उसके एक पुत्र अर्बुद नाम को लाकर उस खड्डे को भरा आदि ।

इसके अतिरिक्त रासे के कर्ता ने "कनवज्ज पर्वत" में लिखा है कि चाहुवानों को पृथ्वी परमारों ने दी ।

छप्पय

दिय दिल्ली तोंवरन दई चावण्डा सुपट्टन ।
दय सम्भरि चहुआन दई कनवज कमधज्जन ॥
परी हारन मुरदेस सिंध वारड़ा सुचालं ।
दै सोरठ जद्दवन दई दच्छन आवालं ॥

चारनं कच्छ दीनी करग, भट्टांपूरव भावही ।
बन गये नृपति वंटेधरा गिरिजा पति माला गही ॥

यह कथा राम प्रमार के लिये कही है कि वह इस तरह पृथ्वी बाँट कर तप करने वन में चला गया। मैं इस छन्द की अतिशयोक्ति पर ध्यान न देकर केवल इतना अनुमान करता हूँ कि इन चवकुली क्षत्रियों को अग्निवंशी ठहराने का आधार रासे के कर्ता को परमारों की कुल कथा ही का मिला हो। परन्तु यह बात उसके ध्यान में उस वक्त न रही कि अग्नि कुलो प्रमार तो अपने को आज तक वशिष्ठ गोत्री मानते चले आते हैं परन्तु चाहुवानों का वशिष्ठ गोत्र नहीं, वे वत्स गोत्री हैं। अतएव सिद्ध है कि इनकी उत्पत्ति का मूल श्रीवत्स ऋषि ही से था वशिष्ठ से नहीं।

जनरल कन्हिंगम साहब इस विषय पर ऐसी कल्पना करते हैं कि एक दन्त कथा के अनुसार सोलंकियों की राजधानी के प्रसिद्ध नगर अनलपुर (अणहिलवाड़ा) का नाम एक चौहान चरवाहे अनल के नाम पर रक्खा गया है। जिसने वनराज सोलंखी को, जो इस नगर का बसाने वाला था, यह स्थान बतलाया और ऐसा भी कहते हैं कि चौहान आनलदेव ने इस नगर को बसाया था[1]। मेरे खयाल में उक्त जनरल साहब की यह कल्पना, कि अनल चरवाह ने अनलपुर बसाया और उसी से चहुवान अग्नि वंशी कहलाये हों, कुछ ठीक नहीं जंचती क्योंकि प्रथम तो वनराज—जैसा कि जनरल साहब लिखते हैं—सोलंखी नहीं किन्तु चावड़ा राजपूत था जिसने अणहिलवाड़ा बसाया। आनलदेव या (अरुणोराज) उस विग्रहराज या वीसलदेव से आठवीं पीढ़ी पीछे हुवा था जिसने पट्टन के सोलंखी राजा मूलदेव से युद्ध किया था तदैव आनलदेव चहुवान का अणहिल वाड़ा बसाना बन नहीं सकता। हां यह बात अलबत्ता ध्यान में आ सकती है कि आनलदेव चहुवानों में एक अति प्रसिद्ध और प्रतापी राजा हुआ (जिसका देहान्त सं० १२०७ से १२१० वि० के बीच में हुआ) इसीलिये उसके नाम से चहुवानों को आनलवंशी

1. देखो—आर्कियोलोजिकल सर्वे की रिपोर्ट जिल्द २ पृष्ठ २५४।

भी कहते हैं[१] क्या आश्चर्य कि समय पाकर आनल का अनल वन गया हो और क्योंकि अनल को अग्नि वंशी मान लिया हो।

उत्तरोक्त वर्णन से यह बात तो ध्यान में आई होगी कि चहुवान चन्द्र वंशी हैं, अग्नि वंशी नहीं, परन्तु चाहमान नाम से [जिसकी सन्तान चहुवान कहलाये] की उत्पत्ति हुई ? इस प्रश्न का उत्तर यद्यपि निश्चित रूप से नहीं दिया जा सकता। यथापि इतना कह सकते हैं कि छठी शताब्दी के पीछे यदि उसका उत्पत्ति काल माना जावे तो अनुचित नहीं, कारण कि महाभारत रामायणादि अन्य प्राचीन पुस्तकों में सूर्य्यवंशी और चन्द्रवंशी क्षत्रियों ही का वर्णन मिलता है व इन पुस्तकों के बहुत काल पीछे बने हुए पुराण ग्रन्थों में भी इन चवकुली क्षत्रियों का वर्णन नहीं पाया जाता अतएव सिद्ध है कि इनकी उत्पत्ति पुराण रचे जाने के बाद हुई।[२]

---

(१) रासे के अनुसार यह राजा चहुवानों की राजधानी अजमेर को पीछी बसाने वाला हुआ। जिसको ढुंढा दानव ने उजाड़ दिया था और पृथ्वीराज विजय नामी पुस्तक के लेख पर भी यह अनुमान हो सकता है कि अजमेर का बसना आनल देव (अरुणोराज) ही के समय में प्रारम्भ हुआ हो परन्तु उसके पुत्र अजयराज के नामपर उस नगर का नाम अजयमेरु या अजमेर पड़ा क्योंकि पर्वत पर दुर्ग इत्यादि के बनने और नगर पूरा बस जाने का कार्य इसी राजा के समय में सम्पूर्ण हुआ था। यद्यपि इस पुस्तक पर पंडित जौनराज की की हुई सं० १४५०—७५ वि० की टिप्पणी से यही पाया जाता है कि अरुणो राज के पुत्र अजय राज हीने अजमेर बसाया परन्तु पुस्तक में उस स्थल पर मूलपाठ में "एवं विधावजय मेरुगिरौ प्रतिष्ठां" ऐसा होने से यह अनुमान करना अन्यथा नहीं कि इस अजयराज ने पर्वत पर दुर्ग बनाया हो। इसके वास्ते अजमेर पर दिया हुआ डाक्टर ब्हुलर का लेख इन्डियन ऐन्टीक्वेरी जिल्द २६ जून सं० १,८६७ के पृष्ठ १,६२ में देखो।

२. पंडित मोहनलालजी विष्णुलालजी पंड्या ने अपने छपाये हुए रासे के आदि पर्व पृष्ठ ५५ की टिप्पणी में कालिंदी का प्रकाशनामी पुस्तक में पुराणोक्त एक श्लोक होना लिखा है, जिसके आधार पर वे पुराणों में चवकुली क्षत्रियों की उत्पत्ति का वर्णन रासे के अनुसार होना मानते हैं। परन्तु उक्त पंडितजी के लेखानुसार कालिंदी का प्रकाशनामी पुस्तक का यह श्लोक है, पुराण का नहीं। क्योंकि किसी पुराण का नाम उन्होंने वहाँ नहीं लिखा और

राज शेखर कृत चतुर्विंशति प्रबन्ध की प्रति के अन्त में दी हुई चाहुवानों की वंशावली में जो वासुदेव से शुरु होती है वासुदेव का सम्वत् ६०८ लिखा है (शायद यह शक सम्वत् हो)। वासुदेव इस वंश के मूल पुरुष चाहमान से दूसरा ही राजा था। शेखावाटी में हर्षनाथ के मंदिर की प्रशस्ति सं० १०३० वि० की सिंहराज के समय की मिली है। इस सिंहराज के पहले १२ राजा इस वंश में हुए यदि इन प्रत्येक का राज्य समय औसत हिसाब से २५ वर्ष का माना जावे तो वही ऊपर लिखा सं० ६०८ (शक) वासुदेव के राज समय का ज्ञान मिलता है।

इस वंश की जितनी वंशावलियां मिली हैं (जिनका वर्णन आगे करेंगे) उनका मिलान कर देखा जावे तो मालूम होगा कि चाहमान से लेकर पृथ्वीराज तक इस वंश में करीब ३० राजा हुए। यदि इन प्रत्येक का समय बीस वर्ष का माना जावे (पिछले राजाओं का राज्य समय कम होने से जैसे कि विग्रह राज नं० २ से लेकर सोमेश्वर के गद्दी बैठने तक १८४ वर्ष में, जो आगे बतलाया जावेगा, बारह राजा हो गये) तो करीब २ वही उपरोक्त समय चाहमान की उत्पत्ति का ठहरता है।

कर्नल टाड साहब लिखते हैं कि सातवीं शताब्दी के पीछे चहुवानों का इतिहास अन्धकार में से निकलता है। इसी सन् के पूर्व ही से तातारी (सीथियन्स) कौमों ने मध्य एशिया से आकर हिन्दुस्थान के उत्तरी प्रान्त में अपना राज जमा लिया था शायद उन्ही कोमों में से बहुत से क्षत्री वंशों का प्रादुर्भाव हुआ हो क्योंकि उन कोमों के प्राचीन रीति रिवाज क्षत्रियों से बहुत कुछ मिलते हुए थे।

कई विद्वानों का यह भी अनुमान है कि बौद्ध मत के सारे भारतवर्ष में फैल जाने से जब वैदिक मतावलम्बी क्षत्रिय राजा यहाँ कम रहे तो ब्राह्मणों ने बौद्धों का

दूसरे श्लोक में जो "याज्ञिक" शब्द है उसका अर्थ यज्ञ से उत्पन्न हुए, ऐसा नहीं बन सकता। किन्तु यज्ञ करने वाले का होता है जिसके क्षत्री मात्र अधिकारी हैं। अलबत्ता सन् १८६७ ई० के बम्बई के छपे हुए भविष्य पुराण के प्रति सर्ग पर्व में चहुवानों की उत्पत्ति रासे के अनुसार दी है परन्तु उक्त सर्ग कर्ता ने वह वृत्तान्त रासे से ही लिया है ऐसा उसी पुस्तक से प्रतीत होता है। उक्त सर्ग में दिये हुए ऐतिहासिक वृत्तान्त की सत्यता व उस सर्ग के बनने का समय एक बार उस पुस्तक को आदि से अन्त तक पढ़ने से पाठकगण स्वयं जान सकेंगे।

नाश करने के लिये अन्य देश से आये हुए लोगों में से कितनों ही को संस्कार द्वारा द्विजन्मा बनाया था ।

(२) अब चहुवानों की वंशावली का वर्णन करते हैं:—

(इसमें फेरफार होने का वर्णन हमने इस पुस्तक के कथा भाग में कर दिया है) पृथ्वीराज रासे में दी हुई वंशावली पृथ्वीराज तक:—

चाहमान	महासिंह	बालनराय
सामन्तदेव	चन्द्रगुप्त	प्रथमराय
महदेव	प्रतापसिंह	अंगराज
माहन्त	मोहसिंह	धर्माधिराज
अजयसिंह	सेनराय	वीसलदेव
वीरसिंह	सम्भ्रतराय	सारंगदेव
विन्दुसूर	वीरसिंह	आनलदेव
उद्दारहार	विबुधसिंह	जयसिंहदेव
अशोक श्री	चन्द्रराय	आनन्दमेव
वैरिसिंह	कृष्णराज	सोमेश्वर
वीरसिंह	हरहरराय	पृथ्वीराज
माणिकराव		रैणसी

बूंदी नगर निवासी कवि सूरजमल्ल कृत वंशभास्कर से:—

"कलियुग के एक हजार वर्ष के लगभग बीतने पर बौद्धों का मत भारतवर्ष में बहुत फैल गया था, वेद के मानने वालों की संख्या घटी और असुर गणों की वृद्धि हुई इसलिये बौद्धों और दैत्यों का नाश करने ऋषियों ने आबू पहाड़ पर यज्ञ कर अग्नि कुण्ड में से ४ क्षत्री उत्पन्न किये (१) प्रतिहार या प्रतिहार (२) चालुक्य या सोलंखी (३) प्रमार या पंवार (४) चाहुवाण या चाहमान ।

चहुवाण कीवंशावली:—

(१) चाहमान—(चतुर्बाहुमान, चौहाण, चव्हाण, चुहाण, चतुर्भुज, चंडासि और चहुवाण भी कहते हैं) वत्सगोत्र, सामवेद, कौथुमीशाखा, पञ्चप्रवर,

और गोमिल सूत्र। देवी के वरदान से असुरों को मारा, वशिष्ठ ऋषि की सहायता से बौद्धों का नाश कर दिल्ली ली, मथुरा के यादवों को जीता, पुष्कर के राजा विजयाश्व की पुत्री से विवाह किया और कश्मीर फतह की।

(२) सामन्तदेव—प्रचण्ड भी कहते हैं।

(३) महादेव—[परभंजन] मारवाड़ के राजा देवराज को जीता।

(४) कुबेर—या महन्तदेव।

(५) विन्दुमार—या मंत्र सहाय या मंत्रजय।

(६) सुधन्वा—(उदारहार) सोरों के राजा प्रथुसोलंखी ने दिल्ली घेरली उसमें बिन्दुसार मारा गया और सद्यो धारण कामदार ने सुधन्वा को बालक समझ पृथु से सन्धि कर ली परन्तु फिर सुधन्वा ने पृथु को जय कर उसकी पुत्री से विवाह किया।

(७) वीर धन्ना या अशोक. (८) जय धन्वा—या शंका विहार
(९) वीरसिंह— या विजय (१०) वरसिंह—या मारुत
(११) वीरदण्ड (१२) अरिमंत्र—या जयंत
(१३) माणिक्यराज—या शूर (१४) पुष्कर—या विजयपाल
(१५) असमंजस (१६) प्रेमपूर
(१७) अनुराज (१८) मानसिंह
(१९) हनुमान—या धर्मपाल (२०) चित्र सेन
(२१) शम्भु (२२) महासेन—या अद्धीश
(२३) सुरथ (२४) रुद्रदत्त—या कर्णपाल
(२५) हेमरथ—या रोमपाल (२६) चित्राङ्गद
(२७) चन्द्रसेन (२८) वाल्हीक—या वत्सराज
(२९) धृष्टद्युम्न—या वरुण (३०) उत्तम
(३१) सुनीक (३२) सुबाहु—या मोहन.

इसके १४५ राणियां थीं। शिकार में मथुरा के यादव–वंशी राजा व कुरुवंशी राजा ने छल से मारा।

(३३) सुरथ (३४) भरथ—या मदसेन

(३५) सत्यकी (३६) शत्रुजित या केसरदेव

(३७) विक्रम (३८) सहदेव—इससे कुरुवंशी राजा ने दिल्ली छीन ली अपने मामा अरिवाट की सहायता से सहदेव ने सुनभ राजा को मार कर्णाटि देश लिया और वहाँ मिहकावती नाम नगर को राजधानी बनाया, गुजरात के राजा की सहायता से पौण्ड्र देश जीता।

(३६) वीरदेव—या भीमसेन (४०) वसुदेव

(४१) वासुदेव (४२) रणधीर

(४३) शत्रुघ्न—अयोध्या के राजा की सहायता में युद्ध में मारा गया।

(४४) सुमेरु—या शालिवाहन (४५) कृतवर्मा

(४६) सु वर्मा (४७) दिव्य वर्मा

(४८) यौवनाश्व (४६) हर्यश्व

(५०) अजयपाल—बंगाल, कामरूप आदि देश जीते; रावण विड़ाल और विडंब नाम के असुरों को मारा, अजमेर बसाया। इसके १३ पुत्र हुए परन्तु रावण के बेटे ने १२ पुत्रों को बचपन ही में मार डाला।

(५१) भट दलन—इसके तीन पुत्र हुए लोहराज, निम्भराज और अनंगपाल। दो पुत्र बालापन में मारे गये जिनको चहुवाण पितृ मानते हैं।

(५२) लोहराज—इसके २१ पुत्र हुए जिनमें से बीस मारे गये।

(५३) भीम

(५४) गोगा—जटवक नामी असुर को मारा, इसके नाना देवजी के कोई पुत्र न था, एक पुत्री से तो गोगा और दूसरी जो गौड़ भवदेव को व्याही थी उससे उर्जन सुजेन दो दौहित्र हुए। इन तीनों दोहित्रों में से देवजी ने गोगा को अपने नगर भोजकट का राज दिया। उर्जन सुर्जन ने गोगा से आधा राज मांगा परन्तु गोगा ने न दिया तो उन्होंने ईरान के पादशाह अबूफर को पराजित कर हरियाने के पास उसको मारा। गोगा को नाग का अवतार मानते हैं। और आज तक लोग उसकी पूजा करते हैं और मुसलमान उसे जाहिर पीर के नाम से पूजते हैं।

(५५) शुभकर्ण (५६) उदयकर्ण

(५७) जशकर्ण (५८) हरिकर्ण

(५९) कीर्तीश (६०) बालकृष्ण

(६१) हरिकृष्ण (६२) रामकृष्ण

(६३) बलदेव (६४) हरदेव

(६५) भीम—मगध देश के राजा के साथ लड़ाई में मारा गया।

(६६) सहदेव। (६७) रामदेव।

(६८) वसुदेव—विदर्भ देश पीछा लिया परन्तु फिर मगध के राजा के हाथ से मारा गया।

(६९) श्यामदेव। (७०) हरिदास।

(७१) महीधर।

(७२) वामदेव—लाहौर के राजा मदनसेन के सहायतार्थ युद्ध में मारा गया।

(७३) श्रीधर। (७४) गंगाधर।

(७५) महादेव—अश्वमेध करना चाहा परन्तु मगध के राजा ने घोड़ा पकड़ लिया। महादेव उसके हाथ से युद्ध में मारा गया।

(७६) शार्ङ्गधर। (७७) मानसिंह।

(७८) चक्रधर। (७९) शत्रुजित।

(८०) हलधर। (८१) महाधनु।

(८२) देवदत्त। (८३) दामोदर।

(८४) काशीनाथ—कुन्तलदेश के श्रीधर को मारकर उसकी पुत्री अपने पुत्र लीलाधर के वास्ते ले आया।

(८५) लीलाधर—इसका साला मदन सेन—कुन्तलदेश का राजा अपने पिता का बैर लेने को इस पर चढ़ आया युद्ध में लीलाधर और मदनसेन मारे गये।

(८६) धरणीधर। (८७) रमणेश।

(८८) भगवद्दास।

(८९) कृष्णदास—भगवद्दास और ये दोनों कुन्तलदेश के राजा के साथ युद्ध में मारे गये।

(९०) शिवदास

(९१) हरिपूर्ण—कुन्तल पर चढ़ाई की वहीं पर मारा गया।

(९२) देवीदास

(९३) कर्मचन्द नं० ९२ सहित कुन्तल देश के राजा से युद्ध में मारा गया।

(९४) रामदास—कुन्तल के राजा दृढ़ सेन के पुत्र हरिसेन के हाथ से मारा गया।

(९५) महानन्द—इसकी माता इसको लेकर प्रथमतो अपने पिता विदर्भ के राजा भीम के यहां गई परन्तु जब हरिसेन ने वहाँ भी उनका पीछा न छोड़ा तो राणी अपने पुत्र सहित टोड़े में तँवर राजा के यहाँ आ रही वहाँ के राजा ने महानन्द को अपनी पुत्री व्याह दी फिर यह सेना इकट्ठी कर सांभर पर चढ़ा और वहाँ के राजा नरवाहन व उसके पुत्र जयपाल को मार कर सांभर का राज्य अपने स्वाधीन किया महानन्द के वंशज सम्भरी चहुवाण कहलाये।

(९६) विष्णुदास

(९७) महाराम

(९८) रेवादास

(९९) अमरसिंह

(१००) गंगादास

(१०१) मानसिंह

(१०२) विश्वम्भर

(१०३) मथुरादास

(१०४) द्वारकादास

(१०५) माधवदास—इसने दंताल गढ़ जीता, इसके दस पुत्र थे।

(१०६) वीरभद्र

(१०७) कमलनयन

(१०८) गोपाल

(१०९) गोविंददास

(११०) माणक्य राज—(विश्वपति भी कहते हैं) इसके दो पुत्र थे हनुमान और सुग्रीव, हनुमान बाहर चला गया और पटने के सूर्यवंशी राजा चद्रुलजी को मारकर वह राज्य अपने स्वाधीन किया उसी के वंशज पूर्विये चौहाण कहलाये जिनकी ३१ शाखा है—

(१११) सुग्रीव। (११२) अंगद।
(११३) केसरी। (११४) जयन्त।
(११५) जगदीस। (११६) जयराम।
(११७) विजयराम। (११८) कृष्ण।
(११९) जितयुद्ध। (१२०) गोवर्धन।
(१२१) मोहन। (१२२) गिरिधर।
(१२३) जयराम [उद्यम] (१२४) भरत।
(१२५) अर्जुन (१२६) शत्रुजित
(१२७) सोमदत्त (१२८) दुष्यन्त
(१२९) भीम (१३०) लक्ष्मण
(१३१) परशुराम (१३२) रघुराम—शराब बहुत पीता था, मारोठ के पड़िहार राजा मंगल ने सांभर छीन लिया और रघुराम बुरहानपुर में अपने श्वसुर के घर शराब ही से मरा।

(१३३) समरसिंह—सांभर लेने का उद्योग किया परिहार मंगल के पुत्र नाहर से युद्ध हुआ दोनों मारे गये।

(१३४) माणिक्यराज—इसने अर्जुन के पुत्र चक्रधर की सहायता से सांभर का राज पीछा लिया और परिहार नाहर के ग्यारह पुत्रों को मारा। कांगड़े के राजा जल्हण की पुत्री से विवाह किया और श्वसुर की सहायता में लाहोर के राजा केदार से युद्ध किया और उससे कांगड़े के पर्गने पीछे छुड़ा लिये। दूसरी लड़ाई में लाहोर के राजा के हाथ से मारा गया, इसके ग्यारह पुत्र थे बड़ा सुहुकर्ण तो सांभर की गद्दी पर बैठा (२) लालसिंह ने मद्र देश का राज लिया जिसकी सन्तान मादरेचे चहुआण कहलाई (३) हरिसिंह ने सिंध देश में राज किया, इनके पुत्र धुन्धट की सन्तान धुन्धेड़िये चहुवाण कहलाई (४) शार्दूल— इसके दो पुत्र धनजी और टंक, धनजीने पञ्जाब में राज किया इसकी सन्तान टांक चहुवाण हुए (५) पूर्णराज ने भदावर का राज लिया इसकी सन्तान भदोरिया कहलाई (६) मोहिल राज ने जालोर लिया जिसका दूसरा नाम सोनगिर है। इसकी सन्तान सोनगरे चहुवान कहलाई (७) निर्वाण इसके वंशज निर्वाण चहुवाण हुए। इसी वंश के

देवजी नामक चहुवाण ने आबू पर राज्य किया और सिरोही बसाई। इसके वंशज देवड़े चहुवाण कहलाये (८) कृष्ण राज ने पाण्ड्य देश में राज्य किया उसकी सन्तान पाण्डिया चहुवाण हुई। (६) लसनराज गुजरात का राजा हुआ जिससे गुजराती चहुवाण निकले (१०) प्रवलराज ने वगसर में राज किया जिसकी सन्तान के वगसरिये चहुवाण और (११) खिच्चीराज जिसके वंसज खीची चहुवाण हुए।

(१३५) मुहुःकर्मा

(१३६) रामचन्द्र—इसके १२ पुत्र हुए बड़ा संग्रामसिंह तो सांभर की गादी पर बैठा और शेष ११ से ग्यारह शाखा निकलीं:— (१) वालेशे (२) बंगड़िये (३) गोलवाल (४) पुष्ट वाल (५) मलयेचे (६) चाहोड़ (७) हरीणे (८) माल्हण (६) मुकलार (१०) चक्रडाणे (११) शूलटे।

(१३७) संग्रामसिंह (१३८) शिवदत्त

(१३६) भोगदत्त—इसके छोटे पुत्र चित्रक के वंशज चीते चहुवाण कहलाये।

(१४०) शिवदत्त

(१४१) रुद्रदत्त—इसके सात पुत्र, बड़ा इसरजी तो सांभर का राजा हुआ शेष ६ से छः शाखा निकलीः—१ भैरवे २ लपरवे ३ अभ्रावे ४ वावोरं ५ बघनेचे ६ केशर खेले।

(१४२) ईशरजी—इसके ८ पुत्र, बड़ा उमादत्त तो सांभर रहा बाकी सात से सात शाखा निकलीं १ मोरचे २ पत्विया ३ सांचोरे ४ वहोले ५ गयले ६ तिलवाड़े ७ चीवे।

(१४३) उमादत्त

(१४४) चतुरजी—नं० १४३ के पुत्रों में से चित्रांगजी नाम मोरी ने चित्तौड़ का कीला बनवाया।

(१४५) सोमेश्वर—इसके दो पुत्र भरत और उरथ।

(१४६) भरत—इसके वंश में हमीर चहुवाण तक राज रहा जिसको दिल्ली के पादशाह अलाउद्दीन खिलजी ने मारा था। नीमराणे के चहुवाण इसी वंश में हैं और बूंदी वाले उरथ के वंश के हैं।

(१४७) युद्ध ष्ट

(१४८) सहिसिंह

(१४९) सिंहजी

(१५०) चन्द्रगुप्त—इसके दो पुत्र प्रताहसिंह और आरत्न, पृथ्वीराज के सामन्तों में से लंगरीराय और अत्ताताई इसी आरत्न के वंश में से थे—

(१५१) प्रतापसिंह। (१५२) सिंहदेव।

(१५३) सिंहवर। (१५४) रत्नसिंह।

(१५५) मोहनरूप। (१५६) नैनराज।

(१५७) सम्प्रतिराज (१५८) नगहस्त।

(१५९) स्थूलानन्द। (१६०) लोहधार।

(१६१) धर्मसार। (१६२) वैरिसिंह।

(१६३) विबुधसिंह। (१६४) योगशूर।

(१६५) चन्द्रराज सं० सं० ८७५ में अजमेर राजधानी की।

(१६६) कृष्णराज। (१६७) हरिराज।

(१६८) विल्हणराज—इसके पृथ्वीराज और अनुराज दो पुत्र थे।

(१६९) पृथ्वीराज (डिडूर) इसके वंशज डडरे चौहाण कहलाये।

(१७०) धर्माधिराज।

(१७१) वीसलदेव—सोलंखी राजा बालुकराय को जीता और इसने जालोर सोजत लिया। एक करोड़ रुपया दण्ड ले पट्टन के पास सं० ९३६ में गुजरात में वीसलपुर बसाया।

(१७२) सारंगदेव।

(१७३) आना—इसको विग्रहराज भी कहते हैं अजमेर में आनासागर तालाब बनवाया।

(१७४) जयसिंह।

(१७५) आनन्द मेव—इसके दो पुत्र सोमेश्वर और कृष्ण या कन्द।

(१७६) सोमेश्वर—दिल्ली के राजा अनंगपाल की पुत्री व्याही।

(१७७) पृथ्वीराज सं० १११५ में जन्मा (सर्व वृत्तान्त रासे से मिलता है) ।[1]

---

१. हमको तो यह वंशावली और इसमें लिखा हुआ वृत्तान्त शुद्ध नहीं जान पड़ता क्योंकि प्रथम तो पृथ्वीराज रासे व अन्यान्य वंशावलियों में चाहमान से लेकर पृथ्वीराज तक तीस चालीस नाम दिये हैं और इसमें नम्बर १७७ तक पहुँचा दिया जिनमें से आदि के १२ और अन्त के २० बीस नाम तो रासे से मिलते है और बीच में मनमानी कल्पना की है।

दूसरा—यह लेख कि कलियुग के एक हजार वर्ष बीतने पर बौद्धों को प्राबल्यता देखकर वसिष्ठ ऋषि ने अग्नि कुण्ड से चवकुली क्षत्री उत्पन्न किये। प्रमाण भूत नहीं, क्योंकि कलियुग को प्रवृत्त हुए ५००० वर्ष बीतते हैं जिसमें से १,००० निकाल लें तो इन चवकुली क्षत्रियों का उत्पत्ति काल ४००० वर्ष से ठहरता है [इसके लिये देखो ! भूमिका के आदि में उत्पत्ति का वर्णन] परन्तु चार हजार वर्ष पहले बौद्ध मत भारतवर्ष में प्रबल हुआ नहीं। बुद्ध को हुए—जिससे बौद्ध मत प्रचलित हुआ—केवल २५०० वर्ष के लगभग हुए हैं इसके पूर्व यह धर्म कुछ यों ही रूपान्तर में स्थित हो परन्तु प्रबल तो महाराज अशोक के समय से हुआ जिसको करीब २१५० वर्ष बीतते हैं।

तीसरा—इसमें गोगा चहुवाण को चाहमान से चौंपनवीं पुश्त में होना लिखा है। ग्रन्थ कर्ता के माने हुए समय के अनुसार प्रत्येक राजा का औसत काल करीब २३ साल का ठहरता है तदनुसार गोगा का होना आज से २७५० वर्ष के पूर्व सिद्ध होता है परन्तु कर्नल टाडसाहब उसको सुल्तान महमूद गजनवी के समकालीन राजा बीसलदेव चौहाण के समय में होना लिखते हैं अर्थात् ग्यारहवीं शताब्दी में, फिर ग्रन्थ कर्ता लिखता है कि गोगा ने ईरान के पादशाह अबूफ़र को शिकस्त दी परन्तु ग्रन्थ कर्ता के माने हुए समय में अर्थात् सिकन्दर आजम से भी ५०० वर्ष पूर्व ईरान में आर्यों का राज्य था, मुसलमानों का तो उस वक्त नाम निशान भी न था। ईरान की तवारीख से मालूम होता है कि सन् ६५१—५२ ई० में ईरान के समानियन पादशाह यजदर्द को अरबों ने खलीफा उमर की सर्दारी में पराजित कर मारा और तभी से मुसलमानों का राज्य ईरान में हुआ, इसके पीछे भी अबूफर नाम का कोई पादशाह ईरान में न हुआ। पर जिस वक्त ईरान मे मुसलमान ही न थे फिर उनका वहाँ से हिन्दुस्तान में आना कब सम्भव हो सकता है (अबूफर यह नाम मुसलमानी है)।

टाड राजस्थान से:—

कर्नल टाड साहब लिखते हैं कि "चहुवानों की प्राचीन राजधानी माकावती है वहाँ से अजयपाल ने आकर अजमेर बसाया इसकी पदवी चक्त्रा (चक्रवर्ती) थी फिर पिरथी पहर माकावती से अजमेर गोद आया और उसके एक ही स्त्री से २४ पुत्र उत्पन्न हुए उनमें से एक माणिकराय समय से चहुवानों का इतिहास अन्धकार में से निकलता है परन्तु झूठे किस्सों से फिर भी खाली नहीं है"।

"इसी अर्से में (सन् ६८५ ई०, या सन् ६३ हि०, या सं० ७४२ वि०) मुसलमान पहले पहल राजपूताने में आये और दूलाराय आसुरों के हाथ से मारा गया उसका पुत्र लोट जो सात सालका था किले के कंगूरों पर खेलते हुए, तीर लगने से मरगया और बालक लोट को चौहान देवता या लोट पुत्र के नाम से पूजने लगे, मुसलमानों का यह हमला सिन्ध की तरफ से हुआ कहते हैं और यह भी प्रसिद्ध है कि रोशन नाम के एक फ़क़ीर की उंगली कटवा देने से मुसलमानों ने चढ़ाई की थी। इसी समय खलीफा उमर ने अबुल अयास की सरदारी में राजपूताने पर सेना भेजी थी आलोर की लड़ाई में अबुल अयास मारा गया परन्तु अजमेर मुसलमानों के हाथ आया और दूलाराय युद्ध में स्वर्ग सिधारा माणकराय सं० ७४१ वि० में सांभर को चला गया।

दोहा—

समत सात सो इगताली मालत बालीबेस ।
सम्भर अग्रटूटी सरस माणकराय नरेस ॥

चौथा–ग्रन्थ कर्ता या वंशावली लिखने वाले ने चित्तौड़ का किला उमादत्त के पुत्र चित्रांग मोरी का बनाया हुआ लिखा है, यह तो एक प्रसिद्ध कथा है कि चितौड़ का गढ़ चित्रांग मोरी ने बनाया और प्राचीन सिक्कों और लेखों से भी यह सिद्ध होता है कि बापा रावल के पूर्व चित्तौड़ पर मौर्य वंशी राजा राज्य करते थे परन्तु मोरों का चाहुमान होना आज तक जाना नहीं गया पाटली पुत्र के अन्तिम नन्दवंशी राजा के मुरा नाम स्त्री के पेट से चन्द्र गुप्त उत्पन्न हुआ था इसी से उसकी सन्तान मौर्य कहलाई ऐसा प्रसिद्ध है।
हमने विस्तार भय से यहाँ ये दो चार बातें कही उक्त ग्रन्थ में अन्य ऐतिहासिक अशुद्धियाँ भी मिल सकती हैं अतएव कह सकते हैं कि इसमें लिखे हुए प्राचीन वृत्त प्रामाणिक नहीं।

"भागते हुए माणकराय ने एक बड़ा सर देखा जिसका नाम अपनी इष्ट देवी के नाम पर शाकम्भरी सर रक्खा। देवी की मूर्ति अब तक वहाँ एक छोटे टापू में है माणकराय ने अजमेर फिर ले लिया और इसके बहुत सी सन्तान हुई जिन्होंने पश्चिमी राजस्थान में कई छोटे २ ठिकाने स्थापन किये और सिन्धु तक फैल गये खीची, हाड़ा, मोहिल, नभेणा, भदोरिया, आरेचा, धनेरिया, बागरेचा आदि कई शाखा उनसे निकली हैं। खींची सिन्ध सागर में विहट और सिन्ध के बीच के ६८ कोस के हिस्से में बसे इन की राजधानी खीच पुर पट्टन था हाड़ों ने हरियाने के जिले में असि (हांसी) बसाई और धनेरिया शहाबाद में बसे।

"चौहानों की एक बड़ी शाखा नाड़ोल[1] में आई जिसका मूल पुरुष राव लाखन था जिसने सं० १०३६ वि० (स० ९८२ ई०) में नैहरवाले के राव से यह परगना छीन लिया। गजनी के पादशाह सुबुक्तगीन और उसके पुत्र सुलतान महमूद ने राव लाखन पर चढ़ाई की और नाड़ोल को लूटकर वहाँ के मंदिर तोड़ डाले परन्तु चौहानों ने उस पर पीछा अपना अधिकार कर लिया। यहाँ से कई शाखा निकलीं जिन तमाम का खातमा देहली के पादशाह अलाउद्दीन खिलजी के वक्त में हो गया। मालूम होता है कि नाड़ोल वालों ने सुलतान शहाबुद्दीन गोरी की सेवा स्वीकार करली थी क्योंकि वहाँ के प्राचीन सिक्कों पर एक तरफ राजा का और दूसरी तरफ सुलतान का नाम है।"

"जागों की ख्यात में माणकराय से बीसलदेव तक ११ राजा हुए लिखे हैं इनमें एक हर्षराज सं० ८१२ से सं० ८२७ वि० तक राज्य पर रहा और असुरों के साथ युद्ध में मारा गया। तारीख फिरिश्तः में लिखा है कि लाहोर के राजा ने, जो अजमेर के राजा के वंश में से था, अपने भाई को हिजरी सन् १४३ (स० ७६१) में अफगानों से लड़ने को भेजा पांच महीनों में ७० लड़ाइयां हुई जिनमें मुसलमानों की विजय रही परन्तु कभी २ राजपूत भी जीते और उन्होंने मुसलमानों को कोहिस्तान तक निकाल दिया।

---

१. मारवाड़ के पर्गने गोड़वाड़ में है। आबू पर अचलेश्वर महादेव के मंदिर में सं० १३७७ वि० की एक प्रशस्ति लुणढंदेव की है जिसमें माणिक्यराज के पुत्र सिद्धराज को इस शाखा का मूल पुरुष लिखा है।

"हाड़ों के इतिहास में विल्लन देव की पदवी धमराज लिखी है महमूद की अंतिम चढाई वीसलदेव के समय में हुई थी। महमूद को वीसल से परास्त होकर अजमेर से जाना पड़ा किन्तु वीसलदेव युद्ध में मारा गया। वत्सराज का पुत्र गोगा चहुवान इसी वीसल के समय में हुआ। गोगा बड़ा वीर था हिन्दुस्तान में बहुत सी जगह आज तक उसकी पूजा की जाती है यह जंगम देश[१] का राजा था। अपनी राजधानी मेहरा की रक्षा करने में वह अपने ४५ पुत्र और ६० भाई भतीजों समेत मारा गया।

वंशावली:—

अन्हल या अग्निपाल सं० ६५० वि० पहले हुआ हो, माकावती नगरी बनाई कोकन आसेर गोलकुण्डा पतह किया।

सुवच्छ—

मल्लन—संभव है कि यह मल्लीनी शाखा का मूल पुरुष हो।

अजयपाल—स० २०२ वि० में अजय बसाया।

दूलाराय—सं० ७४१ वि० में मुसलमानों के हाथ से मारा गया और अजमेर छिन गया।

माणकराय—सं०७४१ वि० में सांभर बसाया यहीं से चौहानों की पदवी सम्भरीराव हुई।

हर्षराज—सं० ८२७ वि० नासिरुद्दीन (सुबुक्तगीन ?) को हराया तब से "सुलतानग्रह" पद पाया।

वीरविल्लनदेव—या धर्मराज, अजमेर की लड़ाई में महमूद गजनवी ने मारा गया।

वीसलदेव—इसका समय कई शिला लेखों से सं० १०६६ वि० से सं. ११३० वि० तक ठहरता है।

सारंगदेव—बालक मरा.

१ सतलज नदी से हरियाने तक के प्रदेश को जंगल देश कहते हैं।

आना—अजमेर में आनासागर तालाब बनाया, इसके दो पुत्र जयपाल और हर्षपाल।

जयपाल—इसके ३ पुत्र—अजयदेव, या अनुनदेव, वीजदेव, उदयराज।

अजयदेव—इसके ३ पुत्र—सोमेश्वर, दिल्ली के तँवर राजा अनंगपाल की पुत्री रुका बाई ब्याही, कन्हराय, इसका पुत्र ईसरदास मुसलमान हो गया, जैत गोएलवाल।

सोमेश्वर—इसके दो पुत्र—पृथ्वीराज व चाहिरदेव चाहिरदेव का पुत्र विजयराज।

पृथ्वीराज—सं० १२४६ वि० में शहाबुद्दीन गोरी से मारा गया।

रैणसी—दिल्ली के शाके में मरा।

विजयराज—चाहिरदेव का पुत्र पृथ्वीराज के पीछे राजा हुआ इसका नाम दिल्ली की लाठ पर है।

लाखनसी—विजयराम का पुत्र—इसके २४ पुत्र असल १७ पुत्र खवासनिये हुए जिनसे कई मिश्रित शाखा फैली नीमराणे का वर्तमान ठाकुर लाखनसी से छब्बीसवीं पीढ़ी में है।"



हम्मीर महाकाव्य से:—[१]

चाहमान या चहुआन—मूल पुरुष, पुष्कर में ब्रह्मा के यज्ञ की रक्षा करने के लिये सूर्य लोक में आया।

वासुदेव,	नरदेव,
चन्द्रराज,	जयपाल,
जयराज,	सामन्तसिंह,
गुह्यक,	नन्दन,
वप्रराज	हरिराज

सिंहराज (मुसलमानों के सरदार हातिम को लड़ाई में मारा और ४ हाथी छीन लिये)

भींसराज—(सिंहराज का भतीजा, गोद आया)
विग्रहराज—(गुजरात के मूलराज को मारा और देश जीता).
गंगादेव
वल्लभराज
राम.
चामुण्डराज—[हिजामुद्दीन को मारा]
हरिराज—[बिल्हण का पिता रणथम्भोर में राजधानी की]
दुर्लभराज [शहाबुद्दीन को जीता]
वल्हण—[दो पुत्र-प्रल्हाद और वाग्भट्ट]
दुःशल—[कर्णदेव को मारा]
वीसल—[शहाबुद्दीन को मारा]
पृथ्वीराज
आल्हन
—नल—[अजमेर में तालाब बनाया]
जगदेव
वीसल.
जयपाल.

गंगापाल
सोमेश्वर—(कर्पूर देवी पत्नी)
पृथ्वीराज.

प्रल्हाद.
वीर्यराज.
वाग्भट्ट [वल्हण का पुत्र].
जैतसिंह.
हम्मीर.



राजशेखर कृत चतुर्विंशति प्रबन्ध की एक प्राचीन लिखित प्रति के अन्त में दी हुई चौहाणों की वंशावली:—

वासुदेव [वि० सम्वत् ६०८].
सामन्त
अजयराज—[अजमेर बसाया]
विग्रहराज
चन्द्रराज.
गोविन्द राज. [सुलतान बेगवारी को हराया]
दुर्लभराज.
सिंहराज. [जेठण की लड़ाई में हाजी उद्दीन को हराया].

नरदेव,
विजयराज
वत्सराज.

दुर्योधन विजयराज.

वप्पयराज. [शाकम्भरी में सोने की खान तलाश की].

दुर्लभराज.

गण्डुराज— [मुहम्मद सुलतान को हराया]

वालकदेव विजयराज

चामुण्डराज— [सुलतानों को हराया]

दु:शलदेव— [गुर्जर पति को बांधकर अजमेर लाया और उससे छाछ विकवाई]

वीसलदेव [इस स्त्री लम्पट ने एक महासती ब्राह्मणी से बलात्कार किया और उसके शाप से कुष्ठी होकर मरा].

पृथ्वीराजवड़ा— [वलूगी शाह का हाथ तोड़ा].

आल्हनदेव— [शहाबुद्दीन को हराया]

आनलदेव— जगतदेव.

वीसलदेव. अमर गांगेय.

पिथलदेव. सोमेश्वरदेव.

पृथ्वीराज [वि० सम्वत् १२३६ में गादी वैठा देहान्त सं० १२४८ वि०]

हरिराज राजदेव.

वल्हणदेव—[बावरिया].

वीर नारायणदेव—[शमशुद्दीन के हाथ से लड़ाई में मारा गया].

वाहड़देव—[मालवा जीता].

हम्मीरदेव—[वि० सं० १३४२ में गद्दी वैठा, सं० १३५८ वि० में मारा गया]



जयपुर इलाके के शेखावाटी प्रांत में हर्षनाथ के मंदिर में लगे हुए शिलालेख से चौहानों की वंशावली। यह लेख वि० सं० १०३० का है[१]।

गूवक—[नाग और दूसरे राजाओं की सभा में वीरता के लिये प्रसिद्ध हुआ] इसका पुत्र—

चन्द्रराज इसका पुत्र गूवक दूसरा—इसका पुत्र

चन्दन—[इसने रुद्रेण नाम के तोमर राजा को युद्ध परास्त करके मारा] इसका पुत्र वाक्पतिराज।

सिंहराज—[इसने तोमर नायक को, जो लवण नाम के किसी राजा से मिलकर इस पर चढ़ आया था, परास्तकिया] इसका पुत्र—

विग्रहराज—[इसके एक छोटा भाई दुर्लभ राज था, सिंहराज के चन्द्रराज और गोविन्दराज नाम के दो पुत्र थे और एक भाई जिसका नाम वत्सराज था]।



मेवाड़ इलाके के वीजोल्यां नामी ग्राम के अग्नि कोण में पार्श्व नाथ के एक प्राचीन मन्दिर के पास चट्टान पर खुदे हुए लेख में चहुवाणों की वंशावली इस इस प्रकार लिखी है:

"विप्र श्रीवत्स गोत्रे भूदहि छत्रपुरे पुरा"
"सामन्तो नन्त सामन्त पूर्ण तल्ले नृपस्ततः। १२।"
"तस्माच्छ्री जयराज विग्रह नृपौ श्री चन्द्रगोपेन्द्रकौ।"
"तस्माद् दुर्लभ गूवकौ शशिनृपो गूवाक सच्चन्दनौ॥"
"श्रीमद्वप्पय राज विन्ध्य नृपतिः श्री सिंहराड्विग्रहौ।"

---

१. इस लेख के अन्त में लिखा है कि अनन्त देश में विश्व रूप नाम का एक महात्मा शैव पञ्चार्थ कुलाम्नाय वाला रहता था। उसके चेले के चेले भाव रक्त या अल्लट ने राणपल्लिका से हर्ष में आकर हर्षनाथ का मन्दिर बनवाया और सिंहराज ने पुष्कर तीर्थ में स्नान कर १२ ग्राम इस मंदिर के भेंट किये। देखो! एपिग्राफिआ इन्डिका जिल्द २ पृष्ठ ११६-१२५।

"श्रीसद्दुलभ गुन्दुवाक्पतिनृपा: श्री वीर्यरामोनुजः ॥ १३ ॥"
"श्री चण्डो वनिपेति राणकधर श्रीसिंहटो दूसल"
"स्तद्भ्राताथ ततोपि वीसल नृप: श्री राजदेवी प्रियः"
"पृथ्वीराज नृपो थ तत्तनुभवो रासल्य देवी विभु"
"स्तत्पुत्रो जयदेव इत्यवनिपः सोमल्ल देवीपतिः ॥ १४ ॥"
"हत्वा चच्चिग सिन्धुलाभिधयशो राजादि वीर त्रयं"
"त्रिपंकूर कृतान्त वक्त्र कुहरे श्री मार्ग दुर्गान्वितं"
"श्रीमत्सोलण दण्डनायक वरः संग्राम रंगा गणे"
"जीवन्नेव नियंत्रितः करभके··················॥ १५ ॥
"अर्णो राजोस्य सूनुर्धत हृदय हरिः सत्व वाशिश्च सीमो
"गाम्भीर्योदार्यवर्यः समभवं—परालब्ध मध्यो नदीत्सः ॥ १६ ॥"
"कुवलय विकासकर्ता विग्रहराजो जनिस्ततो चित्रं
"तत्तनयस्तच्चित्रं अत्र जड़ क्षीण सकलंकः ॥ १८ ॥"
"जावालिपुरं ज्वालापुरं कृता पल्लि कापि············ ॥ २१ ॥
"प्रताल्यां चवलभ्यां च येन विश्रामितं यशः ।
"ढिल्लीका ग्रहणश्रान्तमाशिकालाभ लंभितः ॥ २२ ॥"
"तज्जेष्ट भ्रातृ पुत्रो भूत् पृथ्वीराज प्रभूपमः ।"
"तस्माद्अर्जित गो हेम पर्वत दानतः ॥ २३ ॥
"सोमेश्वर नतो यस्माज्जन सोमेश्वरो भवत् ॥ २६ ॥
"संवत् १२२६ फाल्गुन विद ३············"

(भावार्थ—श्रीवत्स विप्र के गौत्र में अहिछत्र पुर[1] में सामन्त नास का राजा हुआ उसके पीछे, २ जयराय, ३ विग्रहराज, ४ चन्द्र, ५ गोपेन्द्र, ६ दुर्लभराज

---

(१) राम नगर या अहिछत्र किसी जमाने में उत्तरी पंचाल के प्रतापी राज्य की राजधानी था जो अब बरेली से २० मील पश्चिम एक बड़ा ग्राम है—आर्कियालाजिकल सर्वे आफ इण्डिया न्यू सिरीज जिल्द २ पृष्ठ २६.

चीनी यात्री हुएन्त्संग जो सन् ६२६ ई० में यहाँ आया आपने सफर नामें में अहिछत्र पुर का हाल यों लिखता है—"ओहि चोटेलो (या अहिछत्रपुर) करीब २००० ली के

७ गूवक, ८ शशिनृप, ९ गूवाक, १० चन्दन, ११ बप्पयराज, १२ सिंहराज, १३ विग्रहराज, १४ दुर्लभराज, १५ गन्दुराज, १६ वाक्पतिराज, १७ उसका छोटा भाई वीर्यराम, १८ फिर श्रीचण्ड, १९ श्रीसिंह, २० दूसल, २१ उसका भाई वीसल राजदेवी का पति राजा हुआ उससे २२ पृथ्वीराज (पहिला) रासलदेवी का पति उससे २३ जयदेव सोमलदेवी का पति हुआ जिसने चच्चिग सिन्धुल और यशोराज नामी तीन वीरों को जीता और सोल्हण को कैद किया। उसका पुत्र २४ अर्णोराज (आनलदेव) उसका पुत्र २५ विग्रहराज (वीसलदेव) हुआ जिसने जावालिपुर को ज्वालापुर बनाया और दिल्ली फतह की, उसके बड़े भाई का पुत्र २६ पृथ्वीराज (पृथ्वीभट्ट), और उसके पीछे २७ सोमेश्वर गद्दी पर बैठा।



पृथ्वीराज विजय नाम की पुस्तक में दी हुई चौहानों की वंशावली:—

(१) चापहरि या चाहमान।

(२) वासुदेव (शाकम्भरी पाया, इसी के समय से चहुवाण शाकम्भरीश्वर कहलाये)।

(३) सामन्तराय।

(३) जयराय।

(५) विग्रहराज।

(६) चन्द्रराज।

(७) गोपेन्द्रराज (नं० ६ का भाई)।

(८) दुर्लभराज (गौड़ों से लड़ा)

(९) चन्द्रराज दूसरा.

(१०) गोवक.

घेरे का मुल्क है। बाजू पर पहाड़ियां आगई हैं, गेहूँ पैदा होता है और वहाँ कई वन और नाले हैं। आबहवा अच्छी, मनुष्य सच्चे और मिलनसार हैं। यहाँ दस संघाराम हैं जिनमें ५,००० साधु रहते हैं। नौ देव मंदिर और ३०० पुजारी ईश्वर के पूजने वाले अर्थात् पाशुपत हैं। नगर के बाहर एक नागसर है इसके पास अशोक का बनाया हुआ।

(११) चन्दन

(१२) वाक्पति. (तुष्कर में मंदिर बनवाया)

(१३) सिंहराज (विक्रम संवत् १०३० इसके दो पुत्र थे)।

(१४) विग्रहराज (नं० १३ का पुत्र इसने अणहिलवाड़े के मूल राज को कन्था दुर्ग में भगाया)।

(१५) दुर्लभ २(नं० १३ का पुत्र)

(१६) गोविन्द

(१७) वाकपतिराज दूसरा.

(१८) वीर्यराम (अवन्ती के राजा भोज से मारा गया, इसके भाई चामुण्डने नरपुर (नखर) में विष्णु का मंदिर बनवाया)।

(१९) दुर्लभ ३ (नं० १८ का पुत्र, इससे घोड़ा पाकर मालवे के राजा उदयादित्य ने गुजरात के राजा कर्ण को जीता)।

(२०) विग्रहराज ३ (नं० १९ का भाई)

(२१) पृथ्वीराज.

(२२) अजयराज या सल्हण (इसने अजमेर बसाया[१] और मालवा के सल्हण को जीता इसकी स्त्री का नाम सोमलेखा था।

(२३) अरुणोराज (मारवाड़ सुधवा का पुत्र)

(२४) नाम नहीं दिया (जगदेव) अपने पिता को मारा

(२५) विग्रहराज. ४

(२६) पृथ्वीभट्ट.

(२७) सोमेश्वर (गुजरात के राजा जयसिंह की पुत्री काञ्चन देवी से अरुणोराज के उत्पन्न हुआ. इसने चेदी के राजा की पुत्री कर्पूरदेवी से विवाह किया)

(२८) पृथ्वीराज.

---

१. इसके वास्ते देखो भूमिका के पृष्ठ १५-१६ का नोट.

(२६) हरिराज (नं० २८ का भाई)[२]

अब इन वंशावलियों के मिलान करने से स्पष्ट होता है कि पृथ्वीराज विजय नामी पुस्तक में दी हुई वंशावली शिलालेखों की वंशावलियों से, एक दो नाम की न्यूनाधिकता के अतिरिक्त क्रम व संख्या में ठीक २ मिलती हैं। जैसा कि पृथ्वीराज विजय में चाहमान से पृथ्वीराज तक २८ नाम दिये हैं और वीजोजिया के शिला लेख में सामन्त देव से (जो चाहमान से तीसरा था) पृथ्वीराज तक २७ नाम हैं। इस शिला लेख में श्री चण्ड और दूसल दो नाम पृथ्वीराज विजय से अधिक हैं। हर्षनाथ के मन्दिर की प्रशस्ति जो चाहमान से नवीं पीढ़ी में हुए गूवक राजा से शुरु होती है। उसमें के भी सर्व नाम प्रथम शिलालेख और पृथ्वीराज विजय के नामों से क्रमवार बराबर मिलते हैं। अतएव सिद्ध है कि पृथ्वीराज विजय व शिला लेखों में दी हुई वंशावली शुद्ध है इसके अतिरिक्त चतुर्विंशति प्रबन्ध में और हंमीर महा काव्य में दी हुई वंशावलियों में भी चाहमान से पृथ्वीराज तक ३० तीस नाम दिये हैं। परन्तु ये नाम क्रमानुसार नहीं तथापि दो चार नामों के अतिरिक्त अन्य नाम शिलालेखों से मिलते हुए हैं। परन्तु शिलालेख व पृथ्वीराज विजय में दी हुई वंशावलियों के समय की अपेक्षा ये दो वंशावलियां बहुत पीछे लिखी गईं। अतएव इनमें इतनी सी अशुद्धि होना सम्भव हो सकता है। वंशभास्कर में आदि से १३ और अन्त के वीस नाम रासे से मिलते हुए और शेष मनमाने हैं। पृथ्वीराज रासे में चाहमान से पृथ्वीराज तक कहीं तो ३६ और कहीं ४४ (या न्यूनाधिक) तक नामों की संख्या है परन्तु उनमें से आदि या अन्त के दो तीन नामों को छोड़ दूसरा एक भी नाम न तो शिला लेखों से, न पृथ्वीराज विजय से और न चतुर्विंशति

---

२. यह पृथ्वीराज विजय नाम का पुस्तक प्राचीन शारदा लिपि में लिखा हुआ प्रोफेसर व्हुलर को सं० १८७५ ई० में कश्मीर के पुस्तकालय में से मिला था मिस्टर जेम्स मोरिसन ने इसको पढ़ा अब यह पुस्तक पूना के डैकन् कालिज के पुस्तकालय में है इसका लिखने वाला पण्डित पृथ्वीराज का समकालीन और उसके दरबार का कवि था। उसने यह पुस्तक रचकर पृथ्वीराज को सुनाया। इस पर सन् १४५०–७५ के बीच में लिखी हुई प्रसिद्ध पण्डित जोनराज की टीका है जिसने कश्मीर के इतिहास राजतरंगिणी का एक अंश लिखा है।

प्रबन्ध व हम्मीर महाकाव्य से मिलता है अतएव प्रत्यक्ष है कि रासे में दिये हुए ये नाम कल्पित हैं।



वीसल का समय और उसका गुजरात के राजा वालुकाराय से युद्ध—

रासे में एक ही वीसलदेव होना लिखा है और उसी से ग्रन्थ कर्ता ने अपनी कथा का आरम्भ किया है कि वह आनलदेव का दादा था, सम्वत ८२१ में अजमेर में गद्दी बैठा और सम्वत ६८६ में उसका देहान्त हुआ अर्थात् उसने १६६ वर्ष राज्य किया। उसने गुजरात के राजा बालुकाराय[1] को युद्ध में जीता और एक तपस्विनी के शाप से वह ढुंढा नामी राक्षस हो गया और अपने पुत्र सारंगदेव को मार डाला आदि।[2] अब इस वृत्तान्त के सत्यासत्य का निर्णय करने के वास्ते हमें आनल देव (अरुणोराज) का और गुजरात के राजा मूलराज का जिसके साथ वीसलदेव का युद्ध हुआ, अन्यान्य आश्रयों से ठीक समय जानना आवश्यक है। जिससे स्पष्ट हो जावे कि रासे में दिया हुआ वीसलदेव का समय और आनलदेव के साथ उसका सम्बन्ध ठीक है या नहीं।

पृथ्वीराज विजय व शिलालेखों में विग्रहराज या वीसलदेव नाम के चार राजा होने लिखे हैं जिनमें से नं० १३ या १४ का, गुजरात के राजा मूलराज से युद्ध होना पाया जाता है और अन्त का विग्रहराज (वीसल) अरुणोराज का पुत्र था जिसने जावालिपुर को जलाया और दिल्ली फतह की।

गुजरात के इतिहास और चहुआनों के अनेक लेखों से यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि वीसलदेव (जिसका वर्णन रासे में है) गुजरात के राजा मूलराज का

---

१. रासे के कर्ताने वालुकाराय नाम दिया है। परन्तु वालुकाराय नाम का कोई राजा गुजरात में हुआ नहीं। हाँ मूलराज दूसरे को गुजरात के इतिहास लिखने वालों ने बालमूलराज लिखा है परन्तु उसका समय सं० १२३४ वि० का है। आश्चर्य नहीं कि चालुकाराय का बालुकाराय बन गया हो।

२. कर्नल टाड साहब अनुमान करते हैं कि शायद बीसलदेव मुसलमान बनालिया गया हो—देखो टाड राजस्थान जिल्द २ पृष्ठ २, पृष्ठ ४५४।

समकालीन था जिसको उसने युद्ध में हराया। यह मूलराज राजी का पुत्र था जिसको राज भी लिखा है और इसके दादा का नाम त्रिभुवनादित्य या भूवड़ था जो कन्नौज की राजधानी कल्याण में राज करता था[१]। मूलराज की माता ललितादेवी (लीलादेवी) अणहिलवाड़े के अन्तिम चावड़ा राजा सामन्तसिंह की वहिन थी। राज या राजी मूलराज का पिता गुप्त रीति से सोमनाथ की यात्रा को आया था। उसकी वीरता से प्रसन्न होकर सामन्तसिंह चावड़ा ने उसको अपनी बहन परणादी और अणहिलवाड़े में रक्खा, ललितादेवी प्रसव वेदना से मर गई और उसका पेट चीरकर बालक निकाला गया जिसका नाम मूलराज रक्खा। सामन्तसिंह के पुत्र न होने से उसने मूलराज को गोद ले लिया। पीछे मूलराज सामन्तसिंह को मारकर गुजरात की गादी पर बैठा। मेरु तुंग कृत प्रबन्ध चिन्तामणि में[२] मूलराज के राज्याभिषेक का समय सं० ६६३ वि० आषाढ़ शुद १५ गुरुवार लिखा है। उस वक्त उसकी अवस्था २१ वर्ष की थी और बीसलदेव के साथ युद्ध का वृत्तान्त नीचे लिखे अनुसार दिया है:—

"इसके (मूलराज के) समय में सपाद लक्षीय [चहुवाणों की पदवी है] राजा गुजरात पर चढ़ आया और उसी अवसर पर तैलंगाने के राजा ने अपने सेनापति बारव को सेना सहित गुजरात पर भेजा। मूलराज यह विचार कर कि यदि मैं एक से लड़ूँगा तो दूसरा पीछे से आकर हमला कर देगा, कन्थ कोट के दुर्ग में जा रहा, उसके प्रधान ने सलाह दी कि नवरात्रि में चहुवान राजा तो अपनी कुलदेवी की पूजा करने के लिये अपनी राजधानी शाकम्भरी में चला जायेगा उस समय बारव के साथ युद्ध करना ठीक है। नवरात्रि में सपादलक्षीय राजा अपनी राजधानी को नहीं गया था. और वहीं पर एक नगर बसाकर अपनी कुलदेवी को स्थापन किया। जब मूलराज को यह मालूम हुआ तो उसने अपने सामन्तों को भेद भरे पत्र लिखे जिनमें गुप्त रीति से तो उनको अमुक दिवस युद्ध

---

(१) मिस्टर ऐलफिन्सटन् और मिस्टर फार्ब्स मूलराज को दक्षिण के चौलुक्य राजाओं का वंशज मानते हैं।

(२) यह पुस्तक जैनाचार्य मेरु तुंग कृत सं० १३०८ ईस्वी के लगभग लिखा गया था।

के लिये शाकम्भरी के राजा के डेरों के समीप हाजिर रहने की सूचना थी और प्रत्यक्ष में लड़ाई के वास्ते आमन्त्रण किया था। संकेत के अनुसार सामन्तगण नियत समय पर अपनी २ सेना सहित आन उपस्थित हुए और मूलराज एक सांडनी पर सवार होकर निर्भयतापूर्वक अकेला चहुवाण के कटक में चला गया राजा के तम्बू के पास सांडनी से उतर कर द्वारपाल को स्मृति दिलाता हुआ डेरे के भीतर घुस गया और शाकम्भरीश्वर के पलंग पर जा बैठा। और उससे कहने लगा कि यदि आपको युद्ध करना है तो कुछ विलम्ब कीजिये जब तक कि मैं तैलंग देश के सेनापति से निवट आऊँ। चहुआना राजा मूलराज की वीरता को देख इतना प्रसन्न हुआ कि उसने उससे मित्रता करनी चाही और भोजनादि सत्कार करने की इच्छा प्रगट की परन्तु मूलराज जैसे आया था उसी प्रकार खड्ग लिये चहुआन के कटक में से निकल कर अपनी सेना में चला आया और तत्काल बारब पर चढ़ धाया। उसका नाश कर दश सहस्र घोड़े और १८ हाथी उससे छीन लिये। चहुआन राजा मूलराज की विजय के समाचार सुन उसके लौटने के पूर्व ही अपनी राजधानी को चला गया।"

मूलराज ने सं० १०५२ वि० तक राज्य किया यह बात उसके कई दान पत्रों से सिद्ध है जैसे कि गायकवाड़ी इलाके के कुड़ी गांव की कचहरी में से निकले हुए दानपत्र में लिखा है:—

"चौलुकिकान्वयो महाराजाधिराज श्री मूलराजः"
"महाराजाधिराज श्री राजी सुतः निज भुजोपार्जित"
"सारस्वत मण्डल·························।

"सं० १०४३ माघ वदि १५ खौ। श्रीमूल राज्य"[1]

मारवाड़ के किसी स्थान में मुनशी देवी प्रसाद को मिले हुए दानपत्र की छाप से:—

"सं० १०५१ मावशुदि १५ अद्येह श्री मदणहिल पाट के"
"राजावली पूर्ववत परम भट्टारक महाराजाधिराज"

---

१. देखो— इण्डियन ऐन्टिक्वेरी जिल्द ६ पृष्ठ १६१—६२.

"परमेश्वर श्री मूलराज देवः स्वभुज्यमान सत्यपुर मण्ड"
"लान्त आदि ....

जबकि मूलराज और वीसलदेव समकालीन राजा थे और मूलराज का राज समय सं० ९९३ वि० से सं० १०५२ वि० तक ठहरता है तो अवश्य मानना पड़ेगा कि वीसल देव भी इसी समय में हुआ। शेखावाटी में हर्षनाथ के मन्दिर के लेख से स्पष्ट होता है कि यह विग्रहराज अथवा वीसलदेव सिंह राज का पुत्र सं०१०३० वि० में मौजूद था। अतएव इसका जन्म समय सं०१०३० से कुछ पहले और राज समय सं० १०३० से पीछे होना चाहिये अतएव सिद्ध है कि रासे में दिया हुआ इसका समय स० ८२१ से सं० ९८९ तक का बिलकुल अशुद्ध और कपोल-कल्पित है[1]।

फिर रासे के कर्ता का यह भी कथन माननीय नहीं ठहर सकता कि आनल-देव या अरुणोराज उपरोक्त वीसलदेव का पौत्र था। क्योंकि पहले दी हुई वंशावलियों के अनुसार अरुणोराज, मूलराज के समकालीन वीसलदेव से नवीं पीढ़ी में हुआ था। अरुणोराज का ठीक समय डाक्टर व्हुलर सा० यों निश्चय करते हैं:—

"पृथ्वीराज विजय के सातवें सर्ग में लिखा है कि अरुणोराज ने गुजराज के राजा जयसिंह (सिद्धराज) की पुत्री काञ्चनदेवी से विवाह किया था। जिसके पेट के सोमेश्वर उत्पन्न हुआ अतएव अरुणोराज, सिद्धराज का समकालीन था और सिद्धराज ने सं०११५०वि०से सं०११९९ वि० तक राज किया। हेमाचार्य के द्वाश्रय कोष से पाया जाता है कि जयसिंह के पुत्र कुमारपाल ने आनलदेव(अरुणोराज)से युद्ध किया था और कुमारपाल के चित्तौड़गढ के लेख के अनुसार यह युद्ध वि०सं० १२०७ से कुछ पहले हो चुका था, क्योंकि उस लेख में लिखा है कि कुमारपाल, शाकम्भरी के सपादलक्षीय राजा को विजय करके चित्तौड़ देखने को आया, तदुपरान्त अरुणोराज के दूसरे पुत्र

---

१. इसके अतिरिक्त सं०८२१ में गुजरात में सोलंखियों का राज ही नहीं हुआ था। उस वक्त वहाँ चावड़े राज्य करते थे फिर उस समय में वीसलदेव का गुजराज के राजा बालुकाराय सोलंखी से युद्ध करना कैसे बन सकता है ?

विग्रहराज (नं० ४) के अजमेर के लेख सं० १२१० वि०[1] से यही सिद्ध होता है कि अरुणोराज सं० १२०७–१२१० वि० के बीच में परलोक वासी हुआ ।[2]

इस उपरोक्त वर्णन के अनुसार विग्रहराज (वीसलदेव) प्रथम के पिता सिंहराज के समय से अरुणोराज के देहान्त समय तक १८० वर्ष के लगभग दस राजा हो चुके जिन प्रत्येक का राज समय औसत हिसाब से १८ वर्ष का आता है। परन्तु रासे का यह कथन कि आनलदेव वीसलदेव का पोता था और उसने १०० वर्ष राज किया आदि; सत्य प्रतीत नहीं होता ।

क्योंकि पृथ्वीराज रासे में दी हुई वंशावली में वीसलदेव नाम का एक ही राजा लिखा है। इसी कारण से कर्नल टाड साहब ने भी रासे के अनुसार दिल्ली की लाठ पर के वीसलदेव के लेख को रासे में दिये हुए वीसल का होना अनुमान करके लेखके संवत में कुछ फेरफार होने का अनुमान किया है। यदि उस समय टाड साहब को ज्ञात होता कि वीसल (विग्रहराज) नाम के चार राजा हुए हैं तो वे इस विषय में कदापि ऐसी कल्पना न करते. वह यह लेख है:—

"ॐ सम्वत् १२२० वैशाख शुदि १५ शाकम्भरी भूपति श्री मदान्नल (२) देवात्मज श्रीमद्वीसलदेवस्य"

"अविन्ध्यादाहि माद्रे विरचित विजयस्तीर्थ"
"यात्रा प्रसंगादुदग्रीवेपु प्रहर्ता नृपतिपु"
"विनमत कंधरेपु प्रसन्नः आर्यावर्त्त"
"यथार्थ पुनरपि कृतवान् म्लेच्छ विच्छेद"
"नाभिर्देव शाकम्भरीन्द्रो जगति विजयते"
"वीसल क्षोणीपालः । १ ।

---

१. यह लेख अजमेर के अढ़ाई दिन के झोंपड़े में खुदा हुआ है । यह एक ललित विग्रहराज नाम का नाटक है ।

२. देखो इण्डियन एन्टीक्वेरी जिल्द २६ जून रा०१८९७ ई० के पृष्ठ १६२ में डाक्टर व्हुलर का लेख अजमेर पर ।

"ब्रूत सम्प्रति चाहमान तिलकः शाकम्भरी"
"भूपतिः श्रीमद्विग्रहराजएप विजयी सन्तान"
"ज्ञानात्मजः अस्माभि कर दव्यधापि हिम"
"वद विन्ध्यान्तरालं भुवः शेप स्वीकरणाय मास्तु"
"भवता सुद्योग शून्यंमनः । २ ।"
"सम्वत् श्री विक्रमादित्ये १२२० वैशाख शुति १५ गुरौ"
"लिखित मिदं राजादेशात् ज्योतिपिक श्री तिलकः"
"राज प्रत्यक्षं गौडान्वय कायस्थ माहव पुत्र श्रीपतिः"
" ना अत्र समये महामंत्री राजपुत्र श्री सल्लक्षणपालः" [1]

(भावार्थ) सं० १२२० वि० वैशाख शुदि १५ शाकम्भरी (सांभर) के राजा आनलदेव के पुत्र वीसलदेव ने, तीर्थ यात्रा करते हुए हिमालय से विन्ध्याचल-पर्यन्त का देश विजय करके आर्य्यावर्त से म्लेच्छों का विच्छेद किया। चाहमान कुल तिलक विग्रहराज (वीसल) अपने सन्तानों को कहता है कि हिमालय से विन्ध्य तक का देश तो मैंने अपने आधीन किया। शेप देश को जय करने का उद्योग तुम मत छोड़ना।

आनलदेव से सोमेश्वर तक राजाओं का राज समयः—

"चौघट्टि सत्त वरपं प्रमान आना नरिंद तपि चाहुवान"
"खग धुम्म देस दिय पुत्र हत्थ जैसिंह देवत पिराज तत्थ"

---

१. इसी लेख में दिये हुए सम्वत् १२२० के लिये टाडसाहब ने लिखा है कि शायद यह ११२० हो और लेख के दूसरे श्लोक में—"व्रते सम्प्रति चाहमान तिलकः शाकम्भरी भूपतिः" को गलती से "प्रतिव चाहमान तिलक शाकम्भरी भूपति" पढ़कर "प्रतिव" शब्द से पृथ्वीराज ग्रहण किया और लिखा कि इस लेख का पहला श्लोक तो बीसलदेव के समय और दूसरा पृथ्वीराज के समय का है। तदनुसार बीसलदेव का सं० १०७८ से सं० ११४२ तक होना मानकर उसको दिल्ली के तँवर राजा जयपाल गुजरात के दुर्लभ और भीमदेव सोलंखी, धार के उदयादित्य और चित्रकूट के राजा तेजसी परमसी का समकालीन माना है. परन्तु शिला लेखों से स्पष्ट है कि यह चौथा विग्रहराज था जिसने दिल्ली फतह की थी।

"सो वरस अठ्ठतप राज कीन आनन्द मेव सिर छत्र दीन"
"सो वरस तप राज कीन सिर छत्र सोम पुत्रह सु दीन" आदि पर्व—

रासे के इस छन्द के अनुसार आनलदेव (आना) से सोमेश्वर तक तीन राजाओं ने ३०४ वर्ष राज किया। यह समय भी कल्पित ही प्रतीत होता है और रासे ही में दिये हुए पृथ्वीराज के जन्म समय से विरुद्ध पड़ता है। रासे के कर्ता ने पृथ्वीराज का जन्म सम्वत् १११५ दिया है और उपरोक्त छन्द के अनुसार बीसलदेव के देहान्त के सम्वत ६८७ में ३०४ जोड़ देने से १२६१ का सम्वत् आता है जो पृथ्वीराज के जन्म संवत् से १६७ वर्ष अधिक है। पृथ्वीराज सम्वत् १२४८–४६ में परलोक पहुंचा और यहाँ सम्वत् १२६१ तक उसके जन्म ही का पता नहीं चलता है।

दूसरे–प्रशस्तियों, पृथ्वीराज विजय आदि के अनुसार सोमेश्वर के गद्दी बैठने का काल सं० १२२४ वि० के लगभग आता है[1] और उसका देहान्त सं० १२३४ के लगभग अर्थात् उसने ६ वर्ष के करीब राज्य किया परन्तु रासे में दिये हुए सम्वतों की गणना के अनुसार सं० १२६१ तक के सोमेश्वर का गद्दी बैठना ही सिद्ध नहीं होता, अस्तु–प्रत्यक्ष है कि रासे के कर्ता ने संवत् काल लिखते हुए अपने पूर्वापर कथन की ओर कुछ ध्यान न दिया।

पृथ्वीराज विजय और शिला लेखों के अनुसार बीसलदेव (विग्रहराज नं० २) से सोमेश्वर के गद्दी बैठने तक का समय १८४ वर्ष के लगभग आता है इस अन्तर में १२ राजाओं ने राज किया और औसत हिसाब से प्रत्येक का राज समय १५ वर्ष के करीब आता है जो अति ही सम्भव और बुद्धि के अनुकूल है।

पृथ्वीराज विजय के अनुसार अरुणोराज (आनल देव) के मारवाड़ की सधवा नाम राजपुत्री से पुत्र उत्पन्न हुए, बड़ा जिसका नाम नहीं लिखा (चतुर्विंशति

---

१. बिजोल्या के सम्वत् १२२६ वि० के शिलालेख में सोमेश्वर का वर्णन है। इसके अतिरिक्त मेवाड़ राज्य के जहांजपुर (यज्ञपुर) नामी कसबे के पास पं० गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा की निम्नलिखित प्रशस्तियां मिली हैं:—

प्रबन्ध का जगदेव और रासे का जयसिंह देव हो) इसने अपने पिता को मारा अतएव हत्यारा ठहराया गया और राज्य न करने पाया। इसका छोटा भाई विग्रहराज (वीसल देव नं० ४) गद्दी पर बैठा जिसका देहान्तकाल सं० १२२०-२१ वि० दिल्ली की लाठ के लेख से सिद्ध है अतएव रासे के कर्त्ता का यह कथन है कि जयसिंह देव (जगदेव ?) ने १०८ वर्ष राज किया, निरा निर्मूल ही पाया जाता है।

विग्रह राज के पीछे पृथ्वीभट्ट गादी बैठा और फिर सोमेश्वर राजा हुआ। सोमेश्वर का देहान्त समय सं० १२३४-३५ का है तो सं० १२२० से सं० १२३५ तक १५ वर्ष में पृथ्वीभट्ट और सोमेश्वर दो राजा हुए, इसमें सोमेश्वर का राज्य समय ९ वर्ष का और पृथ्वीभट्ट का ६ वर्ष के लगभग ठहरता है. और यह ठीक भी मालूम देता है क्योंकि पृथ्वीराज विजय में लिखा है कि गद्दी बैठने के उपरान्त थोड़ा ही राज कर के सोमेश्वर स्वर्गवासी हुआ। यदि रासे में दिये हुए आनन्ददेव-को पृथ्वीभट्ट मानें तो उसका राज्य समय केवल ६ वर्ष का था फिर सो वर्ष तपना क्योंकर सत्य समझा जावे ?

(क) जहाँजपुर से सात मील अग्नि में धोण गांव के मंदिर का लेखः—

"स्वस्ति संवत् १२२८ ज्येष्ठ शुदि १० अस्य सम्वतसरे मास पक्ष दिन पूर्ववत्"

"समस्त राजावली समलकृत परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर"

"परम माहेश्वर श्री सोमेश्वरदेवकुशली कल्याण विजय राज्ये, आदि ......"

(ख) जहाँजपुर से १२ मील आंवदा ग्राम के बाहर कुण्ड के पास पड़े हुए एक स्तम्भ पर खुदा हुआ लेखः—

"स्वस्ति श्री महाराजाधिराज श्री सोमेश्वर देव महाराये डोडरा सिंहरा"

"सुत सिन्दुराउ देवी .... सं० १२३४ भाद्र पद सुदि ४ सुक्रदिने"

(ग) जहाँजपुर से ८ मील लोहारी ग्राम के पास भूतेश्वर के मंदिर के बाहर सतियों की मूर्ति वाले स्तम्भ का लेखः—

"संवत् १२३६ आसाढ़ वदि १२ श्री पृथ्वीराज राज्ये वागड़ी सलखण"

"पुत्र अल मल ......"

पहले लिख चुके हैं कि वीसलदेव से सोमेश्वर तक राजाओं का राज्य समय औसत हिसाब से १५ वर्ष का आता है। तदनुसार अरुणोराज और विग्रहराज के ३० साल में पृथ्वीभट्ट के छः वर्ष मिलाने से आनलदेव (अरुणोराज) से सोमेश्वर तक ४ राजाओं ने ३६ वर्ष राज्य किया, परन्तु यह भी मानलें कि आनलदेव और विग्रहराज ने अन्य राजाओं की अपेक्षा अधिक राज किया हो तथापि रासे में दी हुई कल्पित संख्या २०४ वर्ष का सिद्ध होना असम्भव है।



अनंगपाल तंवर का दिल्ली बसाना, उसकी पुत्री कमलादेवी के साथ सोमेश्वर का विवाह और पृथ्वीराज का दिल्ली अपने नाना के गोद जाना

पृथ्वीराज रासे के कर्त्ता ने दिल्ली के राजा अनंगपाल तंवर को पृथ्वीराज का समकालीन होना मानकर अनंगपाल की पुत्री कमलादेवी को पृथ्वीराज की माता होना लिखा और यह भी लिखा है कि अनंगपाल दिल्ली का राज अपने दोहित्र पृथ्वीराज को देकर आप बदरिकाश्रम में तप करने चला गया।

इससे स्पष्ट है कि पृथ्वीराज के पहले चौहानों का राज दिल्ली में नहीं था किन्तु वहां तंवर राजा राज करते थे। चौहान केवल अजमेर व सांभर ही के राजा थे।

अब हम अन्यान्य आश्रयों से इस बात की खोज करेंगे कि दिल्ली कैसे बसी ? अनंगपाल के दिल्ली बसाने का कौनसा काल और इस विषय में लोक प्रसिद्ध वार्त्ता क्या है ? पृथ्वीराज से पहले ही दिल्ली चौहानों के आधीन होगई थी या पृथ्वीराज ही दिल्ली का प्रथम चौहान राजा हुआ ? पृथ्वीराज का पिता सोमेश्वर दिल्ली के राजा अनंगपाल की पुत्री ब्याहा या नहीं इत्यादि ?

तारीख फरिश्तः में दिल्ली के बसने के विषय में यों लिखा है कि "सन् ३०७ हि० (सं० ६२० ई०) में तंवर खान्दान के वादित्य (या वादपित्ता ?) राजपूतने क़स्बा इन्द्रप्रस्थ बसाया क्योंकि मिट्टी उस जगह की बहुत सुस्त और नरम थी,

मेख वहां बहुत मुश्किल के साथ मजबूत बैठ सकी थी इसलिये वह शहर दिल्ली (दिल्ली) के नाम से मशहूर होगया। वादित्य के पीछे आठ तंवर राजा दिल्ली की गद्दी पर बैठे आखिरी राजा का नाम शालिवान था। तंवरों का राज ग़ारत होने पर वहाँ की हुकूमत चौहानों के हाथ आई वे उम्दः राजपूत हैं उनके ६ राजाओं ने वहां राज किया—मानकदेव, देवराज, रावलदेव, जाहरदेव, सहरदेव, और पिथोरा (पृथ्वीराज)[1] आखिरी राजा पिथोरा सुल्तान शहाबुद्दीन ग़ोरी से लड़ाई में मारा गया और सन् ५८७ (हि० सन् ११६१ ई०) में दिल्ली की सल्तनत मुसलमानों के हाथ आई।

लोक प्रसिद्ध वार्त्ता है कि पाण्डु वंशी दिल्ली के अन्तिम राजा नीलाधिपति ने रघुवंशी राजा शंखध्वज से १७ लड़ाई की परन्तु अन्त में परास्त हुआ और ४४ वर्ष राज करने के उपरान्त मारा गया। इस शंखध्वज को उज्जयन के तंवर राजा विक्रमादित्य ने मार कर दिल्ली पर अपना कब्जा किया। विक्रमादित्य की सन्तान ने ७६२ वर्ष तक उज्जयन में राज्य किया और दिल्ली इतने अर्से तक ऊजड़ पड़ी रही फिर विल्हनदेव (अनंगपाल) तंवर ने उसको बसाया और वीसलदेव चौहान ने तंवरों से दिल्ली छीनी[2]।

मिस्टर विन्सेट् ए स्मिथ साहब लिखते हैं कि "ईस्वी सन् से ५७ वर्ष पूर्व अर्थात् विक्रम सम्वत् के आरम्भ में दिल्ली ऊजड़ होकर सं० ७६२ वि० तक उसी अवस्था में रही फिर अनंगपाल ने उसको आबाद की। अबुल्फजल दिल्ली बसने का समय सं० ४२६ वि० लिखता है। संभव है कि यह गुप्त सम्वत् हो क्योंकि ४२९ + ३१९ = ७४८ ईसवी के होता जो दिल्ली बसने के उपरोक्त समय से मिलता हुआ है। दिल्ली में कुतबुद्दीन ऐबक की बनाई हुई मसजिद के अहाते में जो लोहे का स्तम्भ पड़ा है उस पर संग तराशों (सिलावटों) के चिन्ह में हिन्दी भाषा का यह लेख है:—"सम्वत् दिल्ली ११०९ अनंगपाल वही" "कुतबुद्दीन

---

१. इन नामों की सेहत नहीं हो सकती, क्योंकि फिरिश्तः ने प्रायः स्थानों और व्यक्तियों के नाम बहुत ही अशुद्ध दिये हैं।

२. इस दन्त कथा के अनुसार दिल्ली बसानेवाला अनंगपाल सं० ७६२ वि० में हुआ था।

की मसजिद के पास एक तालाब पर अनंगपाल के बनाये हुए मन्दिर के खम्भे अब तक मौजूद हैं जिनमें से एक पर उसका नाम लिखा हुआ है। कन्हिंघम् साहब का कथन है कि जब राठौर कन्नोज में आये तब ही शायद अनंगपाल ने दिल्ली बसाई हो[1] जब कुतबुद्दीन ने मसजिद बनवाई तो वहाँ के २७ प्राचीन मन्दिर तुड़वा कर उनके पत्थर उसमें लगाये गये थे।"

"अनंगपाल प्रथम के होने का कोई सबूत नहीं मिलता अतएव कह सकते हैं कि जब अनंगपाल दूसरे ने सं० १०५२–५३ ई० में दिल्ली बसाई तब ही से वह स्तम्भ उसकी यादगार में खड़ा किया था[2] परन्तु वह स्तम्भ किसी अन्य स्थान से लाया गया था जैसे कि फ़िरोज़शाह तुग़लक अशोक के स्तम्भ को मेरठ और टोपरा से लाया। वास्तव में वह स्तम्भ सं० ४१५ के लगभग बना हुआ हो और शायद उसका असली स्थान मथुरा हो जो गुप्त राजाओं की राजधानी थी और चन्द्रगुप्त दूसरे ने उस स्तम्भ को विष्णु के मन्दिर की यादगार में बनवाया हो क्योंकि चन्द्र (चन्द्रगुप्त) के नाम का उस पर लेख है।"[3] यदि हम रासे के लेख के अनुसार अनंगपाल को पृथ्वीराज का समकालीन मान कर उसी का दिल्ली बसाना स्वीकार करें तो सिद्ध हो गया कि उससे पहले दिल्ली नहीं बसी थी परन्तु यह ठीक नहीं, क्योंकि वीसलदेव का सं० ११२० में दिल्ली लेना और दिल्ली बसाने वाले अनंगपाल का सं० ११०६ का लेख स्तम्भ पर होना प्रत्यक्ष किये देता है कि दिल्ली पृथ्वीराज के बहुत पूर्व बस चुकी थी और पृथ्वीराज अनंगपाल नाम का कोई तंवरराजा दिल्ली में राज नहीं करता था किन्तु उस वक्त चौहान ही दिल्ली के स्वामी थे।

---

१. राठौड़ों के दान पत्रों से पाया जाता है कि राठौड़ राजा चन्द्रदेव ने सं० ११०० के लगभग कन्नौज पर कब्जा किया था।

२. क्या अजब है कि इस स्तम्भ पर ही रासे के कर्त्ता ने दिल्ली किल्ली की कथा घड़ली हो।

३. देखो! जर्नल आफ रोयल् एशियाटिक् सोसाइटी ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैण्ड जनवरी सं० १८६७ ई० पृष्ठ १.२

अब इसका विचार करें कि रासे में यह कथा कैसे लिखी गई ? तो अनुमान कर सकते हैं कि जैसे रासे के कर्त्ता ने पृथ्वीराज से पूर्व और उत्तर में बने बहुत से वृत्तों को पृथ्वीराज की कीर्ति बढ़ाने के लिये उसी के समय में होना मान कर उसके नाम पर नामाङ्कित कर दिये, उसी प्रकार यह अनंगपाल और दिल्ली की प्रसिद्ध कथा भी जो पृथ्वीराज के जन्म से एक सौ वर्ष से कुछ पहले की थी पृथ्वीराज को दिल्ली प्राप्त करने का यश देने के लिये (चाहे भूल से चाहे जानकर) उसके नाम के साथ लिख दी हो और कौन जाने यही कारण रासे में सम्वत् की अशुद्धि का हो।

अब रहा पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर का अनंगपाल की पुत्री कमलादेवी के साथ विवाह और उससे पृथ्वीराज का उत्पन्न होना और उसका दिल्ली गोद जाना सो जब कि पृथ्वीराज के समय में दिल्ली पर तंवरों का राज होना ही नहीं होता तो फिर इस कथा के निर्मूल और कृत्रिम होने में क्या संदेह रहा और न रासे के अतिरिक्त अन्य शिलालेखों व उस समय के बने हुए संस्कृत व फ़ारसी की पुस्तकों में कहीं यह वर्णन मिलता है कि पृथ्वीराज दिल्ली गोद गया।

पृथ्वीराज विजय में सोमेश्वर के वास्ते लिखा है कि वह अरुणोराज का पुत्र था और उसकी माता गुजरात के चौलुक्य राजा जयसिंह सिद्धराज की पुत्री काञ्चनदेवी थी। अरुणोराज की प्रथम स्त्री सधवा मारवाड़ की राजकुमारी थी जिसके पेट से अरूणोराज के दो पुत्र उत्पन्न हुए। एक का नाम पृथ्वीराज विजय और लेखों में नहीं दिया, दूसरा विग्रहराज (वीसलदेव) था। बड़ा पुत्र जिसका नाम नहीं दिया (जगदेव या जय सिंहदेव था) उसने अपने पिता को मार डाला। कवि लिखता है कि उसने अपने पिता की वही सेवा की जो भृगु के पुत्र (परशुराम) ने अपनी माता की की थी और केवल अपनी दुर्गन्ध पीछे छोड़कर वत्ती के समान बीत गया। विग्रहराज अपने पिता की गद्दी पर बैठा और उसके पीछे उसका पुत्र राजा हुआ। तदुपरान्त पृथ्वीभट्ट गद्दी का स्वामी बना।

सोमेश्वर के प्रधानों ने गद्दी बिठाया। इतने दिन तक वह विदेश में रहा उसके नाना जयसिंह ने उसको शिक्षा दी फिर वह चेदी देश की राजधानी त्रिपुर

(जबलपुर ज़िलअ में) को गया। वहाँ चेदी के राजा की पुत्री कर्पूरदेवी से उसका विवाह हुआ। इसी कर्पूर देवी से उसके पृथ्वीराज व हरीराज दो पुत्र उत्पन्न हुए।[1]

पृथ्वीराज का जन्म संवत्ः—

पृथ्वीराज के जन्म विषय में रासे के कर्त्ता ने यह दोहा लिखा हैः—

दोहा

एकादस सै पंचदह विक्रम साक अनन्द[2]
तिहिं रिपु जयपुर हरनको भ पृथिराज नरिन्द ॥

अर्थात् विक्रम शक ११११५ में पृथ्वीराज पैदा हुआ। सं० १२४८ वि० में पृथ्वीराज का शहाबुद्दीन गोरी से युद्ध में मारा जाना निर्विवाद है, तो रासे के जन्म सम्वत् के अनुसार पृथ्वीराज की आयुष्य १३३ वर्ष की होनी चाहिये परन्तु रासे के कर्ता ने उसकी केवल ४३ वर्ष ही की अवस्था लिखी है अतएव सिद्ध है कि रासे में दिया हुआ पृथ्वीराज का जन्म सम्वत् अशुद्ध है। इसके अतिरिक्त जो स्थिति ग्रहों की रासे के कर्ता ने उस समय लिखी वह भी गणित से शुद्ध नहीं

---

१. देखो प्रोसीडिंग्स आफ दी एशियाटिक् सासोइटी बंगाल, नं० ४-५ अप्रेल व मई सन् १८९३ ई० में प्रोफेसर व्हुलर की चिट्ठी का आशय।

२. इस दोहे में जो अनन्द शब्द है उससे पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या ने अपने छपाये हुए रासे के आदि पर्व में एक नया अनन्द शक ग्रहण किया है अर्थात् अनन्द विक्रम शक और लिखा है कि नन्द से ९ और अ से शून्य मानके ९०+११११५ (रासे में दिया हुआ पृथ्वीराज का जन्म संवत्=१२०५ के साथ पृथ्वीराज की ४३ वर्ष की आयुष्य को मिला देने से सं० १२४८ उसके देहान्त का शुद्ध समय आ मिलता है। परन्तु प्रथम तो अनंद सनन्द सम्वत् जैसा कि उक्त पंड्याजी ने लिखा है आज तक कहीं प्रयोग होना पाया नहीं जाता और न इस बात के मानने में कोई प्रमाण मिलता है कि भाट लोग विक्रम राजा के देहान्त समय से अपना सम्वत् मानते हैं अर्थात् प्रचलित विक्रम सम्वत से एक सौ वर्ष कम, यदि भाटों की पुस्तकों में सदैव से ऐसा ही लिखने का प्रचार चला आता हो तो आज भी उन पुस्तकों में उसी प्रणाली के अनुसार सम्वत् लिखे जाने चाहियें।

ठहरती[1] अब हम अन्याय आश्रयों पर पृथ्वीराज के जन्म सम्वत् के जानने का उद्योग करें तो जितनी प्राचीन पुस्तकें व शिलालेखादि इस विषय के आज तक उपलब्ध हुए उनमें पृथ्वीराज का जन्म सम्वत् कहीं दिया हुआ नहीं मिलता है, पृथ्वीराज विजय में इतना लिखा है कि सोमेश्वर के देहान्त समय पृथ्वीराज बालक था और उसकी माता कर्पूरदेवी ने कदम्ब वाम (या कदम्ब वंश के वाम नामी) प्रधान की सहायता से राज्य कार्य चलाया।

सोमेश्वर का देहान्त समय सं० १२३४–३५ शिलालेखों से पहले सिद्ध कर चुके हैं और सं० १२३६ का पृथ्वीराज का लेख भी मिलता है[2] तो इससे जान सकते हैं कि पृथ्वीराज सं० १२३५ वि० में गद्दी पर बैठा उस समय वह बालक था। यदि उस समय हम उसकी अवस्था १२ वर्ष की भी मान लें तो इस हिसाब से उसका जन्म काल सं० १२२३ वि० के लगभग ठहरता है, सं० १२४८–४६ में शहाबुद्दीन से मारा गया। उस समय उसकी अवस्था २६ वर्ष तक लगभग होगी और उसने करीब १४ वर्ष तक राज किया हो।



सोमेश्वर की पुत्री पृथा कंवरी के साथ चित्तोड़पति महारावल समरसिंह का विवाह और महारावल का पृथ्वीराज के सहायतार्थ युद्ध में मारा जाना

रासे के अनुसार पृथ्वीराज की बहन पृथा कंवरी का विवाह महारावल समरसिंह से हुआ था फिर महारावल पृथ्वीराज की सहायता के लिये सुल्तान शहाबुद्दीन गोरी से युद्ध करने को दिल्ली गये और वहीं काम आये।

यदि हम ख्यातों से रासे के इस वृत्तान्त का मिलान करें तो अवश्य इस कथा की पुष्टि होती है और कर्नल टाड साहब ने भी (उन्हीं के आधार पर) अपने इतिहास राजस्थान में ऐसा ही लिखा है परन्तु जब साम्प्रत काल में प्राप्त

---

१. देखो एशियाटिक सोसाइटी बंगाल के जर्नल जिल्द ५५ पृष्ठ ५ से ५५ तक महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदासजी का लेख पृथिराज रासे पर।

२. देखो पृ० ४६ का नोट (ग)

हुए अन्य अन्य आश्रयों से शुद्ध हाल का पता लगावें तो रासे की यह कथा लिखने वाले की केवल भूल ही प्रगट करती है और कह सकते हैं कि रासे की पुस्तक रचे जाने के पीछे ही इस कथा का मेवाड़ के इतिहास में प्रवेश हुआ हो अर्थात सं० १५१७ वि० के पीछे।

कुम्भलगढ़ पर पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा को मिले हुए शिलालेख में जो महाराणा कुंभ कर्ण[1] ने सं० १५१७ में लिखवाये थे, श्लोक १६० से लेकर श्लोक १७६ तक महारावल समरसिंह का वर्णन किया है जिसमें कहीं इस बात का पता तक नहीं कि समरसिंह ने पृथाकंवरी से विवाह किया या पृथ्वीराज के सहायतार्थ दिल्ली जाकर मुसलमानों के हाथ से मारा गया। उक्त शिलालेख के प्रामाणिक होने के लिये उसके आरंभ में ऐसा लिखा है कि "यह हमने अनेक प्राचीन प्रशस्तियों आदि से संग्रह करवाकर पूरे शोध के साथ लिखवाया है।"

श्री एकलिंग महात्म्य नामी ग्रन्थ व उपरोक्त शिलालेख में महारावल समरसिंह के वर्णन में यह श्लोक लिखा है:—

स रत्नसिंहं तनयं नियुज्य स्वचित्रकूटाचल रक्षणाय।
महेश पूजा हतकलापौव इला पतिः स्वर्ग पतिर्बभूव॥

महारावल समरसिंह और उनके पिता तेजसिंह[2] के समय के कई शिलालेख मिल चुके हैं उनमें से कुछ प्रमाण के वास्ते नीचे दर्ज किये जाते हैं जिनसे समरसिंह का सही समय मालूम होजावेगा—

---

१. यह महाराणा मेवाड़ के महा विद्वान थे और विजयी महाराणाओं में से गिने जाते हैं जिन्होंने सं० १४९० से सं० १५२५ वि० तक राज किया।

यह लेख श्याम पाषाण की ४ बड़ी शिलाओं पर खुदा है जिसमें गुहादित्य (गो हिल) से लेकर महाराणा कुम्भकर्ण तक मेदपाट देश के राजाओं का क्रमवार सविस्तार वर्णन लिखा हुआ है। यह शिलालेख अभी विक्टोरिया हॉल उदयपुर में मौजूद है। अफसोस की दूसरी शिला पूरी नहीं हुई और तीसरी का कुछ भाग टूट जाने से कई श्लोक साफ नहीं पढ़े जाते हैं।

२. टाड साहब ने तेजसिंह को समरसिंह का दादा लिखा है।

चित्तोड़ की तलेटी में गम्भीरी नदी के पुल के एक कोठे में लगा हुआ लेखः—

"सं० १३२४ वर्षे इह श्री चित्रकूट महा दुर्गतलहट्टिकायां........"
"श्री रत्नप्रभसूरी णामादेशात राज भगवन्नारायणमहा"
"राज श्री तेजःसिंह देव कल्याण विजयी राजा वियनमान प्रधान"
"राजपुत्र कांमा पुत्र..............................आदि"

चित्तोड़ से तीन कोस पश्चिम घागसा नामी गांव की एक वावड़ी में लगा हुआ मवरावल तेजसिंह का लेख पण्डित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा को मिलाः—

"गुहिलान्वय संभूतो वप्पको भूद्भुवो विभुः ।"
"........द्यु केपपादाब्ज द्वंद्ववन्दन तत्परः ॥३॥"
"वहूश्वनीतेपु महीश्वरेपु श्रीपद्यसिंहः पुरुपोत्तमोभूत्"
"सर्वांग हृद्यं यमवाप्यलक्ष्मीस्तस्थौ विहायास्थिरतां सहोत्थां ॥४॥"
"श्री जैत्रसिंहस्तनुजोस्य जातः प्रत्यर्थी श्रभूत प्रलपानिलाभ"
"सर्वत्रयेन स्फुरतांनकेपां चित्तानिकम्पं गभितानिसद्यः ॥५॥"

"अप्रतिहतप्रतापस्तेजः सिंहसुतोस्य जयतिचिरं..........संवत् १३२२ वर्षे कार्तिक वदि १२" आदि

(भावार्थ) गुहिल वंश में वापा हुआ। उसके पीछे कई राजाओं के पीछे पद्यसिंह हुआ। उसका पुत्र जैत्रसिंह और उसका पुत्र तेजसिंह अभी राज करता है। सं० १३२२ कार्तिक वदि १२।

प्राचीन संस्कृत पुस्तकों की मिस्टर पीटर्सन की पांचवीं रिपोर्ट के पृष्ठ २३ में विजयसिंहाचार्य के "श्रावक प्रतिक्रमण सूत्र पूर्णिः" के अन्त में लिखा हैः—

"सम्वत् १३१७ वर्षे महा सुदि ४ आदित्य दिने श्री मदाघाट दुर्गे"
"महाराजाधिराज परम भट्टारक उमापति वरलब्ध"
"प्रौढ़ प्रताप समलंकृत श्री तेजसिंह देव कल्याण विजय राज्ये"
"तत्पाद पद्मोपजीविनि महामात्य की समुद्धरे मुद्राव्यापारान्"

"परिपंथयति श्रीमदाघाट वास्तव्य पं० रामचन्द्र शिष्येण"
"कमल चन्द्रे ण पुस्तिका व्यालेखि"

(भावार्थ) सं० १३१७ में यह पुस्तक आघाटपुर (आहड़) में लिखा गया जबकि वहाँ पर महाराजाधिराज तेजसिंह राज करते थे।

इन उपरोक्त लेखों से सं० १३१७ व १३२४ वि० तक समरसिंह का पिता तेजसिंह का विद्यमान होना सिद्ध है। महारावल समरसिंह के समय का लेख सं० १३३५ वैशाख सुद ५ का चित्तोड़ में नोकोठा के पीछे एक पत्थर पर खुदा हुआ था वह अब विक्टोरिया हाल उदयपुर में रखा हुआ है।

एक लेख सं० १२४२ मार्ग शीर्ष सुद १ का आबू पर अचलेश्वर के मठ में लगा है।

एक और लेख सं० १३४४ वैशाख शुदि ३ का चित्तोड़ में मिला है जो विक्टोरिया हाल में है, इत्यादि शिलालेखों से १३४४ वि० तक महारावल समरसिंह विद्यमान होना स्पष्ट है। अतएव कदापि संभव नहीं कि वे पृथ्वीराज के समय में हुए हों परन्तु उनका शुद्ध समय सं० १३२५ से सं० १३४४ के बीच का ठहरता है।

इसके अतिरिक्त यह भी बात ध्यान में लाने योग्य है कि रासे के कर्ता ने भी समरसिंह के पुत्र का नाम रत्नसिंह लिखा है। इसी रत्नसिंह के समय में देहली के पातशाह अलाउद्दीन खिलजी ने सं० १३६० वि० में चित्तोड़ पर चढ़ाई की थी। अब यदि रावल समरसिंह पृथ्वीराज का समकालीन माना जावे तो क्या उसका पुत्र अलाउद्दीन का समकालीन हो सकता है? कदापि नहीं। क्योंकि रासे में दिये हुए पृथ्वीराज के मृत्यु समय से तो (सं० ११५८ वि०) इसका अंतर २०२ वर्ष का और पृथ्वीराज के शुद्ध मृत्यु सम्वत् (१२४८–४९) से ११२ वर्ष का रहता है। अतएव स्पष्ट है कि रासे में दिया हुआ यह वृतान्त ठीक नहीं कि सोमेश्वर की पुत्री पृथाकंवरी के साथ चित्रकूटाधिपति महारावल समरसिंह का विवाह हुआ और महारावल पृथ्वीराज की सहायतार्थ दिल्ली जाकर शहाबुद्दीनगोरी से युद्ध में मारे गये।

हां, महाराणा राजसिंह के समय की सं० १७७२ वि० की लिखी हुई राजनगर की प्रशस्ति में रासे के अनुसार वर्णन मिलता है। परन्तु उसमें स्पष्ट लिखा है कि यह वर्णन भाषा रासा[1] की पुस्तक से उद्धृत किया है[2]।



आबू के प्रमार राजा सलख की पुत्री से पृथ्वीराज का विवाहः-

रासो में लिखा है कि आबूगढ़ के प्रमार राजा सलख की पुत्री इच्छनी को गुजरात के चौलुक्य राजा भीमदेव (भोला भीम) ने वरना चाहा परन्तु इच्छनी की मंगनी पृथ्वीराज के साथ हो चुकी थी। इसलिये राजा सलख और उसके पुत्र

---

१. पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या ने अपने रासे की संरक्षावाली पुस्तक में लिखे हुए 'भाषा रासा' को भीखा रासा नामसे एक जुदा पुस्तक होना लिखा है। भावनगर में छपी हुई 'प्राचीन शोध संग्रह' नामी पुस्तक में छापने वाले ने भूल से 'भाषा' की 'भीषा' कर दिया। शायद इसी भूल ने उक्त पंड्याजी को भूल में डालकर भीखारासा की उत्पत्ति कराई हो।

२. चित्रकूटाधिपति महारावल समरसिंह, कन्नोजाधिपति राजा जयचन्द राठौड़ और जयपुर के राव पज्जून आदि (रासे के अनुसार) पृथ्वीराज के समकालीन राजा थे। ऐसा मान लेने से मेवाड़, मारवाड़, ढूंढाड़ आदि राजपूताने की कई रियासतों की वंशावलियों में संवत्सरों का बहुत अन्तर पड़ गया है क्योंकि अब इन वंशावली लिखने वालों ने रासो में दिये हुए पृथ्वीराज के सम्वत से एक दो शताब्दी पहले या पीछे के काल को पृथ्वीराज के समय से मिलाया तो अवश्य उनको वह दिया हुआ अन्तर निकालने के वास्ते पीछे की कई पीढ़ियों तक प्रत्येक राजा के राज समय में कुछ समय बढ़ाना पड़ा जैसे कि उदयपुर की ख्याति में महारावल समरसिंह का पाट सम्वत् ११०६ दिया है तदनुसार उनके पीछे होने वाले चवदह पन्द्रह महाराणा के राज समय में गड़बड़ पड़ती है। प्रगट है कि महाराणा राहप से महाराणा लक्ष्मणसिंह (लाखासी) तक ५० वर्ष के अन्तर में ६ राजा इस राजगद्दी पर बैठे परन्तु ख्याति के अनुसार उन्हीं राजाओं का राज समय १२५ वर्ष का ठहरता है। इसी प्रकार जयपुर, जोधपुर आदि की वंशावलियों में भी जानो। इससे तो यह पाया जाता है कि इस पृथ्वीराज रासे की पुस्तक ने राजपूताने की कई रियासतों के शुद्ध ऐतिहासिक समय में बहुत कुछ अन्तर डाल दिया है।

जैतराव ने भीमदेव को इच्छिनी व्याह ने से इन्कार किया। इस पर भीमदेव ने क्रोध कर आबू पर चढ़ाई की और उसको विजय कर वहाँ अपना अधिकार कर लिया। राजा सलख इस युद्ध में काम आया। पृथ्वीराज ने सहायता देकर भीमदेव को परास्त किया और जैतराव को पीछा आबू दिलवा इच्छनी से अपना विवाह किया। यह जैतराव पृथ्वीराज के मुख्य सामन्तों में गिना गया।

यदि यह कथा सत्य हो तो गुजरात के इतिहासों में भी इसका वर्णन अवश्य मिलना चाहिये सो नहीं मिलता परन्तु इसके विरुद्ध उन प्राचीन इतिहासों से यह सिद्ध होता है कि आबू का प्रमार राजा गुजरात के राजा भीमदेव के आधीन था और भीमदेव की राजधानी पर जाती हुई मुसलमानी फौज से उसने युद्ध किया था; इसकी तसदीक फारसी तवारीखों से भी होती है।

तारीख फिरीश्त: में नैहरवाल की लड़ाई के विषय में लिखा है—"सन् ५९३ हि० (सन् ११९८ ई०) में कुतुबुद्दीन नैहरवाल के राजा की चश्मनुमाई को चढ़ा रास्ते में धोतली व वजोल [1] नाम के दो किले छीने। उसको खबर मिली कि वालनवारीसी (नाम ग़लत मालूम देता है) राजपूत नैहरवाल के राजा से मिलकर सिरोही के पास आबूगढ़ के नीचे पड़े हैं। सुलतान कुतुबुद्दीन उनसे जंग करने को मुतवज्जा हुआ और खूंखारजंग के बाद राजपूतों ने पीठ दिखलाई। इस लड़ाई में करीब ५० हज़ार हिन्दू क़तल हुए और बीस हज़ार से ज़ियादह लौंडी गुलाम बनाये गये।"

ताजुल् मआसिर नामी दूसरी फारसी तवारीख से इसी जंग का हाल यों दिया है:—

"सं० ५९३ हि० (स० ११९८ ई०) माह सफर में खुसरू (कुतुबुद्दीन) अजमेर से रवाना हुआ पाली और नाडोल के किले उसके हाथ आये, दुश्मन पहले ही से उन्हें खाली करके भाग गये थे। आबू पहाड़ के नीचे रायकरन और

---

१. ब्रिग साहब ने अपने फिरश्त: के तर्जुमे में इन नामों को वाली वनाडोल लिखा है और ताजुलमआसिर में पाली वनाडोल है।

और दारावप (धारावर्ष) बहुतफौज जमा किये रास्ते की एक घाटी में पड़े थे। ऐसे संगीन मोर्चों में उन पर हमला करने की मुसलमानों को जुरअत न हुई क्योंकि पहले खास उसी मुकाम पर सुल्तान मुहम्मद सेम गोरी (शहाबुद्दीन) जख्मी हुआ था। हिन्दुओं ने मुसलमानों की इस पसोपेश को देखकर जाना कि ये डर गये हैं, घाटी छोड़कर मैदान में आगये। सुबह से दुपहर तक सख्त लड़ाई हुई आदि"

इस उपर के बयान से साफ़ है कि आबू का राजा धारावर्ष उस वक्त गुजरात के राजा के अधीन था। कई दानपत्र व शिलालेख आदि से यही पाया जाता है कि सं० १२२० वि० से लेकर सं० १२६५ वि० तक प्रमार राजा धारावर्ष आबू की राजगद्दी पर रहा। उसके पुत्र का नाम सोमसिंह और उसके भाई का नाम प्रह्लाददेव था।

आबू पर अचलेश्वर महादेव के मन्दिर में अष्टोत्तर शतलिंग के नीचे वस्तुपाल के समय का लेख (सं० १२८६ के लगभग का) पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा को मिला:—

"पुरातस्यान्वये राजा धूमराजाव्हयो भवत"
"येन धूमध्वजेनैव दग्धा वंशाः क्षमाभ्रताम्" ॥ १२ ॥
"अपरेपिन संदिग्धा धंधूध्रुवभटादयः"
"जाता कृता इवोत्साह वाहवो बहवस्ततः" ॥ १३ ॥
"तदनन्तरमभ्रँगित कीर्ति सुधासिन्धु शुधित व्योमा"
"श्री रामदेव नामा कामादपि सुन्दर सोभूत्" ॥ १४ ॥
"तस्मान् मही·····विदितान्य कलत्र गात्र स्पर्शो यशो"
"धवल इत्यवलं वतेस्म यो गूर्जर क्षिति पति"
"(प्रतिपक्षमाजौ) वल्लाल मालभत मालव
मेदिनींद्रम्" ॥ १५ ॥
"धारावर्षस्तस्सुतः आपलक्ष्मीम् लिप्त क्षोणिः"
"शोणितैः कुंकुणेन्दोः। सर्वत्रापि स्वैश्चारित्रैः"
"पवित्रे·················राघवेणेव येन" ॥ १६ ॥ आदि

इस लेख में आबू के प्रमार राजाओं की वंशावली दी है अर्थात् पहले धूमराज फिर धन्धु, ध्रुवभट आदि बहुत राजा हुए तत्पश्चात् रामदेव, उसके यशोधवल और उसके पीछे धारावर्ष हुआ।

इस धारावर्ष के समय का एक लेख सं० १२२० वि० का सीरोही राज में रोहेड़ा गांव से ५ मील कायद्रा (कासद्द) नामी ग्राम में काशी विश्वेश्वर महादेव के मन्दिर के सामने एक स्तम्भ पर खुदा पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा को मिला है।

आबू पर ओरिया गांव में कनखलेश्वर के मन्दिर में धारा वर्ष का सं० १२६५ वि० का लेख है:—

"वंशोद्धरण परम भट्टारक महाराजाधिराज श्रीमद्भीम देव"
"प्रवर्द्धमान विजयराजे श्री कर्णे महामुद्रामात्य"
"महं० भाश्र् प्रभृति समस्त पंचकुले परिपंथयति चन्द्रावती"
"नाथ मण्डलीका सुरशत्रु श्री धारावर्ष देवे एकात पत्र"
'वाहं करवेन भुवंपालपति"............आदि।

आबू पर वस्तुपाल तेजपाल के मन्दिर की प्रशस्ति सं० १२८७ वि० की में उसी धारावर्ष के पुत्र सोमसिंह का उस समय विद्यमान होना लिखा है।

सुतरां, यह वही धारावर्ष है जिसका जिकर फारसी तवारीखों में किया है। वह उस समय आबू का राजा था जो पृथ्वीराज के जन्म समय से पूर्व ही आबू की गद्दी पर बैठा और उसके (पृथ्वीराज के) मरने के १८ वर्ष पीछे तक राज करता रहा फिर किस प्रकार माना जावे कि उसी समय में सलख जैतनाम के कोई अन्य राजा आबू पर राज करते थे ?

जब कि सलख जैत नाम के कोई राजा ही उस वक्त आबू पर हुए तो फिर उसकी पुत्री इच्छिनी से पृथ्वीराज का विवाह होना, और भीमदेव के साथ युद्ध करने में सलख का मारा जाना और जैतराव को पीछा आबू का राज पृथ्वीराज की सहायता से मिलना आदि, रासे में दिया हुआ वृत्तान्त कल्पित नहीं तो अन्य क्या समझा जावे ?



पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर का गुजरात के राजा भीमदेव के हाथसे मारा जाना और पृथ्वीराज का भीमदेव को मारना

रासे में लिखा है कि पृथ्वीराज का पिता सोमेश्वर गुजरात चौलुक्य राजा भीमदेव (भोले भीम) के हाथ से युद्ध में मारा गया और अपने पिता का वैर लेने को पृथ्वीराज ने गुजराज पर चढ़ाई कर भीमदेव को मारा और उसके पुत्र कचराराय को अपनी ओर से गुजरात की गद्दी पर बिठाकर उसके राज्य में से कुछ पर्गने अपने राज में मिला लिये।

इस कथा की सत्यता की परीक्षा करने के लिये प्रथम हमको भीमदेव के राज समय का निश्चय करना चाहिये । गुजरात के प्राचीन इतिहासों व फार्ब्स साहब कृत रासमाला से विदित होता है कि भीमदेव दूसरा (जो भोला भीम करके प्रसिद्ध था) अजयपाल का छोटा भाई, कुमारपाल का पुत्र स० ११७८ ई० (सं० १२३५ वि०) में गद्दी बैठा था और स० १२४१ ई० (सं० १२९८ वि०) तक ६३ वर्ष तक राज्य करके परलोक को सिधारा। इस भीमदेव के कई लेख व दानपत्रादि मिलते हैं। यहाँ विस्तार भय से एक ही दानपत्र का खुलासा दिया जाता है जिससे सं० १२९६ वि० तक भीमदेव का विद्यमान होना प्रगट होगा:—

"अभिनव सिद्धराज सप्तमचक्रवर्ती श्री मद्भीमदेवः स्वश्रुज्यमान"
"वर्द्धिपथकान्तर्वर्तिनः। समस्तराजपुरुषान ब्राह्मणोत्तरां"
"स्तन्नियुक्ताधिकारिणो जनपदांश्चबोधयत्यस्तुवः विदितं थथा॥"
"श्री मद्विक्रमादित्योत्पादित संवत्सरशतेपु द्वादशसुषट्नव"
त्युत्तरेपु मार्ग्ग मासीप कृष्ण चतुर्दश्यां रविवारेऽत्रां कतोपि ॥"
विक्रम संवत् १२९६ वर्षे मार्ग्ग वदि १४ रवा वद्ये ह, आदि[1] ।

मेरुतुंग कृत प्रबन्ध चिन्तामणि के अनुसार भीमदेव सं० १२३५ वि० में गद्दी बैठा और सं० १२९८ वि० तक राज करता रहा। इसके पीछे तिहुनपाल (त्रिभुवनपाल) सं० १२९९ वि० में राजा हुआ।

---

१. देखो इन्डियन् एन्टीक्वेरी जिल्द ६ पृष्ठ २०७।

फारसी तवारीख तबकाते नासिरी का कर्त्ता लिखता है कि "सं० ५९३ हि० (स० ११९७ ई०) में कुतुबुद्दीन ने नैहरवाल के राय भीमदेव को शिकस्त दी। राय भीमदेव उस वक्त नाबालिग था। और फिरश्तः वगैरह और तारीखों से भी इसकी तस्दीक होती है। पृथ्वीराज विजय और हम्मीर महाकाव्य से पाया जाता है कि सोमेश्वर अपनी मृत्यु से मरा। हम्मीर महाकाव्य का कर्त्ता लिखता है कि "गंगदेव के पीछे सोमेश्वर राजा हुआ वह कर्पूरदेवी से ब्याहा था जिसके पेट से पृथ्वीराज उत्पन्न हुआ। वह बालक नैरोग्य और पराक्रमी था। जब पृथ्वीराज सर्व शस्त्र शास्त्र विद्या में कुशल होगया तो सोमेश्वर उसको राज सौंप आप योगाभ्यास करने को वन में चला गया और वहीं उसका देहान्त हुआ।"

पृथ्वीराज विजय में लिखा है की गद्दी पर बैठने के थोड़े ही दिन पीछे सोमेश्वर मर गया।"

सोमेश्वर का देहान्त समय सं० १२३४–३५ वि० का पहले निश्चय कर आये हैं अर्थात् भीमदेव के गद्दी पर बैठने और सोमेश्वर के परलोकवास करने का काल मिलता जुलता ही है। प्राचीन संस्कृत पुस्तकों से प्रत्यक्ष है कि सोमेश्वर अपनी मृत्यु से मरा और न गुजरात के प्राचीन इतिहास में कहीं ऐसा वृत्तान्त मिलता है कि भीमदेव ने सोमेश्वर को युद्ध में मारा। फिर रासे का यह कथन कैसे सत्य समझा जा सकता है ?

अब भीमदेव का पृथ्वीराज के हाथ से मारा जाना, यह तो सर्वथा अयुक्त प्रतीत होता है क्योंकि फ़ारसी तवारीखों, भीमदेव के समय के लेख, दानपत्रों और गुजरात के प्राचीन इतिहास आदि से स्पष्ट है कि भीमदेव पृथ्वीराज की मृत्यु के पीछे ५० वर्ष तक राज्य करता रहा। भीमदेव के पीछे गुजरात की गद्दी पर उसका पुत्र त्रिभुवनपाल बैठा था। रासे में दिया हुआ कचरारास नाम केवल कचरे के तुल्य कपोल कल्पित है।

अब यदि यह विचार करें कि रासे में लिखे अनुसार न तो पृथ्वीराज का पिता सोमेश्वर भीमदेव के हाथ से मारा गया और न भीमदेव का पृथ्वीराज के हाथ से मारा जाना सही ठहरा। फिर रासे के कर्त्ता ने इस निर्मूल कथा को

कैसे अपनी पुस्तक में लिख दिया ? तो अनुमान कर सकते हैं कि रासा रचने वाले ने जैसे अन्य अन्य बनाव, जो पृथ्वीराज के समय में नहीं हुए थे, उनको भी पृथ्वीराज की कीर्ति बढ़ाने के लिये उसी के नाम पर नामाङ्कित कर दिये हैं उसी प्रकार यह भी लिख दी हो।

गुजरात के राजा भीमदेव प्रथम ने, जो चामुण्डराज का भतीजा और नागराज का पुत्र था धार के प्रमार राजा भोज को युद्ध में जीता था और आबू भी प्रमारों से छीन लिया था। यह भीमदेव सं० १०७६ वि० (स० १०२२ ई०) में गद्दी बैठा और सं० ११२६ वि० (स० १०७२ ई०) तक पचास वर्ष राज किया। इसी के समय में गज़नी के पादशाह सुल्तान महमूद ने गुजरात पर चढ़ाई करके सोमनाथ के मन्दिर को लूटा और इसी भीमदेव के समय में (स० १०४३ ई० या सं० ११०० वि०) में भारत के क्षत्री राजाओं ने मिल कर विचार किया कि मुसलमानों को देश से निकाल देना चाहिये और अजमेर के चौहाण राजा बीसलदेव की सर्दारी में यवनों को परास्त किया। उस वक्त भीम चहुवाणों के साथ न मिल कर अलग हो रहा था[1] क्या अजब है कि रासो के कर्त्ता ने यह सब चरित्र पृथ्वीराज के समय में होना प्रगट करने के लिये पहले भीमदेव को दूसरा भीमदेव और बीसलदेव को पृथ्वीराज मान या जान लिया हो। तथापि सलख जैत नाम का तो कोई प्रमार राजा उस वक्त भी आबू पर राज नहीं करता था। उस वक्त धुन्धुक प्रमार आबू का राजा था।



---

१. कर्नल् टाड साहब ने ऐसा वृत्तान्त लिखा है। रासे के कर्ता ने जो बीसलदेव के दिग्विजय के वर्णन में सर्व राजाओं का उसकी सेवा में आना परन्तु गुजरात के सोलंखी राजा बालुक राय का न आना लिखा है। उस वृत्तान्त का सम्बन्ध इस भीमदेव के वृत्तान्त से पाया जाता है। परन्तु महमूद के समय में बीसलदेव की सर्दारी में क्षत्री राजा महमूद से लड़े हों; यह फ़ारसी तवारीख़ों में दर्ज नहीं, हां लाहोर के राजा अनंगपाल की सहायता करके बहुत हिन्दू राजा महमूद से लड़े थे।

जयपुर के महाराज पज्जवन का राज समयः—

रासे के कर्त्ता ने जयपुर के राय पज्जून को पृथ्वीराज का सामन्त और समकालीन लिखा है और उसी के अनुसार जयपुर राज की ख्यात में भी दर्ज है कि "राव पज्जून (या पज्जवन) जन्हड़ देव का पुत्र था जो सम्वत ११२७ वि० में राजगद्दी पर बैठा और सम्वत् ११५१ जेठ वदि ३ को पृथ्वीराज चहुवाण के साथ कन्नौज के झगड़े में काम आया।" विशेष वृत्तान्त रासे के रूपक भी उसमें लिखे हैं।

यद्यपि पज्जवन या उसके क्रमानुयायी राजा के समय का कोई दानपत्र शिलालेख आदि अब तक उपलब्ध न हुआ परन्तु "इतिहास राजस्थान" का कर्ता रामनाथ रत्नू लिखता है कि कछवाहों की पृथक पृथक वंशावलियों से राव पज्जून का राज्य संवत् १०८४ से १११४ तक पाया जाता है। उन वंशावलियों में यह नहीं लिखा कि पज्जून पृथ्वीराज के समय में हुए या उसके साथ किसी लड़ाई में गये। इससे निश्चय होता है कि पज्जून पृथ्वीराज के पहले हुआ था[1]।

---

१. ग्वालियर के किले में से मिले हुए प्राचीन लेखों में सं० ११६१ वि० तक के कच्छप-घात (कछवाहे) राजाओं के नाम हैं जिन्होंने ग्वालियर में राज किया अर्थात्—लक्ष्मण, वज्रदामा, मंगल, कीर्ति, भुवन, देवपाल, पद्मपाल, सूर्यपाल, महीपाल, भुवनपाल, और मधुसूदन।

जनरल् कर्हिंगम् साहब लिखते हैं कि तेजकर्ण ने जिसका दूसरा नाम दूलहराय (ढोलाराम) हो स० ११२८ ई० (सं० ११८६ वि० में ग्वालियर छोड़कर ढुंढाड़ में अपना राज स्थापन किया हो। देखो अर्कियालाजिकल सर्वे ऑफ इन्डिया जिल्द २ पृष्ठ ३७४-७५।

ख्यातों के अनुसार राव पज्जून दूलहराम से चौथी पीढ़ी में हुए अर्थात् दूलहराय से पज्जवन के देहांत समय तक का अन्तर (यदि पृथ्वीराज की मृत्यु से ७ वर्ष पूर्व माना जावे तो) ५५ वर्ष का ठहरता है। इस प्रकार प्रज्जवन का पृथ्वीराज के समय में होना सम्भव है परन्तु यह समय रासे में दिया हुआ न समझा जावे अर्थात् ११५१ संवत् क्योंकि उस वक्त तो ढुंढाड़ में कछवाहों का राज होना भी सिद्ध नहीं होता।

पण्डित हरिवल्लभ कृत "जयनगर पञ्चरंग" के अनुसार पज्जवन, जिसको यजनदेव करके लिखा है, सं० १०७६ में गद्दी बैठा और सं० १११३ वि० में काल प्राप्त हुआ था।



देवगिरि के यादव राजा भान की पुत्री से पृथ्वीराज का विवाहः—

रासे में लिखा है कि देवगिरि के यादव राजा भान की पुत्री ससिव्रता से पृथ्वीराज का विवाह हुआ था। इस कथन की सत्यता में भी सन्देह हुए विना नहीं रहता क्योंकि देवगिरि के नगर की नीम ही पृथ्वीराज की मृत्यु से केवल ४ वर्ष पूर्व पड़ी थी और तभी वहां यादवों का राज स्थापन हुआ। दक्षिण के यादव राजा वीर वल्लाल, विष्णुवर्धन के पौत्र ने वहां के अंतिम चालुक्य राजा सोमेश्वर चौथे के सेनापति वह्म या वावन को पराजित कर दक्षिण में अपना राज जमाया परन्तु उत्तरी शाखा के यादवों में से भिल्लम ने दक्षिण में वहुत कुछ विजय प्राप्त की और होसल्प शाखा के यादवों को परास्त कर कृस्ना नदी के उत्तर तक सर्व देश अपने स्वाधीन किया। इसी भिल्लम ने शक सं० ११०६ (वि० संवत् १२४४) में देव-गिरी के नगर की नीम डाली और फिर उस नगर को अपनी राजधानी वनाया। शक सं० १११४ (१२४६ वि०) में वीर वल्लाल ने लोकी गुण्डीयालकुण्डीग्राम के पास भिल्लम को युद्ध में परास्त कर देश फिर अपने हस्तगत किया।[1]

प्रथम तो पृथ्वीराज की मृत्यु तक देवगिरि का नगर पूरा वस ही न चुका था और न वहाँ के राजाओं को परस्पर के झगड़ों से अवकाश मिला होगा, तत्पश्चात् शक सम्वत् १११२ से लेकर शक सं० ११३५ (सं० १२७० वि०) तक भान नाम का कोई राजा देवगिरि में हुआ नहीं।



---

१. देखो "अर्ली हिस्टरी ऑफ डैकन" (दक्षिण का प्राचीन इतिहास) भंडारकर कृत, पृष्ठ ८०—८१.

रणथम्भोर के यादव राजा की पुत्री से पृथ्वीराज का विवाह

ऐसे ही रासे के कर्त्ता ने रणथम्भोर के यादव राजा भान की पुत्री हंसावती से पृथ्वीराज का विवाह होना लिखा है, यद्यपि देवगिरि में तो उस समय यादवों का राज हो भी गया था परन्तु रणथम्भोर में यादव कहां से आये ? इस लेख से तो यह अनुमान हो सकता है कि रासा लिखने वाले को चहुवाणों का पुराना हाल भी थोड़ा ही मालूम था, क्योंकि पृथ्वीराज के समय से पहले ही रणथम्भोर पर चहुवाणों का राज हो गया था जो चवदवीं शताब्दी तक उन्हीं के आधीन रहा। यहां के अंतिम राजा हम्मीरदेव को देहली के पातशाह अलाउद्दीन खिलजी ने मारा था। पृथ्वीराज के समय में रणथम्भोर पर पृथ्वीराज प्रथम का प्रपौत्र गोविन्दराज राज्य करता था जैसा कि हम्मीर महाकाव्य में लिखा है:—

जब हरीराज ने पृथ्वीराज की शोकजनक मृत्यु का हाल सुना तो वह अत्यन्त ही दुखी हुआ। रोते हुए उसने पृथ्वीराज के मृतक शरीर का दाहकर्म करके आप गादी पर बैठा। गुजरात के राजा ने उसकी कृपा संपादन करने के लिये कई एक वेश्यायें उसके पास भेजीं जो महा रूपवती और गायन विद्या में कुशल थीं। हरीराज उन वेश्याओं पर ऐसा मोहित हुआ कि वह अपना सारा समय उन्हीं के साथ राग रंग में बिताने लगा, अन्त में प्रजा बिगड़ी और सेना में उपद्रव मचा।"

शहाबुद्दीन ने सोचा कि हरीराज को ग़ारत करने का यह अच्छा मौक़अ् है और उस पर चढ़ आया। पृथ्वीराज की मृत्यु के पीछे हरीराज ने यह प्रतिज्ञा करली थी कि मैं मुसलमान का मुख तक न देखूंगा। इसलिये वह शत्रु के सन्मुख न होसका और अपने सर्व कुटुम्बियों सहित चिता में जल मरा।"

हरीराज के पुत्र नहीं था और उसके आधीन स्वजनों को शहाबुद्दीन ने बहुत तंग किया तब उन्होंने मिलकर सलाह की कि अब क्या करना चाहिये ? शहाबुद्दीन प्रबल और हम निर्बल हैं। इसलिये यहाँ हमारा टिकाव नहीं हो सकता। फिर वे अजमेर छोड़कर पृथ्वीराज (प्रथम) के प्रपौत्र गोविन्दराज के पास रणथंभोर में चले गये। गोविन्दराज के पिता ने उसे देश निकाला दे दिया था और उसने अपने भुजबल से नया देश जीत रणथंभोर को अपनी राजधानी बनाया था।"

न मालूम रासे के कर्त्ता ने ऐसी बड़ी भूल क्योंकर की ? क्या संभव है कि यदि चन्द (जिसको पृथ्वीराज का समकालीन मानें) इस रासे का कर्त्ता होता तो ऐसी भूल करता ?



सुल्तान ग़ोरी का पृथ्वीराज को पकड़कर ग़ज़नी लेजाना और पृथ्वीराज के तीर से सुल्तान का मारा जाना आदि:—

बड़ी लड़ाई—इस प्रस्ताव में रासे का कर्त्ता लिखता है कि अन्त में जब सुल्तान शहाबुद्दीन ग़ोरी बड़ी भारी फौज लेकर दिल्ली पर चढ़ आया और घोर संग्राम होने के पीछे सुल्तान, पृथ्वीराज को कैद कर ग़जनी लेगया। चन्द, पृथ्वीराज का भेजा हुआ, जम्बू कश्मीर के राजा हाहुलीराय [१] के पास सहायता मांगने को गया था वहीं देवी जालन्धरी के मन्दिर में कैद होगया। जब वह (चन्द) पीछा दिल्ली आया और उसको मालूम हुआ कि सुल्तान, पृथ्वीराज को कैद करके ग़जनी लेगया है तो आप भी जोगी बनकर ग़जनी पहुंचा। वहां किसी ढब से सुल्तान से मिलकर उसको पृथ्वीराज की तीरन्दाजी का तमाशा देखने को उत्सुक किया। पृथ्वीराज ने चन्द के संकेतानुसार बाण मारकर सुल्तान का काम तमाम किया और फिर चन्द व आप दोनों अपने अपने हाथ से अपना गला काट कर मर गये।

इस लड़ाई व पृथ्वीराज की मृत्यु के विषय में अन्यान्य ग्रंथकारों के लेख पाठकों के सन्मुख किये जाते हैं। हम्मीर महाकाव्य में पृथ्वीराज का वर्णन यों लिखा है:—

"जब कि पृथ्वीराज न्यायपूर्वक प्रजापालन करता और अपने शत्रुओं को सदा भय में रखता था, उसी समय शहाबुद्दीन इस पृथ्वी को आधीन करने का परिश्रम करने लगा। पश्चिम प्रान्त के राजा उसके अन्याय से महा दुखी हुए।

---

१. कश्मीर के इतिहास राज तरंगिणी के अनुसार सं ११२७ ई० से लेकर सं० ११६८ ई० तक (अर्थात् पृथ्वीराज की मृत्यु के ६ सात वर्ष पीछे तक) हाहुलीराय नामका कोई राजा कश्मीर में नहीं हुआ।

गोविन्दराज के पुत्र चन्द्रराज को अग्रगण्य कर सब मिलके पृथ्वीराज के पास आये। दस्तूर के मुवाफिक़ नज़र न्यौछावर करके राजा लोग बैठे। उन सब को उदास देखकर पृथ्वीराज ने उनसे इसका कारण पूछा तो चन्द्राज बोला कि महारज! शहाबुद्दीन नाम का एक यवन, राजाओं का नाश करने को उत्पन्न हुआ है। उसने हमारे कई नगर लूट कर जला दिये, और हमें बहुत बुरी दशा में कर दिया है। देश में कोई ऐसी घाटी नहीं रही जहाँ राजपूत लोग उसके अन्याय से बचने को जाकर न छिपे हों। जो राजपूत शस्त्र लेकर उसके सन्मुख होता है वह तत्काल यमपुरी को पहुंचता है। मेरे ख्याल में तो शहाबुद्दीन दूसरा परशुराम है जिसने क्षत्री कुल का नाश करने को फिर जन्म धारण किया है। लोग ऐसे भयातुर होगये हैं कि आराम छोड़कर यह नहीं जानते कि वह किस दिशा से आवेगा—चारों ओर दृष्टि दिये रहते हैं, बड़े बड़े उत्तम क्षत्रीकुलों का उसने नाश कर दिया और अब मुल्तान में अपनी राजधानी स्थापन की है। ये राजालोग उस प्रबल शत्रु और उसके निष्कारण दुखसे बचने के लिये आपके शरण में आये हैं।"

"शहाबुद्दीन के दुराचारों का वृत्तान्त सुनने से पृथ्वीराज को महाक्रोध उत्पन्न हुआ। जोश में आकर मूंछ पर ताव दिया और राजाओं से कहा कि यदि मैं शहाबुद्दीन के हाथ में हथकड़ी और पांव में बेड़ी न डालूं और घुटनों के बल गिरा कर तुम लोगों से क्षमा न मंगवाऊं तो असल चहुआण नहीं।"

"कुछ दिनों पीछे पृथ्वीराज सुसज्जित सेना लेकर मुल्तान की तर्फ चला और कई मंजिलें तै करके शत्रु के देश में जा पहुंचा। शहाबुद्दीन ने जब यह हाल सुना तो वह भी सेना लेकर मुक़ाबले पर आया। परस्पर युद्ध हुआ। पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन को क़ैद कर उससे अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करवाई अर्थात् उस घमण्डी म्लेच्छ को उन राजाओं के सन्मुख जिनको उसने कष्ट दिया था—घुटने टेक कर सिर झुकाये हुए उनसे क्षमा मांगने को मजबूर किया। जब अपनी प्रतिज्ञा पूरी हो गई तो पृथ्वीराज ने राजा लोगों को रीझ देकर अपने घर भेजा और शहाबुद्दीन को भी मुक्त कर सत्कार सहित मुल्तान को रवाना किया।"

"यद्यपि शहाबुद्दीन का सत्कार किया गया था तथापि अपनी पराजय से उसको बड़ा शोक हुआ और इसका बदला लेने के वास्ते वह सात बार पृथ्वीराज पर चढ़ आया परन्तु बराबर हारता रहा। जब उसने देखा कि मैं पृथ्वीराज को न तो छल बल और न शस्त्रबल से जीत सकता हूँ तो अपनी हार होने का हाल घटेके के राजा को लिख कर उसकी सहायता चाही। राजा ने कई सहस्र सवार पैदलों की सेना भेजी व शहाबुद्दीन फिर दिल्ली पर चढ़ आया। दिल्ली निवासी भयभीत होकर चारों ओर भागने लगे। इस पर पृथ्वीराज को बड़ा आश्चर्य हुआ और बोला कि यह शहाबुद्दीन कुबुद्धि लड़के के समान चाल चलता है। मैंने कई बार परास्त करके किसी प्रकार का दुःख दिये बिना छोड़ दिया तथापि वह नहीं मानता। पूर्व में प्राप्त की हुई अपनी विजय से फूला हुआ पृथ्वीराज थोड़ी सी सेना इकट्ठी कर शत्रु के सन्मुख आया।"

यद्यपि शहाबुद्दीन के पास बहुत फौज थी तथापि राजा के निकट पहुँचने की खबर सुनकर वह डरा क्योंकि पहले कई बार उससे हार खा चुका था। उसने अपने कई एक विश्वासी नौकरों को रात के वक्त चुपके से राजा के डेरों में भेजा और उनके द्वारा राजा के घुड़साल के दारोगा और वादित्र बजाने वालों को बहुत सा लोभ देकर मिला लिया। प्रभात होते-होते म्लेच्छ सेना राजा की सेना के सीस पर आन उपस्थित हुई। राजा की सेना में घबराहट पड़ गई। जब पृथ्वीराज युद्ध के वास्ते तैयार हुआ तो घुड़साल के नमक हराम दरोग़ा ने नाट्यारम्भ नामी घोड़े को राजा की सवारी के लिये हाजिर किया और वादित्री लोग, जो अवसर देख रहे थे, राजा के सवार होते ही वही राग बजाने लगे जो उस घोड़े को प्रिय थे। उन बाजों के सुनते ही घोड़ा नृत्य करने लग गया और इस तमाशे में कुछ काल तक राजा का चित्त लुभा जाने से वह उपस्थित महान कार्य को भूल गया।"

"मुसलमानों ने इस अवसर का लाभ लेकर जोर शोर के साथ धावा कर दिया। राजपूत कुछ भी वीरता न दिखला सके। यह देख पृथ्वीराज घोड़े पर से उतर हाथ में नंगी तलवार लिये पैदल शत्रु सेना पर टूटा और कई वीरों को खेत रखा, इतने में एक यवन ने पीछे से कमन्द डाल कर पृथ्वीराज को पृथ्वी पर गिरा

दिया और दूसरे लोगों ने बाँध कर कैद कर लिया । उसी समय से राजा ने खाना पीना त्याग दिया ।"

शहाबुद्दीन से युद्ध करने को जाने से पूर्व पृथ्वीराज ने उदयराज को आज्ञा दी थी कि तुम भी पीछे से आकर शत्रु पर धावा करना । उदयराज युद्ध में उस समय पहुंचा जब कि पृथ्वीराज कैद होचुका था । शहाबुद्दीन डरा कि न जाने उदयराज से लड़ाई करने का क्या फल होवे इसलिये पृथ्वीराज को लेकर दिल्ली के भीतर घुस गया । शोक युक्त हुआ उदयराज कहने लगा कि यदि पृथ्वीराज के बदले मैं कैद होजाता तो अच्छा होता । राजा को इस दशा में छोड़कर वह लौट नहीं गया क्योंकि उसने विचारा कि ऐसा करने से मेरे निष्कलंक यश में दाग लग जावेगा और मेरी गौड़ देश की प्रजा मुझको बुरा कहेगी । उसने योगिनीपुर (दिल्ली) को जिस पर शहाबुद्दीन ने कब्जा कर लिया था घेर कर एक महीने तक बराबर लड़ता रहा ।

"जब घेरा लग रहा था तो शहाबुद्दीन के एक सरदार ने बादशाह से अर्ज की जिस पृथ्वीराज ने आपको कई बार कैद कर करके आदर पूर्वक छोड़ दिया है मुनासिब है कि आप भी उसको एक बार छोड़ देवें । बादशाह ने मुँह चढ़ाकर उत्तर दिया कि यदि तुम्हारे जैसे मंत्री हों तो अवश्य राज को भ्रष्ट करदे, और पृथ्वीराज को किले के भीतर रखने की आज्ञा दी । उस वक्त पादशाह के सारे सामन्तों ने शर्म के मारे सिर नीचा कर लिया । थोड़े ही दिन पीछे राजा स्वर्ग को सिधारा ।"

"जब उदयराज ने अपने मित्र की मृत्यु के समाचार सुने तो उसने विचारा कि अब अपने भी मित्र के समीप ही रहना अच्छा है और खड्ग खोलकर सेना सहित शत्रु पर टूट पड़ा व स्वर्ग लोक में पहुँचा ।"

फ़ारसी तवारीख़ों से इन्तख़ाब:—तारीख़ फ़िरिश्तः[1]

---

1. यह किताब स० १,०१५ हि० (स० १,६०७ ई०, सं० १६६४ वि०) में दक्खन में बीजापुर के सुलतान नासिरुद्दीन इब्राहिम आदिलशाह के वक्त में बनी थी ।

"सन् ५८२ हिज्री (स० १८८६ ई० या सं० १२४३ विक्रमी) में सुल्तान शहाबुद्दीन एक जर्रार लश्कर लेकर हिन्दुस्थान में आया। खुसरो मलिक को जीतकर लाहोर को सुल्तान के हाकिम अली क़िरमजि के सुपुर्द कर गया। स० ५८७ हि० स० ११६१ ई० सं० १२४८ वि०) में भिटण्डे का क़िलअ् जो अजमेर के राजा के आधीन था छीन लिया और ज़ियाउद्दीन को १२०० सवारों के साथ क़िलअ् की हिफाज़त के लिये छोड़ आप गज़नी को लौट गया।"

"फिर खबर लगी कि अजमेर का राय पिथोरा (पृथ्वीराज) अपने भाई दिल्ली के राजा खांडराय से इत्तिफाक़ करके कई राजाओं को साथ लिये दो लाख सवार और तीन हज़ार हाथी की फौज से भिटण्डा लेने को आता है। सुल्तान भी फौज लेकर पहुँचा। तरावन[१] गाँव के पास जो सरस्वती नदी के किनारे थाने-सर से सात कोस और दिल्ली से ४० कोस है, राजा को फौज से मुक़ाबला हुआ। सुल्तान के अमीर सर्दार भाग निकले और पासवालों में से एक आदमी ने सुल्तान से अर्ज़ की कि उमरा भागे जाते हैं और अफग़ानी व खलज के सर्दार जो मर्दानगी की शेखी मारा करते थे जंग से पीछे हट रहे हैं। इसलिये मुनासिब है कि आप लाहोर को लौट जावें. सुल्तान को यह बात पसन्द न आई। तलवार खींचकर अकेला दुश्मन के लश्कर में चला, नाग हानी दिल्ली के हाकिम खांडेराय[२] की नज़र सुल्तान पर पड़ी और उसने अपना हाथी सुल्तान पर पेला, सुल्तान ने नेज़ा सम्भाल कर उसके मुंह पर मारा जिससे उसके कई दांत गिर गये। खांडराय ने बड़ी बहादुरी के साथ हाथी पर से सुल्तान के बाजू में ऐसा ज़ख्म पहुंचाया कि उससे नज़दीक था कि सुल्तान घोड़े पर से गिर पड़े। इतने में एक खिलजी प्यादा सुल्तान का यह हाल देख आप उसके पीछे घोड़े पर चढ़ बैठा और सुल्तान को गोद में पकड़ कर मैदान जंग से भगा ले गया। सुल्तान को भागा देख उसका

१. तबक़ातेनासिरी का कर्त्ता इसको तराइन लिखता है। पीछे इसको तलावड़ी कहने लगे। जनरल कन्हिंगम साहब ने लिखा है कि मैदान जंग 'तराइन' तरावरी से ४ मील दक्षिण, पश्चिम में और १० मील कर्नाल के उत्तर गद्दा नदी के किनारे पर है।

२. कर्नेल टाड साहब इसको पृथ्वीराज का सामन्त चामुण्डराय होना लिखते हैं।

लश्कर भी भाग निकला। जब सुल्तान ग़ज़नी पहुंचा तो उसने मसलहत समझ कर अफ़ग़ानी सर्दारों को कुछ न कहा मगर खलज खुरासान और गोर के अमीरों के गले में तोबरे लटका कर सारे शहर में घुमाये और उनका दर्बार बन्द कर दिया।"

"राय पिथोरा की फौज ने भिटण्डा ले लिया। गज़नी में सुल्तान का आराम हराम होगया। राय से बदला लेने की नीयत से उसने फिर एक लाख सात हज़ार तुर्क ताजक व अफग़ानों का लश्कर इकट्ठा किया और जब ज़ख्म से फुर्सत पाई तो हिन्दुस्थान की तर्फ कूच किया। पेशावर में ग़ोर के एक बुज़ुर्ग ने गुस्ताखी के साथ अर्ज की कि मालूम नहीं होता कि सुल्तान कहां जाते और क्या इरादा रखते हैं? सुल्तान बोला कि जब से मैंने हिन्दू राजा से शिकस्त खाई है कभी आराम से अपने हरामखाना में न लेटा और न उम्दा लिबास पहना है। ग़ोर खलज व खुरासान के अमीरों ने जंग में मुझको धोखा दिया इसलिये उनकी सूरत तक देखना मैं पसन्द नहीं करता। उस बुज़ुर्ग ने अर्ज़ की कि अब मैं उन अमीरों की तर्फ से हुज़ूर में उनके कुसूर की मुआफी की दर्खास्त करता हूँ और उम्मीद रखता हूँ कि पादशाह उनका सलाम ले लेवे। सुल्तान ने इसको मन्ज़ूर किया और फिर वह लाहोर में आया। रूकबुद्दीन हमज़ा को अजमेर भेज कर राय पिथोरा से कहलाया कि इताअ़त कबूल करो मगर राय ने जवाब सख्त दिया। राय ने हिन्द के तमाम राजाओं से क्षमा मांगी और तीन लाख पैदल व सवार की भीड़ भाड़ लेकर सुल्तान के मुकाबले पर आया।"

"स० ५८८ हि० (स० ११६२ ई०, सं० १२४६ वि०) में तराइन गांव के पास दोनों लश्कर पड़े। राजपूतों की फौज में १५० राजा थे जिन्होंने अपने दस्तूर के मुवाफिक़ क़सम खाई कि जब तक दुश्मन को बिल्कुल तबाह न कर देंगे हर्गिज़ लड़ाई से न टलेंगे और क्योंकि पहली लड़ाई जीत चुके थे इसलिये बड़े ग़रूर के साथ उन्होंने एक खत सुल्तान के पास भेजा जिसमें यह लिखा था—तुमको मालूम होगा कि हमारा लश्कर बेशुमार है और रोज़ बरोज़ बढ़ता जाता है। अगर तुमको अपने आप पर रहम नहीं आता तो साथ में जो नामर्दों की जमाअ़त है उसी पर रहम करके अपनी फौजकशी से शर्मिन्दा होकर पीछे लौट जाओ, हमें परमेश्वर की

सौगन्ध है कि हम तुम्हारा पीछा न करेंगे और किसी तरह की तकलीफ नहीं पहुंचावेंगे। परन्तु जो लड़ाई करोगे तो तीन हज़ार हाथी, तीरन्दाज व तोपची की बेशुमार फौज बात की बात में तुमको पकड़ कर मात कर देगी।"

"सुल्तान ने जवाब दिया कि आप लोगों ने जो पैग़ाम भेजा, बड़ी मेहरबानी की। मगर मुझको फौजकशी में बिल्कुल इख्तियार नहीं है। अपने भाई के हुक्म से मैं इधर आया हूँ। आप लोग इतनी फुर्सत दें कि मैं आपको फौज का तमाम अहवाल अपने भाई को लिखकर सुलह के लिये उसकी इजाजत हासिल करलूं। फिर सर्हिन्द, पन्जाब और मुल्तान का मुल्क तो हमारे रहे। बाकी आप लोगों को मुबारिक हो। राजपूत ऐसा जवाब पाने से बिल्कुल ग़फलत में रहे और सुल्तान ने उसी रात जंग की तैय्यारी की। दिन निकलते ही जबकि राजपूत लोग अपने नहाने-धोने के काम में लगे हुए थे सुल्तान की फौज उनके सिर पर आगई। हिन्दू भी जमा होकर मुक़ाबले पर आये। सुल्तान को हिन्दियों की जल्दी और बेबाकी मालूम थी। उसने अपने लश्कर के च्यार टुकड़े किये और हुक्म दिया कि एक टुकड़ी जंग करे और जब काफिर उन पर हमला करें तो वे पीठ दिखा कर भागने लग जावें। जब काफिरों को गुमान हो कि दुश्मन भागता है और वे पीछा करें तब मुड़ कर फिर जंग करने लग जावें। दूसरी टुकड़ी उन पर पीछे से हमला करें और सुल्तान आप बारह हजार चुने हुए सवारों के साथ अलहदा रहा। सुल्तान की फोज ने वैसा ही किया। राजपूतों ने देखा कि दुश्मन भाग निकला उन्होंने पीछा किया इतने में दूसरी टुकड़ी ने उन पर पीछे से हमला कर दिया तब तो राजपूतों के पांव छूट गये। इसी अर्से में सुल्तान अपने सवारों सहित नंगी तलवारें लिये आन पड़ा और आनन् फानन् हिन्दुओं की फौज में तहलका मचा दिया। देहली का हाकिम खांडेराय और कितने ही राजा मारे गये और राय पिथोरा सरसती की हद में गिरफ़्तार हुआ, सुल्तान के हुक्म से वह क़त्ल किया गया और बहुत सी लूट मुसलमानों के हाथ आई।"

"सर्सती, हांसी और समाने के क़िलों को ग़ारत करता हुआ सुल्तान शहाबुद्दीन अजमेर पहुँचा और उसको भी अपने कब्जे में लाया। बेशुमार कैदी पकड़े गये जिनको क़त्ल करने में तक़सीर न हुई। खिराज देने का वाअ्दा करने

पर अजमेर कोला पिथोरा के लड़के के सुपुर्द किया गया और सुल्तान पीछा दिल्ली की तरफ़ चला। वहां के राजा बहुत सा नजर नजराना लेकर हाजिर हुआ। सुल्तान ने दिल्ली से कूच किया मगर अपने गुलाम कुतबुद्दीन ऐबक़ को कहराम में छोड़ गया। मलिक कुतबुद्दीन ऐबक़ ने मेरठ व दिल्ली को खांडेराय व पिथोरा के भाईयों से छीन लिया और स० ५८६ हि० (स० ११६३ ई०, सं० १२५० वि०) में दिल्ली को अपनी राजधानी बनाया।"

"इन्हीं दिनों में पिथोरा के रिश्तेदारों में से हेमराज[1] नामी एक शख्स ने अजमेर पिथोरा के लड़के से छीन ली और पादशाही फौज के मुकाबले पर आया। स० ५९१ हि० (स० ११९५ ई०, सं० १२५२ वि०) में कुतबुद्दीन से उसकी लड़ाई हुई जिसमें वह (हेमराज) क़त्ल हुआ और अजमेर में मुसलमान हाकिम मुक़र्रर किया गया।"

जामेउल् हिकायत[2] में इस लड़ाई का हाल यों लिखा है:—

मुहम्मदसाम[3] की फतह कोला पिथोरा[4] पर कहते हैं कि जब ग़ाज़ी मुइज्जुदुनिया व दीन मुहम्मदसाम (खुदा उसकी क़ब्र रौशन करे।) दूसरी मर्तबा कोला से इंजर और तबूरे हिन्द के दर्मियान जंग करने को था तब उसको खबर मिली कि दुश्मन ने जंग के वास्ते सजाये हुए हाथियों को जुदागाना सफ में आरास्तः किये हैं। घोड़े उन हाथियों से चमकते थे और यह तबाही का खास एक सबब था। जब दोनों फौजें एक दूसरे के करीब पहुंचीं और दोनों तरफ से लश्कर में सुलगती हुई आग नजर आने लगी तो सुल्तान ने हुक्म दिया कि हरेक आदमी अपने खेमे के पास बहुत सी लकड़ियां इकट्ठी कर लेवे। रात के वक्त सुल्तान तो फौज लेकर

---

१. शायद पृथ्वीराज के भाई हरीराज के लिये गलती से लिखा गया हो।

२. यह किताब मौलाना नुसरुद्दीन मुहम्मद उर्फी की बनाई हुई है जो सुलतान शमशुद्दीन अल्तमश के अहद हुकूमत में (स० ६०७ हि०, स० १२११ ई० में) मौजूद था।

३. शहाबुद्दीन गौरी नाम है।

४. फ़ारसी तवारीख़ों में पृथ्वीराज का यही नाम लिखा है।

दूसरी तरफ रवाना हुआ और थोड़े से आदमियों को लश्कर में छोड़कर हुक्म देगया कि वे तमाम रात आग जलती रक्खें ताकि दुश्मन ख्याल करे कि वहां फौज का पड़ाव है। काफिरों ने आग जलती देखकर यकीन कर लिया कि दुश्मन वहां पड़ाव डाले हुए हैं। सुल्तान रात भर सफ़र करके सुबह होते होते कोला के लश्कर के पिछवाड़े पहुंच गया और एक दम से हमला करके कई आदमियों को कत्ल किया। पीछे की तरफ से फ़ौज के खास टुकड़े पर दबाव पहुंचने से कोला ने चाहा कि पीछे हट जावे मगर फिर उसकी फौज की तर्तीब बिगड़ गई और हाथी बेकाबू होगये। आम तौर पर जंग शुरु हुआ। कोला को शिकस्त फाश हुई और क़ैद किया गया।"

ताजुल मआसिर[1] में यों लिखा है:—

"सन् ५८७ हि० (स० ११९१ ई०, सं० १२४८ वि०) में खुदावन्द आलम सुल्तानों का सुल्तान मुइज्जुदुनिया वदीन (मुहम्मद गोरी) शुभमुहूर्त और शुभनक्षत्र में ग़ज़नी से रवाना हुआ। फतह फीरोज़ी के निशान उड़ाता खुदा पर भरोसा किये वह हिन्दुस्तान को चला। जब उसका लश्कर लाहौर में पहुंचा तो सदर किवामुल्मुल्करुहुद्दीन हमज़ा वहां के सर्दार ने उसकी क़दमबोसी हासिल की। इसी सर्दार को अजमेर एलची भेजा कि उस मुल्क का (अजमेर का) राय पिथोरा तलवार की मदाखलत के बग़ैर हो राह रास्त पर आजावे और मुक़ाबले से बाज आकर इताअत क़बूल करे व दीन इसलाम का तर्फ मुतवज्जह होता जब एलची अजमेर के दर्बार में पहुँचा। उसने अपने आने का मतलब फसाहत के साथ बयान किया मगर अपनी बेशुमार फौज और शान शौकत ने राय के दिल में दुनिया भर को फतह कर लेने का बातिल खयाल पैदा कर रखा था। उसने इस उसूल पर ध्यान न दिया कि जब वक्त आजाता है तब फौज कुछ काम नहीं देती है। जब यह हाल सुल्तान पर जाहिर किया गया तो मारे ग़जब के उसका चेहरा सुर्ख हो गया और

---

१. हसन निज़ामी की बनाई हुई है इसमें खुसूसन कुतबुद्दीन एबक की तवारीख़ है। मुवर्रिख़ कुतबुद्दीन के समय में दिल्ली में मौजूद था और वहां उसने यह किताब सुल्तान शहाबुद्दीन गोरी के मरने से २३ वर्ष पीछे (स० ६१४ हि० स० १२१७ ई० में) लिखी थी।

राय के मुक़ाबले पर लश्कर कशी का हुक्म दिया। जब कोलाराय अजमेर ने, जिसकी बहादुरी का शोहरा दूर दूर तक फैला हुआ था—लश्कर सुल्तानी के नज़दीक पहुँचने की खबर सुनी तो वह जिरह सजकर बेशुमार आरास्तः फौज के साथ मैदान में आया।''

जागरु (काले) हिन्दू सुपेद मोहरा (शंख) बजाते हाथियों पर चढ़े जंग करने लगे। आखिर में इसलाम के लश्कर को फतह हासिल हुई। एक लाख हिन्दू कत्ल हुए और अजमेर का राय कैद हुआ मगर उसकी जिन्दगी बख्शी गई। अजमेर में सुल्तान ने बहुत से मन्दिर तोड़े और उनकी जगह मसजिदें व मदरसे इसलाम बनवाये। अजमेर का राय जो किसी तरह से रिहा होगया था—यानी सज़ा से बच गया था—उसको मुसलमानों से दिली नफ़रत थी और मालूम हुआ कि वह उनके खिलाफ कुछ बन्दिश करता है इसलिये उसकी मौत का हुक्म जारी हुआ। तलवार से उसका सिर काटा गया और अजमेर का राज उसके लड़के के सुपुर्द हुआ। अजमेर फतह करने के बाद सुल्तान दिल्ली को चला, वहां के राजा से लड़ाई हुई मगर आखिर उसने खिराज देना मंजूर किया। सुल्तान ग़ज़नी लौट गया और उसका लश्कर देहली के पास मौजअ् इन्द्रप्रस्थ में रहा।''

''रणथम्भोर से क़िवामुल् मुल्क रुहुद्दीन हमज़ा ने कुतबुद्दीन के पास खबर कि अजमेर के राय पिथोरा का भाई बाग़ी होगया है और रणथम्भोर के मुहासरे को आता है। उसका पिथोरा के लड़के से भी बिगाड़ हुआ है। कुतबुद्दीन रणथम्भोर गया। राय पिथोरा के लड़के को खिलअत अता किया और उसने बहुतसा खज़ाना और तीन सोने के खर्बूजे नज़र किये।''

''सन् ५८६ हि० (स० ११६३ ई० में) में खबर आई कि हीराज अजमेर का राय बाग़ी होगया है और उसकी तरफ से झीतर फौज लेकर दिल्ली को आता है। कुतबुद्दीन ऐन गर्मी के मौसम में अजमेर गया जब कि तलवार म्यान में मोम के मुताबिक़ पिघलती थी। झीतर शाही फौज की आमद सुनकर अजमेर आया।

हीराज क़त्ल हुआ और उसका सिर दिल्ली भेजा गया, अजमेर में मुसलमानों का कब्ज़ा हुआ।"[१]

तबक़ातेनासिरी[२] का कर्त्ता लिखता है:—

"सुल्तान मुहम्मद ग़ोरीने सरहिन्द का क़िला फ़तह कर क़ाज़ी ज़ियाउद्दीन टोलक के सुपुर्द किया और १२०० सवार उसके पास छोड़कर आप ग़ज़नी चला गया। राय कोला पिथोरा क़िले पर चढ़ आया और तराइन के मुक़ाम पर सुल्तान के साथ उसकी लड़ाई हुई;" जिसमें दिल्ली के राजा गोविन्दराज के हाथ से सुल्तान का ज़ख्मी होकर भागना आदि सारा हाल फ़िरिश्तः के मुताबिक़ है। दूसरे साल सुल्तान फिर आया, उसी मुक़ाम पर लड़ाई हुई, राय पिथोरा हारा और हाथी से उतर कर घोड़े सवार हो भागता हुआ सर्सती (नदी) के पास पकड़ा गया और क़त्ल हुआ। गोविन्दराय[३] दिल्ली की लड़ाई में मारा गया। सुल्तान ने उसका सिर उसके टूटे दांतों से पहचाना (जो पहली लड़ाई में सुल्तान के हाथ का नेज़ा लगने से टूट गये थे)। इस तरह से अजमेर, सिवालिक पहाड़, हांसी और सर्सती आदि ज़िले सुल्तान के हाथ आये।



इन उपरोक्त प्रमाणों से सिद्ध होता है कि पृथ्वीराज का अंतिम युद्ध सुल्तान शहाबुद्दीन के साथ स० ११९२ ई०, सं० १२४९ वि०) में हुआ जिसमें पृथ्वीराज परास्त होकर मारा गया। परन्तु उसका क़ैद होकर ग़ज़नी पहुँचना और वहां सुल्तान को मार कर आत्मघात करना कहीं नहीं लिखा और न कहीं पृथ्वीराज के वर्णन के

---

१. मुवर्रिख़ ने राय पिथोरा के लड़के का हाल लिखा है मगर मालूम होता है कि यह रणथम्भोर में पिथोरा के किसी करीब रिश्तेदार के वास्ते ख़ता से लिख दिया हो क्योंकि नीचे साफ़ लिखता है कि "अजमेर का राय हीराज" (हरीराज)। इससे साफ़ यही पाया जाता है कि अजमेर की गादी पर पृथ्वीराज के पीछे उसका भाई हरीराज ही बैठा था।

२. क़ाज़ी मिनहाजुद्दीन उस्मान, सुल्तान शमशुद्दीन अल्तिमश के वक्त में हिन्दुस्थान में था।

३. इसको फ़िरिश्तः ने खांडेराय लिखा है।

साथ चन्द का ज़िकर है। इन्हीं तवारीखों से साफ ज़ाहिर है कि सुल्तान शहाबुद्दीन पृथ्वीराज की मृत्यु के पीछे १४ वर्ष तक जीता रहा, ग्वालियर का किला फतह किया व बनारस के राजा जयचंद राठौड़ को युद्ध में परास्त कर मारा। फिर हिन्दुस्तान में कुतबुद्दीन ऐबक को छोड़ आप ग़ज़नी गया। वहां उसने ख्वारज़्म के पादशाह से जंग किया। आख़िरकार हिन्दुस्तान से ग़ज़नी को लौटते हुए मार्ग में सिन्धु के किनारे पर गक्खरों के हाथ से मारा गया। फारसी तवारीखों में उसकी मृत्यु का यों लिखा है:—

"शहाबुद्दीन, बहाउद्दीन का बेटा और गयासुद्दीन मोहम्मद साम का भाई था। दूसरी शब्बान स० ६०२ हि० (१४ मार्च स० १२०६ ई० सं० १२६३ वि०) को जब वह कोकरों (गक्खरों) को शिकस्त देकर लाहोर से ग़ज़नी जाता था तब धमेक के पास नदी के किनारे बाग में उसका खेमा खड़ा हुआ। जब वह मग़रबकी नमाज पढ़ रहा था तो चन्द बेईमानों ने चुपके से आकर तीन हथियार बन्द खिदमतगार और ४ फर्राशों को कत्ल किया और दो आदमियों ने सुल्तान की तर्फ दौड़ कर उसके पांच छः जख्म कारी लगाये जिससे वह वहीं मर गया। उसकी लाश बड़ी इज्जत के साथ ग़ज़नी लेजाई गई।"

यदि सुल्तान पृथ्वीराज के हाथ से मारा जाता तो क्या मुमकिन था कि उस समय की बनी हुई तवारीखों में यह हाल दर्ज न होता?

अन्त में रासे का कर्ता लिखता है कि पृथ्वीराज के पीछे उसका पुत्र रैणसीं गद्दी पर बैठा और वह भी सुल्तान शहाबुद्दीन के हाथ से युद्ध में मारा गया।

रासे की पुस्तक में यह वर्णन कहीं नहीं दिया कि अमुक समय में पृथ्वीराज के पुत्र जन्मा। रैणसी का प्रागट्य ही केवल उस जगह हुआ है जहां चामुण्डराय का पृथ्वीराज के प्रिय हाथी को मारना लिखा है और रैणसी का चामुण्डराय की बहन दाहित्री के पेट से उत्पन्न होना कहा है।

प्राचीन संस्कृत पुस्तक व शिलालेखादि से जिनका वर्णन पहले कर आये हैं, पृथ्वीराज के कोई पुत्र होना पाया नहीं जाता। उसके पीछे उसका भाई हरीराज गद्दी पर बैठा था। फारसी तवारीखों में से तारीख फिरिश्तः और ताजुलम आसिर

के कर्त्ता पृथ्वीराज के पीछे उसके लड़के का गद्दी बैठना लिखते हैं परंतु साथ ही उन्होंने हीराज (या हरीराज) को अजमेर का राय होना भी लिखा है और यह भी कहा है कि हरीराज ने राय पिथोरा के बेटे पर चढ़ाई की। इन मुवर्रखों का यह बयान शक भरा हुआ मालूम देता है परन्तु उसपर अनुमान कर सक्ते हैं कि जिसको उन्होंने पृथ्वीराज का बेटा कहा वह रणथम्भोर का राजा हो। क्योंकि हम्मीर महाकाव्य से पाया जाता है कि उस वक्त वहां पृथ्वीराज (प्रथम) का परपोता गोविन्दराज राज करता था। शायद उसी को इस पृथ्वीराज का लड़का लिख दिया हो, यह तो संभव नहीं कि एक ही समय में अजमेर की गद्दीपर पृथ्वीराज का बेटा और पृथ्वीराज का भाई दोनों रहे होंगे। इसके अतिरिक्त रैणसी प्रस्ताव के विषय में एक यह भी शंका हो सकती है कि रासे के अनुसार चन्द तो पृथ्वीराज का वर्णन लिख कर गजनी चला गया और वहीं मरा फिर वह रैणसी के युद्ध का हाल कैसे लिख सकता था। इसलिये यह कथा अवश्य उसके पीछे किसी अन्य की लिखी हुई होना चाहिये। रासे का कर्ता ही लिखता है कि जब रैणसी ने पृथ्वीराज की मृत्यु के समाचार सुने तो उसे बड़ा क्रोध हुआ। अपने सामन्तों को एकत्रित कर दिल्ली से तीन कोस पर म्लेच्छों का थाना लूटा, लाहोर लिया और पंजाब में डंका बजाया। सुल्तान दो हजार हाथी और बारह लाख फौज लेकर लड़ने आया और सात महीने तक दिल्ली के गढ़ का घेरा डाले हुए पड़ा रहा परन्तु गढ़ न टूटा। अन्त में तातारखां ने सुरंग लगाकर गढ़ तोड़ा। राजपूत तलवारें सूंत कर बाहर आये और सब मारे गये। फिर सुल्तान ने जयचन्द पर चढ़ाई की। जयचंद गङ्गा में डूब मरा।

ऐसे वर्णन से तो रासे के कर्त्ता की स्मरणशक्ति में दोष आता है क्योंकि पहले पास ही तो वह यह लिख आया कि पृथ्वीराज के बाण से सुल्तान मारा गया और फिर साथ ही यह लिख दिया कि वह रैणसी से युद्ध करने को आया। राजा जयचन्द पर शहाबुद्दीन ने पृथ्वीराज की मृत्यु के दो बरस पीछे चढ़ाई कर उसे परास्त किया था। इसका हाल तारीख फिरिश्तः में यों लिखा है:—

"स० ५६० हि० (स० ११६४ ई०, सं० १२५१ वि०) में कुतबुद्दीन ने कोल का क़िला लिया। वहां एक हजार घोड़े और बहुत सा माल असबाब उसके हाथ

लगा। जब उसको खबर मिली कि सुल्तान बनारस व कन्नोज की ओर जाता है तो कोल से वह सुल्तान की पेशवाई को गया और सो घोड़े तुर्की व एक हाथी स्याह व एक सफेद सुल्तान के नज़र किया और आप पचास हज़ार सवारों के लश्कर से साथ हो लिया। रास्ते में बनारस के राजा जयचन्द की फौज से मुक़ाबला हुआ, पीछे से खुद राजा भी मैदान जंग में शरीक होगया। ऐन लड़ाई के वक्त सुल्तान के हाथ का तीर जयचंद की आँख में लगा। राजा हाथी से नीचे गिर कर मर गया और राजपूतों का लश्कर तीन तेरह हुआ। किसी को राजा के मरने की खबर न हुई। आखिरकार इस अलामत से कि उसके दांत बुढ़ापे के बाइस सोने की मेखों से बंधे हुए थे—मुर्दों के ढेर में से उसकी लाश पहचान कर निकाली गई। सुल्तान शहाबुद्दीन बनारस पहुँचा और वहां क़रीब एक हज़ार मन्दिर तोड़े और जवाहिर व दूसरी क़ीमती चीज़ों से ४०० ऊंट भरवाकर कोल के क़िले में हिसामुद्दीन के सुपुर्द किये कि ग़जनी पहुंचादे। कहते हैं कि जब जयचन्द के लूट में मिले हुए हाथी सुल्तान के रूबरू लाये गये तो दूसरे सब हाथियों ने फीलवानों के इशारे के मुवाफ़िक़ सुल्तान से सलाम किया मगर एक सफेद हाथी ने, महावत की बड़ी कोशिश पर भी, सलाम करना मन्जूर न किया और गज़ब में आकर क़रीब था कि महावत को मार डाले।"

ताजुल्मआसिर का मुवर्रिख लिखता है कि "स० ५९० हि० में बनारस के राजा जयचन्द से लड़ाई हुई। सुल्तान के हाथ का तीर लगने से वह (राजा) मारा गया और उसका सिर बरछी की नोक पर उठाया गया। ३०० हाथी और बहुत सा माल खज़ाना सुल्तान के हाथ आया। असनी का क़िला जहां राय का खज़ाना रहता था, सुल्तान ने लूटा।"



अब मैं रासो के निस्बत अपनी राय प्रकट करने के पूर्व कतिपय उन्नीसवीं शताब्दी के पाश्चिमात्य विद्वानों का मत पाठक गणों के सन्मुख पेश करता हूँ:—

(१) मिस्टर फार्ब्स साहब गुजरात के प्राचीन इतिहास की रासमाला नामी पुस्तक में लिखते हैं कि "चन्द का रासा ऐसा अशुद्ध है कि किसी किसी स्थल में तो समझ में नहीं आता और जहां भावार्थ समझा जाता है वहां, चन्द

का लिखा हुआ कितना और क्षेपक कितना, इसकाढ़ूंढ निकालना अत्यन्त कठिन है, यहां तक कि सारे पुस्तक की सत्यता के विषय में स्थल स्थल पर संशय उत्पन्न हुए बिना नहीं रहता। चन्द के लेखानुसार पृथ्वीराज चहुआन के हाथ से दूसरा भीमदेव मारा गया, परंतु वास्तव में पृथ्वीराज के मरने के पीछे भी कई वर्ष तक भीमदेव जीता रहा था। चन्द बारहट्ट के रासे की सत्यता के विषय में शङ्का न करके भीमदेव के लेख के लिये कदापि ऐसा भी मानलें कि चन्द ने अपने राजा की कीर्ति बढ़ाने को लिख दिया हो परंतु पीरंभ के गोहिलों के गीत चन्द ने गाये हैं और इस बारहट्ट के समय से लगभग एक शताव्दी पीछे तक गोहिलों का अधिकार पीरंभ पर हुआ ही नहीं था। तो ऐसी बातों में क्या खुलासा हो सकता है? हमको तो प्रतीत होता है कि रासा, जो चन्द बारहट्ट के नाम से प्रसिद्ध है, वह कुल ही उसका लिखा हुआ नहीं होवे, ऐसा माने बिना सिद्धि होती नहीं।"

(२) मिस्टर बी० ए० स्मिथ साहिब लिखते हैं कि "रासा आज जैसा विद्यमान है। वह मार्ग भुलाने वाला और इतिहासवेत्ताओं के कार्य के लिये निष्फल है।"

(३) प्रोफेसर व्हूलर साहब लिखते हैं कि "मुझे अन्देशः है कि इस समय का इतिहास फिर से न बदला जावे, और चन्द का रासा अब न छापा जावे। वह कृत्रिम (जाली) है जैसा कि जोधपुर के कविराज मुरारदान और उदयपुर के कविराज श्यामलदास ने मुदत पहले कहा था। 'पृथ्वीराज विजय, में पृथ्वीराज के वन्दीराज का नाम पृथ्वीभट्ट लिखा है चन्द वरदाई नहीं।"

(४) मेजर जनरल सर ए० कन्हिंगम साहब लिखते हैं कि "चौहानों का सही हाल हमको सिर्फ उनके शिलालेखों से मिलता है. पृथ्वीराज रासा जाली है जैसा कि डाक्टर व्हूलर ने दिखलाया है और टाड की फेहरिस्त और भाटों की वंशावली जो चन्द से लीगई है वह बिल्कुल रद्दी है।"

जिस अवस्था में, रासे की पुस्तक में लिखे अनुसार न तो चहुआनों का अग्नि कुण्ड में से उत्पन्न होना, न रासे में दी हुई चहुआनों की वंशावली का शुद्ध होना, न बीसलदेव का सं० ६८६ में बालुकराय सोलंखी से युद्ध, न दिल्ली में उस

वक्त (पृथ्वीराज के समय में), तंवरों का राज्य रहना, और न पृथ्वीराज का अपने नाना अनंगपाल के गोद जाना, न सं० ११९५ में पृथ्वीराज का जन्म, न रावल समरसिंह का पृथ्वीराज का समकालीन होना, न उस समय आबू पर सलख जैत नाम के कोई प्रमार राजा का राज्य, न रणथभोर में यादव राजा होना, न देवगिरी में भान नाम का कोई राज उस समय होना, न पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर का गुजरात के राजा भीमदेव के हाथ से मारा जाना, और न भीमदेव का पृथ्वीराज का हाथ से वध होना, न पृथ्वीराज का कैद होकर शहाबुद्दीन के साथ गजनी पहुंचना, और न वहाँ शहाबुद्दीन को तीर से मार आपका आत्मघात करना और न रैणसी का पृथ्वीराज के पीछे गादी बैठना आदि वृत्त पूर्वोक्त प्रमाणों से सिद्ध होते हैं। तो कहा जा सकता है कि रासे में दिये हुए एतिहासिक वृत्तों की अशुद्धियाँ रासे का कोई प्रमाणिक एतिहासिक पुस्तक नहीं होना सिद्ध करती हैं और साथ ही इसको भी मनन कराने में समर्थ होती हैं कि रासे का लिखने वाला पृथ्वीराज का समकालीन नहीं था; क्योंकि यदि ऐसा होता तो संभव नहीं कि वह अपने समय में न बने हुए बनावों के झूठ मूठ अपने पुस्तक में लिख मारता। कदापि ऐसा मानलें कि ग्रन्थकर्त्ता ने अपने पूर्व के वृत्तों को केवल अपने स्वामि की कीर्त्ति बढ़ाने के निमित्त उसके नाम पर अंकित कर दिये हों तथापि पृथ्वीराज से कई सौ वर्ष पीछे के प्रस्तावों का इस पुस्तक में पाया जाना इस प्रकार मान लेने में दृढ़ प्रमाण-रूप होजाता है कि रासे का पुस्तक पृथ्वीराज के समय में नहीं लिखा गया और न इसका कर्त्ता कोई चन्द कवि पृथ्वीराज का समकालीन था परन्तु यही मानना पड़ता है कि पृथ्वीराज के कई सौ वर्ष पीछे इस काव्य का प्रादुर्भाव हुआ हो। रासे में चन्द आदि भाटों की महिमा स्थल स्थल पर गाई है इससे जाना जाता है कि रासे का कर्त्ता कोई चौहानों का भाट था जिसको बीसलदेव आदि की प्राचीन कथा ज्ञात थी और हिन्दी के सिवा फारसी भाषा का भी जानने वालाथा। क्योंकि रासे में जहां तहां सैकड़ों फारसी अर्बी के शब्द भरे हुए हैं। यह भी उसको पृथ्वीराज के समय का बना हुआ होने में शंका उत्पन्न कराते हैं।

अब यदि यह रासा पृथ्वीराज के समय में नहीं बना तो इसके बनने का समय कौनसा ठहर सकता है? इस प्रश्न के उत्तर में कह सकते हैं कि सोलहवीं

शताब्दी के आरम्भ तक तो इस कथा की उत्पत्ति नहीं पाई जाती कि चाहुआन अग्नि कुण्ड में से उत्पन्न हुए और पृथ्वीराज दिल्ली अनंगपाल के गोद में गया। ग़ज़नी में सुल्तान को तीर से मार कर आप आत्मघात करके मरा और चन्द पृथ्वी-राज का कवि और मित्र था। क्योंकि सं० १५०० के लगभग बने हुए हम्मीर महा-काव्य में जिसमें। दिया हुआ पृथ्वीराज का वर्णन पहले लिख चुके हैं—कहीं इन कथाओं का पता नहीं यदि पृथ्वीराज रासे की पुस्तक इसके पहले की बनी हुई होती तो संभव नहीं कि हम्मीर काव्य का कर्त्ता इन कथाओं को अपने काव्य में दर्ज करना छोड़ देता या उनके विरुद्ध अन्य कुछ लिखता क्योंकि वह भी चौहानों ही की कीर्ति लिखने वाला था। तो अनुमान हो सकता है कि रासा सं० १५०० के पीछे किसी समय बना हो।

मेदपाट देश में राजसमुद्र नामी तालाब पर की प्रशस्ति में रासे का वर्णन है जो महाराणा राजसिंहजी के समय में सं० १७२२ में लगाई गई थी। अतएव सं० १५०० और सं० १७२२ के मध्य किसी समय में इस रासे का बनना स्वीकार करना पड़ेगा। उदयपुर राज्य के विक्टोरिया हाल के पुस्तकालय में रासे की जिस पुस्तक से मैंने यह सारांश लिया है उसके अंत में यह लिखा है कि चन्द के छन्द जगह जगह पर बिखरे हुए थे जिनको महाराज अमरसिंहजी ने एकत्रित कराये। महाराणा कुम्भकर्ण के पीछे जिन्होंने सं० १४६० से सं० १५२५ तक चित्तौड़ पर राज्य किया था। मेवाड़ की राजगद्दी पर अमरसिंहजी नाम के दो महाराणा हुए हैं। प्रथम तो महाराणा प्रतापसिंहजी के पुत्र जिन्होंने सं० १६५३ से सं० १६७६ तक राज्य किया, और दूसरे, महाराणा राजसिंहजी के पौत्र व महाराणा जयसिंहजी के पुत्र थे जिन्होंने सं० १७५६ से सं० १७६८ तक राज किया। तो जिन अमरसिंहजी ने रासे के पृथक पृथक भागों को एकत्रित कराया वे पहले ही अमरसिंहजी थे दूसरे नहीं क्योंकि दूसरे अमरसिंह के राज्य के पूर्व की लगी हुई राजनगर की प्रशस्ति में भाषा रासा पुस्तक से उद्धृत किया हुआ वर्णन मिलता है। जब प्रथम अमरसिंहजी के समय में अर्थात् सं० १६५३–७६ के बीच में रासे के पृथक पृथक अंगों का एकत्रित होना पाया जाता है तो वह अवश्य इनके पूर्व किसी समय में रचा जाना चाहिये।

मेवाड़ इलाक: में एक राव के पास "चन्द छन्द महिमा" नामी पुस्तक के पत्रे हैं जिसके अंत में यह लिखा है:—"वारता—इतना सुनके पातशाहजी श्री अकबरशाहजी ने आधसेर सोना नरहरदास[1] चारन को दिया। इसके डेढ़ सेर सोना होगया। रासा वांचना पूरन भया। अवकास वरकास हुआ जिसका सं० १६२७ का मिती मधु मास सुदी १३ गुरुवार के दिन पूरन भयो। इति श्री रड़निसी जुद्ध चन्द छन्द वर्णन की महिमा दली पति पातशाहजी श्री श्री अकबरशाहजी कूं गंग भाटजी ने सुनाया जिसकी महिमा महाराजाधिराज महाराज श्री १०८ श्री श्री सिशोद वंशे अखंड मंड: सूरं उदयसिंह: सुत सगतसिंहजी[2] विज्ये राज्य राज्ये तत् पंडित विष्णुदास लिखित नगर अजमेर मध्ये सं० १६२६ का साके १४६४ का मास सावन मासं शुक्ल पक्षे बीज रविवासरे श्री रस्तु कल्याण मस्तु।"[3] इस उपरोक्त वर्णन से सं० १६२७ वि० में अकबर पादशाह को गंग भाट का रासा सुनाना पाया जाता है और इस विषय में एक दन्त कथा भी प्रचलित है कि अकबर को वीर रस के चरित्र सुनने का बड़ा शौक़ था। तब कतिपय हिन्दू राजों की सम्मति से किसी भाट ने यह पृथ्वीराज की कथा रच कर बड़े आडम्बर के साथ अकबर को सुनाई, यद्यपि अकबर के वक्त की फारसी तवारीखों में कहीं रासे का ज़िकर नहीं है।

---

१. नरहरिराय या नरहरिदास—यह ज़िलअ फतहपुर में असनी गांव का रहनेवाला भाट था। पादशाह अकबर ने इसको असनी गांव जागीर में दिया और महापात्र का ख़िताब सन् १५५० ई० में दिया था।

२. ये शक्तिसिंहजी, महाराणा प्रतापसिंहजी के छोटे भाई थे जो किसी कारण से अपने भाई से रूठ कर अकबर पादशाह के पास चले गये थे।

३. इस लेख से जान पड़ता है कि सं० १६२६ में पंडित विष्णुदत्त ने यह ग्रंथ नकल किया परन्तु इसके सही होने में एक बड़ी शंका यह है कि इसमें जो सं० १६२७ माघ सुदी १३ को गुरुवार और १६२६ श्रावण सुद २ को रविवार लिखा है यह ठीक नहीं, गणित के व चण्डू पञ्चाङ्ग के अनुसार सं० १६२७ माघ सुदि १३ को बुधवार और सं० १६२६ श्रावण सुदी २ को शनिवार आता है।

रासे को कृत्रिम सिद्ध करने के लेख में उदयपुर के भूत पूर्व कविराज श्यामलदास ने लिखा है कि "मेवाड़ राज्य के अव्वल दर्जे के उमराव वेदले और कोठारिये के घराने के किसी पढ़े लिखे भाटने अपनी शाही का वड़प्पन दिखाने और हिन्दुस्तान के दूसरे प्रदेशों से आये हुए इन चौहानों की राजपूताना के क्षत्रियों में समान प्रतिष्ठा बतलाने को यह पृथ्वीराज रासा नाम का पुस्तक जाली बनाया।" यद्यपि मैं उक्त कविराज के इस लेख से तो सहमत नहीं हूँ कि राजपूताने के क्षत्रियों में अन्य प्रदेश से आये हुए इन चौहानों की समान प्रतिष्ठा दिखलाने को पृथ्वीराज रासा रचा गया हो क्योंकि प्रथम तो चौहानों का प्रतापी होना कई शताब्दियों से राजपूताने ही में नहीं किन्तु भारतखण्ड के एक बड़े विभाग में भली प्रकार विदित है। इसके अतिरिक्त रासा रचे जाने के समय में भी राजपूतानें में चहुआनों का राज बूंदी में मौजूद था, फिर यह कहना कि राजपूताना के क्षत्रियों में समान प्रतिष्ठा दिखलाने को रासा लिखा गया— यह तो सर्वथा विरुद्ध है; तथापि रासे में स्थल स्थल पर उदयपुर के महारावल समरसिंहजी की विशेष प्रशंसा लिखी रहने से इतना अनुमान तो हो सकता है कि जब यह रासे का पुस्तक लिखा गया तब चहुआनों का उदयपुर के दर्बार से कोई ऐसा संबंध अवश्य हो गया होगा जिससे उनकी प्रशंसा करना चहुआनों के ग्रंथ कर्त्ता पर वाजिब हो और यह समय सोलवीं शताब्दी के अंत का था जब कि ये चहुआण सर्दार मेदपाट के महाराणा के आश्रित हुए। अतएव कह सकते हैं उसी समय में या उससे कुछ पूर्व इस पृथ्वीराज रासा नाम के ग्रन्थ का प्रादुर्भाव हुआ है। पीछे तो इसकी महिमा इतनी बढ़ी कि प्रत्येक क्षत्रीवंश ने इस पुस्तक में अपना वर्णन होना एक प्रतिष्ठा का कारण समझ, समय समय पर जब अवसर मिला कुछ न कुछ वर्णन अपना इसमें लिखवाही दिया और इसी प्रकार यह रासा मानों क्षत्री वंश का एक पुराण होगया। इस रासे के कई संस्कार होने से हम यह दोष मूल कवि के सिर पर नहीं लगा सकते कि उसने कई जगह अपने पुस्तक में पूर्वापर विरोध

किया या कथा भाग अनियमित रीति से लिखा। परन्तु उन्नीसवीं सदी के राजपूताना के एक प्रसिद्ध कवि सूरजमल मिश्रण ने इस रासे की कविता आदि के विषय में जो वर्णन अपनी पुस्तक वंशभास्कर में लिखा है उसका संक्षेप देकर मैं अपने इस लेख को समाप्त करता हूँ:—

"पृथ्वीराज रासे के कर्त्ता ने कुछ प्राकृत का ज्ञान प्राप्त करके कविता की है और उसमें पूर्वापर विरोध बहुत है।"[1]



१. महोबा के युद्ध के वास्ते देखो कथा भाग का पृष्ठ ६०—६१।

राय बहादुर पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा

रासो का निर्माण-काल

[अनंद विक्रम संवत् की कल्पना]

उदयपुर के कविराजा श्यामलदासजी ने मेवाड़ का इतिहास 'वीरविनोद' लिखते समय 'पृथ्वीराजरासे' की ऐतिहासिक दृष्टि से छान-बीन की। जब उन्होंने उसमें दिए हुए संवतों तथा कई घटनाओं को अशुद्ध पाया, तब उन्होंने उसको उतना प्राचीन न माना, जितना कि लोग उसको मानते चले आते थे। फिर ईस्वी सन् १८८६ में उन्होंने उसकी नवीनता के संबंध में एक बड़ा लेख एशिआटिक सोसाइटी बंगाल, के जर्नल (पत्रिका)[१] में छपवाया और उसी का आशय हिंदी में भी 'पृथ्वीराज रहस्य की नवीनता' के नाम से पुस्तकाकार प्रसिद्ध किया, जिनसे पृथ्वीराजरासे के संबंध में एक नई चर्चा खड़ी होगई। पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या ने उसके विरुद्ध 'पृथ्वीराजरासे की प्रथम संरक्षा' नामक छोटीसी पुस्तक ई० सं० १८८७ के प्रारंभ में छापी, जिसमें 'पृथ्वीराजरासे' के कर्त्ता चंदवरदाई का प्रसिद्ध चौहान राजा पृथ्वीराज के समय में होना सिद्ध करने की बहुत कुछ चेष्टा, जिस तरह बन सकी, की। फिर उसी का अँग्रेजी अनुवाद एशिआटिक सोसाइटी बंगाल के पास भेजा; परन्तु उक्त सोसाइटी ने उसे अपने जर्नल के योग्य न समझा और उसको उसमें स्थान न दिया। इस पर पंड्याजी ने उसे स्वतंत्र पुस्तकाकार छपवा कर वितरण किया। उस समय तक पंड्याजी और राजपूताना आदि के विद्वानों में से किसी ने भी अनंद विक्रम संवत का नाम तक नहीं सुना था।

१, बं० ए० सो ज० ई० स० १८८६, हिस्सा तीसरा, पृ० ५-६५।

'पृथ्वीराजरासे' में घटनाओं के जो संवत् दिए हैं, वे अशुद्ध हैं, यह बात कर्नल टॉड को मालूम थी, क्योंकि उन्होंने लिखा है कि—"हाड़ाओं (चौहानों की एक शाखा) की ख्याति में [अष्टपाल] का संवत् ६८१ मिलता है (कर्नल टॉड ने १०८१ माना है), परन्तु किसी आश्चर्यजनक, तो भी एक सी, भूल के कारण सब चौहान जातियाँ अपने इतिहासों में १०० वर्ष पहले के संवत् लिखती हैं, जैसे कि वीसलदेव के अनहिलपुर पाटन लेने का संवत् १०८६ के स्थान पर ६८६ दिया है। परन्तु इससे पृथ्वीराज के कविचंद ने भी भूल खाई है और पृथ्वीराज का जन्म संवत् १२१५ के स्थान में १११५ होना लिखा है; और सब तरह संभव है कि यह अशुद्धि किसी कवि की अज्ञानता से हुई है।

पंड्याजी ने कर्नल टॉड का यह कथन अपनी 'पृथ्वीराजरासे की प्रथम संरक्षा' में उद्धृत किया[२] और आगे चल कर उसकी पुष्टि में लिखा कि—"भाट और बड़वा लोग जो संवत् अपने लेखों में लिखते हैं, उसमें और शास्त्रीय संवतों में सौ १०० वर्ष का अन्तर है। अब मैं यह विदित करूंगा कि मैं किस तरह इन बड़वा भाटों के संवत् से परिज्ञात हुआ।...... इस ग्रंथ (पृथ्वीराजरासे) को राजपूताने में—सर्व-प्रिय और सर्वमान्य देख कर के मुझे भी उसके क्रमशः पढ़ने और उसकी उत्तमता की परीक्षा करने की उत्कंठा हुई जब कि मैं कोटे में था, मैंने उसका थोड़ा सा भाग, उस राज्य के उन प्रसिद्ध कविराज चंडीदानजी से पढ़ा कि जिनके बराबर आज भी कोई चारण संस्कृत भाषा का विद्वान् नहीं है। उसके पढ़ते ही मेरे अंतःकरण में एक नया प्रकाश हुआ और रासा मेरे मन के आकर्षण का केंद्र हुआ और मेरे मन के सब संदेह मिट गये। तदनन्तर बूंदी और अन्य स्थलों के चारण और भाट कवियों के आगे उस में लिखे संवतों के विषय में उन कविराजजी से मेरा एक बड़ा वाद हुआ। उसका सारांश यह हुआ कि चंडीदानजी ने सप्रमाण यह सिद्ध किया कि जब विक्रमी संवत प्रारम्भ हुआ था, तब वह संवत् नहीं कहलाता था, किंतु शक कहलाता था, परन्तु जब शालीवाहा ने विक्रम को बँधुआ करके मार डाला और अपना संवत् चलाना और स्थापन करना चाहा, तब

१. टॉड राजस्थान (कलत्ते का छपा, अंग्रेजी), जि० २, पृ० ५०० टिप्पण।
२. पृथ्वीराजरासे की प्रथम संरक्षा पृ० २०।

व साधारण प्रजा में बड़ा कोलाहल हुआ। शालिवाहन ने अपने संवत् के चलाने
ा दृढ़ प्रयत्न किया, परन्तु जब उसने यह देखा कि विक्रम के शक को बंद करके
रा शक नहीं चलेगा, क्योंकि प्रजा उसका पक्ष नहीं छोड़ती और विक्रम को वचन
ो दे दिया है अर्थात् जब विक्रम बंदीगृह में था; तब उससे कहा गया था कि जो
चाहता हो वह मांग कि उसने यह याचना किया कि मेरा शक सर्व साधारण
जा के व्यवहार में से बंद न किया जावे······

"तदनंतर शालिवाहन ने आज्ञा किया कि उसका संवत् तो "शक" करके
ौर विक्रम का "संवत्" करके व्यवहार में प्रचलित रहें। पंडित और ज्योतिषियों
 तो जो आज्ञा दियी गई थी, उसे स्वीकार कियी; परंतु विक्रम के याचकों अर्थात्
ाज जो चारण भाट राव और बड़वा आदि नाम से प्रसिद्ध हैं, उनके पुरुषाओं
 इस बात को अस्वीकार करके विक्रम की मृत्यु के दिन से अपना एक पृथक्
क्रमी शक माना। इन दोनों संवतों में सौ १०० वर्षों का अन्तर है। शालि-
ाहन के शक और शास्त्रीय विक्रमी संवत् में १३५ वर्षों का अंतर है। इन
नों के अन्तरों में जो अन्तर हैं, उसका कारण यह है कि भाट और वंशावली
खने वालों ने विक्रम की सब वर्य केवल १०० सौ वर्ष की ही माना है। यह लोग
ह नहीं मानते कि विक्रम ने १३५ वर्ष राज्य किया और न उसके राजगद्दी पर
ठने के पहिले भी कुछ वय का होना जो संभव है, वह मानते हैं। इस प्रकार
क्रम के उस समय से दो संवत् प्रारंभ हुवे, उनमें से जो पंडित और ज्योतिषियों
 स्वीकार किया वह "शास्त्रीय विक्रमी संवत्" कहलाया और दूसरा जो भाटों
ौर वंश लिखने वालों ने माना वह "भाटों का संवत्" करके कहलाया। आदि
 ही इस तरह का मतान्तर होगया और दो थोक इतने शीघ्र उत्पन्न हो गये।
ाटों ने अपने शक का प्रयोग अपने लेखों में किया। यह भाटों का शक दिल्ली
ौर अजमेर के अंतिम चौहान बादशाह के राज्य समय तक कुछ अच्छा प्रचार
ो प्राप्त रहा और उसका शास्त्रीय विक्रमी संवत् से जो अन्तर है, उसका
ारण भी उस समय तक कुछ लोगों को परिज्ञात रहा। तदन्तर इसका
चार तो प्रति दिन घटता गया और शास्त्रीय विक्रम संवत् का ऐसा बढ़ता गया
क आज इसका नाम सुनते ही लोग आश्चर्य सा करते हैं। इस भाटों के शक का
सरे राजपूतों के इतिहास में प्रवेश होने की अपेक्षा चौहान शाखा के राजपूतों

भाट रह गए हैं, तुम लोगों को ऐसे गूढ़ार्थ समझाने के लिये समय चाहिए, कभी समय मिलने पर मैं तुम्हें यह अच्छी तरह समझाऊँगा।' इस उत्तर से न तो मुझे संतोष हुआ और न पंड्याजी की खटक मिटी। फिर पंड्याजी को 'पंचदह' का अर्थ 'पाँच' न कर किसी और तरह से उक्त संगति मिलाने की आवश्यकता हुई। रासे में दिए पृथ्वीराज के जन्म सम्बन्धी दोहे—

एकादस सै पंचदह, विक्रम साक अनंद।
तिहिं रिपु जय पुर हरन कौं, भय प्रिथिराज नरिंद॥

में अनंद शब्द देख कर उस पर की टिप्पणी में उन्होंने 'नद' का अर्थ 'नव', 'अनंद' का नव रहित, और उस पर से फिर 'नव रहित सौ' कर पृथ्वीराज के जन्म सम्बन्धी रासे के सम्वत् में जो ६–१० वर्ष का अन्तर आता था, उसको मिटाने का यत्न किया और टिप्पणी में लिखा कि—

"अब आप चंद की संवत् सम्बन्धी कठिनता को इस प्रकार समझने का प्रयत्न करें कि प्रथम तो रूपक ३५५ (एकादस सै पंचगह०) को बहुत ध्यान देकर पढ़ें। तदनंतर उसका अन्वय करके यह अर्थ करें कि (एकादस सै पंचदह) ग्यारह से पंदरह (अनन्द विक्रम साक अथवा विक्रम अनन्द साक) अनन्द विक्रम का साक अथवा विक्रम का अनन्द साक (तिहि) कि जिसमें (रिपुजय) शत्रुओं को विजय करने (पुर हरन) और नगर अथवा देशान्तरों को हरन करने (कौं) को प्रिथिराज नरिंद) पृथ्वीराज नामक नरेन्द्र (भय) उत्पन्न हुए।"

"तदनन्तर इसके प्रत्येक शब्द और वाक्य खंड पर सूक्ष्म दृष्टि देकर अन्वेषण करें कि उसमें चंद की (Archaic style) प्राचीन गूढ़ भाषा होने के कारण सम्वत् सम्बन्धी कठिनता कहाँ और क्या घुसी हुई है। कवि के प्रतिकूल नहीं, किंतु अनुकूल विचार करने पर आपकी न्याय बुद्धि झट खोज कर पकड़ लावेगी कि—विक्रम साक अनंद वाक्य खण्ड में—और उसमें भी अनन्द शब्द में हम लोगों को इतनें वर्षों से गड़बड़ा कर भ्रमा रखने वाली चंद की लाघवता भरी हुई है। इतनी जड़ हाथ में आय जाने पर अनन्द शब्द के अर्थ की गहराई को ध्यान में लेकर पक्षपात रहित विचार से निश्चिय कीजिये कि यहाँ चंद ने उसका क्या अर्थ माना है। निदान आपको समझ पड़ेगा कि अनन्द शब्द का अर्थ यहाँ चंद ने केवल नव–संख्या

रहित-का रक्खा है अर्थात अ=रहित और नंद=नव ६। अब विक्रम साक अनन्द को क्रम से अनन्द विक्रम साक अथवा विक्रम अनन्द साक करके उसका अर्थ करो कि नह रहित विक्रम का शक अथवा विक्रम का नव रहित शक अर्थात् १००-६=६०। ६१ अर्थात् विक्रम का वह शक कि जो उसके राज्य के ६०। ६१ से प्रारम्भ हुआ है। यही थोड़ी सी और उत्प्रेक्षा (!) करके यह भी समझ लीजिए कि हमारे देश के ज्योतिषी लोग जो सैंकड़ों वर्षों से यह कहते चले आते हैं और आज भी वृद्ध लोग कहते हैं कि विक्रम के दो संवत् थे कि जिनमें से एक तो अब तक प्रचलित है और दूसरा कुछ समय तक प्रचलित रह कर अब अप्रचलित हो गया है। और हमने भी जो कुछ इसके विषय की विशेष दंत कथा कोटा राज्य के विद्वान् कविराज श्री चंडीदानजी से सुनी थी, वह इस महाकाव्य की संरक्षा में जैसी की तैसी लिख दिी है और दूसरा अनंद जो इस महाकाव्य में प्रयोग में आया है। इसी के साथ इतना यहाँ का यहाँ और भी अन्वेषण कर लीजिये कि हमारे शोध के अनुसार जो ६०। ६१ वर्ष का अन्तर उक्त दोनों संवतों का प्रत्यक्ष हुआ है, उसके अनुसार इस महाकाव्य के संवत् मिलते हैं कि नहीं। पाठकों को विशेष श्रम न पड़े, अतएव हम स्वयम् नीचे के कोष्टक में कुछ संवतों को सिद्ध कर दिखाते हैं:—

"पृथ्वीराज के अनंद संवतों का कोष्टक"

पृथ्वीराजी का	रासे में लिखे अनन्द संवत् में	सनन्द और अनन्द संवतों का अतर जोड़ो	यह सनन्द संवत हुआ
जन्म	११११५	६०।६१	१२०५।६
दिल्ली गोद जाना	११२२	६०।६१	१२१२।३
कैमास जुद्ध	११४०	६०।६१	१२३०।१
कन्नौज जाना	११५१	६०।६१	१२४१।२
अंतिम	११५८	६०।६१	१२४८।६

......"चंद के प्रयोग किये हुए विक्रम के अनन्द संवत् का प्रचार बारहवें शतक की राजकीय व्यवहार की लिखावटों में भी हमको प्राप्त हुआ है, अर्थात् हमको शोध करते करते हमारे स्वदेशी अंतिम बादशाह पृथ्वीराजजी और रावल समरसीजी और महाराणी पृथाबाईजी के कुछ पट्टे परवाने में मिले हैं कि उनके

सम्वत् भी इस महाकाव्य में लिखे संवतों से ठीक ठीक मिलते हैं और पृथ्वीराजजी के परवानों में जो मुहर छाप है, उसमें उनके राज्याभिषेक का सं० ११२२ लिखा है। इन परवानों के प्रतिरूप अर्थात् Photo हमने हमारी ओर से एशियाटिक सोसाइटी बंगाल को भेंट करने के लिये हमारे स्वदेशी परम मित्र प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता डाक्टर रायबहादुर राजा राजेन्द्रलालजी ऐल० ऐल० डी०, सी० आई० ई० के पास भेजे हैं और उनके अकृत्रिम (!) होने के विषय में हमारे परस्पर बहुत कुछ पत्र व्यवहार हुआ है। यदि हमारे राजा साहब अकस्मात् रोगग्रस्त न हो गये होते तो वे हमारे इस बड़े परिश्रम से प्राप्त किये हुए प्राचीन लेखों को अपने विचार सहित पुरातत्ववेत्ताओं की मंडली में प्रवेश किये होते। इन परवानों के अतिरिक्त हमको और भी कई एक प्रमाण प्राप्त होने की दृढाशा है कि जिसको हम उस समय विद्वत् मंडली में प्रवेश करेंगे कि जब कोई विद्वान् उनको कृत्रिम होने का दोष देगा। देखिये जोधपुर राज्य के काल-निरूपक राजा जयचन्दजी को सम्वत् ११३२ में और शिवजी और सेतरामजी को सं० ११६८ में और जयपुर राज्यवाले पज्जूनजी को सं० ११२७ में होना आज तक निः संदेह मानते हैं और यह सम्वत् भी हमारे अन्वेषण किये हुए ६१ वर्ष के अन्तर के जोड़ने से सनंद विक्रमी होकर संप्रतकाल के शोध हुए समय से मिल जाते हैं। इसके अतिरिक्त रावल समरसीजी की जिन प्रशस्तियों को हमारे मित्र महामहोपाध्याय कविराज श्यामलदासजी ने अपने अनुमान को सिद्ध करने को प्रमाण में माना है, वह भी एक आंतरीय हिसाब से indirectly हमारे शोध किये इस अनन्द सम्वत् को और उसके प्रचार को पुष्ट और सिद्ध करती है [१]।"

इस प्रकार पंड्याजी ने जिस सम्वत् को 'पृथ्वीराज रासे की प्रथम संरक्षा' में 'भाटों का संवत्' या 'भटायत' सम्वत् माना था उसी का नाम उन्होंने 'अनन्दविक्रम सम्वत्' रक्खा और पहले 'भटायत' सम्वत् में १०० जोड़ने से प्रचलित विक्रम संवत-का मिल जाना बतलाया था, उसको पलट कर 'अनंदविक्रम-संवत्' में ६० या ६१ मिलाने से प्रचलित विक्रम सम्वत् का बनना मान लिया। साथ में यह भी मान

१. पृथ्वीराज रासा, आदि पर्व, पृ० २३६–४४।

लिया कि ऐसा करने से पृथ्वीराज रासे तथा चौहानों की ख्यातों में दिए हुए सब संवत् उन घटनाओं के शुद्ध संवतों से मिल जाते हैं और जोधपुर तथा जयपुर के राजाओं के जो संवत मिलते हैं, वे भी मिल जाते हैं, और मेवाड़ के रावल समरसिंहजी की प्रशस्तियां भी उक्त संवत् (अनंद) की पुष्टि करती है। पंड्याजी के इस कथन की तथा उनके ऊपर उल्लेख किए हुए पृथ्वीराजजी, समरसीजी तथा पृथाबाई के पट्टे परवानों की जाँच कुछ आगे चल कर करेंगे, जिससे स्पष्ट हो जायगा कि उनका कथन कहाँ तक मानने योग्य है।

इसके पीछे बाबू श्यामसुन्दरदासजी ने नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा की हुई ई० स० १६०० की हिंदी की हस्तलिखित पुस्तकों की खोज की रिपोर्ट, पुस्तकों के प्रारम्भ और अन्त के अवतरणों आदि सहित, अँग्रेजी में छापी, जिसमें पृथ्वीराज-रासे की तीन पुस्तकों के नोटिस हैं और अंत में पृथ्वीराजजी, समरसीजी तथा पृथाबाई के जिन पट्टे परवानों का उल्लेख पंड्याजी ने किया था, उनकी प्रति-कृतियों (फोटो) सहित नकलें भी दी हैं। उसकी अंग्रेजी भूमिका में, जिसका हिन्दी अनुवाद जयपुर के 'समालोचक' नामक हिन्दी मासिक पुस्तक की अक्टूबर, नवम्बर, दिसम्बर सन् १६०४ ई० की सम्मिलित संख्या में भी छपा है, बाबूजी ने पंड्याजी के कथन का समर्थन करते हुए लिखा कि "चंद ने अपने ग्रन्थ में ६०-६१ वर्ष की लगातार भूल की है। परन्तु किसी बात का एकसा होना भूल नहीं कहलाता, इसलिये इस ६० वर्ष के समअन्तर के लिये कोई न कोई कारण अवश्य होगा।............पृथाबाई का विवाह समरसी से अवश्य हुआ था, लोग इसके विरुद्ध चाहे कुछ ही क्यों न कहें। परवानों का जो प्रमाण यहाँ दिया गया है, वह बहुत ही पुष्ट जान पड़ता है और इसके विरुद्ध जो कुछ अनुमान किया जाय उस सबको हलका बना देता है।.........परवानों और पत्रों की सत्यता में कोई सन्देह नहीं किया जा सकता; क्योंकि उनमें से एक दूसरे की पुष्टि करता है......। यह बात ऊपर बहुत ही स्पष्ट करदी गई है कि चंद की तिथियाँ कल्पित नहीं हैं और न उसके महाकाव्य में दी हुई घटनाएँ ही मिथ्या हैं, वरन् वे सब सत्य हैं। यह भी साबित किया जा चुका है कि ईसवी सन् की बारहवीं शताब्दी के लगभग राजपूताने में दो सम्वत् प्रचलित थे, एक तो सनन्द विक्रम सम्वत् जो ईसवी सन् के ५७ वर्ष पहले चलाया गया था और दूसरा अनन्द विक्रम सम्वत् जो सनन्द विक्रम

संवत् में से ९२ वर्ष घटाकर गिना जाता था[1]।"

बाबूजी की वह रिपोर्ट यूरोप में पहुंची और वहाँ के विद्वानों ने उसे पढ़कर नए, 'अनंद विक्रम संवत् को इतिहास के लिये बड़े महत्व की बात माना। अनेक भाषाओं के विद्वान् प्रसिद्ध डाक्टर सर जी० ग्रिअर्सन ने भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास के विद्वान् विंसेंट स्मिथ को इस संवत् की सूचना दी, जिस पर उन्होंने अपने 'भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास' में पंड्याजी अथवा बाबूजी का उल्लेख न करके लिखा कि "सर जी० ग्रिअर्सन मुझे सूचित करते हैं कि नंदवंशी राजा ब्राह्मणों के कट्टर दुश्मन माने गए हैं और इसीलिये उनका राजत्व काल बारहवीं शताब्दी में चंद कवि ने काल गणना में से निकाल दिया। उसने विक्रम के अनंद (नंद रहित) संवत् का प्रयोग किया है; प्रचलित गणना से ९० या ९१ वर्ष पीछे है। 'नंद' शब्द का 'नव' के अर्थ में व्यवहृत होना पाया जाता है (१००—९=९१)[2]" आगे चल कर उसी विद्वान् ने लिखा है कि "रासे में काल गणना की जो भूलें मानी जाती हैं, उनका समाधान इस शोध से होजाता है कि ग्रंथकर्ता ने अनंद विक्रम संवत् का प्रयोग किया है [जिसका प्रारंभ] अनुमान से ई० सं० ३३ से है और इसीलिये वह प्रचलित सनन्द विक्रम सम्वत् से, जो ई० स० पूर्व ५८-५७ से [प्रारंभ हुआ था] ९०—१ वर्ष पीछे है। अनन्द और सनन्द शब्दों का अर्थ क्रमशः 'नंद-रहित' और 'नंद सहित' होता है और नंद ९० या ९१ का सूचक माना जाता है, परन्तु नव नंदों के कारण वह शब्द वास्तव में ९ का सूचक है[3]।"

नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा की हुई हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों की खोज की ई० स० १९०० से १९०३ तक की बाबू श्यामसुन्दरदासजी की अंग्रेजी रिपोर्ट की समालोचना करते समय डाक्टर रूडोल्फ होर्नली ने ई० स० १९०६ के रायल-एशिआटिक सोसाइटी के जर्नल में लिखा कि "पृथ्वीराज रासे के प्रामाणिक होने को जो एक समय बिना किसी सन्देह के माना जाता था, पहले पहल कवि-राजा श्यामलदास ने ई० स० १८८६ में बंगाल एशिआटिक सोसाइटी के जर्नल

---

१. एन्युअल् रिपोर्ट ऑन दि सर्च फॉर हिन्दी मैनुसक्रृप्ट्स १९०० ई०, पृ० ४—१० और 'समालोचक' (हिन्दी का मासिक पत्र), भाग ३, पृ० १६५—७१।

२. विंसेंटस्मिथ; अर्लीहिस्टरी ऑफ इण्डिया पृ० ४२ टिप्पन २।

३. वही।

में छपवाए लेख में अस्वीकार किया और तब से उस पर बहुत कुछ सन्देह होरहा है; जिसका मुख्य कारण उसके सम्वतों का अशुद्ध होना है। पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या का तलाश किया हुआ उसका समाधान उसी पुस्तक (रासे) से मिलता है। चंद वरदाई अपने आदि पर्व में बतलाता है कि उसके सम्वत् प्रचलित विक्रम सम्वत् में नहीं; किन्तु पृथ्वीराज के ग्रहण किए हुए उसके प्रकारांतर अनंद विक्रम संवत् में दिए गए हैं। इस नाम के लिए कई तर्क बतलाए गए हैं जिनमें से एक भी पूर्ण संतोषदायक नहीं है, तो भी वास्तव में जो ठीक प्रतीत होता है वह मि० श्यामसुन्दरदास का यह कथन है कि यदि अनंद विक्रम सम्वत् का प्रारम्भ प्रचलित विक्रम सम्वत् से, जो पहिचान के लिये सनंद विक्रम सम्वत् कहा जाता है, ९०-९१ वर्ष पीछे माना जावे तो रासे के सब सम्वत् शुद्ध मिल जाते हैं, इसलिये यह सिद्ध होता है कि अनंद विक्रम सम्वत् में ३३ जोड़ने से ई० स० बन जाता है[1]।"

ई० स० १९१३ में डॉक्टर बार्नेट ने 'एंटिक्विटीज़ ऑफ इंडिआ' नामक पुस्तक प्रसिद्ध की, जिसमें अनंद विक्रम सम्वत् का प्रारम्भ ई० स० ३३ से होना माना है[2]।"

विक्रम संवत् १९६७ में मिश्रबंधुओं ने 'हिंदी नवरत्न' नामक उत्तम पुस्तक लिखी; जिसमें चंद वरदाई के चरित्र के प्रसंग में रासे के संवतों के विषय में लिखा है कि "सन् संवतों का गड़बड़ अधिक संदेह का कारण हो सकता था, पर भाग्य वश विचार करने से वह भी निर्मूल ठहरता है। चंद के दिए संवतों में घटनाओं का काल अटकलपच्चू नहीं लिखा है, वरन् इतिहास द्वारा जाने हुए समय से चंद के कहे हुए संवत् सदा ९० वर्ष कम पड़ते हैं और यही अंतर एक दो नहीं प्रत्येक घटना के संवत् में देख पड़ता है। यदि चंद के किसी संवत् में ९० जोड़ दें तो ऐतिहासिक यथार्थ संवत् निकल आता है। चंद ने पृथ्वीराज के जन्म, दिल्ली गोद जाने, कन्नोज जाने, तथा अंतिम युद्ध के १११५, ११२२, ११५१, ११५८ संवत् दिए हैं और इनमें ९० जोड़ देने से प्रत्येक घटना के यथार्थ संवत् निकल आते हैं

---

१. जर्नल ऑफ दी रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, सन् १९०६, ई०, पृ०, ५००-१।

२. डा० बार्नेट एंटिक्विटीज़ ऑफ इंडिआ, पृ० ६५।

(पृथ्वीराज रासो, पृ० १४०, देखिए)। प्रत्येक घटना में केवल ६० साल का अंतर होने से प्रकट है कि कवि इन घटनाओं के संवतों से अनभिज्ञ न था नहीं तो किसी में ६० वर्षों का अन्तर पड़ता और किसी में कुछ और।......। चंद पृथ्वीराज का जन्म १११५ विक्रम अनंद सम्वत् में बताता है। अतः वह साधारण सम्वत् न लिखकर 'अनंद' सम्वत् लिखता है। अनंद का अर्थ साधारणतया आनंद का भी कहा जा सकता है, पर इस स्थान पर आनंद के अर्थ लगाने से ठीक अर्थ नहीं बैठता है। यदि आनंद शब्द होता तो आनंद वाला अर्थ बैठ सकता था। अतः प्रकट होता है कि चंद अनंद संज्ञा का कोई विक्रमीय सम्वत् लिखता है। यह अनंद संवत् जान पड़ता है कि साधारण संवत् से ६० वर्ष पीछे था......। अनंद संवत् किस प्रकार चला और साधारण संवत् से वह ६० वर्ष पीछे क्यों है, इसके विषय में पंड्याजी ने कई तर्क दिए हैं,पर दुर्भाग्यवश उनमें से किसी पर हमारा मत नहीं जमता है। बाबू-श्यामसुन्दरदासजी ने भी एक कारण बतलाया है, पर वह भी हमें ठीक नहीं जान पड़ता।...अभी तक हम लोगों को अनंद संवत् के चलने तथा उसके ६० वर्ष पीछे रहने का कारण नहीं ज्ञात है, पर इतना जरूर जान पड़ता है कि अनंद संवत् चलता अवश्य था और वह साधारण संवत् से ६० या ६१ वर्ष पीछे अवश्य था। उसके चलने का कारण न ज्ञात होना उसके अस्तित्व में संदेह नहीं डाल सकता[१]।"

इस प्रकार पंड्याजी के कल्पना किए हुए 'अनंद विक्रम संवत' को इंग्लैंड और भारत के विद्वानों ने स्वीकार कर लिया, परन्तु उनसे किसी ने भी यह जाँच करने का श्रम न उठाया कि ऐसा करना कहाँ तक ठीक है। राजपूताने में इतिहास की ओर दिन-दिन रुचि बढ़ती जाती है और कई राज्यों में इतिहास कार्यालय भी स्थापित हो गए हैं। ख्यातों आदि के अशुद्ध संवतों के विषय की चर्चा करते हुए कई पुरुषों ने मुझे यह कहा कि उन संवतों को अनंद विक्रम संवत् मानने से शायद वे शुद्ध निकल पड़े। अतएव उसकी जाँच कर यह निर्णय करना शुद्ध इतिहास के लिये बहुत ही आवश्यक है कि वास्तव में चंद ने 'पृथ्वीराजरासे' में प्रचलित विक्रम संवत् से भिन्न 'अनंद विक्रम संवत्' का प्रयोग किया है, या नहीं। पंड्याजी के कल्पना किए हुए उक्त संवत् में ६० या ६१ जोड़ने से 'रासे' तथा चौहानों की

---

१. मिश्रबंधु; हिन्दी नवरत्न, पृ० ३२२-२४।

ख्यातों में दिए हुए सब घटनाओं के सम्वत् शुद्ध मिल जाते हैं या नहीं, ऐसे ही जोधपुर और जयपुर राज्यों की ख्यातों में मिलने वाले संवतों तथा पृथ्वीराज, रावल समरसी तथा पृथाबाई के पट्टे परवानों के संवतों को अनंद विक्रम संवत् मानने से वे शुद्ध संवतों से मिल जाते हैं या नहीं, इसकी जाँच नीचे की जाती है।

'अनंद विक्रम संवत्' नाम

कर्नल टॉड की मानी हुई चौहानों की ख्यातों और पृथ्वीराज रासे के संवतों में १०० वर्ष की अशुद्धि पर से उन संवतों की संगति मिलाने के लिये पंड्याजी ने ई० स० १८८७ में पृथ्वीराजरासे की प्रथम संरक्षा में तो एक नए संवत् की कल्पना कर उसका नाम 'भाटों का संवत्' या 'भटायत संवत्' रक्खा और प्रचलित विक्रम संवत् से उसका १०० वर्ष पीछे होना मानकर लिखा कि "यदि हम रासे में लिखे संवतों की भाटों के विक्रमी शक के नियमानुसार परीक्षा करें तो सौ १०० वर्ष के एक से अंतर के हिसाब से वह शास्त्रीय विक्रमीय संवत् से बराबर मिल जाते हैं।" इस हिसाब से पृथ्वीराज का देहान्त, जो रासे में ४३ वर्ष की अवस्था में होना लिखा है, वह वि० सं० १२५८ में होना मानना पड़ता था। पृथ्वीराज का देहांत वि० सं० ११४८–४६ में होना निश्चित था, जिससे भटायत सं० से वह ६–१० वर्ष पीछे पड़ता था। इस अन्तर को मिटाने के लिये 'एकादश से पंचदह' में से (पंचदश) का गूढ़ार्थ 'पांच' मानकर उसकी संगति मिलाने का उन्होंने यत्न किया, जिसको साक्षर वर्ग ने स्वीकार न किया। तब उन्होंने उसी साल पृथ्वीराजरासे के आदि पर्व को छपवाते समय टिप्पणी में उस ६ वर्ष के फर्क को मिटाने के लिये पृथ्वीराज के जन्म–सम्बन्धी रासे के दोहे 'एकादश सै पंचदह विक्रम साक अनंद' में 'अनंद' शब्द का अर्थ नंद रहित' या 'नवरहित' कर अपने माने हुए भटायत संवत् के अनुसार पृथ्वीराजजी के देहांत संवत् को ठीक करने का उद्योग किया, परन्तु ऐसा करने पर उक्त दोहे का अर्थ 'विक्रम का नव-रहित संवत १११५ (अर्थात् ११०६) होता था, जिससे उन्होंने मूल में १०० का सूचक कोई शब्द न होने पर भी सौ रहित नव (अर्थात् ६१) कर उक्त संवत् का नाम 'अनंद विक्रम संवत्' रक्खा और लिखा कि "२५५ रूपक में जो अनंद शब्द प्रयोग हुआ है, उसमें किसी किसी को कुछ सन्देह रहेगा; अतएव हम फिर उसके विषय में कुछ अधिक कहते हैं। देखो संशय करना कोई बुरी बात नहीं है; किंतु वह सिद्धांत का मूल है। हमारे गौतम

ऋषि ने अपने न्यायदर्शन में प्रमाण और प्रमेय के पीछे संशय को एक पदार्थ माना है और उसके दूर करने के लिये ही मानो सब न्याय शास्त्र रचा गया है। यदि अनंद का नव-संख्या-रहित का अर्थ किसी की सम्मति में ठीक नहीं जँचता हो तो उससे इस स्थल में बहुत अच्छी तरह घटता हुआ कोई दूसरा अर्थ बतलाना चाहिए, परन्तु बात तब है कि वह सर्वतन्त्र सिद्धान्त Universally true से उसी तरह सिद्ध हो सकता है कि जैसे हमने यहाँ अपना विचार सिद्ध कर दिखाया है। सब लोग जानते हैं कि हमारे इस शोध के पहिले तक युवा और मध्य वय के कोई-कोई कवि लोग इस अनन्द संज्ञावाचक शब्द का गुणवाचक अर्थ शुभ Auspicious का करते हैं और चारण जाति के महामहोपाध्याय कविराज श्री श्यामलदासजी ने भी अपने इस महाकाव्य के खंडन-ग्रंथ में यही अर्थ माना है। परन्तु विद्वानों के विचारने और न्याय करने का स्थल है कि इस दोहे में आनंद का पाठ नहीं है, और न छंद के लक्षण के अनुसार वह बन सकता है; किन्तु स्पष्ट अनन्द पाठ है। यदि यहाँ संज्ञावाचक आनन्द पाठ भी होता तो भी उसका गुणवाचक शुभ का अर्थ नहीं हो सकता था; परन्तु संस्कृत का थोड़ासा ज्ञान रखने वाला भी जान सकता है······कि जब अनंद शब्द का सत्य अर्थ दुःख का है, तो फिर क्या सुख या शुभ का अर्थ करना अयोग्य नहीं है[1]।"

पंड्याजी ने यहाँ संस्कृत के 'अनंद' शब्द का अर्थ 'दुःख' माना है, परन्तु पृथ्वीराज रासा संस्कृत काव्य नहीं है कि उसको संस्कृत के नियमों से जकड़ दें। वह तो भाषा का ग्रंथ है। संस्कृत में 'अनंद' और 'आनन्द' शब्द एक दूसरे से विपरीत अर्थ में भले ही आवें; परन्तु हिंदी काव्यों में 'अनंद' शब्द आनन्द' के अर्थ में तुलसीदासजी आदि प्रसिद्ध कवियों के काव्यों में मिलता है[2]। हिंदी भाषा

---

१. पृथ्वीराज रासा, आदि पर्व, पृ० १४० टिप्पण।

२. पुनिमुनिगन दुहु भाइन्ह बंदे, अभिमत आसिख पाइ अनंदे॥

रामचरित मानस (इंडियन प्रेस का), पृ० ५६२,

नव गयंद रघुवीर मन, राजु अलान समान।
छूट जानि बन गमन सुनि, उर अनंद अधिकान॥

वही, पृ० ३६२

प्राकृत के अपभ्रंश रूप से निकली है और अपभ्रंश में बहुधा विभक्तियों को प्रत्यय नहीं लगते। यही हाल हिन्दी काव्यों का भी है। विभक्तियों के प्रत्यय न लगने से कई संज्ञावाचक शब्दों का प्रयोग गुणवाचक की तरह हो जाता है, जैसे कि पृथ्वीराज के जन्म-संवत् संबंधी दोहे में 'विक्रम साक' का अर्थ विक्रम का संवत् या वर्ष है और यहाँ विक्रम के साथ संबंधकारक का प्रत्यय नहीं है, जिससे उसका गुणवाचक अर्थ 'विक्रमी' संवत् हुआ। ऐसे ही 'अनंद साक' का संज्ञावाचक अर्थ 'आनंद का वर्ष' या गुणवाचक 'आनंददायक वर्ष या शुभ वर्ष' होता है; क्योंकि 'अनंद' के साथ विभक्ति सूचक प्रत्यय का लोप है। 'अनंद साक' पद ठीक वैसा ही है, जैसा कि 'आनंद का समय,' 'आनंद का स्थान' आदि। इसलिये उक्त दोहे का वास्तविक अर्थ यही है कि 'विक्रम के शुभ संवत ११·५ में पृथ्वीराज का जन्म हुआ'। ज्योतिषी लोग अपने यजमानों के जन्मपत्र वर्षपत्र आदि में सामान्यरूप से 'शुभसंवत्सरे' लिखते हैं, तो पृथ्वीराज जैसे प्रतापी राजा के संबंध का इतना बड़ा काव्य लिखने वाला उनके जन्म-सम्वत् को 'शुभ' कहे तो इसमें आश्चर्य की बात कौनसी है। बहुधा राजपूताने में पत्रों के अंत में 'शुभमिती' और स्त्रियों के पत्र के अंत में 'मिती आनंद की' लिखने की रीति पाई जाती है।

जिन विद्वानों ने 'अनंद संवत्' को स्वीकार किया है, उन्होंने 'अनंद' शब्द पर से नहीं; किंतु पंड्याजी और बाबूजी के इस कथन पर विश्वास करके कि 'रासे के संवतों में ९० या ९१ वर्ष मिलाने से सब संवत शुद्ध मिल जाते हैं, अनंद संवत् का अस्तित्व माना है। हम आगे जाँच कर यह बतलावेंगे कि वास्तव में संवत नहीं मिलते और न चौहानों की ख्यातों, जोधपुर और जयपुर के राजाओं के संवत् तथा पृथ्वीराज, समरसी और पृथाबाई के पट्टे परवानों के संवत् में ९० या ९१ वर्ष मिलाने से वे शुद्ध संवतों से मिल जाते हैं। तब स्पष्ट हो जायगा कि रासे के कर्ता ने 'अनंद शक' का प्रयोग 'आनंददायक' या 'शुभ'

पौढि रहो उमपै अति ही मतिराम अनंद अमात नहीं के।

मतिराम का रसराज (मनोहर प्रकाश), पृ० १२६,

आये विदेश तें प्रानप्रिया, मतिराम अनंद बढाय अलेखें।

वही पृ० १५०

के अर्थ में किया है और 'अनंद विक्रम संवत्' नाम की कल्पित सृष्टि केवल पंड्याजी ने ही खड़ी की है।

पृथ्वीराज के जन्म का संवत्।

पृथ्वीराज रासे में पृथ्वीराज का जन्म वि० सं० १११५ में होना लिखा है। पंड्याजी इस संवत् को अनंद विक्रम संवत् मानकर उसका जन्म सनंद विक्रम संवत् (१११५ + ९०-९१=) १२०५-६ में होना बतलाते हैं। इसके ठीक निर्णय के लिये पृथ्वीराज के दादा अर्णोराज (आना) से लगाकर पृथ्वीराज तक के अजमेर के इतिहास की संक्षेप से आलोचना करना आवश्यक है। आधुनिक शोध के अनुसार अर्णोराज से पृथ्वीराज तक का वंशवृक्ष प्रत्येक राजा के निश्चित ज्ञात समय के साथ नीचे लिखा जाता है—

१ अर्णोराज
आनल्ल देव
आनक
आनाक
वि०सं०११९६-१२०७)

(मारवाड़ की सुधवासे) (गुजरात की कांचन देवी से)

२ (जगद्देव) — ५ पृथ्वीभट्ट, पृथ्वीराज (दूसरा), पृथ्वीदेव, पेथडदेव (वि.सं.१२२४. १२२५,१२२६

१

३ विग्रहराज–चौथा, बीसलदेव (वि० सं ०१२१०, १२११, १२२०
- ४ अपरांगगेय, अमरगांगेय, अमरगंगू
- नागार्जुन

६ सोमेश्वर (वि०सं०१२२६,१२२८, १२२९, १२३०, १२३४
- ७ पृथ्वीराज तीसरा वि.सं.१२३६,१२३९ १२४४, १२४५)
  - ८ गोविन्दराज
- ९ हरिराज (वि० सं० १२५१)

(१) पृथ्वीराज विजय में अर्णोराज की दो रानियों के नाम मिलते हैं– मारवाड़ की सुधवा और गुजरात के राजा जयसिंह (सिद्धराज) की पुत्री कांचन-देवी। सुधवा के तीन पुत्र हुए, जिनमें से केवल सबसे छोटे विग्रहराज का नाम

उसमें दिया है। कांचनदेवी से सोमेश्वर का जन्म हुआ[1]। सुधवा के ज्येष्ठ पुत्र

---

१. अवीचिभागो मरुभूमिनामा खण्डो द्युलोकस्य गूर्जराख्यः।
परीक्षणायेव दिशि प्रतीच्यामेकीकृतौ पाशधरेण यौ द्वौ॥ [२६]
तयोर्द्वयोरप्युदिते नरेन्द्रं, तं वत्नुस्तुल्यगुणे महिष्यौ।
रसातलस्वर्गभवे इव द्वे, त्रिलोचनं चन्द्रकलात्रिसर्गे॥ [३०]
पूर्वा तयोर्नाम कृतार्थयन्ती तं प्राप्य कान्तं सुधवाभिधाना।
सुतानवापत्प्रकृतेस्समानान्गुणानिवान्योन्यविभेदिनस्त्रीन् ॥ [३१]
(पृथ्वीराज विजय महाकाव्य, सर्ग ६)।

गूर्जरेन्द्रो जयसिंहस्तस्मै यां दत्तवान्सा काञ्चनदेवी रात्रौ च दिने च सोमं सोमेश्वरसंज्ञमजनयत्"
(पृथ्वीराज विजय, सर्ग ६, श्लोक [३४] पर जोनराज की टीका, मूल श्लोक नष्ट होगया है)।

सूनुः श्रीजयसिंहोऽस्माज्जायते स्म जगज्जयी॥ २३॥
अमर्षणं मनः कुर्वन्विपक्षोर्वीभृदुन्नतौ।
अगस्त्यत् इव यस्तूर्णमर्णोराजमशोषयत॥ २७॥
गृहीता दुहिता तूर्णमर्णोराजस्य विष्णुना।
दत्तानेन पुनस्तस्मै भेदोभूदुभयोरयम्॥ २८॥
द्विषां शीर्षाणि लूनानि दृष्ट्वा तत्पादयोः पुरः।
चक्रे शाकंभरीशोमि शङ्कितः प्रणतं शिरः॥ २९॥
(सोमेश्वर रचित कीर्तिकौमुदी, सर्ग २)

'कीर्तिकौमुदी' का कर्ता, गुर्जरेश्वरपुरोहित सोमेश्वर, गुजरात के राजा जयसिंह (सिद्धराज) का चौहान (शाकंभरीश्वर) अर्णोराज (आना) को जीतना और अपनी पुत्री का विवाह उस (अर्णोराज) के साथ करना स्पष्ट लिखता है, तो भी 'बंबई गॅजेटियर' का कर्ता सोमेश्वर के कथन को स्वीकार न कर लिखता है कि यह भूल है, क्योंकि अर्णोराज के साथ की लड़ाई और संधि कुमारपाल के समय की घटनाएँ हैं (बंबई गॅजेटिअर, जि० १, भाग १, पृ० १७६)। यहाँ सोमेश्वर की भूल बतलाता हुआ उक्त 'गॅजेटियर' का कर्त्ता स्वयं भूल कर गया है, क्योंकि 'प्रबन्धचिंतामणि' का कर्ता मेरुतुंगाचार्य भी जयसिंह और आनाक (अर्णोराज=आना) के बीच की लड़ाई का उल्लेख करता है (सपादलक्षः सहभूरिलक्षैरानाकभूपाय नताय दत्तः। दत्ते यशोवर्मणि मालवोपि त्वया न सेहे द्विषि सिद्धराजः (प्रबन्धचिंतामणि पृ० १६०)। 'पृथ्वीराज विजय' के कर्त्ता जयरथ (जयानक) ने अपना काव्य वि० सं० १२४८ के पूर्व बनाया और इसमें जयसिंह की पुत्री कांचनदेवी का विवाह

(जगदेव) के विषय में लिखा है कि उसने अपने पिता की वही सेवा बजाई जो भृगुनंदन (परशुराम) ने अपनी माता की की थी (अर्थात् उसने अपने पिता को मारड़ाला) और वह दीपक की नाईं अपने पीछे दुर्गन्ध (अपयश) छोड़ मरा[1]। वि० सं० ११९६ के अर्णोराज के समय के दो शिलालेख जयपुर राज्य के शेखावाटी प्रान्त में प्रसिद्ध जीणमाता के मन्दिर के एक स्तम्भ पर खुदे हुए हैं[2] और चित्तौड़ के किले तथा पालड़ी के शिलालेखों से पाया जाता है कि गुजरात के चौलुक्य (सोलंकी) राजा कुमारपाल की अर्णोराज के साथ की लड़ाई वि० सं० १२०७ के आश्विन या कार्तिक में हुई होगी[3]। उसके पुत्र विग्रहराज (वीसलदेव) ने राज्य पाने के बाद वि० सं० १२१० माघशुक्ला ५ को 'हरकेलि' नाटक समाप्त किया[4]। अतएव अर्णोराज और जगदेव दोनों का देहान्त वि० सं० १२०७ के आश्विन और १२१० के माघ के बीच किसी समय हुआ होगा।

अर्णोराज से होना लिखा है, इतना ही नहीं, किंतु उस कन्या से उत्पन्न होने वाले सोमेश्वर को जयसिंह का अपने यहाँ लेजाने और उसके उत्तराधिकारी कुमारपाल के द्वारा गुजरात में सोमेश्वर का लालन-पालन होने आदि का विस्तार के साथ उल्लेख किया है। कीर्तिकौमुदी वि० सं० १२८२ के आसपास बनी है। इन दोनों काव्यों का कथन 'बम्बई गेज़ेटिअर' के कर्ता के कथन की अपेक्षा अधिक प्रामाणिक है।

१. प्रथमस्सुधवासुतस्तदानीं परिचर्यां जनकस्य तामकार्षीत्।
प्रतिपाद्यजलाञ्जलिं घृणायै विदधे यां भृगुनन्दनो जनन्याः ॥ [१२ ॥]
स्वयमेव विनश्य गर्हणीयं व्यतनोद्दीप इवानुरागगन्धम् ॥ [१३ ॥]
पृथ्वीराजविजय, सर्ग ७।

२. प्रोग्रेस रिपोर्ट ऑफ दि आर्किऑलोजिकल, सर्वे, वेस्टर्न सर्कल, ई० स० १९०९-१०, पृ० ५२।

३. इन्डि० एँटि; जि० ४०, पृ० १६६।

४. संवत् १२१० मार्गशुदि ५ आदित्यदिने श्रवणनक्षत्रे मकरस्थे चन्द्रे हर्षणयोगे बालवकरणे हरकेलिनाटकं समाप्तं ॥ मंगलं महा श्रीः ॥ कृतिरियं महाराजाधिराजपरमेश्वर श्रीविग्रहराजदेवस्य (शिलाओं पर खुदा हुआ हरकेलि नाटक, राजपूताना म्यूज़िअम, अजमेर, में सुरक्षित)।

(२) जगद्देव का नाम; पितृघाती (हत्यारा) होने के कारण, राजपूताने की रीति के अनुसार बीजोल्यां के वि० सं० १२२६ के शिलालेख तथा 'पृथ्वीराज विजय' में नहीं दिया; परन्तु 'हमीरमहाकाव्य'[1] और 'प्रबंध कोष (चतुर्विंशति प्रबन्ध)' की हस्तलिखित पुस्तक के अन्त में दी हुई चौहानों की वंशावली[2] में उसका नाम जगद्देव मिलता है। जगद्देव के पुत्र पृथ्वीभट के विद्यमान होने पर भी उसके पीछे उसका छोटा भाई विग्रहराज (वीसलदेव) राजा हुआ, जिसका कारण यही अनुमान किया जा सकता है कि जैसे मेवाड़ के महाराणा कुम्भकर्ण (कुम्भा) को मार कर उसका ज्येष्ठ पुत्र उदयसिंह (ऊदा) मेवाड़ का राजा बना; परन्तु सर्दारों आदि ने उसकी अधीनता स्वीकार न की और राणा कुंभा का छोटा पुत्र रायमल सर्दारों की सहायता से उसे निकाल कर मेवाड़ का राजा बना, वैसे ही पृथ्वीभट से विग्रहराज ने अजमेर का राज्य लिया हो।

(३) विग्रहराज (वीसलदेव) चौथे के राजत्वकाल के संवत् वाले शिलालेख अब तक ४ मिले हैं, जिनमें से उपर्युक्त 'हरकेलिनाटक' की पुष्पिका वि० सं० १२१० की, मेवाड़ के जहाजपुर जिले के लोहारी गाँव के पास के भूतेश्वर महादेव के मन्दिर के स्तम्भ पर का वि० सं० १२११ का[3] और अशोक के लेख वाले देहली के शिवालिक स्तम्भ पर [कार्तिकादि] वि० सं० १२२० (चैत्रादि १२२१) वैशाख शुदि १५ (ता० ६ एप्रिल, ई० स० ११६४) गुरुवार (वार एक ही लेख में दिया है) के दो[4] हैं। पृथ्वीभट (पृथ्वीराज दूसरे) का सबसे पहला लेख वि० सं० १२२४ माघशुक्ल ७ का हाँसी से मिला है[5]। अतएव विग्रहराज (वीसलदेव) चौथे और उसके पुत्र अमर गांगेय दोनों की मृत्यु वि० सं० १२२१ और १२२४ के बीच किसी समय हुई, यह निश्चित है।

---

१. त्रिस्मापकश्रोर्भवति स्म तस्माद्भूभृत् जगद्देव इति प्रतीतः।
हंमीरमहाकाव्य, सर्ग २, श्लो० ५२।

२. गउडवहो, अँग्रेजी भूमिका, पृ० १३५–३६ (टिप्पण)।

३. ॐ ॥ सम्वत् १२११ श्रीः (श्री) परमपाशु (शु) पताचार्येन (ण) विश्वेश्वर [प्र] ज्ञेन श्रीवीसलदेवराज्ये श्रीसिद्धेश्वरप्रासादे मण्डपं [भूषितं] ॥
(लोहारी के मन्दिर का लेख, अप्रकाशित)।

४. इन्डि० एन्टि०, जि० १९, पृ० २१८।

५. वही, जि० ४१, पृ० १९।

(४) अपरगांगेय (अमरगांगेय) से पितृघाती जगदेव के पुत्र पृथ्वीभट्ट ने राज्य छीन लिया हो, ऐसा पाया जाता है। क्योंकि मेवाड़ राज्य के जहाजपुर जिले के धौड़ गांव के पास के रूठी राणी के मंदिर के एक स्तंभ पर के वि०सं० १२२५ ज्येष्ठ वदि १३ के पृथ्वीदेव (पृथ्वीभट्ट) के लेख में उसको रणखेत में अपने भुजबल से शाकंभरी के राजा को जीतने वाला[1] बतलाया है। बालक अपरगांगेय की मृत्यु विवाह होने से पहले हुई हो और वह एक वर्ष से अधिक राज करने न पाया हो। 'पृथ्वीराजविजय' में लिखा है कि 'पृथ्वीराज के द्वारा सूर्यवंश (चौहानवंश) की उन्नति को देखते हुए यमराज ने इस (विग्रहराज) के पुत्र अपरगांगेय को हर लिया[2]।

(५) पृथ्वीभट (पृथ्वीराज दूसरे) के समय के अब तक तीन शिलालेख मिले हैं, जिनमें से उपर्युक्त हाँसी का वि०सं०१२२५ का, धौड़ गाँव का, १२२५ का (ऊपर लिखा हुआ) और मेवाड़ के मेनाल नामक प्राचीन स्थान के मठ का १२२६ का[3] (बिना मास पक्ष और तिथि) का है। उसके उत्तराधिकारी सोमेश्वर का सब से पहला वि०सं० १२२६ फाल्गुन वदि ३ का मेवाड़ के बीजोल्यां गांव के पास की चट्टान पर खुदा हुआ प्रसिद्ध लेख[4] है, जिसमें सामंत से लगा कर सोमेश्वर तक की सांभर और अजमेर के चौहानों की पूरी वंशावली मिलती है। इन लेखों से निश्चित है कि पृथ्वीभट्ट का देहान्त और सोमेश्वर का राज्याभिषेक ये दोनों घटनाएँ वि०सं० १२२६ में फाल्गुन के पहले किसी समय हुईं।

---

१. ॐ सं० १२२५ ज्येष्ठ वदि १३ अद्येह श्री सपादलक्षमंडले महाराजाधिराज परमेश्वर परमभट्टारक उमापतिवरलब्धप्रसाद प्रौढ़प्रताप निजभुजरणांगणविनिर्जितशाकंभरीभूपाल श्री प्रिथिम्विदेवविजयराज्ये (धौड़ गाँव के रूठी राणी के मंदिर के एक स्तंभ पर का लेख—अप्रकाशित)।

२. सुतोप्यपरगाङ्गेयो निन्येस्य रविसूनुना।
उन्नतिं रविवंशस्य पृथ्वीराजेन पश्यता ॥ [५४ ॥]
पृथ्वीराजविजय सर्ग ८।

३. बंगाल एशिआटिक् सोसाइटी का जर्नल, ई० सं० १८८६, हिस्सा १, पृ० ४६।

४. वही, पृ० ४०–४६।

पृथ्वीराजविजय में लिखा है कि 'सब गुणों से सम्पन्न, पितृवैरी (जगद्देव) का पुत्र, पृथ्वीभट्ट भी (विग्रहराज को लाने के लिये अचानक चल धरा= (मर गया[1]" ।

(६) सोमेश्वर के विषय में 'पृथ्वीराज विजय' में लिखा है कि "उसका जन्म होने पर जब उसके नाना (जयसिंह=सिद्धराज) ने ज्योतिषियों से यह सुना कि रामचंद्र अपना बाकी रहा हुआ कार्य करने के लिये उस (सोमेश्वर) के यहाँ जन्म लेंगे, तब उसने उसको अपने नगर में मँगवा लिया। उसके पीछे कुमारपाल ने कुमार (बालक) सोमेश्वर का पालन किया, जिससे उसका 'कुमारपाल' नाम सार्थक हुआ। उसकी वीरता के कारण वह (कुमारपाल) उसको सदा अपने पास रखता था। एक हाथी से दूसरे हाथी पर उछलते हुए उस (सोमेश्वर) ने कौंकण के राजा की छुरिका (छोटी तलवार) छीनली और उसी से उसका सिर काट डाला; फिर उसने त्रिपुरी (चेदि की राजधानी तेवर) के कलचुरि राजा की पुत्री (कर्पूरदेवी) से विवाह किया, जिससे ज्येष्ठ (पक्ष नहीं दिया) की द्वादशी को पृथ्वीराज का जन्म हुआ[2]। उसका चूड़ाकरण संस्कार होते ही रानी के

---

१. प्रत्यानेतुमिवाकाण्डे पूर्णोपि सकलैर्गुणैः ।
पितृवैरितनूजोऽपि प्रतस्थे पृथिवीभटः ॥ [५६ ॥]
पृथ्वीराजविजय, सर्ग ८ ।

२. उत्पत्स्यते कंचन कार्य शेषं निर्मातुकामस्तनयो ऽस्यरामः ।
सांवत्सरैरित्युदितानुभावं मातामहस्तं स्वपुरं निनाय ॥ [३५ ॥]
पृथ्वीराजविजय, सर्ग ६ ।

अथ गूर्जरराजमूर्जितानां मुकुटालङ्करणं कुमारपालः ।
अधिगत्य सुतासुतं तदीयं परिरक्षन्नभवद्यथार्थ नामा ॥ [११ ॥]
[क्रमशो रथि] यन्तृसादिपत्तिव्यवहारेषु विसारिणा चतुर्धा ।
युधि वीरसेन शुद्धिमन्तं न समीपादमुचत्कुमारपालः ॥ [१४ ॥]
हनुमानिव शैलतस्स शैलं द्विरदेन्द्राद्द्विरदेन्द्रमुत्पतिष्णुः ।
छुरिकामपहृत्य कुङ्कणेन्द्रं गमयामास कबंधता तयैव ॥ [१५ ॥]
इति साहससाहचर्यचर्यैस्समयज्ञैः प्र[तिपादि] तप्रभावाम् ।
तनयां स सपादलक्षपुण्यैरुपयेमे त्रिपुरीपुर[न्द]रस्य ॥ [१६ ॥]

फिर गर्भ रहा[1] और माघ सुदि ३ को हरिराज का जन्म हुआ[२]।" पृथ्वीराज विजय' के इस लेख से पाया जाता है कि जब कुमारपाल ने राज पाया उस समय अर्थात् वि० सं० ११९९ में तो सोमेश्वर बालक था; परन्तु कौंकण के राजा के साथ की लड़ाई के समय वह युद्ध में वीरता बतलाने के योग्य अवस्था को पहुँच गया था। कौंकण के जिस राजा का उक्त काव्य में उल्लेख किया गया है, वह उत्तरी कौंकण का शिलारावंशी राजा मल्लिकार्जुन है। कुमारपाल की उस पर की चढ़ाई के विषय में 'प्रबंधचिंतामणि' से पाया जाता है कि कुमारपाल के दर्बार में एक भाट ने मल्लिका-

---

ज्येष्ठत्वं चरितार्थतामथ नयन्मासान्तरापेक्षया
ज्यैष्ठस्य प्रथयन्परन्तपतया ग्रीष्मस्य भीष्मां स्थितिम्।
द्वादश्यास्तिथिमुख्यतामुपदिशन्भानोः प्रतापोन्नतिं
तन्वन्गोत्रगुरोर्निजेन नृपतेर्जज्ञे सुतो जन्मना॥ [५०]

वही, सर्ग ७।

पृथ्वीं पवित्रतां नेतुं राजशब्दं कृतार्थताम्।
चतुर्वर्णधनं नाम पृथ्वीराज इति व्यधात्॥ [३०॥]

वही, सर्ग ८।

१. चूडाकरणसंस्कार बहुधा प्रथम वर्ष में, नहीं तो तीसरे में होता है।

२. चूडाकरणसंस्कारसुन्दरं तन्मुखं बभौ।
पाश्चात्यभागसंप्राप्तलक्ष्मेव शशिमण्डलम्॥ [४५॥]
अत्रान्तरे पुनर्देवीवपुः प्रेंखत पार्थिवः।
स्वप्नदृष्टभुजङ्गेन्द्रभोगकान्त्येव पाण्डुरम्॥ [४६॥]
प्रसूतपृथिवीराजा देवी गर्भवती पुनः।
उदंप्यत्कुमुदा फुल्लपद्मेव सरसी बभौ॥ [४६॥]
माघस्याथ तृतीयस्यां सितायामपरं सुतम्।
प्रसादमिव [पार्वत्या मूर्तप], रमवाप सा॥ [४६॥]

युद्धध्वस्य हस्तिदलनलीलां भविष्यन्तीं जानतेव हरिराजनाम्नायं स्वस्य कृतार्थत्वायेव स्पृष्टः। हरिराजो हि हस्तिमर्दनः। (श्लोक ५० पर जोनराज की टीका, मूल श्लोक बहुतसा नष्ट होगया है)।

पृथ्वीराजविजय, सर्ग ८।

र्जुन को 'राजपितामह' कहा। इस पर क्रुद्ध होकर कुमारपाल ने अपने मंत्री आँबड को सेनापति बनाकर अपने सामन्तों सहित उस पर भेजा। उसने कोंकण में प्रवेश किया और कलविणि नदी को पार करने पर मल्लिकार्जुन से उसकी हार हुई और वह काला मुँह कराकर लौटा। इस पर कुमारपाल ने बड़ी सेना के साथ फिर उसी को उस पर भेजा और उसी नदी के पार फिर उससे लड़ाई हुई, जिससे आँबड़ ने उसके हाथी पर चढ़ कर अपनी तलवार से उसका सिर काट डाला और कोंकण पर कुमारपाल का अधिकार जमा दिया। उसने मल्लिकार्जुन के सिरको सोने में मढ़ा लिया और दरबार में बैठे हुए कुमारपाल को कई बहुमूल्य उपहारों के साथ भेट किया। इस पर कुमारपाल ने आँबड़ को ही राजपितामह की उपाधि दी।[1] प्रबंधचिंतामणिकार मल्लिकार्जुन का सिर काटने का यश सेनापति आँबड़ को देता है, परन्तु 'पृथ्वीराजविजय', जो प्रबन्धचिंतामणि' से अनुमान ११४ वर्ष पूर्व बना था, उस वीर कार्य का सोमेश्वर के हाथ से होना बतलाता है, जो अधिक विश्वास के योग्य है। मल्लिकार्जुन के दो शिलालेख शक सं० १०७८ और १०८२ (वि०सं०१२१३ और १२१७) के[2] मिले हैं और उसके उत्तराधिकारी अपरादित्य का पहला शिलालेख शक सं० १०८४ (वि०सं०१२१९)[3] का है। अतएव सोमेश्वर ने मल्लिकार्जुन को वि० सं० १२१७ या १२१८ में मारा होगा, जिसके पीछे उसने चेदि देश की राजधानी त्रिपुरी के हैहय (कलचुरि) वंशी राजा की पुत्री से विवाह किया। टीकाकार ने एक श्लोक की टीका में राजा का नाम तेजल लिखा है किन्तु 'पृथ्वीराजविजय' के एक और श्लोक में श्लेष से यह अर्थ संभव है कि कर्पूरदेवी के पिता का नाम अचलराज हो। उससे पृथ्वीराज का जन्म हुआ जो वि०सं० १२१७ के पीछे किसी समय होना चाहिए, न कि वि०सं० १२०५-६ में। उस समय तक तो सोमेश्वर युवावस्था को भी न पहुँचा होगा।

'पृथ्वीराजविजय' में पृथ्वीभट की मृत्यु के वर्णन के बाद लिखा है कि 'जिसमें से पुरुष रूपी मोती गिरते गए, ऐसे सुधवा के वंश को छोड़ कर राजश्री

---

१ प्रबन्धचिंतामणि, पृ० २०१—२०३।

२ बंबई गेजिटिअर, जि० १, भाग १, पृ० १८६।

३ वही, पृ० १८६।

सोमेश्वर को राजा देखने के लिये उत्कण्ठित हुई। महामन्त्री यश और प्रताप रूपी दोनों पुत्रों (पृथ्वीराज और हरिराज) सहित राजा (सोमेश्वर) को सपादलक्ष में लाए और दान तथा भोग जैसे उन दोनों पुत्रों को लेकर संपत्ति की मूर्ति स्वरूप कर्पूरदेवी ने अजयदेव की नगरी (अजमेर) में प्रवेश किया। परलोक को जीतने की इच्छा वाले राजा ने मंदिरादि निर्माण कराए और इस तरह पितृ-ऋण से मुक्त होकर पिता के दर्शन के लिए त्वरा की (अर्थात् जल्दी ही मरणोन्मुख हुआ)। मेरे पिता अकेले स्वर्ग में कैसे रहें और बालक पृथ्वीराज की उपेक्षा भी कैसे की जावे, ऐसा विचार कर उसने उस (पृथ्वीराज) को राज्य सिंहासन पर बिठलाया और अपनी व्रतचारिणी रानी पर उसकी रक्षा का भार छोड़ कर पितृभक्ति के कारण वह स्वर्ग को सिधारा[1]।" इससे भी निश्चित है कि सोमेश्वर के देहान्त के समय पृथ्वीराज बालक ही था। सोमेश्वर के राज्य समय के ५ शिलालेख मिले हैं, जिनमें से बीजोल्यां का उपर्युक्त लेख वि०सं० १२२६ का, धौड़ गाँव के उक्त मन्दिर के दो स्तंभों पर वि० सं० १२२८ ज्येष्ठ सुदि १०[2] और १२२६ श्रावण सुदि १३

---

१. मुक्त्वेति सुवत्रावंशं गलत्पुरुषमौक्तिकं।
देवं सोमेश्वरं द्रष्टुं राजश्रीरुदकण्ठत ॥ [५७]

आत्मजाभ्यामिव यशःप्रतापाभ्यामिवान्वितः।
सपादलक्षमानिन्ये महामात्यैर्महीपति ॥ [५८]

कर्पूरदेव्यथादाय दानभोगाविवात्मजौ।
विवेशाजयराजस्य सपन्मूर्तिमतो पुरीम् ॥ [५६]

ऋणशुद्धिं विनिर्माय निर्माणैरीदृशैः पितुः।
तत्वरे दर्शनं कर्तुं परलोकजयी नृपः ॥ [७१]

ए [काकिना हि] मत्पित्रा स्थीयते त्रिदिवे कथम्।
बालश्च पृथ्वीराजो मया कथमुपेक्ष्यते ॥ [७२]

[इतीवास्याभिषिक्तस्य रक्षार्थं व्रतचारिणीम्।
स्थापयित्वा निजां देवीं पितृ] भक्त्या दिवं ययौ ॥ [७३]

पृथ्वीराज विजय सर्ग ८।

२ ओं ॥ स्वस्ति ॥ सम्वत् १२२८ जेष्ठ (ज्येष्ठ) सुदि १०............समस्त राजावली-समलंकृतपरमभट्टारकः (क) महाराजाधिराजपरमेस्व (श्व) रपरममाहेस्व (श्व) रश्रीसोमेस्वः (श्व) रदेवकुस (श) ली कल्याणविजयराज्ये०

धोड़गाँव का लेख (अप्रकाशित)।

के[1] जयपुर राज्य के प्रसिद्ध जीणमाता के मंदिर के स्तम्भ पर वि० सं० १२३० का[2] और मेवाड़ (उदयपुर) राज्य के जहाजपुर जिले के आँवलदा गाँव से मिले हुए सती के स्तम्भ पर वि० सं० १२३४ भाद्रपद शुदि ४ शुक्रवार का[3] है। सोमेश्वर के पुत्र पृथ्वीराज के समय के कई लेख मिले हैं, जिनमें से पहला उपर्युक्त भूतेश्वर महादेव के मन्दिर के बाहर के एक सती के स्तम्भ पर वि० सं० १२३६ आषाढ़ वदि १२ का[4] है। इन लेखों से स्पष्ट है वि० सं० १२३४ और १२३६ के बीच किसी समय सोमेश्वर का देहान्त और पृथ्वीराज का राज्याभिषेक हुआ। उस समय तक तो पृथ्वीराज बालक था, जैसा कि ऊपर लिखा गया है। पृथ्वीराज विजय में विग्रहराज (बीसलदेव) चौथे की मृत्यु के प्रसंग में यह भी लिखा है कि 'अपने भाई (सोमेश्वर) के दो पुत्रों से पृथ्वी को सनाथ जानने पर विग्रहराज ने अपने को कृतार्थ माना और वह शिव के सान्निध्य में पहुँचा[5]। इसका तात्पर्य यही है कि विग्रहराज ने अपनी मृत्यु के पहले सोमेश्वर के दो पुत्र होने की खबर सुनली थी। उसका देहान्त चैत्रादि वि० सं० १२११ और १२२४ के बीच बीच किसी समय

---

१. ओं ॥ संवत् १२२६ श्रावण सुदी १३ अद्येह श्रीमत् (द) अजय मेरुदुर्गे सपादलक्ष ग्रामस......॥ समस्तराजावलिसमलंकृतः स परम भट्टारकः महाराजाधिराज परमेस्व (श्व) रपरम माहेस्वर (श्वरः) ॥ श्रीसोमेस्व (श्वर) रदेव कुशलीकल्याण विजय राज्ये०

धोड़ गाँव का लेख (अप्रकाशित)

२. प्रोग्रेस रिपोर्ट ऑफ् दी आर्किऑलाजिकलसर्वे ऑफ इंडिआ, वेस्टर्न सर्कल, ई० स० १६०६-१०, पृ० ५२।

३. ओं ॥ स्वस्ति श्री महाराजाधिराज श्री सोमेस्व (श्व) रदेवमहाराये (ज्ये) डोडरा सिंधरा-सुत सिदराउ ·· संवत् १२३४ भाद्र [पद] शुदि ४ शुक्र, दिने०

आँवलदा गाँव का लेख (अप्रकाशित)

४. संवत १२३६ आषाढ़ वदि १२ श्रीपृथ्वीराजराज्ये वागड़ी सलखण पुत्र जलसल। मातु- काल्हीं०

लोहारीगाँव का लेख (अप्रकाशित)

५. अथ भ्रातुरपत्याभ्यां सनाथां जानता भुवम्।
जग्मे विग्रहराजेन कृतार्थेन शिवान्तिकम् ॥ ५३ ॥

पृथ्वीराज विजय सर्ग ८

होना ऊपर बतलाया जा चुका है। इसलिये पृथ्वीराज का जन्म वि० सं० १२२१ के आसपास होना स्थिर होता है। 'पृथ्वीराज रासे' में उक्त घटना का संवत् १११५ दिया है। यदि अनंद विक्रम संवत् की कल्पना के अनुसार उसमें ९०-९१ मिलावें तो भी पृथ्वीराज का जन्म वि० सं० १२०५-६ में आता है, जो सर्वथा असंभव है। यदि उक्त संवत् में पृथ्वीराज का जन्म होता, तो सोमेश्वर के देहान्त के समय पृथ्वीराज की अवस्था लगभग ३० वर्ष की होती और सोमेश्वर को उसकी रक्षा का भार अपनी रानी को सौंपने की आवश्यकता न रहती।

पृथ्वीराज का देहली गोद जाना

'पृथ्वीराज रासे' में लिखा है कि "देहली के तँवर (तोमर) वंशी राजा अनंगपाल ने अपनी पुत्री कमला का विवाह सोमेश्वर के साथ किया, जिससे पृथ्वीराज का जन्म हुआ। अन्त में अनंगपाल देहली का राज्य अपने दौहित्र पृथ्वीराज को देकर बद्रिकाश्रम में तप करने को चला गया।" पंड्याजी ने अनंद विक्रम संवत् ११२२ और सनंद (प्रचलित) विक्रम संवत् १२१२-१३ में पृथ्वीराज का देहली गोद जाना और उस समय उसकी अवस्था ७ वर्ष की होना माना है; परन्तु उस समय तक तो पृथ्वीराज का जन्म भी नहीं हुआ था, जैसा कि ऊपर दिखाया जा चुका है। न तो सोमेश्वर के समय देहली में तँवर अनंगपाल का राज्य था और न उसकी पुत्री कमला का विवाह सोमेश्वर के साथ हुआ। इसलिये 'पृथ्वीराज रासे' का यह कथन माननीय नहीं; क्योंकि देहली का राज्य तो विग्रहराज (वीसलदेव) चौथे ने ही अजमेर के अधीन कर लिया था। बीजोल्या के उक्त वि० सं० १२२६ के लेख में विग्रहराज के विजय के वर्णन में लिखा है कि 'ढिल्ली (देहली) लेने से थके हुए और आशिका (हाँसी) प्राप्त करने से स्थगित अपने यश को उसने प्रतोली (पोल) और बलभी (झरोखे) में विश्रांति दी।'[1] अर्थात् देहली और हाँसी को जीत कर उसने अपना यश घर घर में फैलाया। देहली के शिवालिक स्तम्भ पर के उसके लेख में हिमालय से विंध्य तक के देश को

---

१. प्रतोल्यां च वलभ्यां च येन विश्रामितंयशः [।]
ढिल्लिका ग्रहणश्रांतमाशिकालाभलंभितः (तं) ॥ २२ ॥
बीजोल्यां का लेख (छाप पर से)

विजय करना लिखा है।[1] हाँसी से मिले हुए पृथ्वीराज (पृथ्वीभट) दूसरे के वि० सं० १२२४ के शिलालेख से पाया जाता है कि उस समय वहाँ का प्रबन्धकर्त्ता उसका मामा गुहिल वंशी किल्हण था।[2] ऐसे ही देहली का राज्य भी अजमेर के राजा के किसी रिश्तेदार या सामंत के अधिकार में होगा। 'तबकात् इ-नासिरी' में शहाबुद्दीन गोरी के साथ की पहली लड़ाई में देहली के [राजा] गोविंदराज का पृथ्वीराज के साथ होना और उसी (गोविंदराज) के भाले से सुल्तान का घायल होकर लौटना तथा दूसरी लड़ाई में, जिसमें पृथ्वीराज की हार हुई, उस गोविंदराज का मारा जाना लिखा है।[3] इससे निश्चित है कि पृथ्वीराज (तीसरे) के समय देहली अजमेर के उक्त सामंत के अधिकार में थी। 'तारीख फरिश्ता' में भी वैसा ही लिखा है; परन्तु उसमें गोविंदराज के स्थान पर खांडेराव नाम दिया है, जो फारसी अक्षरों के दोष से ही मूल से भिन्न हुआ है।

पृथ्वीराज की माता का नाम कमला नहीं, किन्तु कर्पूरदेवी था और वह देहली के राजा अनंगपाल की पुत्री नहीं; किन्तु त्रिपुरी (चेदि देश की राजधानी) के हैहय (कलचुरी) वंशी राजा तेजल या अचलराज की पुत्री थी (देखो ऊपर) नयचंद्र सूरि ने भी अपने 'हंमीर महाकाव्य' में पृथ्वीराज की माता का नाम कर्पूरदेवी[4] ही दिया है।

---

१ आविंध्यादाहिमाद्रेर्विरचितविजयस्तीर्थयात्रा प्रसंगात्

इं० ऐं०, जि० १६

२ चाहमानान्वये जातः पृथ्वीराजो महीपतिः।
तन्मातुश्चाभवत्भ्राता किल्हणः कीर्त्तिवर्द्धनः॥ २॥
गूहिलौतान्वयव्योममंडनैकशरच्छशी।

वही, जि० ४१, पृ० १६

३ तबकात्-इ-नासिरी का अँग्रेजी अनुवाद (मेजर रावर्टी का किया हुआ), पृ० ४५९-६८।

४ इलाविलासी जयति स्म तस्मात् सोमेश्वरोऽनश्वरनीति रीतिः॥ ६७॥
कर्पूरदेवीति बभूव तस्य प्रिया [प्रिया] राधन सावधाना।...॥ ७२॥

हंमीरमहाकाव्य, सर्ग २

जब विग्रहराज (वीसलदेव) चौथे के समय से ही देहली का राज्य अजमेर के चौहानों के अधीन हो गया था और पृथ्वीराज अनंगपाल तँवर का भानजा ही न था तो उसका अपने नाना के यहाँ देहली गोद जाना कैसे सम्भव हो सकता है ? यदि पृथ्वीराज का देहली गोद जाना हुआ होता, तो फिर अजमेर के राज्य पर उसका अधिकार ही कैसे रहता ? पृथ्वीराज के राजत्वकाल के कई एक शिलालेख मिले हैं, जिनमें से महोबे की विजय के लेखों को छोड़ कर बाकी सबके सब अजमेर के राज्य में से ही मिले हैं। उनमें भी निश्चित है कि पृथ्वीराज की राजधाधी अजमेर ही थी, न कि देहली। देहली का गौरव मुसलमानी समय में ही बढ़ा है। उसके पहले विग्रहराज के समय से ही देहली चौहानों के महाराज्य का एक सूबा था। चौहानों की राजधानी अजमेर थी, प्रान्त के नाम से वे सपादलक्षेश्वर कहलाते थे और पुरखाओं की राजधानी के नाम से शाकंभरीश्वर।

कैमास युद्ध

'पृथ्वीराजरासे' में लिखा है कि 'शहाबुद्दीन गोरी देहली पर चढ़ाई करने के इरादे से चढ़ा और सिन्धु नदी के इस किनारे सम्वत् ११४० चैत्रवदि ११ को आजमा इसकी खबर आने पर पृथ्वीराज ने अपने मन्त्री कैमास को बड़ी सेना और सामन्तों के साथ उससे लड़ने को भेजा। तीन दिन की लड़ाई के बाद कैमास शत्रु को पकड़ कर पृथ्वीराज के पास ले आया। पृथ्वीराज ने १२ हाथी और १०० घोड़े दण्ड लेकर उसे छोड़ दिया।" यह घटना भी कल्पित ही है; क्योंकि यदि उस सम्वत् को अनंद विक्रम सम्वत् मानें, तो प्रचलित विक्रम सम्वत् (११४०+९०–९१=) १२३०–३१ होता है। उस समय तक तो पृथ्वीराज राजा भी नहीं हुआ था और बालक था। शहाबुद्दीन गोरी उस समय तक हिन्दुस्तान में आया भी नहीं था। गजनी और हेरात के बीच गोर का एक छोटा सा राज्य था, जिसकी राजधानी फ़ीरोज कोह थी। हिजरी सन् ५५८ (वि० सं० १२१०–२१) में वहाँ के मालिक सैफ़ुद्दीन के पीछे उसके चचेरे भाई ग़ियासुद्दीन मुहम्मद गोरी ने, जो बहाउद्दीन सामका बेटा था, वहाँ का राज्य पाया। उसका छोटा भाई शहाबुद्दीन गोरी था, जिसको उसने अपना सेनापति बनाया। हि० स० ५६९ (वि० सं० १२३०–३१) में शहाबुद्दीन ने ग़ज़्ज़ों से ग़ज़नी छीनी, जिससे उसके बड़े भाई ने उसको ग़ज़नी का हाकिम बनाया। हि० स० ५७१ (वि० सं० १२३२–३३ में हिन्दुस्तान पर शहाबुद्दीन

ने चढ़ाई कर मुलतान लिया।[1] इसके पहले उसकी कोई चढ़ाई हिंदुस्तान पर नहीं हुई थी। ऐसी दशा में वि० सं० ११३०–३१ में पृथ्वीराज के मंत्री कैमास से उसका हार कर क़ैद होना विश्वास योग्य नहीं।

इसमें संदेह नहीं कि कैमास (कदंबवास) पृथ्वीराज का मंत्री था। राजपूताने में 'कैमासबुद्धि' कहावत होगई है। 'पृथ्वीराजविजय' में उसकी बहुत प्रशंसा की है और लिखा है कि उसकी रक्षकता और सुप्रबन्ध से पृथ्वीराज बालक से युवा हुआ।[2] उसी समय पृथ्वीराज के नाना का भाई भुवनैकमल्ल भी अजमेर में आगया और उसके आने पर हरिराज युवा हुआ।[3] इन दोनों- कदंबवास और भुवनैकमल्ल–की बुद्धि तथा वीरता से राजकाज चलता था।

जैसे पितृवैरि जगद्देव के पुत्र पृथ्वीभट ने विग्रहराज (वीसलदेव) के पीछे उसके पुत्र अपरगांगेय से राज छीन लिया, वैसे सुधवा के वंश ने फिर कांचनदेवी के वश से राज छीनने का यत्न किया हो! मंत्री जब सोमेश्वर को ले आए, उस समय विग्रहराज का पुत्र नागार्जुन बहुत छोटा रहा हो; किन्तु अब पृथ्वीराज की प्रबलता होने पर उसने विरोध का झंडा उठा कर गुडपुर का क़िला अपने हाथ कर लिया। यह गुडपुर संभव है कि दिल्ली के पास का गुडगांव हो और नागार्जुन पहले वहाँ का अजमेर की ओर से शासक हो; क्योंकि उसकी

---

१. तबकात-इ-नासिरी, पृ० ४४८–९।

२. स कदम्बवास इति वासवादिभिः स्पृहणीयधीर्व्यसनमध्यपातिभिः।
अवगाहतं सहचरसुमन्त्रितान् परिरक्षितुं क्षितिवरस्य सद्गुणान्॥ (षड्गुणान्)॥ [३७]
सचिवेन तेन सकलासु युक्तिषु प्रवणेन तत्किमपि कर्म निर्ममे।
मुखपुष्करं शिशुतमस्य यत्प्रभोः परिचुम्ब्यते स्म नवयौवनश्रिया॥ [४४]
पृथ्वीराजविजय, सर्ग ८।

३. स पुनर्मदग्रज सुतासुतो भवन्द्विभुजोपि रक्षति चराचरं जगत्।
इति वार्तया कृतकुतूहलः क्रमाद् भुवनैकमल्ल इति अन्वुरायया॥ [६८]
प्राज्यप्रजाभ्युदयवर्धनदत्त [चित्तो दैवातिशायियुगभुव]–नैकमल्ले।
संकीर्ण बाल्ययुवभावगुणानुभाव परस्पर्शे वर्महरता हरि [राजदेवन]॥ [८५]
वही, सर्ग, ८।

माता भी वहीं रहती थी। पृथ्वीराज ने कदंबवास और भुवनैकमल्ल को साथ न लेकर स्वयं ही उस पर आक्रमण किया। क़िला घिर जाने पर नागार्जुन भाग गया और पृथ्वीराज उसकी माता को बंदी करके ले आया।[१]

गोरी ने, जिसने पश्चिमोत्तर दिशा के वलवान् हयपति का गर्जन छीन लिया था, पृथ्वीराज के पास भी दूत भेजा। यह गोरी, राजमंडल की श्री के लिये राहु बनकर आया हुआ कहा गया है। फिर दूत का वर्णन देकर 'पृथ्वीराजविजय' में लिखा है कि गूर्जरों के नड्वल (नाडोल, मारवाड़ में) नामक दुर्ग पर गोरियों ने आक्रमण किया, जहाँ सब राज्यांग छिप गए थे। पृथ्वीराज को इस पर क्रोध आया; किंतु कदंबवास ने कहा कि आपके शत्रु सुन्दोपसुन्द न्याय से स्वयं नष्ट हो जायँगे, आप क्रोध न कीजिए। इतने ही में गूर्जर देश से पत्र लेकर दूत आया, जिससे जाना गया कि गोरी को गूर्जरों ने हरा कर भगा दिया है।[२] बिजोलियाँ के लेख से पाया

---

१. अथ कुविधियदृच्छयेव नागार्जुन इति निन्दितभिक्षुयोग्यनामा।
निगडगृहपरिग्रहाय मातुर्ग्रह इव विग्रहराजवल्लभायाः ॥ [७]
पितुरखिलनृपाविलङ्घ्याभाग्याद्भुतवलनिर्मथनैकवीरजन्मा।
गुडपुरमिति दुर्गमध्यरोहन्मधुररसाहृतिदोहदेन वालः ॥ [८]
गुडपुरमथ वेष्टयांचकार क्षितिपतिरुद्धतयुद्धतत्वदर्शी ॥ [३०]
दयितमपि विमुच्य वीरधर्मं क्वचिदपि विग्रहराजभूरयासीत् ॥ [३२]
सममहितमहीपतेर्जनन्या सुभटघटाः प्रभुरानिनाय बध्वा ॥ [३६]

२. मरुदिव दिशि पश्चिमोत्तरायामतिवलवानधिपस्समस्त एव।
तदुपरि परमार्थपौरुष [ध्यो हय] पतिरेव तिरस्करोति सर्वान् ॥ [३९]
तमपि मुषितगर्जनाधिकारं विरसलघुं शरदभ्रवद्व्यधाद्यः।
कदशनकुशलो गवामरिस्त्वात्समुदितगोरिपदापदेशमुद्रः ॥ [४०]
स किल सकलराजमण्ड [ल श्री]—व्यवधिविधानविधुन्तुदत्वमैच्छत्। [४१]
[व्यसृ] जदजयमेरुमेरुभूभृत्कुहरहरेरपि दूतमेकमग्रे ॥ [४२]
यावद्राजाङ्गान्यपि दुर्गाङ्के मग्नानीत्यर्थः। भयात्सर्वे दुर्गं प्रविष्टा [इ] ति

जाता है कि वीसलदेव (विग्रहराज) ने (नड्डुल) पाली आदि को बर्बाद किया था,[1] इसलिये वहाँ वाले भी चौहानों के शत्रु थे। सुंदोपसुंद न्याय कहने का यही तात्पर्य है। गोरी का हमला गूर्जरों[2] के अधिकार के नड्डूल पर भी हुआ हो। किन्तु उसका पहला हमला हिन्दुस्तान की भूमि पर हि० स० ५६१ (वि० सं० १२३२-३३) में हुआ और उसके पहले कैमास का उससे लड़ने जाकर उसे (अनंद संवत ११४०=वि० सं० १२३०-३१) में हरा आना असंभव है।

पृथ्वीराज का कन्नौज जाना

'पृथ्वीराजरासे' में लिखा है कि 'कन्नौज के राजा विजयपाल ने देहली के

तात्पर्यम् (श्लोक ४८ पर जोनराज की टीका, श्लोक नहीं रहा)।

पृथ्वीराजस्य तावन्निखिलदिगमयःरम्भसंरम्भसीमा-

भीमा भ्रूभङ्गभङ्गी विरचनसमयं कामुंकस्याचचक्षे ॥ [५०]

पृथ्वीराजविजय, सर्ग १०।

राजन्नवसरो नायं रुषां भाग्यनिधेस्तव।...[४]

सुन्दोपसुन्दुभंङ्ग्या ते स्वयं नंक्ष्यंति शत्रवः ॥ [५]

लेखहस्तःपुमान्प्राप्तो देव गूर्जरमण्डलात् ॥ [७]

गूर्जरोपज्ञमाचख्यौ घोरं गोरिपराभवम् ॥ [६]

वही, सर्ग ११।

१. जावालिपुरं ज्वलापुरं कृता पल्लिकापि पल्लीव।

नड्वलतुल्यं रोषान्नड्ड (ड्डू)लं येन सौ (शौ)र्येण ॥ २१ ॥

(बीजोलियाँ का लेख)

२ विग्रहराज से लेकर शहाबुद्दीन की चढ़ाई के समय तक नाडोल, पाली आदि पर नाडौल के चौहानों का अधिकार था। पृथ्वीराजविजय में उस प्रदेश को गूर्जरमंडल कहा है। हुएन्तसंग भी भीनमाल के इलाके को, जो नाडाल से बहुत दूर नहीं है, गूर्जर देश कहता है। नाडोल का प्रदेश इस गूर्जर प्रांत के अन्तर्गत होने से अथवा वर्तमान गुजरात देश के अधीन हो जाने से वहाँ वाले गुर्जर कहे गए हैं, इसका यह अर्थ नहीं है कि नाडोल उस समय गूर्जर जाति के अधिकार में था।

तँवर राजा अनंगपाल पर चढ़ाई की; परन्तु चौहान सोमेश्वर और अनंगपाल की सेना से वह पराजित हुआ, जिसके पीछे विजयपाल ने अनंगपाल की दूसरी कन्या सुन्दरी से विवाह किया। उसका पुत्र जयचंद हुआ। विजयपाल ने दिग्विजय करते हुए पूर्वी समुद्र तट पर कटक के सोमवंशी राजा मुकुन्ददेव पर चढ़ाई की। उसने उसका बड़ा स्वागत किया और बहुत से धन के साथ अपनी पुत्री भी उसके भेंट करदी। इसका विवाह विजयपाल ने अपने पुत्र जयचंद के साथ कर दिया और उसके संजोगता नामक कन्या हुई। विजयपाल वहाँ से आगे बढ़ कर सेतुबंध तक पहुँचा। वहाँ से लौटते हुए उसने तैलंग, कर्णाट, मिथिला, पुंगल, आसेर, गुर्जर गुंड, मगध, कलिंग आदि के राजाओं को जीतकर पट्टनपुर (अनहिलवाड़े) के राजा भोला भीम पर चढ़ाई की। भीम ने अपने पुत्र के साथ नज़राना भेजकर उसे लौटा दिया। इस प्रकार सब राजाओं को उसने जीत लिया; परन्तु अजमेर के चौहान राजा ने उसकी अधीनता स्वीकार न की। विजयपाल के पीछे उसका पुत्र जयचंद कन्नौज का राजा हुआ। उसने राजसूय यज्ञ करना निश्चय कर सब राजाओं को उसमें उपस्थित होने के लिये बुलाया। उसने पृथ्वीराज को भी बुलावा भेजा; परन्तु उसने उसकी अधीनता न मान कर वहाँ जाना स्वीकार न किया, इतना ही नहीं; किन्तु जयचन्द का धृष्टता से क्रुध होकर उसके भाई बालुकराय पर चढ़ाई कर दी। उसने बालुकराय के इलाके को उजाड़ कर उसके मुख्य नगर खोखंदपुर को लूटा और लड़ाई में उसको मार डाला। उसकी स्त्री रोती हुई कन्नौज में जयचन्द के पास पहुंची और उसने चौहान के द्वारा अपने सर्वनाश होने का हाल कहा। जयचन्द ने पृथ्वीराज पर चढ़ाई करने का विचार किया; परन्तु उसके सलाहकारों ने यह सलाह दी कि मेवाड़ के राजा समरसिंह को अपने पक्ष में लिए बिना पृथ्वीराज को जीतना कठिन है। इस पर उसने रावल समरसिंह को यज्ञ में बुलाने के लिये पत्र लिखा और बहुत कुछ लालच भी बतलाया, परन्तु उसने एक न मानी। इस पर जयचन्द ने समरसिंह और पृथ्वीराज दोनों पर चढ़ाई करना निश्चय किया और पृथ्वीराज से अपने नाना अनंगपाल का देहली का आधा राज्य भी लेना चाहा। फिर उसने अपनी सेना के दो विभाग कर एक को पृथ्वीराज पर देहली और दूसरे को समरसिंह पर चित्तोड़ भेजा। दोनों स्थानों से उसकी फौज हार खाकर लौटी। पृथ्वीराज उसके यज्ञ में न गया, इसलिये उसने पृथ्वीराज की सोने की मूर्ति बनवा कर द्वारपाल की जगह खड़ी

करवाई। राजसूय के साथ साथ जयचन्द की पुत्री संजोगता का स्वयंवर भी होने वाला था। उस राजकुमारी ने पृथ्वीराज की वीरता का हाल सुन रक्खा था, जिससे उसी को अपना पति स्वीकार करने का दृढ़ निश्चय कर लिया था। स्वयंवर के समय उसने वरमाला पृथ्वीराज की उस मूर्ति के गले में डाली, जिस पर क्रुद्ध हो जयचन्द ने उसको गंगातट के एक महल में क़ैद कर लिया। इधर पृथ्वीराज ने अपनी मूर्ति द्वारपाल की जगह खड़ी किए जाने और संजोगता का अपने पर अनन्य प्रेम होने के समाचार पाकर कन्नौज पर चढ़ाई करदी। वहाँ पर भीषण युद्ध हुआ, जिसमें कन्नौज के राजा तथा उसके अनेक सामंतों आदि के दलबल का संहार कर पृथ्वीराज संजोगता को लेकर देहली लौटा। जयचंद इससे बहुत ही लज्जित हुआ; किंतु पृथ्वीराज को देहली में आए दो दिन भी नहीं हुए थे कि जयचंद ने अपने पुरोहित श्रीकंठ को वहां भेज कर संजोगता के साथ पृथ्वीराज का विधि पूर्वक विवाह करा दिया।'

'रासे' में पृथ्वीराज के कन्नौज जाने का संवत् ११५१ दिया है, जिसको अनंद विक्रम संवत् मान कर पंड्याजी ने सनंद (प्रचलित) विक्रम सं० (११५१+९०-९१=) १२४१-४२ में कन्नौज की लड़ाई होना माना है; परन्तु कन्नौज की गद्दी पर विजयपाल (विजयचंद) के पुत्र जयचंद का बैठना, और उसका तथा पृथ्वीराज का उक्त संवत् में विद्यमान होना,— इन दो बातों को छोड़ कर ऊपर लिखा हुआ पृथ्वीराज रासे' का सारा कथन ही कल्पित है। सोमेश्वर के समय देहली पर अनंगपाल तँवर का राज्य ही न था: क्योंकि विग्रहराज (वीसलदेव) चौथे के समय से ही देहली का राज्य तो अजमेर के चौहानों के अधीन होगया था (देखो ऊपर पृ० ४०५)। अतएव अनंगपाल की पुत्री सुन्दरी का विवाह विजयपाल के साथ होने का कथन वैसा ही कल्पित है, जैसा कि उसकी बड़ी पुत्री कमला का विवाह सोमेश्वर के साथ होने का। विजयपाल की अजमेर के चौहानों के सिवाय हिन्दुस्तान के सेतुबंध तक के सब राजाओं का जीतने की बात निर्मूल है। विजयपाल के समय कटक पर सोमवंशी मुकुन्ददेव का नहीं; किन्तु गंगावंशियों का राज्य था। ऐसे ही उसके समय पट्टनपुर (पाटन; अनहिलवाड़ा=गुजरात की राजधानी) का राजा भोला भीम नहीं; किन्तु कुमारपाल था; क्योंकि कन्नौज के विजयचन्द्र ने वि० सं० १२११

के अनंतर ही राज पाया, तथा ११२६ में उसका देहान्त हुआ[1]। उधर गुजरात का राजा वि० सं० ११९९ से १२३० तक कुमारपाल था। भोला भीम तो वि०सं० १२३५ में बाल्यावस्था में राजा हुआ था। जयचन्द के समय मेवाड़ (चित्तौड़) का राजा रावल समरसी नहीं; किन्तु सामन्तसिंह और उसका छोटा भाई कुमारसिंह थे[2]। कुमारसिंह से पाँचवीं पुश्त में मेवाड़ का राजा समरसिंह हुआ, जो वि० सं० १३५८ तक जीवित था[3]। ऐसे ही जयचन्द के राजसूय यज्ञ करने और संजोगता के स्वयंवर की कथा भी निरी कल्पित ही है। जयचंद बड़ा ही दानी राजा था। उसके कई दान-पत्र अब तक मिल चुके हैं, जिनसे पाया जाता है कि वह प्रसंग-प्रसंग पर भूमिदान किया करता था। यदि उसने राजसूय यज्ञ किया होता तो ऐसे महत्त्व के प्रसंग पर तो वह कितने ही गांव दान करता; परन्तु उसके सम्बन्ध का न तो अब तक कोई दान पत्र मिला और न किसी शिलालेख या प्राचीन पुस्तक में उसका उल्लेख है। इसी तरह पृथ्वीराज और जयचन्द के बीच की कन्नौज की लड़ाई और संजोगता को लाने की कथा भी गढंत ही है; क्योंकि उसका और कहीं उल्लेख नहीं मिलता। ग्वालियर के तोमर (तंवर) वंशी राजा वीरम के दरबार के प्रसिद्ध कवि नयचन्द्र सूरि ने वि० सं० १४४० के आस-पास 'हंमीर महाकाव्य' रचा, जिसमें पृथ्वीराज का विस्तृत वृत्तांत दिया है। ऐसे ही उक्त कवि ने अपनी रची हुई, 'रंभामंजरी' नाटिका' का नायक जयचंद्र

---

१. विजयचन्द्र के पिता गोविन्दचन्द्र का अंतिम-दान-पत्र वि० सं० १२११ का मिला है (एपि० इंडि० जिल्द ४, पृ० ११६) और विजयचन्द्र का सबसे पहला दान-पत्र वि० सं० १२२४ का है (एपि० इंडि०, जि० ४, पृ० ११८)। विजयचन्द्र का अंतिम दान-पत्र वि० सं० १२२५ का है, जिसमें जयचन्द्र को युवराज लिखा है (इंडि० एंटि०, जिल्द १५, पृष्ठ ९७) और जयचन्द्र का सबसे पहला दान-पत्र वि० सं० १२२६ का है, जिसमें उसके अभिषेक का उल्लेख है (एपि० इंडि०, जि० ४, पृ० १२१)।

२. नागरीप्रचारिणी पत्रिका, नवीन संस्करण, भाग १, पृ० २५—२६।

३. ओं॥ संवत् १३५८ वर्षे माघशुदि १० दशम्यां······महाराजाधिराज श्रीसमरसिंह-[देवक]ल्याणविजयराज्ये। (चित्तौड़ के रामपोल दरवाजे के सामने नीम के पेड़वाले चबूतरे पर पड़ा हुआ शिलालेख, जो मुझे ता० १९-१२,१९२० को मिला, अप्रकाशित)।

को वनाया है और जयचन्द के विशेपणों से लगभग दो पत्रे भरे हैं; परन्तु उन दोनों काव्यों में कहीं भी पृथ्वीराज का और जयचन्द के वीच की लड़ाई, जयचन्द के राजसूय यज्ञ या संजोगता के स्वयंवर का उल्लेख नहीं किया। इससे यही पाया जाता है कि वि० सं० १४४० के आस-पास तक तो ये कथाएँ गढ़ी नहीं गई थीं। ऐसी दशा में वि० सं० १२४१-४२ में पृथ्वीराज के कन्नौज जाकर जयचन्द से भीषण युद्ध करने का कथन भी मानने के योग्य नहीं।

अन्तिम लड़ाई

इस लड़ाई का सम्वत् 'पृथ्वीराजरासे' में ११५८ दिया है, जिसको अनंद सम्वत मानने से इस लड़ाई का वि० सं० (११५८+९०—९१=) १२४८-४९ में होना निश्चित होता है। शहाबुद्दीन और पृथ्वीराज के वीच की दूसरी लड़ाई का इसी वर्ष होना फ़ारसी तवारीखों से भी सिद्ध है। इसी लड़ाई के बाद थोड़े ही दिनों में पृथ्वीराज मारा गया; परन्तु इस पर से यह नहीं माना जा सकता कि अनंद विक्रम संवत् की कल्पना ठीक है; क्योंकि पंड्याजी का सारा यत्न इसी एक संवत् को मिलाने के लिये ही हुआ है। 'पृथ्वीराजरासे' के अनुसार पृथ्वीराज का देहांत (१११५+४३=) ११५८ में होना पाया जाता है। यह संवत् उक्त घटना के शुद्ध संवत् से ९१ वर्ष पहले का होता है। इसी अन्तर को मिटाने के लिये पंड्याजी को पहले 'भटायत संवत्' खड़ा कर उसका प्रचलित विक्रम सं० से १०० वर्ष पीछे चलना मानना पड़ा। परंतु वैसा करने से पृथ्वीराज की मृत्यु वि० सं० १११५+४३+१००=) १२५८ में आती थी। यह संवत् शुद्ध संवत से ९ वर्ष पीछे पड़ता था, जिससे पृथ्वीराज के जन्म संवत् संबंधी 'रासे' के दोहे के पद 'पंचदह' (पंच-दश) का अर्थ पंड्याजी को 'पांच' कर पृथ्वीराज की मृत्यु वि० सं० १२४८ में बतलानी पड़ी। जब 'पंचदह' का अर्थ 'पांच' करना लोगों ने स्वीकार न किया, तब पंड्याजी ने उक्त दोहे के 'विक्रम शाक अनंद' से 'अनंद' का अर्थ 'नवरहित' और उस पर से 'नवरहित सौ' अर्थात् ९१ करके अनंद विक्रम संवत् का सनंद विक्रम संवत् से ९०। ९१ वर्ष पीछे प्रारंभ होना मान लिया, इतना ही नहीं, परंतु पृथ्वी-राजरासे' तथा चौहानों की ख्यातों आदि में दिए हुए जिन भिन्न-भिन्न घटनाओं के संवतों में १०० वर्ष मिलाने से उनका शुद्ध संवतों से मिल जाना पहले बतलाया था, उन्हीं का फिर ९१ वर्ष मिलाने से शुद्ध संवतों से मिल जाना बतलाना पड़ा।

परन्तु एक ही अशुद्ध सम्वत् एक बार सौ वर्ष मिलाने और दूसरी बार ६०-६१ वर्ष मिलाने से शुद्ध संवत् बन जाय इस कथन को इतिहास स्वीकार नहीं कर सकता। इससे संवत् के सर्वथा अशुद्ध होने तथा ऐसा कहने वाले की विलक्षण बुद्धि का ही प्रमाण मिलता है। 'पृथ्वीराजरासे' के अनुसार वि० सं० ११५८ पृथ्वीराज की मृत्यु का सम्वत् नहीं, किन्तु लड़ाई का सम्वत् है। मृत्यु के विषय में तो यह लिखा है कि "सुल्तान पृथ्वीराज को कैद कर ग़ज़नी लेगया। वहाँ उसने उसकी आँखें निकलवा डाली। फिर चंद योगी का भेष धारण कर ग़ज़नी पहुँचा और उसने सुल्तान से मिल कर उसको पृथ्वीराज की तीरंदाजी देखने को उत्सुक किया। पृथ्वीराज ने चंद के संकेत के अनुसार बाण चला कर सुल्तान का काम तमाम किया। फिर चंद ने अपने जूड़े में से छुरी निकाल कर उसने अपना पेट चाक किया और उसे राजा को दे दिया। पृथ्वीराज ने भी वही छुरी अपने कलेजे में भोंकली। इस प्रकार शहाबुद्दीन, पृथ्वीराज और चंद की मृत्यु हुई। पृथ्वीराज के पीछे उसका पुत्र रेणसी दिल्ली की गद्दी पर बैठा"। यह सारा कथन भी कल्पित है; क्योंकि शहाबुद्दीन की मृत्यु पृथ्वीराज के हाथ से नहीं; किंतु हिजरी सन् ६०२ तारीख २ शाबान (वि० सं० १२६३ चैत्र सुदि ३) को गक्खरों के हाथ से हुई थी। वह जब गक्खरों को परास्त कर लाहौर से ग़ज़नी को जा रहा था। उस समय धमेक के पास नदी के किनारे बाग़ में नमाज़ पढ़ता हुआ मारा गया। इस तरह पृथ्वीराज के पीछे उसका पुत्र रेणसी देहली की गद्दी पर नहीं बैठा। किंतु उसके पुत्र गोविंदराज को शहाबुद्दीन ने अजमेर का राजा बनाया था। उसने शहाबुद्दीन की अधीनता स्वीकार की, इसको न सह कर पृथ्वीराज के भाई हरिराज ने उससे अजमेर छीन लिया और गोविंदराज रणथंभोर में जा बसा।

यहाँ तक तो पंड्याजी के दिए हुए पृथ्वीराजरासे के संवतों की जांच हुई। अब उनके मिलाए हुए चौहानों के ख्यातो के संवतों की जांच की जाती है।

अस्थिपाल का आसेर प्राप्त करना

पंड्याजी कर्नल टॉड के कथनानुसार अस्थिपाल के आसेर प्राप्त करने का संवत् ६८१ बतलाते हैं। वे उसको भटायत संवत् मान कर उसका शुद्ध संवत १०८१ मानते हैं। चौहानों की ख्यातों के आधार पर मिश्रण सूर्यमल्ल के 'वंश-

भास्कर' तथा उसी के सारांश रूप 'वंशप्रकाश' में चौहानों की वंशावली दी गई है। उनसे पाया जाता है कि 'चाहमान (चौहान) से १४२ वीं पुश्त में ईश्वर हुआ, उसके ८ पुत्रों में से सब से बड़ा उमादत्त तो अपने पिता के पीछे सांभर का राजा हुआ और आठवें पुत्र चित्रराज के चौथे बेटे मौरिक से मोरी (मौर्य वंश चला। चित्रांग नामक मोरी ने चित्तौड़ का किला बनवाया। ईश्वर के पीछे उमादत्त, चतुर और सोमेश्वर क्रमशः सांभर के राजा हुए। सोमेश्वर के दो पुत्र भरथ और उरथ हुए। भरथ से २१ वीं पुश्त में सोमेश्वर हुआ, जिसने देहली के राजा अनंगपाल की पुत्री से विवाह किया, जिससे संवत् ११११ में पृथ्वीराज का जन्म हुआ। उधर उरथ से १० वीं पुश्त में भौमचंद्र, हुआ जिसको चन्द्रसेन भी कहते थे। चंद्रसेन(भौमचंद्र) का पुत्र भानुराज हुआ, जिसका जन्म सं० ४८१ में हुआ।[1] वह अपने साथियों के साथ जंगल में खेल रहा था, उस समय गंभीरारंभ राक्षस उसको खा गया; परन्तु उसकी कुलदेवी आशापुरा ने उसकी अस्थियाँ एकत्र कर उसे फिर जीवित कर दिया, जिससे उसका दूसरा नाम अस्थिपाल हुआ। उसके वंशज अस्थि अर्थात् हड्डियों पर से हाडा कहलाए। गुजरात की राजधानी अनहिलपुर पाटण (अनहिलवाडे) के राजा गहिलकर्ण (कर्ण घेला, गहिल=पागल; गुजराती में पागल को 'घेला', राजस्थानी में 'गहला' कहते हैं) के पुत्र जयसिंह का जन्म वि० सं० ४४१ में हुआ।[2] गहिलकर्ण के पीछे वह गुजरात का राजा हुआ। उसने अपने

---

१ वंशप्रकाश में १४८१ छपा है (पृ० ५३), जो अशुद्ध है। वंशभास्कर में ४८१ ही है (सक जँहँ विक्रमराज को, वसुधा वारन वेद ४८१। भौमचन्द्र सुत तँहँ भयो, अरिन करन उच्छेद—वंश भास्कर पृ० १४३६)।

२ अनिहलपट्टन नैर इत, जनपद गुज्जरजत्थ।
गहिलकर्ण चालुक्य के, सुत जो कहिय समत्थ ॥ ६ ॥
सोहु जनक जब स्वर्ग गो, भो तब पट्टनि भूप।
जास नाम जयसिंह जिहिं, राज्य करिय अनुरूप ॥ ७ ॥
क्रम पढि मात्र कलंदिका, जोग रीति सब जानि।
सिद्धराज यह नाम जिहिं, पायो उचित प्रमानि ॥ ८ ॥
जहँ सक विक्रमराज को, ससि चउवेद ४४१ समत्त।

पूर्वज कुमारपाल की तरह जैनधर्म स्वीकार किया और व्याकरण (अष्टाध्यायी), अनेकार्थनाममाला, परिशिष्टपद्धति (परिशिष्टपर्व), योगसार आदि अनेक ग्रंथों के कर्त्ता श्वेतांबर जैन सूरि हेमचंद्र को अपना गुरु माना। जयसिंह के गोभिलराज आदि ८ पुत्र हुए। गोभिलराज जयसिंह के पीछे गुजरात का राजा हुआ। चौहान -अस्थिपाल ने गोभिलराज पर चढ़ाई की, गोभिलराज की हार हुई और अंत में दो करोड़ द्रम्म देकर उसने अस्थिपाल से सुलह कर ली। फिर अस्थिपाल ने मोरवी (काठियावाड़ में) के झाला कुवेर की पुत्री उमा के साथ विवाह किया। भुज (कच्छ की राजधानी) के यादव राजा भीम को दंड दिया और वह अनेक देशों को विजय कर अपने पिता के पास आया। अपने पिता (भौमचन्द्र) पीछे वह आसेर का राजा हुआ।"

चौहानों की ख्यातों के आधार पर लिखा हुआ ऊपर का सारा वृत्तांत कल्पित है; क्योंकि उसके अनुसार मोरी या मौर्य वंश के प्रवर्तक का चाहमान (चौहान) से १४३ वीं पुश्त में होना मानना पड़ता है, जो असम्भव है। मौर्य वंश को उन्नति देने वाला चन्द्रगुप्त ई० सं० पूर्व की चौथी शताब्दी में हुआ तो चाहमान को उससे अनुमान ३००० वर्ष पूर्व मानना पड़ेगा। यदि चाहमान इतना पुराना होता, तो पुराणों में उसकी वंशावली अवश्य मिलती। चाहमान का अस्तित्व ई० सं० की सातवीं शताब्दी के आस पास माना जाता है। चौहानों के प्राचीन शिलालेखों, दानपत्रों, एवं पृथ्वीराजविजय, हंमीरमहाकाव्य, सुर्जनचरित आदि ऐतिहासिक पुस्तकों में कहीं भी भरथ और उरथ के नाम नहीं मिलते। गुजरात के सोलंकियों में कर्ण नाम के दो राजा हुए। एक तो जयसिंह (सिद्धराज) का पिता, जिसने वि० सं० ११२० से ११५० तक राज्य किया और दूसरा वाघेला (व्याघ्रपल्लीय सोलंकियों की एक शाखा) कर्ण हुआ, जो सारंगदेव का पुत्र था और जिसको गुजरात के इतिहास-लेखक कर्ण घेला (पागल) कहते हैं। उसने वि० सं० १३५२ से १३५६ से कुछ पीछे तक राज्य किया और उसी से गुजरात का राज्य मुसमानों ने छीना। जयसिंह (सिद्धराज) का पिता कभी 'घेला' नहीं कहलाया; परन्तु भाटों को अंतिम कर्ण का स्मरण था, जिससे जयसिंह के पिता को

जनम तत्थ जयसिंह को, नृप जानहु अनुरत्त ॥ ६ ॥
वंशभास्कर, पृ० १,४२४।

भी गहल (घेला) लिख दिया। जयसिंह का जन्म वि० सं० ४४१ में नहीं हुआ, किन्तु उसने वि० सं० ११५० से ११९९ तक राज्य किया था। जयसिंह के गोभिल-राज आदि आठ पुत्रों का होना तो दूर रहा, उसके एक भी पुत्र नहीं हुआ। कुमारपाल जयसिंह का पूर्व पुरुष नहीं; किन्तु कुटुम्ब में भतीजा था और जयसिंह के पुत्र न होने के कारण वह उसका उत्तराधिकारी हुआ। ऐसी दशा में अस्थि-पाल का वि० सं० ४८१ (वंशभास्कर के अनुसार) या ९८१ (कर्नल टॉड और पंड्याजी के अनुसार) में होना सर्वथा असम्भव है। भाटों की वंशावलियां देखने से अनुमान होता है कि ई० स० की १५ वीं शताब्दी के आस-पास उन्होंने उसका लिखना शुरु किया और प्राचीन इतिहास का उनको ज्ञान न होने के कारण उन्होंने पहले के सैंकड़ों नाम उनमें कल्पित धरे। ऐसे ही उनके पुराने साल सम्वत् भी कल्पित ही सिद्ध होते हैं। चौहानों में अस्थिपाल नाम का कोई राजा ही नहीं हुआ। हाड़ा नाम की उत्पत्ति तक से परिचित न होने के कारण भाटों ने अस्थिपाल नाम गढंत किया है। उनको इस बात का भी पता न था कि चौहानों की हाड़ा शाखा किस पुरुष से चली। मूंहणोत नैणसी ने अपनी ख्यात में लिखा है कि "नाडोल के राजा राव लाखण (लक्ष्मण) के वंश में आसराज (अश्वराज) हुआ, जिसका पुत्र माणकराव हुआ। उसके पीछे क्रमशः सभराण, जैतराव, अनंगराव, कुंतसीह (कुंतसिंह), विजैपाल, हाडो (हरराज) (बांगो बंगदेव) और देवी (देवीसिंह) हुए। देवा ने मीणों से बूंदी छिनली [1]।" नैणसी का लेख भाटों की ख्यातों से अधिक विश्वास योग्य है। उक्त हाड़ा (हरराज) के वंशज हाड़ा कहलाए हैं। नाडोल के आसराज (अश्वराज) के समय का एक शिलालेख वि० सं० ११६७ का मिल चुका है[2]। अतएव उसके सातवें वंशधर हाड़ा का वि० सं १३०० के आसपास विद्यमान होना अनुमान किया जा सकता है। उसी हाड़ा (हरराज) के लिये भाटों ने अनेक कृत्रिम नामों के साथ अस्थिपाल नाम भी कल्पित किया है।

बीसलदेव का अनहिलपुर प्राप्त करना।

कर्नल टॉड और पंड्याजी ने बीसलदेव के अनहिलपुर प्राप्त (विजय) करने

---

१. मूंहणोत नेणसी की ख्यात (हस्तलिखित), पत्र २४, पृ० २।

२. एपि० इंडि० जि० ११, पृ० २९।

का सवत् ६८६ लिखा है, उसको भटायत संवत् मानने से प्रचलित वि०स०१०८६ और अनंद विक्रम संवत् मानने से वि०सं०१०७६–७७ होता है। चौहानों के बीजोलियां आदि के शिलालेखों तथा 'पृथ्वीराज विजय' आदि ऐतिहासिक पुस्तकों से सांभर तथा अजमेर के चौहानों में विग्रहराज या वीसलदेव नाम के चार राजाओं का होना पाया जाता है; परन्तु भाटों की वंशावलियों में केवल एक ही वीसलदेव नाम मिलता है। जिस विग्रहराज (वीसलदेव) ने गुजरात पर चढ़ाई की, वह विग्रहराज (वीसलदेव) दूसरा था; जिसके समय का हर्षनाथ (शेखावाटी में) का वि०स० १०३० का शिलालेख भी मिल चुका है। 'पृथ्वीराजविजय' में उक्त चढ़ाई के संबंध में लिखा है कि "विग्रहराज की सेना ने बड़ी भक्ति के कारण बाणलिंग ले लेकर नर्मदा नदी को अनर्मदा (बाणलिंगरहित) बना दिया। गुर्जर (गुजरात के राजा) मूलराज ने तपस्वी की नांई यशरूपी वस्त्र को छोड़कर कंथा दुर्ग (कंथकोट का किला, कच्छ में, तपस्वी के पक्ष में कंथा अर्थात् गुदड़ी) में प्रवेश किया। विग्रहराज ने भृगु कच्छ (भड़ौंच) में आशापुरी देवी का मन्दिर बनवाया[१]।" इस से पाया जाता है कि विग्रहराज (वीसलदेव) की चढ़ाई गुजरात के राजा मूलराज पर हुई थी। मूलराज भाग कर कच्छ के कंथकोट के किले में जा रहा और विग्रहराज (वीसलदेव) आगे बढ़ता हुआ भड़ौंच तक पहुँच गया। मेरुतुंग ने अपने 'प्रबन्धचिंतामणि' में इस चढ़ाई का जो वृत्तांत दिया है, उसका

---

१. सूनुर्विग्रहराजोऽस्य सापराधानपि द्विषः ।
दुर्बला इत्यानुध्यायन्नक्षत्रिय इवाभवत ॥ [४७॥]
अहरणद्भिः परया भक्त्या बाणलिङ्गपरंपराः ।
अनर्मदेव यत्सैन्यैर्निरमीयत नर्मदा ॥ [५०॥]
त्यक्त तपस्विना[स्वच्छं] यशोंशुकमितीवयः ।
गुर्जरं मूलराजाख्यं कंथादुर्गमवीविशत ॥ [५१॥]
व्यधादाशापुरीदेव्या भृगुकच्छे स धाम तत ।
यद्रेवास्पृष्टसोपानं चन्द्रश्चुम्बति मूर्धनि ॥ [५३॥]
पृथ्वीराजविजय, सर्ग ५।

सारांश यह है कि "एक समय सपादलक्षीय[1] (चौहान) राजा युद्ध करने की इच्छा से गुजरात की सीमा पर चढ़ आया। उसी समय तैलंग देश के राजा सेनापति बारप ने भी मूलराज पर चढ़ाई करदी। मूलराज अपने मंत्रियों की इस सलाह से कि जब नवरात्र आते ही सपादलक्षीय राजा अपनी कुलदेवी का पूजन करने के लिये अपनी राजधानी शाकंभरी (सांभर) को चला जायगा, तब बारप को जीत लेंगे, कंथादुर्ग (कंथकोट) में जा रहा; परन्तु चौहान ने गुजरात में ही चातुर्मास व्यतीत किया और नवरात्र आने पर वहीं शाकंभरी नामक नगर बसा, और अपनी कुलदेवी की मूर्ति मँगवा कर वहीं नवरात्र का उत्सव किया। इस पर मूलराज अचानक चौहान राजा के सैन्य में पहुँचा और हाथ में खड्ग लिए अकेला उसके तंबू के द्वार पर जा खड़ा हुआ। उसने द्वारपाल से कहा कि अपने राजा को खबर दो कि मूलराज आता है। मूलराज भीतर गया तो राजा ने पूछा कि, 'आप ही मूलराज हैं? मूलराजने उत्तर दिया कि 'हां'। इतनेमें पहले से संकेत पर तय्यार रक्खे हुए४००० पैदलों ने राजा के तंबू को घेर लिया और मूलराज ने चौहान राजा से कहा कि "इस भूमंडल में मेरे साथ लड़ने वाला कोई वीर पुरुष है या नहीं, इसका मैं विचार कर रहा था। इतने में तो आप मेरी इच्छा के अनुसार आ मिले; परंतु भोजन में जैसे मक्खी गिर जाय, वैसे तैलंग देश के राज तैलप का सेनापति मुझ पर चढ़ाई कर, इस युद्ध के बीच विघ्न सा होगया है। इसलिये जब तक मैं उसको शिक्षा न दे लूं, तब तक आप ठहर जावें; पीछे से हमला करने की चेष्टा न करें। मैं इससे निपट कर आप से लड़ने को तय्यार हूँ।" इस पर चौहान राजा ने कहा कि "आप राजा होने पर भी एक सामान्य पैदल की नांई अपने प्राण की पर्वाह न कर शत्रु के घर में अकेले चले आते हो; इसलिये मैं जीवन पर्यंत आप से मैत्री करता हूँ।' " मूलराज वहाँ से चला और बारप की सेना पर टूट पड़ा। बारप मारा गया और उसके घोड़े और हाथी मूलराज के हाथ लगे। दूतों के द्वारा मूलराज की इस विजय की खबर सुन कर चौहान राजा भाग गया[2]।"

---

१. सांभर तथा अजमेर के चौहानों के अधीन का देश 'सपादलक्ष' कहलाता था। मेरुतुंग ने चौहान राजा का नाम नहीं दिया; परन्तु उसको 'सपादलक्षीय नृपति' (सपादलक्ष का राजा) ही कहा है, जो 'चौहान राजा' का सूचक है।

२. प्रबन्धचिंतामणि, पृ० ४०–४२।

'प्रबंधचिंतामणि' का कर्ता चौहान राजा का भाग जाना लिखता है, वह विश्वास के योग्य नहीं है, क्योंकि उसी के लेख से यही पाया जाता है कि मूलराज ने उससे डर कर ही कंथकोट के क़िले में शरण ली थी। संभव तो यही है कि मूलराज ने हार कर अंत में उससे संधि कर उसे लौटाया हो।

नयचंन्द्र सूरि अपने 'हंमीरमहाकाव्य' में लिखता है कि "विग्रहराज (वीसलदेव) ने युद्ध में मूलराज को मारा और गुर्जरदेश (गुजरात) को जर्जरित कर दिया[1]।" नयचंन्द्र सूरि भी मेरुतुंग की नांई पिछला लेखक है, इसलिये उसके मूलराज के मारे जाने का कथन यदि हम स्वीकार न करें, तो भी मूलराज का हारना और गुजरात का बर्बाद होना निश्चित है। हेमचंद्र सूरि ने अपने 'द्व्याश्रयकाव्य' में विग्रहराज और मूलराज के बीच की लड़ाई का उल्लेख भी नहीं किया, जिसका कारण भी अनुमान से यही होता है कि इस लड़ाई में मूलराज की हार हुई हो। 'द्व्याश्रयकाव्य' में गुजरात के राजाओं की विजय का वर्णन विस्तार से लिखा गया है और उनकी हार का उल्लेख तक पाया नहीं जाता। यदि विग्रहराज हार कर भागा होता तो 'द्व्याश्रय' में उसका वर्णन विस्तार से मिलता।

भाटों की ख्यातों और वंशभास्कर में एक ही वीसलदेव का नाम मिलता है और उसको गुजरात के राजा वालुकराय से लड़नेवाला अजमेर के पास के वीसलसागर (वीसल्या) तालाब का बनानेवाला, अजमेर का राजा तथा आनोजी (अर्णोराज) का दादा माना है; जो विश्वास के योग्य नहीं। वालुकराय पाठ भी अशुद्ध है। शुद्ध पाठ 'चालुक (चौलुक्य) राय' होना चाहिए। जैसे 'प्रबंधचिंतामणि[1]' में विग्रहराज (वीसलदेव) के नाम का उल्लेख न कर उसको 'सपादलक्षीय नृपति' अर्थात् सपादलक्ष देश का राजा कहा है, वैसे ही भाटों आदि ने गुजरात के राजा का नाम नहीं दिया; परंतु उसके वंश 'चालुक' के नाम से

---

१. अथोद्दिदीपेऽनयनिग्रहाय बद्धाग्रहाविग्रहराजभूपः।
द्विधापि यो विग्रहमाजिभूमावभंजयद्वैरिमहीपतीनाम ॥ ६ ॥...॥
अप्युग्रवीरव्रतवीरवीर ससेव्यमानक्रमपद्मयुग्मं।
श्रीमूलराजं समरे निहत्य यो गुर्जरं जर्जरतामनैषीत् ॥ ६ ॥
हंमीरमहाकाव्य, सर्ग २।

उसका परिचय दिया है। उसका नाम ऊपर के अवतरणों से मूलराज होना निश्चित है।

मूलराज के अब तक तीन ताम्रपत्र मिले हैं, जिनमें से पहला वि०सं०१०३० भाद्रपद शुदि ५ का[1], दूसरा वि० सं० १०४३ माघ वदि १५ (अमावास्या) का[2] और तीसरा वि०सं० १०५१ माघसुदि १५ का[3] है। विग्रहराज (विसलदेव) दूसरे का उपर्युक्त हर्षनाथ का शिलालेख वि०सं०१०३० का है, जिसमें मूलराज के साथ की लड़ाई का उल्लेख नहीं है[4]। अतएव यह लड़ाई उक्त संवत् के पीछे हुई होगी। मूलराज की मृत्यु वि०सं०१०५२ में हुई, इसलिये विग्रहराज (वीसलदेव) दूसरे का गुजरात पर की चढ़ाई वि० सं० १०५२ के बीच किसी वर्ष में होनी चाहिए। पंड्याजी का भटायत या अनंद विक्रम संवत् ६८६ क्रमशः प्रचलित वि०सं० १०८६ और १०७६-७७ होता है। उक्त संवतों में गुजरात का राजा मूलराज नहीं; किंतु भीमदेव पहला था। ऐसे ही उस समय सांभर का राजा विग्रहराज (वीसलदेव) दूसरा भी नहीं था; क्योंकि उसके पुत्र दुर्लभराज (दूसरे) का शिलालेख वि०सं०१०५६ का मिल चुका है। इसलिये भटायत वा अनंद विक्रम संवत् का हिसाब यहाँ पर भी किसी प्रकार बंध नहीं बैठता।

जोधपुर के राजाओं के संवत्

पंड्याजी ने 'पृथ्वीराज रासे' की टिप्पणी में लिखा है कि जोधपुर राज्य के काल-निरूपक-राजा जयचंदजी को सं० ११३२ और शिवजी और सैतरामजी को सं. ११६८ में होना आज तक निःसंदेह मानते हैं और यह संवत् भी हमारे अन्वेषण किए हुए ९१ वर्ष के अन्तर के जोड़ने से सनंद विक्रमी होकर सांप्रतकाल के शोधे हुए समय से मिल जाते हैं, इसकी जाँच के लिये जोधपुर की भाटों की ख्यात् के अनुसार जैचन्द से लगा कर राव मालदेव तक के प्रत्येक राजाकी गद्दीनशीनी के संवत् नीचे लिखे जाते हैं—

---

१. विएना ओरिऐंटल जर्नल, जि० ५, पृ० २०० ।

२. इंडि० ऐंटि०, जि० ६, पृ० १९१ ।

३. विएना ओरिऐंटल जर्नल, जि० ५, पृ० ३०० ।

४. वही, जि० २, पृ० ११६ ।

राजा का नाम			गद्दीनशीनी का संवत्
जयचन्द (कन्नौज का)	...	...	११३२
वरदाई सेन	...	...	११६५
सेतराम	...	...	११८३
सीहा (शिवा)	...	...	१२०५
आस्थान (मारवाड़ में आया)	...	...	१२३३
धूहड	...	...	१२४८
रायपाल	...	...	१२८५
कन्नपाल	...	...	१३०१
जालणसी	...	...	१३१५
छाडा	...	...	१३३६
तीडा (टीडा)	..	...	१३५२
सलखा	...	...	१३६६
वीरम	...	...	१४२४
चूँडा	...	...	१४४०
कान्ह	...	...	१४६५
सत्ता	...	...	१४७०
रणमल	...	...	१४७४
जोधा	...	...	१५१०
सातल	...	...	१५४५
सूजा	...	...	१५४८
गांगा	...	...	१५७२
मालदेव	...	...	१५८८–१६०६

इन संवतों को देखने से पाया जाता है कि उनमें से किसी दो के बीच ६० या ६१ वर्ष का कहीं अन्तर नहीं है, जिससे यह नहीं कहा जा सकता कि इनमें से यहाँ तक तो अनंद विक्रम संवत् और आगे सनंद (प्रचलित) विक्रम संवत् हैं। अतएव ये सब संवत् एक ही संवत् में होने चाहिए, चाहे वह अनद हो चाहे सनंद। परन्तु राव जोधा ने राजा होने के बाद वि० सं० १५१५ में जोधपुर बसाया यह सर्वमान्य है। इसलिये जोधा की गद्दीनशीनी का संवत् १५१० प्रचलित विक्रम

संवत् ही है। यदि उसको अनंद विक्रम संवत् मानें तो उसके राज पाने का ठीक संवत् १६००-१ मानना पड़ेगा, जो असंभव है। इसी तरह राव मालदेव की शेरशाह सूर से वि०सं०१६०० में लड़ाई होना भी निश्चित है। इसलिये मालदेव के राज पाने का संवत १५८८ भी प्रचलित विक्रमी संवत् है। अतएव ऊपर लिखे हुए जोधपुर के राजाओं के सब संवत् भी अनंद नहीं; किन्तु सनंद (प्रचलित) विक्रम संवत् ही हैं और चूँडा के पहले के बहुधा सब संवत भाटों ने इतिहास के अज्ञान की दशा में कल्पित धर दिए हैं। बीठू (जोधपुर राज्य में पाली से १४ मील पर) के लेख से पाया जाता है कि जोधपुर के राठौर राज्य के संस्थापक सीहा की मृत्यु सं० १३३० कार्तिक वदि १२ को हुई[1] और तिरसिंघड़ी (तिंगड़ी—जोधपुर राज्य के पचपद्रा जिले में) के लेख से आसथामा (अश्वत्थामा, आसथान) के पुत्र धूहड़ का देहांत वि०सं० १३६३ में होना पाया जाता है[2]। इसलिये भाटों की ख्यातों में जोधपुर के शुरु के कितने एक राजाओं के जो संवत् मिलते हैं; वे अशुद्ध ही हैं। कन्नौज के राजा जयचंद की गद्दीनशीनी का संवत् ११३२ भी अशुद्ध है। यदि इसे अनंद संवत् मानें तो प्रचलित विक्रम संवत् १२२२–३ होता है। ऊपर हम दिखा चुके हैं कि जयचंद्र की गद्दीनीशीनी प्रचलित विक्रम संवत् १२२६ में हुई थी (देखो ऊपर)। भाटों के संवत् अशुद्ध हों या शुद्ध, प्रचलित विक्रम संवत के हैं, न कि 'अनंद' विक्रम संवत के; क्योंकि मालदेव और जोधा के निश्चित संवत् भाटों के संवतों से 'सनंद' मानने से ही मिलते हैं।

जयपुर के राजाओं के संवत्।

पंड्याजी का मानना है कि 'जयपुर राज्य वाले पज्जूनजी का [गद्दीनशीनी] संवत् ११२७ में होना मानते हैं और यह संवत् भी हमारे अन्वेषण किए हुए ९१ वर्ष के अन्तर के जोड़ने से सनन्द विक्रमी होकर सांप्रतकाल के शोधे हुए समय से मिल जाता है।'

पज्जून की गद्दीनशीनी का उपर्युक्त संवत् अनंद विक्रम है, या सनंद(प्रचलित)। इसका निर्णय करने से पहले हम जयपुर की भाटों की ख्यात से राजा ईशासिंह से

---

१. इंडि० एंटि०, जि० ४०, पृ० १४१।

२. वही पृ० ३०१।

लगाकर भगवानदास तक के राजाओं के पाट-संवत् नीचे लिखते हैं—

नाम			पाट–संवत्
१ ईशासिंह	...	...	(अज्ञात)
२ सोढदेव	...	...	१०२३
३ दूलेराय	...	...	१०६३
४ काकिल	...	...	१०९३
५ हणू	...	...	१०९६
६ जान्हडदेव	...	...	११९०
७ पज्जून	...	...	११२७
८ मलेसी	...	...	११५१
९ बीजलदेव	...	...	१२०३
१० राजदेव	...	...	१२३६
११ कील्हण	...	...	१२७३
१२ कुंतल	...	...	१३३३
१३ भोणसी	...	...	१३७४
१४ उदयकरण	...	...	१४२३
१५ नृसिंह	...	...	१४४५
१६ बनबीर	...	...	१४८५
१७ उद्धरण	...	...	१४९६
१८ चन्द्रसेन	...	...	१५२४
१९ पृथ्वीराज	...	...	१५५९
२० पूर्णमल्ल	...	...	१५८४
२१ भीमसिंह	...	...	१५९०
२२ रत्नसिंह	...	...	१५९३
२३ भारमल्ल	...	...	१६०४
२४ भगवानदास	...	...	१६३०

इन संवतों में भी कहीं दो संवतों के बीच ९० या ९१ वर्ष का अंतर नहीं है, जिससे यह नहीं माना जा सकता कि अमुक राजा तक के संवत् तो अनंद

विक्रमी है और अमुक से सनंद (प्रचलित) विक्रमी दिए हैं अर्थात् ये सब संवत् किसी एक ही विक्रमी गणना के अनुसार हैं।

बादशाह अकबर हिजरी सन् ६६३ तारीख २ रबिउस्सामानी (वि० सं० १६१२ फाल्गुन वदी ४) को कलानूर में गद्दीनशीन हुआ। उस समय राज्य में बखेड़ा मचा हुआ था, जिससे सूर सुलतान सिकंदर के सेवक हाजीखां पठान ने आंबेर के राजा भारमल कछवाहे की सहायता से नारनौल को घेरा, जो मजनूखाँ काकशाल के अधीन था। राजा भारमल ने बुद्धिमानी और दूरदर्शिता से मजनूखाँ को उसके बाले बच्चों तथा मालताल के साथ वहाँ से बचा कर निकाल दिया। जब बादशाह अकबर ने हेमू ढूसर आदि को नष्ट कर देहली पर अधिकार किया, उस समय मजनूखाँ ने ऊपर किए हुए उपकार का बदला देने के लिये बादशाह से राजा भारमल की सिफ़ारिश की। राजा देहली बुलाया गया और बादशाह ने उसको तथा उसके साथ के राजपूतों को खिलअतें देकर विदा किया। वि० सं० १६६८ में बादशाह अकबर आगरे से राजपूताने को चला। बादशाह की तरफ़ से बुलाए जाने पर राजा भारमल साँगानेर में बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ और उसने उसकी अधीनता स्वीकार की। राजपूताने के राजाओं में से भारमल ने ही सब से पहले बादशाही सेवा स्वीकार की। वि० सं० १६२४ में बादशाह अकबर ने चित्तौड़ पर चढ़ाई की। उस समय राजा भारमल भी उसके साथ था और वि०सं०१६२५ में बादशाह ने रणथंभोर के किले को घेरा, तब वहाँ के किलेदार बूँदी के राव सुर्जन हाड़ा ने इसी राजा की सलाह से बादशाही सेवा स्वीकार की।

ऊपर दिए हुए संवतों में से भारमल का वि० सं०१६०४ से १६३० तक राज करना निर्विवाद है और उन संवतों को प्रचलित (सनंद) विक्रम संवत मानने से ही राजा भारमल अकबर का समकालीन सिद्ध होता है, न कि अनंद विक्रम संवत् से।

ऊपर दिए हुए संवतों में से राजा पूर्णमल्ल की गद्दीनशीनी से लगा कर पिछले राजाओं के संवत् शुद्ध हैं; परन्तु पूर्णमल्ल से पहले के राजाओं के संवत; इतिहास के अंधकार की दशा में बहुधा सबके सब भाटों ने कल्पित कर के धरे हैं: क्योंकि, उनमें सोढदेव से लगा कर पृथ्वीराज तक के १८ राजाओं का राज्य समय

* बादशाह अकबर की वि०सं०१६६२ (ई०सं०१६०) में मृत्यु हुई। अस्तु- इस संवत् के लिखने में कुछ भूल होना पाया जाता है है। वस्तुतः बादशाह होने के बाद अकबर १६१८ वि०सं०में राजपुताने की ओर प्रथम बार बढ़ा था। —सम्पादक

५६१ वर्ष दिया है, जिससे औसत हिसाब से प्रत्येक राजा का राजत्वकाल ३१ वर्ष से कुछ अधिक आता है, जो सर्वथा स्वीकार नहीं किया जा सकता। जयपुर की ख्यात में जैसे संवत् कल्पित धर दिए हैं, वैसे ही सुमित्र (पुराणों का) के बाद के कूरम से लगा कर ग्यानपाल तक के १३८ नाम भी बहुधा कल्पित ही हैं; क्योंकि ग्वालिअर के शिलालेखों में वहाँ के जिन कछवाहे राजाओं के नाम मिलते हैं, उनमें से एक भी ख्यात में नहीं है। मूँहणोत नैणसी ने भी अपनी ख्यात में कछवाहों की दो वंशावलियाँ दी हैं, उनमें से जो भाट राजपाण ने लिखवाई, वह तो वैसी ही रही है जैसी कि ख्यात की; परन्तु जो दूसरी वंशावली उसने दी है, उसमें पिछले नाम ठीक हैं और वे शिलालेखों के नामों से भी मिलते हैं। ग्वालिअर के शिलालेखों तथा उक्त वंशावली के नामों का मिलान नीचे किया जाता है:—

ग्वालिअर के कछवाहे (शिला-लेखों से)[1]	जयपुर के कछवाहे (नैणसी की ख्यात से)[2]
१ लक्ष्मण (वि० सं० १०३४)	१ लक्ष्मण
२ वज्रदामा	२ वज्रदीप
३ मंगलराज	३ मगलां
४ कीर्तिराज	४ सुमित्र
५ मूलदेव	५ मुधिब्रह्म
६ देवपाल	६ कहानी
७ पद्मपाल	७ देवानी
८ महीपाल (वि०सं०११५०)	८ ईशे (ईशासिंह)
९ त्रिभुवनपाल (वि०सं०११६१)	९ सोढ (सोढदेव)
	१० दूलराज
	११ काकिल

१. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा की विस्तृत टिप्पणी सहित खड्ग विलास प्रेस, बाँकीपुर का छपा हुआ हिंदी टॉड राजस्थान, खंड १, पृ० ३७२-३७३। इस वंशावली के नामों के साथ जो संवत दिए हैं, वे ग्वालिअर के कछवाहों के शिलालेखों से हैं।

२. मूँहणोत नैणसी की ख्यात, पृ०६३-६४।

१२ हरए
१३ जानड
१४ पज्जून

इन दोनों वंशावलियों में पहले तीन समान हैं। दोनों के मिलान से पाया जाता है कि मंगलराज के दो पुत्र कीर्तिराज और सुमित्र हुए हों। कीर्तिराज के वंशज तो शहाबुद्दीन गोरी के समय तक ग्वालिअर के राजा बने रहे[1] और सुमित्र के वंशजों, अर्थात् ग्वालिअर की छोटी शाखा, के वंशधर सोढ (सोढदेव) ने राजपूताने में आकर बड़गूजरों से धौसा छीन लिया और वहाँ पर अपना अधिकार जमाया। वहाँ से फिर आँवेर उनकी राजधानी हुई और सवाई जयसिंह ने जयपुर बसा कर उसको अपनी राजधानी बनाया। फीरोज़शाह तुग़लक के समय में तंवर वीरसिंह ग्वालिअर का क़िलेदार नियत हुआ; परंतु वहाँ के सय्यद किलेदार ने उसको क़िला सौंप देने से इनकार किया, जिस पर वीरसिंह ने उससे मित्रता बढ़ाने का उद्योग किया। एक दिन उसको वहाँ मिहमान किया और भोजन में नशीली चीज़ें मिला कर उसको भोजन कराया। फिर उसके बेहोश हो जाने पर उसे क़ैद कर क़िले पर अपना अधिकार जमा लिया। यह घटना वि० सं० १४३२ के आस-पास हुई। तब से लगा कर वि० सं० १५६६ के आस–पास तक ग्वालिअर का क़िला तंवरों (तोमरों) के अधीन रहा[2]।

कछवाहों की ख्यात लिखने वाले भाटों को यह ज्ञात नहीं था कि ग्वालिअर पर कछवाहों का अधिकार कब तक रहा और वह तंवरों के अधीन किस तरह हुआ, इसलिये उन्होंने यह कथा गढंत की कि ग्वालिअर के कछवाहा राजा ईशासिंह ने अपनी वृद्धावस्था में अपना राज्य अपने भानजे जैसा (जयसिंह) तंवर को दान कर दिया; जिससे ईशा के पुत्र सोढ़देव ने ग्वालिअर से धौसा में आकर अपने बाहुबल से वहाँ का राज्य छीना। भाटों की ख्यातों में सोढ़देव का वि० सं० १०२३ में गद्दी बैठना लिखा है; परंतु ये बातें मनगढंत ही हैं, क्योंकि शहाबुद्दीन गोरी तक ग्वालिअर पर कछवाहों की बड़ी शाखा का राज्य रहा और सोढ़देव से नौ पुश्त पहले होने वाला राजा लक्ष्मण वि० सं० १०३४ में विद्यमान था। ऐसा

---

१. खड्ग–विलास प्रेस का छपा हुआ हिंदी टॉड राजस्थान, खंड १. पृ० २७२।

२. वही पृष्ठ २७३।

उसी के समय के ग्वालिअर के शिलालेख से निश्चित् है।

अब हमें जयपुर के कछवाहों के पूर्वज पज्जून का समय निर्णय करने की आवश्यकता है। ग्वालिअर का राजा लक्ष्मण वि० सं० १०३४ में विद्यमान था और पज्जून उसका १४ वाँ वंशधर था। यदि प्रत्येक राजा के राज्य समय की औसत २० वर्ष मानी जावे, तो पज्जू का वि० सं० १२६४ में विद्यमान होना स्थिर होता है, जो असंभव नहीं। इसी तरह पज्जून से लगा कर उसके १७ वें वंशधर भारमल्ल तक के राजाओं में से प्रत्येक का राज्य समय औसत से २० वर्ष माना जावे तो भारमल्ल का वि० सं० १६०४ से १६३० तक राज्य करना निश्चित् है।

ऐसी दशा में पज्जून पृथ्वीराज का समकालीन नहीं; किंतु उसे उससे लगभग आधी शताब्दी पीछे होना चाहिए।

पट्टे परवाने

पंड्याजी ने लिखा है कि "चंद के प्रयोग किए हुए विक्रम के अनंद संवत् का प्रचार बारहवें शतक तक की राजकीय व्यवहार की लिखावटों में भी हमको प्राप्त हुआ है अर्थात् हमको शोध करते-करते हमारे स्वदेशी अंतिम बादशाह पृथ्वीराजजी और रावल समरसीजी और महाराणी पृथावाईजी के के कुछ पट्टे परवाने मिले हैं। उनके संवत् भी इस महाकाव्य में लिखे संवतों से ठीक-ठीक मिलते हैं और पृथ्वीराजजी के परवानों में जो मुहर अर्थात् छाप है, उसमें उनके राज्यभिषेक का संवत् ११२२ लिखा है।"

ये पट्टे परवाने नौ हैं। इनके फोटोग्राफ, प्रतिलिपि अँगरेजी अनुवाद हिन्दी हस्तलिखित पुस्तकों की खोज की सन् १६०० ई० की रिपोर्ट में छपे हैं। हम विचार करने के लिये इन्हें इस क्रम से रखते हैं:—

(क) पृथ्वीराज के परवाने।

(१) संवत ११४३ का पट्टा आचारज रुषीकेश के नाम कि तुम्हें पृथावाई के दहेज में दिया गया है, मुहर का संवत् ११२२ (प्लेट ३)।

(२) संवत ११४५ का पट्टा, उसी के नाम 'आगना' (आज्ञा) कि काकाजी बीमार हैं, यहाँ आओ, मुहर का संवत् वही (प्लेट ४)।

(३) ११४५ का पट्टा, उसी के नाम कि काकाजी को आराम होने से तुम्हें रीझ (प्रसन्नता) में पाँच हजार रुपए दिए जाते हैं. मुहर का संवत् वही (प्लेट ६)।

(ख) पृथावाई के पत्र।

(४) संवत् ११ [४५] का, उसी के नाम; कि काकाजी बीमार हैं, मैं दिल्ली जाती हूँ. तुम्हें चलना होगा, चले आओ (प्लेट ५)।

(५) संवत् ११५७ का, अपने पुत्र के नाम, कि समरसी झगड़े में मारे गए हैं, मैं सती होती हूँ, तुम मेरे चार दहेजवालों की, विशेषतः रुपीकेश के वंश की, सम्हाल रखना (प्लेट ८)।

(ग) रावल समरसी का पट्टा।

(६) संवत् ११३९ का आचारज रुपीकेश के नाम, कि तुम दिल्ली से दहेज में आए हो, तुम्हारा संमान और अधिकार नियत किया जाता है (प्लेट १)।

(७) संवत् ११४५ का, उसी के नाम, कि तुम्हें मोई का ग्राम दिया जाता है।

(घ) महाराणा जयसिंह का परवाना।

(८) संवत् १७५१ का, आचारज अपेराम रगुनाथ के नाम, कि पृथावाई का पत्र (देखो ऊपर नं० ५) देख कर नया किया गया कि तुम राज के 'श्यामखोर' अर्थात् नमक हलाल हो। (प्लेट ६)।

(ङ) महाराणा भीमसिंह का पट्टा।

(६) संवत् १८५८ का, आचारज संभुसीव सदासीव के नाम कि समरसी का पट्टा (ऊपर नं० ६ देखो) जीर्ण हो जाने के कारण नया किया गया।

इन पट्टों परवानों में नं० ८ और ६ का विचार करने की आवश्यकता नहीं। नं० ८ तो सं० १७५१ में नं० ५ की पुष्टि करता है और नं० ६ सं० १८५८ में नं० ६ की। पुराने पट्टे को देखकर नया लिखने के समय ऐतिहासिक प्रश्नों की जाँच

नहीं होती, जैसा आगे दिखाया जायगा। पट्टे लिखने, सही करने, भाला और अंकुश बनाने का कार्य एक ही मनुष्य के हाथ में रहने से किसी राजस्थान में क्या-क्या हो सकता है, यह समझाने की हमें कोई आवश्यकता नहीं। हमें आचारज रुषीकेश के वंशजों के पास इन पट्टों तथा भूमि के होने से भी कोई सम्बन्ध नहीं। सं० १८५८ में या सं० १७५१ में समरसी और पृथावाई के विवाह की कथा मानी जाती थी, यह कथन भी हमारे विवेचन में बाधा नहीं डालता। हमें यही देखना है कि बाकी सात पट्टे परवाने स्वतंत्र रूप से अनंद संबत् के सिद्धांत को पुष्ट करते हैं, या केवल 'रासे' की संवत् और घटनाओं की ढिलाई को दृढ़ करने के लिये उपस्थित किये गये हैं।

(क) पृथ्वीराज के पट्टे परवाने—

(१)

॥ श्री ॥

॥ श्री ॥
पूर्व देश महीपति
प्रथीराज दली न
रेस संवत् ११२२
वैशाख सुदि ३

(सही)

श्री श्री दलीनं मंहनं राजानं धीराजनं हदुसथानं राजधानं संभ
री नरेस पुरव दली तपत श्री श्री महानं राजं धीराजनं श्री
प्रथीराजी सुसथानं आचारजरुषीकेस धनंत्रितं अप्रन तमको बाई
श्री प्रथु कवरन की साथ हतलेवे चीत्र,
कोट का दीया तुमार हक चहुवान के रज में साबित हे तुमारी
ओलाद का सपुत कपुत होगा जो चहान की पोल आ
वगा जीनं को भाई सी तरे समंजेगा तुमारा कारंन
नहीं गटेगा तुम जमापात्रि से बाई।

के आ तुमरी जो हुवे श्रीमुप
डुवे पंचोली हडमंराश्र के संमत ११४३
वर्षे आसाड सुद १३

(२)

श्री रामहरी

|| श्री ||
पूर्व देश महीपति
प्रथीराज दली न
रेस संवत् ११२२
वैशाख सुदि ३

सही

श्री श्री दलीन महाराजनं धीराजं श्री श्री
प्रथीराजनं की आगना पोछे आचार
ज भ० रषीकेस ने चत्रकोट पोछे
आहा श्री काकाजो नं महा······हुई
छै सो पास रुको वांचने अहां हाजर वीजे संमत
११४५ चेत वदि ७।

(३)

श्री रामहरी

|| श्री ||
पूर्व देश महीपति
प्रथीराज दली न
रेस संवत् ११२२
वैशाख सुदि ३

सही

श्री श्री दलीन महाराजं धीराजंनं हिदुसथा
नं राजं धानं संभरी नरेस पुरब दली तषत
श्री श्री माहानं राजं धीराजंनं श्री प्रथीराजी
सुसाथनं आचारज रुषीकेस धनंत्रि अप्रन तमने का
काजीनं के दुवा की आरामं चओ जीन
के रीजं में राकड़ रुपीआ ५०००) तुमरे आ
हाती गोड़े का परचा सीवाअ आवेंगे षजानं
से इनको कोई माफ करेंगे जीनको नेरकों
के अधंकारी होवेगे सई दुवे हुकम के हडमंतराअ
संमत ११४५ वर्ष आसाड सुदी १२

ये तीनों दस्तावेज़ जाली हैं, जिसके प्रमाण ये हैं:—

(१) इन तीनों के ऊपर जो मुहर लगी है, वह संवत् ११२२ की हैं। इस सम्वत् को अनंद विक्रम संवत मान कर पंड्याजी पृथ्वीराज की गद्दीनशीनी का संवत् बतलाते हैं। अनंद विक्रम सम्वत् ११२२ सनंद (प्रचलित) विक्रम सम्वत (११२२+६०–६१=) १२१२–१३ होता है। उक्त सम्वत् में तो पृथ्वीराज का जन्म भी नहीं हुआ था; जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है।

(२) मेवाड़ के रावल समरसिंह का समय वि० स० १३३० से १३५८ तक का है, जैसा कि पहले सिद्ध किया गया है, उसके साथ पृथाबाई का विवाह होना और सम्वत् ११४३ अनंद अर्थात् १२३३–४ सनंद में उसे दहेज में दिए हुए आचारज रुषीकेश को पट्टा देना और सम्वत् ११४५ अनंद अर्थात् १२३५–६ सनंद में उसे बीमारी पर बुलाया या बीमारी हट जाने पर बुलाना या बीमारी हट जाने पर इनाम देना सब असम्भव है।

(३) इन पट्टों परवानों की लिखावट वर्तमान समय की राजपूताने की लिखावट है, बारहवीं शताब्दी की वर्णमाला में नहीं है। ध्यान देने से जान पड़ता है कि महाजनी हिन्दी के वर्तमान मोड़ इसमें जगह–जगह पर हैं। जिन्होंने बारहवीं शताब्दी के शिलालेख या हस्तलिखित पुस्तकें देखी हैं, उन्हें इस विषय में अधिक विचार करने की आवश्यकता नहीं। एक ही बात देखली जाय कि इनमें 'ए' या 'ओ' की पुष्ट (पड़ी–मात्रा, अक्षर की बाई ओर) कहीं नहीं है। राजकीय लिखावट सदा सुन्दर अक्षरों में लिखी जाती थी, ऐसी भद्दी घसीट में नहीं।

(४) इनकी भाषा तथा पारिभाषिक शब्दों के व्यवहार को देखिए। पृथ्वी-राज के समय के लेखों में कभी उसे 'पूर्वदेश महीपति' नहीं कहा गया है। मेवाड़ में बैठकर पट्टे गढ़ने वाले आदमी को चाहे दिल्ली पूर्व जान पड़े; किन्तु संकेत के व्यवहार में पूरब का अर्थ काशी–अवध आदि देश होते हैं, दिल्ली नहीं। पूरब का अर्थ काशी–अवध आदि देश होते हैं,'पूरब दिल्ली नहीं। तखत' कहना भी वैसा ही असंगत है। उस समय 'हृदुसथानं राजधानं' की कल्पना नहीं हुई थी। मेरु-तंत्र के 'हिंदू' पद की दुहाई देने से यहाँ काम न चलेगा। 'रासे' के अनुस्वार तो छंदों को लघु मात्राओं का गुरु करने के लिये लगाए गए हैं, या शब्दों को संस्कृत सा बनाने के लिये, या उन स्वयं सिद्ध टीकाकारों को बहकाने के लिये, जो यह नहीं जानते कि अपभ्रंश अर्थात् पिछले प्राकृत में नपुंसक लिंग का चिन्ह 'उ' है और 'वानीयवंदेपयं' के 'अम्' को कह बैठते हैं कि यह द्वितिया विभक्ति नहीं, नपुंसक की प्रथमा है, किंतु इन पदों में स्थान–कुस्थान पर अनुस्वार रासे की संरक्षा के लिये लगाये गए हैं। भाषा बड़ी अद्भुत है। मेवाड़ के रहने वाले अपनी मातृभाषा से गढ़ कर जैसी 'पक्की हिंदी' बोलने का उद्योग करते हैं, वैसी हिंदी बनाई गई 'तमको हतलेवे चीत्रकोट को दीया, 'तुमार हक साबित है', 'जो चहान की पोल आवेगा जीन को भाई सी तरे समजेगा:' किंतु यह खड़ी बोली ज्यादा देर न न चली। दूसरे पट्टे में लिखने वाला फिर वर्तमान मेवाड़ी पर उतर आया 'पास रुको वांचने अहां हाजर बीजे'। मानों महाराणा उदयपुर का कोई हाजिर बाश पृथ्वीराज के वहाँ बैठा बोल रहा हो! रासे की भाषा पर फ़ारसी शब्दों की अधि-कता का आक्षेप होता था। उसके लिये फ़रमान का स्फुरमाणः बनाया गया। 'रासे' तथा इन पट्टों की फ़ारसी की पुष्टि में कहा जाता है कि पृथाबाई दिल्ली से आई थी, वहाँ मुसलमानों का लश्कर रहता था, सौ वर्ष पहले से लाहोर में मुसल मानों का राज्य था; वहाँ से दूत आदि आया जाया करते थे, इत्यादि। इन तीन पट्टों में हृदुसथानं राजधानं दली तखत, हक, साबित, ओलाद जमा खातिर, हाजिर, दबा, आराम, रोकड़, खरचा, सिवा, खजाना, माफ, सही, इतने विदेशी शब्द शुद्ध या भ्रष्ट रूप में विद्यमान हैं। पृथाबाई के पत्र (नं० ४, ५) में साहब, हजूर, खास, रुक्का, कागज, डाक बैठना, हुकम, ताकीद, खातरी, हरामखोर, दस्तखत, पासवान के तत्सम या तद्भव रूप हैं। नं० ६–७ समरसी के पत्रों में बराबर, आबादान, जमाखातिरी, मालकी, जनाना, परवाना शब्द हैं। यह बात

इन पट्टों की वास्तविकता में सन्देह उत्पन्न करती हैं; इतना ही नहीं, बिलकुल इन्हें प्रमाण कोटि से बाहर डाल देती हैं। राज्यों की लिखावट में पुरानी रीति चलती है अँगरेजी राज्य को डेढ़ सौ वर्ष से ऊपर हो जाने पर भी वायसराय और देशी राज्यों के मुरासिले फ़ारसी उर्दू में होते हैं, कचहरी की भाषा घनी फ़ारसी की उर्दू है। सिक्के पर 'यक रुपया' फ़ारसी में है। पृथ्वीराज के समय में विदेशी शब्द व्यवहार में आ भी गए हों तो रायकीय लेखों में पुराने 'मुन्शी' लकीर के फकीर इतनी जल्दी परिवर्त्तन नहीं कर सकते। समरसी तो दिल्ली से दूर थे, वे भी जनाना और परवाना जानने लग गए थे। इन पट्टों की पृथाबाई तो गजब करती है, स्त्रियाँ सदा पुरानी चालों की आश्रय होती हैं; किन्तु वह पति और भाई दोनों को 'हजूर' कहती है! इन पट्टों में खास-रुक्का, परवाना, तख्त, हक, खजाना, औलाद, जमाखातिर, सही; दस्तखत, पासवान (=रक्षिता स्त्री, भोग पत्नी) जनाना, आदि पद ऐसे रूढ़ संकेतों में आए हैं, जिन्हें स्थिर करने में हिन्दू-मुसलमानों के सहवास को तीन-चार सौ वर्ष लगे होंगे। समरसी के पट्टे (नं० ६) में, प्रधान के बराबर बैठक होना, केवल वर्तमान उदयपुर राज्य का संकेत है; दिल्ली में प्रधान' होता हो, तथा 'बैठकें' होती हों, यह निरी पिछली कल्पना है। खास-रुक्का अर्थात् राजा की दस्तखती चिट्ठी भी वर्तमान रजवाड़ों की रूढ़ि है। पत्र के अर्थ में 'कागज' 'कागद' की रूढ़ि भी वर्तमान राजपूताने की है, जब कि चिट्ठी, शब्द अशुभ सूचक पत्र या आटे दाल के पेटिए के अर्थ में रूढ़ हो गया है। यदि समरसी और पृथ्वीराज के समय में इतने विदेशी शब्द रात दिन के व्यवहार में आने लग गए थे, तो राणा कुम्भा का शिलालेख, जिसकी चर्चा आगे की जायगी, बिलकुल फ़ारसी ही सा होना चाहिए था। पृथाबाई के पत्रों में यह और चमत्कार है कि वह अपने लिये 'पधारना' लिखती है, जैसे कि गँवार कहा करते है कि तुमने जब अर्जी करी तब मैंने फरमाया! पंड्याजी कहते हैं, वह दिल्ली से आई थी, अपने दहेज में फ़ारसी के शब्द भी समरसी के यहाँ लाई थी; किन्तु उसके पत्र शुद्ध वर्तमान मेवाड़ी में है, 'मबेरे दिन अठे आंवसी', 'थाने माँ आगे जाणो पड़ेगा,' 'थारे मंदर का ब्याव का सारथ दली तु आआ पाछे करोगा' इत्यादि।

(५) पृथ्वीराज के समय में यहाँ के हिन्दू राजाओं के दरबारों की लिखावट हिन्दी भाषा में नहीं; किन्तु संस्कृत में थी। अजमेर और नाडौल आदि के चौहानों, मेवाड़ (उदेपुर) और डूंगरपुर के गुहिलोतों (सीसोदियों), आबू और

मालवे के परमारों, गुजरात के सोलंकियों; कन्नौज के गाहड़वालों (गहरवालों) आदि की भूमि-दान की राजकीय सनदें (ताम्रपत्र) संस्कृत में ही मिलती हैं। पृथ्वीराज के वंशज महाकुमार चाहड़देव (वाहड़देव) के दान-पत्र के प्रारम्भ का टूटा हुआ टुकड़ा मिला है, जिसकी नक़ल नीचे दी जाती है। उससे मालूम हो जायगा कि पृथ्वीराज के पीछे भी उसके वंशजों की सनदें भाषा में नहीं; किन्तु संस्कृत में लिख कर दी जाती थीं—

[म]हाकुमार श्री चाहडदेवः ॥

······कीर्तिरनंता द्यौः परत्र दातुः प्रतिग्रहीतुश्च । आच्छेत्तुर्विपरीता भूर्वा (ब्रा)ह्मण शा(सा)स्कृता ························विक्रमः । चाह-मानकुलैके(कें)दुर्विभुः शाकंभरीभुवः ॥ २ [॥] ब(ब)भूव भुवनाभोग········ ················धिपः ॥ ३ [॥] ततोऽर्णोराजनृपतिर्ब (र्ब)भार जगतीभरं । स्वामि । [स्वस्मि ?] न्नालानितो ये [न]························· तनूजोऽय च स्वावासैकनिवासिनीः समकरोज्जित्वा दिगंतश्रियः············ ······स्य दासवदमी चेरुश्चिरं निर्मदाः ॥ ५ [॥] पृथ्वीराज [स्य]······[1]

इस ताम्रपत्र के टुकड़े में अर्णोराज (आना) से लगा कर पृथ्वीराज तक की अजमेर के चौहानों की वंशावली बची है; जिससे निश्चित् है कि महाकुमार चाहड़देव, पृथ्वीराज ही का कोई वंशधर था। यदि पृथ्वीराज के समय में चौहानों की राजकीय लिखावटें भाषा में होने लग गई होतीं, तो चाहड़देव फिर संस्कृत का ढर्रा नए सिरे कभी न चलाता। पृथ्वीराज के पीछे भी राजपूताने के जो राज्य मुसलमानों की अधीनता से बचे, उनकी राजकीय लिखावटें संस्कृत में होती रहीं। मेवाड़ के महाराणा हंमीर के संस्कृत के दानपत्र की नकल; वि० सं० १४०० से कुछ पीछे की, एक मुकदमें की मिसल में देखीगई (मूल देखने को नहीं मिला) और वागड़ (डूँगरपुर) के राजा वीरसिंघदेव का वि० सं० १३४३ का संस्कृत ताम्रपत्र राजपूताना म्यूजिअम में सुरक्षित है।

(६) इन तीनों पट्टों में मुहर के पास 'सही' लिखा है। राजकीय लिखा-वट के ऊपर सही करने की प्रथा हिन्दू राज्यों में मुसलमानों के समय उनकी

1. एपि० इन्डि०, जिल्द १२, पृ० २२४।

देखा-देखी चली है। पृथ्वीराज तक किसी राजा के दानपत्र में 'सही' नहीं मिलती। प्राचीन काल में दानपत्रों पर बहुधा राजा के हस्ताक्षर इबारत के अन्त में 'स्वहस्तोऽयं मम' या 'स्वहस्तः' पहले लिख कर किए हुए मिलते हैं। लेख की इबारत दूसरे अक्षरों में तथा यह हस्ताक्षर बहुधा दूसरे अक्षरों में मिलते हैं, जिससे पाया जाता है कि ताम्रपत्र पर राजा स्याही से अपने हस्ताक्षर कर देता था, जो वैसे ही खोद दिए जाते थे। वंसखेड़ा के ताम्रपत्र का 'स्वहस्तोयं मम महाराजाधिराजश्रीहर्षस्य' अपनी सुन्दर अलंकृत लिपि के लिये प्रसिद्ध हो चुका है। ऊपर वर्णन किये हुए महाकुमार चाहड़देव के दानपत्र के ऊपर उसके हस्ताक्षर भी दानपत्र की लिपि से भिन्न लिपि में है। यदि पृथ्वीराज के समय 'सही' करने का प्रचार चौहानों के यहाँ होगया होता तो उसका वंशधर भी वैसा ही करता, न कि पुरानी रीति पर हस्ताक्षर। . . . .

प्राचीन राजाओं के यहाँ कई प्रकार की राज मुद्राएँ होती थीं; जिनका यथा स्थान लगाना किसी विशेष कर्मचारी के हाथ में रहता था। उनमें एक 'श्री' की मुद्रा भी होती थी। वह सब में मुख्य गिनी जाती थी। कई ताम्रपत्र आदि में किसी महन्तम (महता) या मन्त्री के नाम के साथ 'श्रीकरणादिसमस्तमुद्राव्यापारान् परिपन्थयति इत्येवं काले प्रवर्तमाने' लिखा मिलता है। यह 'श्रीकरण व्यापार' या 'श्री' की छाप लगाने का काम बड़े ही विश्वासपात्र अर्थात मुख्य मन्त्री का होता था, जैसे कि गुजरात के सोलंकी राजा वीसलदेव के राजकवि नानाक के लेख में श्रीकरण से प्रसन्न होकर उक्त चालुक्य राजा का अपने वैजवापगोत्री मन्त्रियों को गुंजा ग्राम देने का उल्लेख है (इंडि० एंटि०, जि० ११, पृ० १०२)। जैसे राजपूताने की रियासतों में आजकल 'श्री करना', 'मिती करना' 'सिरिमिती करना' 'सही करना' आदि वाक्य लेख की प्रामाणिकता कर देने के अर्थ में आते हैं, वैसे ही यह 'श्री करणव्यापार' था। मेवाड़ में और मुहरें तो मन्त्री आदि लगा देते हैं; किन्तु रुपए लेने देने की आज्ञाओं पर जो मुहर लगाई जाती है, उसमें 'श्री' लिखा हुआ है और उसे अब तक महाराणा स्वयं अपने हाथ से लगाते हैं। इस 'श्री' करने के स्थान में पीछे 'सही' करना चल गया; किन्तु यह पृथ्वीराज के समय में चला हुआ नहीं माना जा सकता। हिन्दू राज्य इतनी जल्दी अपनी प्राचीन प्रथा को बदल डालें इसकी साक्षी इतिहास नहीं देता। . . . .

पृथाबाई के पत्र।

नीचे उक्त पत्रों की नक़ल दी जाती है। उनमें संवत् ११ [४५] और ११५७ हैं। अनंद या सनंद उन संवतों में पत्र लिखने वाली पृथाबाई वि०सं० १३५८ तक जीवित रहने वाले चितौड़ के राजा समरसिंह की रानी किसी प्रकार नहीं हो सकती। इसलिये ये पत्र भी जाली हैं।

(४)

श्री हरी एकलिंगो जयति।

श्री श्री चीत्रकोट बाई साहब श्री पृथुकुंवरबाई का बारणा गाम
मोई आचारज भाई रुसीकेसजी वांच जो अप्रन श्री दलीसूं भाई श्री लंगरी रा
जी आश्रा है जो श्री दली सूं बी हजूर को बी खास रुका आयो है जो
मारी बी पदारवा की
सीख बी है ने दली ककाजी रे पेद है जो का[गद बाच]त चला आवजो
थाने मा आगे जाणो
पडेगा थांके वास्ते डाक बेठी है श्री हजूर···बी हुकम बे गीयो है जो थे
ताकीद सूं आव
जो थांरे मंदर को ब्याव का मारथ अबार·····करांगा दली सु आ
आ पाछे करांगा ओ
र थे सवेरे दन अठे आंधसी संवत् ११ [४५] चेत सुदी १३

(५)

चीत्रकोट माहा सुभ सुथाने श्री·········सी पास
तीरे मासाव चवाण श्री परथु······की आसीस
वाच जो श्री दली का······सु अप्रन अठे श्री हजुर
माहा सुद १२ क······जगडा में बेकु पदारीआ
नो आचारज······साकेस बी श्री हजूर की
लार काम आश्रा·········श्री हजूर के लारे
जावागा वेकुट पछे······सीकेसरा मनपा
की पात्री रापजो ई मारा चारी······नप मारा
जीव का चाकर हे डी थासु राज···हरामपोर

नी वेगा दुवे नडुर राश्र के······११५७ माहा
सुद १२ दसगत पासवान वेव········रकाभं···
मा साव श्री········थुवाई का वेकुटप···

(यह हमने उक्त रिपोर्ट में से ज्यों का त्यों नकल कर दिया है; किंतु प्लेट से मिलान करने पर देखा जाता है कि जहाँ इस प्रतिलिपि में पंक्तियों का आदि अंत बताया गया है, वहाँ प्लेट में नहीं है। जहाँ बीच में टूटक के संकेत हैं, वहाँ पंक्तियों का अंत है।)

इन पत्रों की भी भाषा वर्तमान मेवाड़ी है। इनकी भाषा का महाराणा कुंभकर्ण के आबू के लेख की भाषा के साथ मिलान करने से स्पष्ट हो जायगा कि उस लेख की भाषा इनसे कितनी पुरानी है, भाषा विषयक और विवेचन ऊपर हो चुका है।

मेवाड़ में यह प्रसिद्ध है कि रावल समरसिंह का विवाह पृथ्वीराज की बहन पृथाबाई के साथ हुआ था। यदि इस प्रसिद्धि का 'पृथ्वीराजरासे' की कथा के अतिरिक्त कोई आधार हो और उसमें कुछ सत्यता हो; तो उसका समाधान ऐसा मानने से हो सकता है कि चौहान राजा पृथ्वीराज (दूसरे) की, जिसको 'पृथ्वीराजविजय' में पृथ्वीभट कहा है, बहिन का विवाह मेवाड़ के राजा समतसी (सामंतसिंह) के साथ हुआ हो। मेवाड़ की ख्यातों में सामंतसिंह को समतसी और समरसिंह को समरसी लिखा है। समरसी नाम प्रसिद्ध भी रहा, जिससे समतसी के स्थान में समरसी लिख दिया हो। पृथ्वीराज (दूसरे) के शिलालेख वि० सं० १२२४, १२२५ और १२२६ के मिले हैं और समतसी का वि० सं० १२२८ और १२३६ में विद्यमान होना उसके शिलालेखों से ही निश्चित है, तथा वि० सं० १२२८ से कुछ पहले उसका मेवाड़ का राज जालौर के चौहान कीतू ने छीना था। अतएव चौहान पृथ्वीराज (पृथ्वीभट) दूसरे और मेवाड़ के समतसी (सामंतसिंह) का समकालीन होना निश्चित है। संभव है कि उन दोनों का संबंध भी रहा हो।

रावल समरसिंह के परवाने

'पृथ्वीराजरासे' में मेवाड़ के रावल समरसिंह का विवाह पृथ्वीराज की बहिन पृथाबाई से होना लिखा है। पंड्याजी इस कथन की पुष्टि में रावल समर-

सिंह के दो परवाने प्रसिद्धि में लाए हैं, जिनके संवत् ११३६ और ११४५ को वे अनंद विक्रम संवत् मानकर रावल समरसिंह का सनंद (प्रचलित) वि० सं० १२२६–३० और १२३५–३६ में विद्यमान होना मानते हैं। उक्त परवानों की नक़लें नीचे दी जाती हैं—

(६)

सही

स्वस्ति श्री श्री चीत्रकोट महाराजाधीराज तपेराज श्री श्री रावलजी श्री समरसींजी वचनातु दाअमा आचारज ठाक-र रषीकेष कस्य थाने दलीसु' डायजे लाया अणी राज में ओ-पद थारी लेवेगा ओपद ऊपरे मालकी थाकी है ओ जनाना में थारा वंसरा टाल ओ दूजो जावेगा नहीं ओर थारी बेठक दली में ही जी प्रमाणे परधान बरोबर कारण देवेगा ओर थारा वंस क सपूत कपूत वेगा जी ने गाम गोणो अणी राज में पाग्या पाग्या जायगा ओर थारा चाकर घोड़ा को नामो कोठार सूं मला जायेगा ओर थूं जमाखातरी रीजो मोई में रायथान बादजो अणी परवाना री कोई उलंगण जी ने श्री एकलिंग जी की आण दुवे पंचो-ली जानकीदास सं० ११३६ काती बीद ३

(७)

सही

श्री श्री चीत्रकाट महाराजधीराज तपेराज श्री रावरजी श्री श्री समरसीजी वचनातु दाअमा आचा-रज ठाकुर रुसीकेस कस्य गाम मोई रो पेडो थाने मआ कीदो लोग भोग सु दीया आवादान करजो जमापा श्री सो आवांदान करजे थारे हे दुवे पत्रा मुकना नाथा समत ११४५ जेठ सुद १३

ये दोनों पत्र भी जाली हैं। क्योंकि—

(१) रावल समरसिंह का अनंद वि०सं०११३६या सनंद वि०सं०१२२६-३० या अनंद वि.सं.११४५अर्थात सनंद वि.सं.१२३५-६में विद्यमानहोना किसी प्रकारसे संभव

नहीं हो सकता। शिलालेखादि से निश्चित है कि समरसिंह का ७ वां पूर्व पुरुष सामंतसिंह वि० सं० १२२८ से १२३६ तक विद्यमान था। वि० सं १२२८ से कुछ पहले जालोर के चौहान कीतू (कीर्तिपाल) ने मेवाड़ का राज्य उससे छीन लिया, जिससे उसने वागड़ (डूँगरपुर–बांसवाड़ा) में जाकर वहाँ पर नया राज्य स्थापित किया। उसके छोटे भाई कुमारसिंह ने वि० सं० १२३६ के पहले गुजरात के राजा की सहायता से मेवाड़ का राज्य कीतू से छीन लिया और वह वहाँ का राजा बन बैठा। उसके पीछे क्रमशः मथनसिंह और पद्मसिंह मेवाड़ के राजा हुए, जिनके समय का अब तक कोई शिलालेख नहीं मिला। पद्मसिंह का उत्तराधिकारी जैत्रसिंह हुआ, जिसके समय के शिलालेखादि वि० सं० १२७१ से १३०६ तक के और उसके पुत्र तेजसिंह के समय के वि० सं० १३१७ से १३२४ तक के मिलते हैं। तेजसिंह का पुत्र समरसिंह हुआ। उसके समय के वि० सं० १३३०, १३३५, १३४२ और १३४४ के लेख पहले मिल चुके थे। उसका समकालीन जैन विद्वान् जिनप्रभ सूरि अपने 'तीर्थकल्प' में उसका वि० सं० १३५६ में विद्यमान होना बतलाता है और अब चित्तौड़ के किले पर रामपोल दरवाजे के आगे के नीम के दरख्त वाले चबूतरे पर वि० सं० १३५८ माघ शुदि १० का रावल समरसिंह का एक और शिलालेख मिला है (देखो पृष्ठ ५७), जिससे निश्चित है कि वि० सं० १३५८ के अन्त के आसपास तक तो रावल समरसिंह विद्यमान था।

(७) उक्त परवाने में 'सही' के ऊपर भाला बना हुआ है, जो पुरानी शैली से नहीं है। मेवाड़ के राजा विजयसिंह के कदमाल गाँव से मिले हुए संस्कृत दान-पत्र के अन्त में उक्त राजा के हस्ताक्षरों के साथ भाले का चिह्न देखने में आया, जो कटार से अधिक मिलता है। वैसा ही चिह्न डूङ्गरपुर के रावल वीरसिंह के वि० सं० १३५३ के संस्कृत दान-पत्र के अन्त में खुदा है और महाराणा उदयपुर के झंडे पर भी वैसा ही कटार का चिह्न रहता है। महाराणा कुम्भकर्ण (कुम्भा) के वि० सं० १५०५ के दान-पत्र में भाला ताम्रपत्र के ऊपर बना है, जो छोटा है और पिछले पट्टे परवानों के ऊपर होने वाले भाले के चिह्न से उसमें भिन्नता है। ठीक वैसा ही भाला आबू पर के देलवाड़ा के मन्दिर के चौक के बीच के चबूतरे पर खड़े हुए उसी राणा के शिलालेख के ऊपर भी बना है। राणा कुंभकर्ण के समय तक भाला छोटा बनता था, पीछे लम्बा बनने लगा। पहले भाले का चिह्न

महाराणा के हाथ से किया जाता था, ऐसा माना जाता है।[1] महाराणा लाखा (लक्षसिंह) का ज्येष्ठ पुत्र चूंडा था, जिसकी सगाई के लिये मंडोर (मारवाड़) से नारियल लेकर राजसेवक आए। महाराणा लाखा ने हँसी में यह कहा कि ज़वानों के लिये नारियल आते हैं, हमारे जैसे बूढ़ों के लिये नहीं। जब पितृभक्त चूंडा ने यह सुना तो उसको यह अनुमान हुआ कि मेरे पिता की इच्छा नई शादी करने की है। इस पर उसने मंडोरवालों से कहा कि यह नारियल मेरे पिता को दिला दीजिए। इसके उत्तर में उन्होंने यह कहा कि महाराणा के ज्येष्ठ पुत्र आप विद्यमान हैं, अतएव हमारी बाई के यदि पुत्र हो तो भी वह चित्तौड़ का राजा तो हो नहीं सकता। इस पर चूँडा ने आग्रह कर यही कहा कि मैं लिखित प्रतिज्ञा करता हूँ कि इस राज्यकन्या से मेरा भाई उत्पन्न हुआ तो चित्तौड़ का स्वामी वही होगा और मैं उसका सेवक होकर रहूँगा। इस पर मारवाड़ की राजकन्या का विवाह महाराणा लाखा के साथ हुआ और उसी से मोकल का जन्म हुआ। अपने पिता के पीछे सत्यव्रत चूँडा ने उसी बालक को मेवाड़ के राज्य सिंहासन पर बिठलाय और सच्ची स्वामिभक्ति के साथ उसने उसके राज्य का उत्तम प्रबन्ध किया। तब से राजकीय लिखावटों पर राजा के किए हुए लेख के समर्थन के लिये भाले का चिह्न चूँडा और उसके वंशज (चूँडावत) करते रहे। पीछे से चूँडावतों ने अपनी ओर का भाला करने का अधिकार 'सहीवालों' को दे दिया जो राजकीय पट्टे परवानों और ताम्रपत्र लिखते हैं।[2] भाले

---

१. "पट्टे परवानों पर पहिले श्रीदर्बार, भाला बनाया करते थे।...... अपने [मोकल के] जमाने में पट्टे व पर्वानों पर भाले के निशान बनाने का काम चूँडाजी के सुपुर्द करके खुद दस्तखत करने लगे।" सहीवाला अर्जुनसिंहजी का जीवन चरित्र, पृष्ठ ६२।

२. "चूँडाजी की औलाद में से जगावत आमेट रावतजी और सांगावत देवगढ़ रावतजी ने उज्र किया कि सलूम्बर वाले [चूँडावतों के मुखिआ] भाला करते हैं तो हम भी चूँडाजी की औलाद में हैं, इसलिये हमारी निशानी भी पट्टे परवानों पर होनी चाहिए। तब महाराणाजी श्री कर्णसिंहजी [जिनकी गद्दीनशीनी वि० सं० १६७६ भादशुक्ला ५ को हुई थी] ने हुक्म फर्माया कि सलूम्बर व आपकी तरह से एक आदमी मुकर्रर करदो, वह भाला बना दिया करेगा। तब उन्होंने श्री दर्बार से अर्ज की कि श्री दर्बार जिसको मुनासिब समझें हुक्म बख़्शें। श्री जी हुज़ूर ने मेरे बुज़ुर्गों के वास्ते फरमाया कि यह मेरी तरफ से

की आकृति में कुछ परिवर्तन महाराणा स्वरूपसिंह ने किया[१]। महाराणा अमरसिंह (दूसरे) के, जिसने वि० सं० १७५५ तक राज्य किया, समय में शक्तावत शाखा के सर्दारों ने महाराणा से यह निवेदन किया कि चूँडावतों की ओर से सनदों पर भाला होता है, तो हमारी तरफ से भी कोई निशान होना चाहिए। इस पर महाराणा ने आज्ञा दी कि सहीवालों को अपनी तरफ से भी कोई निशान बता दो कि वह भी बना दिया जाया करें। इस पर शक्तावतों ने अंकुश का चिह्न बनाने को कहा। उस दिन से भाले के प्रारम्भ का कुछ अंश छोड़ कर भाले की छड़ से सटा हुआ नीचे की ओर दाहिनी तरफ झुका हुआ अंकुश चिह्न भी होने लगा[२]। ऊपर लिखे हुए रावल समरसिंह के परवाने में भी शक्तावतों का अंकुश का वही चिह्न विद्यमान है, जो महाराणा कुंभकर्ण के ताम्रपत्र और आबू के शिलालेख के भाले में नहीं है। अतएव वह परवाना वि० सं० १७५५ के पीछे का जाली बना हुआ है।

(३) परवाने पर 'सही' लिखा हुआ है। ऊपर कह चुके हैं कि संस्कृत की प्राचीन राजकीय लिखावटों में 'सही' लिखने की प्रथा न थी। वह तो पीछे से मुसलमानों की देखा-देखी राजपूताने में चली। मेवाड़ में 'सही' लिखना कब चला, इस विषय में निश्चय के साथ कुछ नहीं कहा जा सकता[३], परन्तु महाराणा हंमीर के बाद जब संस्कृत लिखावट बन्द होकर राजकीय सनदें भाषा में लिखी

लिखा करते हैं और मेरे भरोसे के हैं, इनसे कहदो कि आपकी तरफ से भी भाला बनाया करें। उसी दिन से भाला भी मेरे बुजुर्ग करते आये हैं"। (वही, पृष्ठ० १२)

१. वही, पृष्ठ० १३-१४।

२. वही, पृष्ठ० १४।

३. "विक्रमी संवत् १५६६ में महाराणाजी श्री संग्रामसिंहजी (सांगाजी) गद्दीनशीन हुए, इन्होंने ताम्रपत्र, पट्टे तथा पर्वानों पर सही करना शुरु किया और उनको 'सही' मेरे बुजुर्ग कराते, इससे 'सहीवाला' खिताब इनायत हुआ, तभी से सहीवाले मशहूर हैं" (वही पृष्ठ १२)। किन्तु हम देख चुके हैं कि महाराणा कुंभा के ताम्रपत्र और शिलालेख (आबू का) दोनों पर 'सही' खुदा हुआ है। महाराणा कुंभा, सांगा के दादा थे, इसलिये सहीवालों का यह कथन प्रामाणिक नहीं।

जाने लगीं, तब किसी समय उसका प्रचार हुआ होगा। [illegible] महाराणा कुंभकर्ण (कुंभा) ने 'हिंदुसुरत्राण' (हिंदुओं के [illegible]) धारण किया[2], तब से 'सही' लिखने का प्रचार मेवाड़ में हुआ है। [illegible] कुंभकर्ण (कुंभा) के उपर्युक्त वि० सं० १५०५ के ताम्रपत्र और वि० सं० [illegible] आबू के प्राचीन मेवाड़ी भाषा के शिलालेख में 'सही' खुदा हुआ है।

(४) महाराणा हंमीर तक मेवाड़ की राजकीय लिखावट संस्कृत में [illegible] जाती थी। अतएव रावल समरसिंह के समय मेवाड़ी भाषा की लिखावट का होना संभव नहीं।

(५) भाषा, लिपि आदि के विषय में पृथ्वीराज के पट्टों पर विचार करते समय इन पर भी ऊपर विचार किया जा चुका है।

(६) अब इन पट्टों की मेवाड़ी भाषा और लिपि का इनसे लगभग २७० वर्ष पीछे की मेवाड़ी भाषा और लिपि के लेख से कितना अन्तर है, यह दिखाने के लिये महाराणा कुंभकर्ण (कुंभा) के आबू के वि० सं० १५०६ के लिखालेख की नकल यहाँ दी जाती है। यदि समरसी के समय में वैसी भाषा मानी जाय, तो राणा कुंभा को समरसी से तीन सौ वर्ष पूर्व का मानना पड़ेगा; क्योंकि इस लेख की भाषा उन पट्टों की भाषा से बहुत पुरानी है और उसमें कोई फ़ारसी शब्द नहीं है। केवल 'सुरिहि' फ़ारसी 'शरह' का तद्भव माना जा सकता है, जैसा कि टिप्पणी में

---

१ "पहिले लिखावट बिल्कुल संस्कृत में होती थी, लेकिन सं० १३५९ में रावल श्री रत्नसिंहजी के ज़माने में पद्मनी की बाबत दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन ने चित्तौड़ का मुहासरा किया और चित्तौड़ पर बादशाही कब्ज़ह होगया, इस गर्दिश परेशानी के ज़माने में लिखावट में भाषा के शब्द मिलने लगे और फिर महाराणाजी श्री हंमीरसिंहजी के चित्तौड़ वापस ले लेने के बाद से महाराणा श्रीरायमल्लजी के अख़ीर वक्त तक लिखावट में बहुत भाषा मिल गई, लेकिन ढंग अब तक संस्कृत का ही चला आता है"। (वही, पृ० १४)।

हमीर का दान-पत्र संस्कृत में है और कुंभा का दान-पत्र पुरानी मेवाड़ी में है, जैसे कि उसका आबू का लेख।

२ प्रबलपराक्रमाक्रांतडिल्लीमंडलगुजरत्रासुरत्राणदत्तातपत्रप्रथितहिंदुसुरत्राण बिरुद[illegible]... (सं० १४९६ राणपुर के जैन मंदिर का शिलालेख, भावनगर इंस्क्रिप्शंस, पृ० ११४)।

की आकृति में कुछ परिवर्तन महाराणा स्वरूपसिंह ने किया[१]। महाराणा अमरसिंह (दूसरे) के, जिसने वि० सं० १७५५ तक राज्य किया, समय में शक्तावत शाखा के सर्दारों ने महाराणा से यह निवेदन किया कि चूँडावतों की ओर से सनदों पर भाला होता है, तो हमारी तरफ से भी कोई निशान होना चाहिए। इस पर महाराणा ने आज्ञा दी कि सहीवालों को अपनी तरफ से भी कोई निशान बता दो कि वह भी बना दिया जाया करें। इस पर शक्तावतों ने अंकुश का चिह्न बनाने को कहा। उस दिन से भाले के प्रारम्भ का कुछ अंश छोड़ कर भाले की छड़ से सटा हुआ नीचे की ओर दाहिनी तरफ झुका हुआ अंकुश चिह्न भी होने लगा[२]। ऊपर लिखे हुए रावल समरसिंह के परवाने में भी शक्तावतों का अंकुश का वही चिह्न विद्यमान है, जा महाराणा कुंभकर्ण के ताम्रपत्र और आबू के शिलालेख के भाले में नहीं है। अतएव वह परवाना वि० सं० १७५५ के पीछे का जाली बना हुआ है।

(३) परवाने पर 'सही' लिखा हुआ है। ऊपर कह चुके हैं कि संस्कृत की प्राचीन राजकीय लिखावटों में 'सही' लिखने की प्रथा न थी। वह तो पीछे से मुसलमानों की देखा-देखी राजपूताने में चली। मेवाड़ में 'सही' लिखना कब चला, इस विषय में निश्चय के साथ कुछ नहीं कहा जा सकता[३], परन्तु महाराणा हंमीर के बाद जब संस्कृत लिखावट बन्द होकर राजकीय सनदें भाषा में लिखी

लिखा करते हैं और मेरे भरोसे के हैं, इनसे कहदो कि आपकी तरफ से भी भाला बनाया करें। उसी दिन से भाला भी मेरे बुजुर्ग करते आये है"। (वही, पृष्ठ० १३)

१. वही, पृष्ठ० १३-१४।

२. वही, पृष्ठ० १४।

३. "विक्रमी संवत् १५६६ में महाराणाजी श्री संग्रामसिंहजी। (सांगाजी) गद्दीनशीन हुए, इन्होंने ताम्रपत्र, पट्टे तथा पर्वानों पर सही करना शुरु किया और उनको 'सही' मेरे बुजुर्ग कराते, इससे 'सहीवाला' खिताब इनायत हुआ, तभी से सहीवाले मशहूर हैं" (वही पृष्ठ १३)। किन्तु हम देख चुके हैं कि महाराणा कुंभा के ताम्रपत्र और शिलालेख (आबू का) दोनों पर 'सही' खुदा हुआ है। महाराणा कुंभा, सांगा के दादा थे, इसलिये सहीवालों का यह कथन प्रामाणिक नहीं।

जाने लगीं, तब किसी समय उसका प्रचार हुआ होगा[1]। सम्भव है कि जब से महाराणा कुंभकर्ण (कुंभा) ने 'हिंदुसुरत्राण' (हिंदुओं के सुल्तान) विरुद धारण किया[2], तब से 'सही' लिखने का प्रचार मेवाड़ में हुआ हो। महाराणा कुंभकर्ण (कुंभा) के उपर्युक्त वि० सं० १५०५ के ताम्रपत्र और वि० सं० १५०६ के आबू के प्राचीन मेवाड़ी भाषा के शिलालेख में 'सही' खुदा हुआ है।

(४) महाराणा हंमीर तक मेवाड़ की राजकीय लिखावट संस्कृत में लिखी जाती थी। अतएव रावल समरसिंह के समय मेवाड़ी भाषा की लिखावट का होना संभव नहीं।

(५) भाषा, लिपि आदि के विषय में पृथ्वीराज के पट्टों पर विचार करते समय इन पर भी ऊपर विचार किया जा चुका है।

(६) अब इन पट्टों की मेवाड़ी भाषा और लिपि का इनसे लगभग २५० वर्ष पीछे की मेवाड़ी भाषा और लिपि के लेख से कितना अन्तर है, यह दिखाने के लिये महाराणा कुंभकर्ण (कुंभा) के आबू के वि० सं० १५०६ के शिलालेख की नकल यहाँ दी जाती है। यदि समरसी के समय में वैसी भाषा मानी जाय, तो राणा कुंभा को समरसी से तीन सौ वर्ष पूर्व का मानना पड़ेगा; क्योंकि इस लेख की भाषा उन पट्टों की भाषा से बहुत पुरानी है और उसमें कोई फ़ारसी शब्द नहीं है। केवल 'सुरिहि' फ़ारसी 'शरह' का तद्भव माना जा सकता है, जैसा कि टिप्पणी में

---

१. "पहिले लिखावट बिल्कुल संस्कृत में होती थी, लेकिन सं० १३५६ में रावल श्री रत्नसिंहजी के जमाने में पद्मनी की बाबत दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन ने चित्तौड़ का मुहासरा किया और चित्तौड़ पर बादशाही कब्ज़ह होगया, इस गर्दिश परेशानी के ज़माने में लिखावट में भाषा के शब्द मिलने लगे और फिर महाराणाजी श्री हंमीरसिंहजी के चित्तौड़ वापस ले लेने के बाद से महाराणा श्रीरायमल्लजी के अख़ीर वक्त तक लिखावट में बहुत भाषा मिल गई, लेकिन ढंग अब तक संस्कृत का ही चला आता है" । (वही, पृ० ५८)।

हमीर का दान-पत्र संस्कृत में है और कुंभा का दान-पत्र पुरानी मेवाड़ी में है, जैसे कि उसका आबू का लेख।

२. प्रबलपराक्रमाक्रांतडिल्लीमंडलगुर्जरत्रासुरत्राणदत्तातपत्रप्रथितहिंदुसुरत्राण बिरुदस्य ...... (सं० १४९६ राणपुर के जैन मंदिर का शिलालेख, भावनगर इंस्क्रिप्शंस, पृ० ११४)।

बतलाया है। इस लेख की भाषा सं० १५०६ की मेवाड़ी निर्विवाद है तो समरसी के इन पट्टों की भाषा कभी उससे पुरानी नहीं हो सकती। इस शिलालेख का फोटो भी दिया जाता है[१]।

श्री गणेशायः ॥ सही ॥



॥ संवत् १५०६ वर्षे आषाढ़ सुदि २
महाराणा श्री कुंभकर्ण विजय-
राज्ये श्री अर्बुदाचले देलवाड़ा ग्रामे विमे-
लवसही श्री आदिनाथ तेजलवसही श्री नेमिनाथ

---

१. यहाँ टिप्पणियों के लिये अधिक अंक न लगाकर इस लेख पर जो वक्तव्य है, वह एक ही टिप्पणी में दे दिया जाता है।

विमलवसी-वसही (प्राकृत) वसहीका (प्राकृत से बना संस्कृत) वसति (संस्कृत) मंदिर, विमलशाह का स्थापित किया हुआ(वसाया हुआ)श्री आदिनाथ का मंदिर। **तेजलवसही** प्रसिद्ध मन्त्री वस्तुपाल के भाई तेजपाल की स्थापित श्री नेमिनाथ की वसहिका। **बीजे**-दूसरे। **श्रावक**-जैन धर्मानुयायी संघ के चार अंग हैं, साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका। श्रावक-धर्म को सुनने वाले (साधुओं के उपदेश के अनुयायी) अर्थात् गृहस्थ। इसीसे 'सरावगी' शब्द निकला है। **देहर**-देवघर; देवकुल, देवल,मंदिर। **बीजे श्रावके देहरे**-अन्यान्य जैन मन्दिरों में (अधिकरण की विभक्ति विशेषण तथा विशेष्य दोनों में है।) **दाण**-संस्कृत दण्ड,राजकीयकर; दण्ड या दाण जुर्माने के लिये भी आता है और राहदारी, जगात आदि के लिये भी। **मुंडिकं**— मूंडकी, प्रतियात्री या प्रतिमुंड पर कर। **वलावी**-मार्ग में रक्षा के लिये साथ के सिपाही का कर। **रखवाली**-चौकीदारी का कर। **घोडा**-घोड़ा। **पोठ्या**-पृष्ठ्य (संस्कृत) पीठ पर भार लादने वाले बैल। **रूं**-का। **राणि कुंभकर्णि** इ-तृतीया विभक्ति का चिह्न है,राणा कुंभकर्ण ने,हिन्दी 'मैं'=मइं(सं० मया) भी तृतीया विभक्ति है। उसके आगे फिर 'ने' लगाकर 'मैंने' यह दुहरा विभक्ति चिह्न भूल से चल पड़ा है। **महं**-महत्तम, महत्तम, उच्चराज्याधिकारी या मन्त्री। मिलाओ, महता या महत्तर। **जोग्यं** योग्य, डूंगर भोजा मामक अधिकारी के कहने से उस पर कृपा या उपकार करके। **जिको**-जो। **तिहिरुं**-उसका। **मुकावुं**-छुड़ाया (पंजाबी मुक-समाप्त करना, गुजराती-मूक=छोड़ना, भेजना या रखना)। **पले**-पालित हो, पाला जाय।

तथा बीजे श्रावके देहरे दाण मुंडिकं वलावी रपवाली
गोडा पोठ्यारुं राणि श्री कुम्भकर्णि महं डूंगर भोजा जो
ग्यंमया उधारा जिको ज्यात्रि आवि तिहिरुं सर्वमु-
कावुं ज्यात्रा संमंधि आच्यंद्रार्क लगि पले कुई कोई
मांगवा न लहि राणि श्री कुम्भकर्णि म० डूंगर भो
जा ऊपरि मया उधारी यात्रा मुगती कीधी आ
घाट थापु सुरिहि रोपावी जिको आ विधि लो
पिसि ति इहि सुरिहि भांगीरुं पाप लागिसि
अनि संह जिको जात्रि अविसई स फदयु ं१ एक देव

मांगवा न लहि–मांग न सके। **ऊपरि**–ऊपर जोग्यं की व्याख्या देखो। **मयाउधारा**-मया धारण करके, 'दया मया कर' 'के कृपा करके। **मुगति**–मुक्ति। छूट। **कीधी**–की, रचा। **थापु**–थापा, स्थापित किया। **आघाट**–नियम। **सुरिहि**–फारसी–शरह १,नियम का लेख (देखो पत्रिका, अंक ६, पृ० २५३–४)। **रोपावी**–रोपी, खड़ी की (संस्कृत, रोपिता, प्राकृत–संस्कृत, रोपापिता)। **आ विधि**–यह विधि (कर्मकारक)। **लोपसि**–(मारवाड़ी लोपसी,सं० लोपयिष्यति) लोपेगा, नष्ट करेगा। **ति**-(कर्मकारक) उसे। **भांगीरूं**–तोड़ने का। **लागिसि**–लगेगा। **अनि**–और (सं० अन्यत्)। **संह**–संघ, यात्रियों का समूह। **अविसइं**–आवेगा,संस्कृत सम आविष्यति (!) **स**–वह। **भद्यु**ं(संस्कृत पदिक) फदैया, दो आने के लगभग मूल्यका चाँदी का सिक्का। **अचलेश्वरि भंडारि,संनिधानि,**अधिक-रण कारक। **दुगाड़ी** (सं०द्विकाकिणी), एक पदिक में पाँच, (रुपये के ४०) एक ताँबे का सिक्का। **मुकिस्यइं**–देवेगा, (मिलाओ **मुकावुं**,**अविसइ**)। **दुए**–दूतक। शिलालेख और ताम्रपत्रों में जिस अधिकारी के द्वारा राजाज्ञा दी हो उसका नाम दूतकोऽत्र कह कर लिखा जाता था। उसी का अपभ्रंश **दुए, दुवे या प्रत** पीछे के लेखों, पट्टों आदि में आता है। ऊपर के जाली पट्टों में भी दुवे' आया है। इस लेख के दुए या दूतक स्वयं राणा कुंभा ही है। **दोसी रामण** इस लेख का लेखक होगा।

इस लेख के अन्त में पत्थर पर स्थान खाली रहने से सं० १५०६ में किसी दूसरे ने सवादो पंक्ति लिख कर जोड़ दी है। उस लेख का इससे कोई सम्बन्ध न होने से हमने उसे यहाँ उद्धृत नहीं किया।

श्री अचलेश्वरि अन दुगाणि ४ न्या देवि श्री विशिष्ट
भंडारि मुकिस्यइ । अचलगढ़ ऊपरि देवी ॥
श्री सरस्वती सन्निधानि बइठां लिखितं । दुए ॥
श्री स्वयं ॥ श्री रामप्रसादातु ॥ शुभंभवतु ॥
दोसी रामण नित्यं प्रणमति ॥

उपसंहार

इस सारे लेख का निष्कर्ष यही है कि पृथ्वीराज रासे में कोई ऐसा उल्लेख नहीं है, जिससे किसी नए सम्वत् या विक्रम सम्वत् को "अनन्द" रूपान्तर का होना संभव माना जाय। अनंद विक्रम सम्वत् नाम का कोई संवत कभी प्रचलित नहीं था। रासे के संवत् तथा भाटों की ख्यातों के संवत् अशुद्ध भले ही हों, किंतु हैं सब प्रचलित विक्रम संवत् ही। रासे के अशुद्ध संवतों तथा मनमानी ऐतिहासिक कल्पना को सत्य ठहराने की खींचतान में जब भटायत संवत् से काम न निकला, तब पंड्याजी ने इस अनंद विक्रम सम्वत् की सृष्टि की। जिन दूसरे विद्वानों ने इसे स्वीकार कर अपने नाम का महत्त्व इसे दिया है, उन्होंने स्वयं कभी इसकी जाँच न की, केवल गतानुगतिक न्याय से पंड्याजी का कथन मान लिया। इस सम्वत् की कल्पना से भी रासे या भाटों की ख्यातों के संवत् जाँच की कसौटी पर शुद्ध नहीं उतरते। जिन जिन घटनाओं के संवत् दूसरे ऐतिहासिक प्रमाणों से जाँचे गए हैं, उन सबमें यही पाया गया कि संवत् अशुद्ध और मन माने हैं, किसी 'अनंद' या दूसरे संवत्सर के नहीं। रासे की घटनाओं और इस कल्पित संवत् की पुष्टि में जो पट्टे-परवाने लाए गए वे भी सिखाए हुए दवाह की तरह उल्टा मामला बिगाड़ गए।

पृथ्वीराज रासे में एक दोहा यह भी है—

एकादस सै पंचदह, विक्रम जिम ध्रम सुत्त।
त्रितिय साक प्रथिराज को, लिख्यो विप्र गुन गुत्त (प्त) ॥

इसका अर्थ यह दिया गया है कि जैसे युधिष्ठिर के १११५ वर्ष पीछे विक्रम का संवत् चला, वैसे विक्रम से १११५ वर्ष पीछे कवि ने गुप्त रीति से पृथ्वीराज का तीसरा शक लिखा। यदि इस दोहे का यही अर्थ माना जाय तो जिस कवि को यह ज्ञान हो कि युधिष्ठिर और विक्रम संवत का अन्तर १११५ वर्ष है, वह जो

न कहे सो थोड़ा है। युधिष्ठिर संवत् तो प्रत्येक वर्ष के पञ्चाङ्ग में लिखा रहता है और साधारण से साधारण ज्योतिषी भी उसे जानता है। यही दोहा सिद्ध किए देता है कि जैसे युधिष्ठिर और विक्रम के बीच ३११५ वर्ष कल्पित हैं, वैसे ही पृथ्वीराज का जन्म १११५ में होना भी कल्पित है।

भाटों की ख्यातें विक्रम संवत् की १५ वीं शताब्दी के पूर्व की घटनाओं और संवतों के लिये किसी महत्त्व की नहीं है। मुसलमानों के यहाँ इतिहास लिखने का नियमित प्रचार था; चाहे वे हिंदुओं की पराजय और अपनी विजय का वर्णन कितने ही पक्षपात से लिखते थे; किन्तु संवत् और मुख्य घटनाएँ वे प्रामाणिक रीति पर लिखते थे। जब दिल्ली में मुगल दरबार में हिन्दू राजाओं का जमघट होने लगा, तब उनके इतिहास की भी पूछ हुई। मुसलमान तवारीख नवीसों को देख कर, उन्होंने भी लिखा इतिहास चाहा और भाटों ने मनमाना इतिहास गढ़ना आरम्भ कर अपने स्वामियों को रिझाना आरम्भ किया। 'पृथ्वीराजरासे' की सब घटनाओं के मूल में एक बड़ी भारी कल्पना है कि जैसे दिल्ली के मुगलिया दरबार में सब प्रधान राजा अधीनरूप से संमिलित थे, वैसे ही पृथ्वीराज का कल्पित दिल्ली दरबार गढ़ागया है, जिसमें प्रधान राजवंशों के कल्पित प्रतिनिधि, चाहे वे समरसी और पज्जून आदि मित्र संबंधी रूप से हों और चाहे जयचन्द आदि शत्रु रूप से हों, खड़े करके वर्णन किए गए। पीछे इतिहास के अंधकार में यही 'रासा' सब राजस्थानों की ख्यातों का उपजीव्य होगया।

'पृथ्वीराजरासे' की क्या भाषा, क्या इतिहासिक घटनाएँ और क्या संवत्, जिस-जिस बात की जाँच की जाती है, उसी से यह सिद्ध होता है कि यह पुस्तक वर्तमान रूप में न पृथ्वीराज की समकालीन है और न चंद जैसे समकालीन कवि की कृति है।

ना० प्र० प० (त्रै०, न० सं०), काशी,
भाग १, सं० १९७७, ई० सं० १९२०।
पृ० ३७३-४५४

सं० टि०—इस लेख में मूल में या टिप्पण में 'देखो ऊपर पृ०.......' लिखा है, उसका अभिप्राय उपर्युक्त ना० प्र० पत्रिका से है।

पृथ्वीराज-रासो का निर्माण-काल

पृथ्वीराज-रासो राजस्थानीय हिन्दी भाषा का वीररसात्मक बृहत् काव्य है। राजपूताने में उसका बड़ा आदर है। पहले वही ग्रन्थ इतिहास का खजाना समझा जाता था; परन्तु आधुनिक विद्वान् शोधक उसकी असलियत में सन्देह करने लगे हैं। उसका रचयिता चन्द वरदाई उक्त ग्रन्थ के अनुसार पृथ्वीराज का राजकवि था। यदि वास्तव में वह ग्रन्थ पृथ्वीराज के समय में बना होता, तो उसमें लिखी हुई पृथ्वीराज के सम्बन्ध की सब घटनाएँ शुद्ध होतीं; परन्तु प्राचीन शोध की कसौटी पर उनमें से अधिकांश ठीक नहीं उतरतीं। राजपूताने के प्रसिद्ध इतिहास-लेखक कर्नल टॉड ने उस ग्रन्थ से बहुत सी बातें अपने 'राजस्थान' में उद्धृत की हैं और उसकी कविता पर मुग्ध होकर उसने उसके तीस हजार छन्दों का अँगरेजी अनुवाद भी किया था[1]। बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी ने उसे ऐतिहासिक ग्रन्थ समझ कर उसका कुछ अंश अपनी ग्रन्थमाला में प्रकाशित भी किया था।

ई० सन् १८७५ में प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता डाक्टर बूलर को कश्मीर में संस्कृत-ग्रन्थों की खोज करते समय [जयानक कवि-रचित] 'पृथ्वीराज-विजय महाकाव्य' की भोजपत्र पर लिखी हुई एक प्राचीन अपूर्ण प्रति मिली, जिस पर द्वितीय राजतरंगिणी के कर्त्ता जोनराज की टीका भी है। इस पुस्तक को पढ़ने के पश्चात् उक्त डाक्टर ने एशियाटिक सोसाइटी बंगाल को निम्नलिखित आशय का पत्र लिखा—

---

१. मेरा लिखा हुआ कर्नल जेम्स टॉड का जीवन चरित्र, (खड्ग विलास प्रेस; बाँकीपुर, (पटना) से प्रकाशित 'हिन्दी टॉड राजस्थान', प्रथम खण्ड में) पृ० ३३।

"पृथ्वीराज विजय का कर्त्ता निःसंदेह पृथ्वीराज का समकालीन और उसका राजकवि था। वह सम्भवतः कश्मीरी था और एक अच्छा कवि तथा पंडित था। उसका लिखा हुआ चौहानों का वृत्तांत चंद के लिखे हुए विवरण के विरुद्ध है और वि० सं० १०३० तथा वि० सं० १२२६ के शिलालेखों से मिल जाता है। 'पृथ्वीराज विजय महाकाव्य' में पृथ्वीराज की जो वंशावली दी हुई है, वही उक्त लेखों में भी मिलती है और उसमें लिखी हुई घटनाएँ दूसरे साधनों अर्थात् मालवे और गुजरात के शिलालेखों से मिल जाती हैं। उक्त पुस्तक में पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर के संबंध में लिखा है—उसका पिता अर्णोराज और उसकी माता गुजरात के सुप्रसिद्ध राजा जयसिंह की पुत्री कांचनदेवी थी। अर्णोराज की पहली रानी सुधवा से, जो मारवाड़ की राजकन्या थी, दो पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें से बड़े का नाम किसी ग्रन्थ या शिलालेख में लिखा नहीं मिलता और छोटे का विग्रहराज (वीसलदेव) था।

"ज्येष्ठ पुत्र ने, जिसका नाम किसी ग्रन्थ या शिलालेख में नहीं दिया है, अपने पिता को मार डाला। इस विषय में कवि लिखता है—'उसने अपने पिता की वैसी ही सेवा की, जैसी परशुराम ने अपनी माता की की और अपने पीछे दीपक की बत्ती के समान दुर्गंध छोड़ गया।' अर्णोराज के बाद उसका पुत्र विग्रहराज और उसके अनंतर उसका पुत्र अपरगांगेय (अमरगंगू) राजा हुआ। फिर उक्त पितृघाता के पुत्र पृथ्वीभट या पृथ्वीराज (दूसरे) को गद्दी मिली। पृथ्वीराज के पीछे मंत्रियों ने सोमेश्वर को राज्य-सिंहासन पर बिठाया, जिसने तब तक सारा समय विदेश में बिताया था और अपने नाना जयसिंह से शिक्षा पाई थी। सोमेश्वर ने चेदि (जबलपुर जिला) की राजधानी त्रिपुर में जाकर चेदिराज की कन्या कर्पूरदेवी से विवाह किया, जिससे उक्त काव्य के चरित्र-नायक पृथ्वीराज और हरिराज उत्पन्न हुए। अजमेर की गद्दी पर बैठने के थोड़े ही समय पीछे सोमेश्वर का देहान्त हो गया और अपने पुत्र पृथ्वीराज की नाबालिगी में अपने मन्त्री कादंबवास (कादंबवास) की सहायता से कर्पूरदेवी राजकाज चलाने लगी।

"उक्त काव्य में कहीं इस बात का नामनिशान तक नहीं है कि पृथ्वीराज दिल्ली के राजा अनंगपाल की कन्या से उत्पन्न हुआ था और उसे अनंगपाल ने गोद लिया था। यह आश्चर्य की बात है कि पुराने मुसलमान इतिहास लेखकों ने

भी यह कहीं नहीं लिखा कि पृथ्वीराज दिल्ली में राज्य करता था। वे उसे अजमेर का राजा बतलाते हैं; उनका कहना है कि वह राजद्रोह के कारण विजेताओं (मुसलमानों) के हाथ से, जिन्होंने उसे उसके राज्य में कुछ अधिकार दे रखे थे, अजमेर में मारा गया।

"मुझे इस काल के इतिहास के संशोधन की बड़ी आवश्यकता जान पड़ती है और मैं समझता हूँ कि चन्द के रासो का प्रकाशन बन्द कर दिया जाय, तो अच्छा होगा। वह ग्रन्थ जाली है, जैसा कि जोधपुर के मुरारिदान और उदयपुर के श्यामलदास ने बहुत काल पहले प्रकट किया था। 'पृथ्वीराज विजय' के अनुसार पृथ्वीराज के बंदीराज अर्थात् मुख्य भाट का नाम पृथ्वीभट था न कि चन्द बरदाई।"[1]

यह तो प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेता डाक्टर बूलर का मत है। हिन्दी भाषा के इतिहास-लेखक मिश्र-बन्धुओं ने अपनी 'हिंदी नवरत्न' नामक पुस्तक में चंदबरदाई का जन्म संवत् ११८३ और मृत्यु संवत् ११५० बतलाया है[2]। और लिखा है—"रासो जाली नहीं है। पृथ्वीराज के समय में ही चन्द ने इसे बनाया था। इसके अकृत्रिम होने का एक यह भी कारण समझ पड़ता है कि यदि कोई मनुष्य सोलहवीं शताब्दी के आदि में इसे बनाता, तो वह स्वयं अपना नाम न लिखकर ऐसा भारी (२५०० पृष्ठों का) बढ़िया महाकाव्य चन्द को क्यों समर्पित कर देता।"[3]

बाबू श्यामसुन्दरदास तथा पंडित रामचन्द्रजी शुक्ल पृथ्वीराज रासो की घटनाओं तथा संवतों को अशुद्ध स्वीकार करते हुए उसके कर्त्ता का समय १२२५ और १२४८ के बीच में मानते हैं[4] और 'पृथ्वीराज-विजय' में जिन-जिन घटनाओं तथा नामों का उल्लेख है, उन्हें ठीक समझते हैं।[5]

---

१ यह पत्र एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल की प्रोसीडिंग्ज् संख्या ४ और ५ (अप्रैल और मई) सन् १८९३ पृ० ९४-९५ में प्रकाशित हुआ है।

२ हिन्दी नवरत्न; तृतीय संस्करण; पृष्ठ ५५।

३ वहीं; पृष्ठ ५६।

४ नागरीप्रचारिणी पत्रिका; भाग ६, पृष्ठ २८।

५ वही; पृष्ठ ३३।

यदि 'पृथ्वीराज-विजय' और 'पृथ्वीराजरासो' दोनों ग्रन्थ पृथ्वीराज के समय में लिखे गए होते, तो एक ग्रन्थ में पृथ्वीराज की वंशोत्पत्ति, उसके पूर्व-पुरुषों की नामावली, उसके माता पिता, भाई, बहिन तथा रानियों के नाम और युद्धों आदि के जो वर्णन दिए हुए हैं, वे ही दूसरे में भी होते; परन्तु पृथ्वीराजरासो की मुख्य-मुख्य बातें पृथ्वीराज-विजय से बहुधा भिन्न हैं और विजय के कथन तो शिलालेख आदि से मिलते हैं, पर रासो के नहीं। ऐसी दशा में दोनों ग्रंथों का निर्माण-काल पृथ्वीराज के समय में मानना किसी प्रकार युक्तिसंगत नहीं।

अब हम पृथ्वीराज रासो का समय निर्णय करने के लिये उसमें दी हुई मुख्य मुख्य घटनाओं की जांच करते हैं—

पृथ्वीराज रासो और अग्निवंशी क्षत्रिय

पृथ्वीराज रासो में लिखा है—"आबू पर्वत पर एक बार ऋषि लोग यज्ञ करने लगे तो राक्षसों का समूह यज्ञ-विध्वंस की चेष्टा करने लगा। इस महाउपद्रव से अत्यन्त दुःखी हो सब ऋषियों ने वशिष्ठ के पास जाकर अपना समस्त दुःख निवेदन किया। तब वशिष्ट ने स्वयं अग्निकुंड के पास आकर उसमें से परिहार, चालुक्य और परमार ये तीन क्षत्रिय उत्पन्न किए और उन्हें राक्षसों को मारने के लिये आज्ञा दी; किंतु जब यथासाध्य चेष्टा करने पर भी इन तीनों क्षत्रियों द्वारा अपेक्षित कार्य का संतोषप्रद साधन न हो सका, तब वशिष्ठ स्वयं एक नवीन यज्ञकुंड की रचना कर श्री चतुरानन ब्रह्मा का ध्यान करते हुए आहुति देने लगे, जिससे तुरंत ही चार बाहु वाला एक दीर्घकाय महान् तेजस्वी पुरुष उत्पन्न हुआ।..............वेदी से निकले हुए उस पुरुष को देख कर वशिष्ठ ने उसे चहुवान नाम से संबोधन किया"।[1]

इस समय उक्त चारों क्षत्रियों के वंशज अपने को अग्निवंशीय मानते हैं, पर उनमें से केवल परमार की उत्पत्ति के संबंध में परमारों के शिलालेखों[2] तथा उनके

---

1. नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्रकाशित पृथ्वीराजरासो, आदि पर्व; पृथ्वीराजरासो सार पहिला समय, पृष्ठ ७–८।
2. अस्त्युच्चैर्गगनावलंबशिखरः क्षोणीभृदस्यां भुवि—
ख्यातो मेरुमुखोच्छ्रितादिषु परां कोटिं गतोप्यर्बुदः (र्बुदः)
............[२]॥

ऐतिहासिक ग्रन्थों[1] में लिखा है—'एक बार विश्वामित्र' आबू पर्वत पर रहने वाले वशिष्ठ ऋषि की गाय नंदिनी को हर ले गए। इस पर वशिष्ठ ने क्रुद्ध होकर अपने

तस्मिंस्त्यक्तभवश्चरित्रविभवस्तथ्यं तपो तप्यत
ब्रह्मज्ञाननिधिर्गुणैर्निरवधिः श्रेष्ठो वसिष्ठो मुनिः।
......[४]॥

मुनेस्तस्यांतिके रेजे निर्मला दंव्यरुंधती।
स्थिरवश्यं द्रियग्रामा तपः श्रीरिव जंगमा॥ [५]॥

अनन्यसुलभा धेनुः कामपूर्वास्य सन्निधौ।
ददती वांछितान्कामांस्तपः सिद्धिरिव स्थिता॥ [६]॥

ततः क्षत्रमदोद्वृत्तो गाधिराजसुतश्छलात्।
धेनुः जह्रे स्य दुष्प्रापां चिरं सिद्धिमिवोद्यतां॥ [७]॥

अथ परामर्शसंभवमन्युना ज्वलनचंडरुचा मुनिनामुना।
रिपुवधं प्रतिवीरविधित्सया हुतभुजि स्फुटमंत्रयुतं हुतं॥ [८]॥

पृष्ठे तांणीरयुग्मं दधदथ च करे चंडकोदण्डदण्डं।
बध्नन्जूटं जटानामतिनिविडतरं पाणिना दक्षिणेन॥

क्रुद्धो यज्ञोपवीती निजविषमदृशा भागयन्जीवलोकं।
तस्मादुद्दामधामा प्रतिबलदलनो निर्गतः कोपि वीरः॥ [९]॥

आदिष्टस्तेन यातो रणममरगणैर्मंगले गीयमाने।
बाढं व्याप्तान्तरालैर्दिनकरकिरणच्छादकैर्व्योणवर्मैः॥

कृत्वा भंगं रिपूणां प्रबलभुजबलः कामधेनुं गृहीत्वा।
भक्त्या तस्यांह्रिपद्मद्वयलुलितशिराः सोत्रतस्थौ पुरस्तात्॥ [१०]॥

आनतस्य जयिनः परितुष्टो वांछिताशिषमसौवभिधाय।
तस्य नाम परमार इतीत्य तथ्यमेव मुनिरासु (शु) चकार॥ [११]॥

वांसवाड़ा राज्य के अर्थुणा ग्राम के मंडलीश्वर महादेव के मन्दिर में लगा हुआ परमार वंश के राजा मंडनदेव के समय का वि० सं० ११३६ का शिलालेख।

इस प्रकार की उत्पत्ति अन्य शिलालेखों में भी मिलती है।

१ ब्रह्माण्डमण्डपस्तम्भः श्रीमानस्त्यर्बुदो गिरिः॥......॥ ४६॥

अतिस्वाधीननीवारफलमूलसमित्कुशम्।

अग्नि कुण्ड में आहुति दी, जिससे उस कुंड में से एक वीर पुरुष प्रकट हुआ, जो शत्रु से लड़कर गाय छीन लाया। उसकी वीरता से प्रसन्न होकर ऋषि ने उसका नाम 'परमार' अर्थात् शत्रु को मारने वाला रखा। पृथ्वीराजरासो का परमारों की उत्पत्ति का कथन ऊपर उद्धृत किए हुए उन्हींके शिलालेखों और पुस्तकों से भी नहीं मिलता।

प्रतिहार, चालुक्य (सोलंकी) और चौहानों के १६ वीं शताब्दी के पूर्व के शिलालेखों और पुस्तकों में भी कहीं अग्निवंश या वशिष्ठ के यज्ञ के संबंध की कोई बात नहीं मिलती[1]। उनसे उनका वंश-परिचय नीचे लिखे अनुसार मिलता है।

प्रतिहार उत्पत्ति

ग्वालियर से वि० सं० ६०० (ई० स० ८४३) के आसपास की प्रतिहार वंश की राजा भोजदेव की एक बड़ी प्रशस्ति मिली है। उसमें प्रतिहार सूर्यवंशीय बतलाए गए हैं[1]। इसी प्रकार सुप्रसिद्ध कवि राजशेखर, जिसने वि० सं० की दसवीं शताब्दी में कई नाटक रचे, अपने नाट-

---

मुनिस्तपोवनं चक्रे तत्रेक्ष्वाकुपुरोहितः ॥ ६४ ॥
हृता तस्यैकदा धेनुः कामसूर्गाधिसूनुना ।
कार्तवीर्यार्जुनेनेव जमदग्नेरनीयत ॥ ६५ ॥
स्थूलाश्रुधारसन्तानस्नपितस्तनवल्कला ।
अमर्षपावकस्याभूद्भर्तुः स्समिदरुन्धती ॥ ६६ ॥
अथाथर्वविदामाद्यस्समंत्रामाहुतिं ददौ ।
विकसद्विकटज्वालाजटिले जातवेदसि ॥ ६७ ॥
ततः क्षणात् सकोदण्डः किरीटी काञ्चनाङ्गदः ।
उज्जगामाग्नितः कोऽपि सहेमकवचः पुमान् ॥ ६८ ॥
दूरं संतमसेनेव विश्वामित्रेण सा हृता ।
तेनानिन्ये मुनेर्धेनुर्दिनश्रीरिव भानुना ॥ ६९ ॥
परमार इति प्रापत् स मुनेर्नाम चार्थवत् ... ॥ ७० ॥

पद्मगुप्त (परिमल) रचित 'नवसाहसाङ्कचरित', सर्ग ११।

१ मन्विक्ष्वाकुककुत्थ (त्स्थ) मूलपृथवः क्ष्मापालकल्पद्रुमाः ॥ २ ॥
तेषां वंशे सुजन्मा क्रमनिहितपदे धाम्नि वज्रेषु घोरं ।

कों में उक्त भोजदेव के पुत्र महेंद्रपाल को, जो उसका शिष्य था, रघुकुल तिलक[1] और उसके पुत्र महीपाल को 'रघुवंशमुक्तामणि' लिखता है। शेखावाटी के प्रसिद्ध हर्षनाथ के मंदिर की चौहान राजा विग्रहराज की वि० सं० १०३० की प्रशस्ति से भी कन्नौज के प्रतिहारों का रघुवंशी होना ज्ञात होता है[2] इन प्रमाणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रतिहार पहले अपने को अग्निवंशीय नहीं; किंतु सूर्यवंशीय(रघुवंशी) मानते थे।

चालुक्य (सोलंकी) राजा विमलादित्य के ८ वें राज्यवर्ष अर्थात् वि० सं० १०७५ (ई० स० १०१८) के दानपत्र में सोलंकियों को चंद्रवंशी लिखा है। इसके सिवा उसमें ब्रह्मा से अत्रि, अत्रिसे सोम, सोम से लगा कर विचित्रवीर्य तथा उसके पुत्र पांडुराज तक की पूरी नामावली, पांडु के पाँचों पुत्रों युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, आदि के नाम और अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु से लगाकर विमलादित्य तक की वंशावली भी दी हुई[3]। इससे स्पष्ट है कि उक्त संवत् में सोलंकी अपने को चंद्रवंशांतर्गत पांडवों के वंशज मानते थे।

चालुक्यवंश की उत्पत्ति

रामः पौलस्त्यहिंस्रं (हिंस्र) हत विहितसमित्कर्म्म चक्रे पलाशैः ।
श्लाघ्यस्तस्यानुजोसौ मघवमदमुषो मेघनादस्य संख्ये ।
सौमित्रिस्तीव्रदंडः प्रतिहरणविधेर्यः प्रतीहार आसीत् ॥ ३ ॥
तद्वंशे प्रतिहारकेतनभृति त्रैलोक्यरक्षास्पदे ।
देवो नागभटः पुरातनमुनेर्मूर्तिर्व्वभूवाद्भुतम् ।......॥ ४ ॥
आर्कियोलोजिकल सर्वे आफ इन्डिया; वार्षिक रिपोर्ट, ई० सन् १९०३-४, पृ० २८० ।

१. रघुकुलतिलको महेंद्रपालः (विद्धशालभंजिका) ।
देवो यस्य महेंद्रपालनृपतिः शिष्यो रघुग्रामणीः ।
बालभारत; १ । ११ ।
तेन (महीपालदेवेन) च रघुवंशमुक्तामणिना ।
बाल भारत ।

२. इन्डियन् एँटिक्वेरी; जिल्द ४२, पृ० ५८-५९ ।

३. श्रीधाम्नः पुरुषोत्तमस्य महतो नारायणस्य प्रभो-
र्न्नाभीपंकरुहाद् बभूव जगतस्स्रष्टा स्वयं भूस्ततः [।]

सोलंकी राजा कुलोत्तुंग चोड़देव (दूसरे) के सामंत बुद्धराज के शक संवत १०६३ (वि०सं० १२२८ के दानपत्र) में कुलोत्तुंग चोड़देव के प्रसिद्ध पूर्वज कुब्ज विष्णु[1] को 'चंद्रवंश-तिलक' कहा है। सुप्रसिद्ध जैनाचार्य हेमचंद्र ने, जो गुजरात के सोलंकी राजा जयसिंह (सिद्धराज, वि० सं० ११५०–११६६) तथा उसके उत्तराधिकारी कुमारपाल (वि०सं० ११६६–१२३०) से सम्मानित हुआ था, अपने द्वयाश्रय महाकाव्य' के ६ वें सर्ग में गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव के दूत और चेदि देश के राजा कर्ण के वार्तालाप का सविस्तर वर्णन किया है। उसका सारांश यह है—

"दूत ने राजा कर्ण से पूछा कि भीम आपसे यह जानना चाहते हैं कि आप उनके मित्र हैं वा शत्रु। इसके उत्तर में कर्ण ने कहा कि कभी निर्मूल न होने वाला सोम (चंद्र) वंश विजयी है। इसी वंश में जन्म लेकर पुरूरवा ने पृथ्वी का पालन किया। इन्द्र के अभाव में डरे हुए स्वर्ग का रक्षण करने वाला मूर्तिमान् क्षात्रधर्म नहुष इसी कुल में उत्पन्न हुआ। इसी वंश के राजा भरत ने निरंतर

जज्ञे मानससूनुरत्रिरिति यस्तस्मान्मुनेरत्रित-

स्सोमो वंश [क] रस्सुधांशुरुदित [:] श्रीकंठचूडामणिः ॥ १ ॥

तस्मादासीत्सु[धा]सूतेर्बु'धो बु[ध]नुतस्ततः। [।]

ज[। तः पुरु(रू)रवानाम चक्रव [र्ती स] विक्रमः। [२]

ततोऽर्जुनादभिमन्युरभिमन्योः परिक्षि[त् परिक्षि] तो जनमेजयः जनमेजयात्क्षेमुकः क्षेमुकान्नरवाहनः नरवा[हन] । [च्छ]तानीकः शतानीकादुदयनः

............।तस्यैव दाननृपतेस्साध्व्याश्चार्य्य [।] महादेव्याः [।]

सूनुर्विमलादित्यस्सत्याश्रयवंशवर्द्धनो देवः [१२]

अनलानलरंध्रगते शकवर्षे वृषभमासि सितपक्षे।

यष्यष्ठ्यां गुरुपुष्ये सिंहे लग्ने प्रसिद्धमभिषिक्तः। [१३]

एपिग्राफिआ इन्डिका; जिल्द ६ पृ० ३५१–५८।

१. ओं [॥] अस्ति श्रीस्तनकुंकुमांकितविराज [द्व्यू]ढ वक्षस्थलो

देवश्शीतमयूखवंशशातिलक [:] श्री [कु]ब्जविष्णुर्नृपः।...१

वही; जिल्द ६, पृ० २६६।

संग्राम करने और अनीति के मार्ग पर चलने वाले दैत्यों का संहार कर अतुल यश प्राप्त किया। इसी कुल में जन्म लेकर धर्मराज युधिष्ठिर ने उद्धृत शत्रुओं का नाश किया। जनमेजय तथा अन्य अक्षय यश वाले तेजस्वी राजा इसी वंश में हुए और इन सब पूर्ववर्ती राजाओं की समानता करने वाला भीम (भीमदेव) इस समय विजयी है। सत्पुरुषों में परस्पर मैत्री होना स्वाभाविक है, अतएव हमारी मैत्री के विरुद्ध कौन क्या कह सकता है"।[1]

ऊपर उद्धृत किए हुए प्रमाणों में निश्चित है कि पृथ्वीराज के समय तथा उससे पूर्व भी सोलंकी अपने को अग्निवंशी नहीं, किन्तु चंद्रवंशी और पांडवों की संतान मानते थे[2]।

चौहान वंश की उत्पत्ति

पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर का बड़ा भाई विग्रहराज (बीसलदेव चतुर्थ। बड़ा विद्वान राजा था। उसने अजमेर में अपनी बनवाई हुई संस्कृत पाठशाला (सरस्वती मंदिर) में अपना बनाया हुआ 'हरकेलि नाटक', अपने राजकवि सोमेश्वर रचित 'ललित विग्रहराज' नामक नाटक तथा चौहानों के इतिहास का एक काव्य शिलाओं पर खुदवाए। मुसलमानों ने उस मंदिर को तोड़कर वहाँ पर 'ढाई दिन का झोंपड़ा' नाम की मसजिद बनवाई। वहीं से उक्त काव्य की प्रथम शिला मिली है, जिसमें चौहानों को सूर्यवंशी कहा है।

---

१ द्वयाश्रय महाकाव्य; सर्ग ६, श्लोक ५०-५६ (सोलंकियों का प्राचीन इतिहास; प्रथम भाग, पृष्ठ ६ और १० के टिप्पण में प्रकाशित)

२ ··················देवोः रविः पातु वः।

तस्मात्समालंव(ब)नदंडयोनिरभूज्जनस्य स्खलतः स्वमार्गे।
वंशा स देवोढरसो नृपाणामनुद्गतैनोघुणकीटरन्ध्रः ॥ ३४ ॥
समुत्थितोर्कदनरण्ययोनिरुत्पन्नपुन्नागकदंव(ब) शाखः।
आश्चर्यमंतः प्रसरत्कुशोयं वंशोर्थिनां श्रीफलतां प्रयाति ॥ ३५ ॥
आधिव्याधिकुवृत्तदुर्गतिपरित्यक्ताप्रजास्तत्र ते
सप्तद्वीपभुजो नृपाः समभवन्निक्ष्वाकुरामादयः। ···३६ ॥

'पृथ्वीराज विजय' में भी चौहानों को जगह जगह सूर्यवंशी लिखा है[1], अग्निवंशी कहीं भी नहीं। ग्वालियर के तोमर (तँवर) वंशी राजा वीरम के दरबार के जैन कवि नयचंद्र सूरि ने वि० सं० १४६० के आसपास 'हम्मीरमहाकाव्य' बनाया। उसको भी चौहानों का अग्निवंशी होना मालूम नहीं था। उसने लिखा है—"ब्रह्माजी यज्ञ करने के निमित्त पवित्र भूमि की शोध में फिरते थे। उस समय उनके हाथ में से पुष्कर (कमल का फूल) गिर गया। जहाँ पर कमल गिरा, उस भूमि को पवित्र मान वहीं यज्ञ आरंभ किया; परंतु राक्षसों का भय होने से उन्होंने सूर्य का ध्यान किया, जिस पर सूर्यमण्डल से एक दिव्य पुरुष उतर आया। उसने यज्ञ की रक्षाकी और यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हुआ। जिस स्थान पर ब्रह्माजी के हाथ से पुष्कर (कमल) गिरा था, वह स्थान पुष्कर तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हुआ और सूर्यमंडल से बुलाया हुआ जो वीर पुरुष आया था, वह चाहमान (चौहान) कहलाया और ब्रह्माजी की कृपा से महाराजा बनकर राजाओं पर राज्य करने लगा"।[2]

तस्मिन्नथारिविजयेन विराजमानो
राजानुरंजितजनोजनि चाहमानः ।·········॥ ३७ ॥

चौहानों के ऐतिहासिक काव्य की राजपूताना म्यूजियम (अजमेर) में रखी हुई पहली शिला।

१ काकुत्स्थमिक्ष्वाकुरघू च यद्दधत्
पुराभवत्त्रिप्रवरं रघोः कुलम्।
कलावपि प्राप्य स चाहमानतां
प्ररूढतुर्यप्रवरं बभूव तत् ॥ २ । ७१ ॥

······भानोः प्रतापोन्नतिं।
तन्वन् गोत्रगुरोर्निजेन नृपतेर्जज्ञे सुतो जन्मना ॥ ७ । ५० ॥
सुतोप्यपरगांगेयो निन्येस्य रविसूनुना।
उन्नतिं रविवंशस्य पृथ्वीराजेन पश्यता ॥ ८ । ५४ ॥

पृथ्वीराजविजय महाकाव्य।

२ यज्ञाय पुण्यं क्वचन प्रदेशं द्रष्टुं विधातुर्भ्रमतः किलादौ।
अपेतिवत् पुष्करमाशुपाणिपद्मात्पराभूतमिवास्य भासा ॥ १४ ॥

इस प्रकार पृथ्वीराज के पूर्व से लगाकर वि० सं० १४६० के आस-पास तक चौहान अपने को सूर्यवंशी मानते थे। यदि पृथ्वीराज-रासो, पृथ्वीराज के समय का बना हुआ होता; तो वह चौहानों को अग्निवंशी न कहता।

पृथ्वीराज-रासो और चौहानों की वंशावली

पृथ्वीराज रासो में पृथ्वीराज तक की जो वंशावली दी है, वह अधिकांश में कृत्रिम है। हम वि० सं० १०३० से लगाकर वि० सं० १६३५ के आस पास तक के चौहानों के शिलालेखों और संस्कृत-पुस्तकों में मिलने वाली भिन्न-भिन्न वंशावलियों का एक नक्शा यहाँ देते हैं, जिसमें पृथ्वीराज रासो की भी वंशावली उद्धृत की गई है। उनके परस्पर के मिलान से ज्ञात हो जायगा कि रासो का कर्त्ता पृथ्वीराज का समकालीन नहीं हो सकता; क्योंकि रासो की वंशावली कुछ इधर-उधर के नामों को छोड़कर सारी कृत्रिम है। किसी भी प्राचीन शिलालेख या ग्रन्थ से नहीं मिलती। नीचे लिखी हुई वंशावली की तालिका को देखने से ज्ञात हो जायगा कि चौहानों के सबसे पुराने वि० सं० १०३० के लेख में दिए हुए आठों नाम विजालियाँ के लेख से और पृथ्वीराज विजय से ठीक मिल जाते हैं। तनिक अंतर के विषय में यही कहना आवश्यक होगा कि गूवक (प्रथम) के स्थान पर गोविंदराज लिखा है, जो उक्त प्राकृत नाम का संस्कृत रूप है। शशि नृप और चन्द्रराज भी एक दूसरे के पर्यायवाची हैं। इसी तरह प्राकृत 'वप्पराज' का संस्कृत रूप वाक्पतिराज है।

ततः शुभं स्थानमिदं विभाव्य प्रारब्धयज्ञो यमपास्तदैन्यः ।
विशंक्य भीतिं दनुजव्रजेभ्यः स्मेरास्य सस्मार सहस्ररश्मेः ॥ १५ ॥

अथातरन्मंडलतोऽथभासां पत्युः पुमानुद्यतमंडलाग्रः ।
तं चाभिषिच्यास्वदसीयरक्षाविधौ व्यधादेष मखं सुखेन ॥ १६ ॥

पपात यत् पुष्करमत्रपाणेः ख्यातं ततः पुष्करतीर्थमेतत् ।
यच्चायमागादथ चाहमानः पुमानतोऽख्यायि स चाहमानः ॥ १७ ॥

हम्मीरमहाकाव्यः सर्ग १।

शिलालेखों आदि से चौहानों की वंशावली

चौहान राज विग्रह राज के समय के वि० सं० १०३० की 'हर्षनाथ की प्रशस्ति से	चौहान राजा सोमेश्वर के समय के वि० सं० १२२६ के बिजोलियाँ के शिलालेख से	पृथ्वीराज विजय महाकाव्य से।	वि०सं० १५ वीं शताब्दी के आसपास के लिखे प्रबन्ध कोश के अन्त में दी हुई चौहानों की वंशावली	वि० सं० १४६० के आसपास के बने हुए हम्मीर महाकाव्य से	वि० सं० १६३५ के आसपास के बने हुए सुर्जन चरित्र काव्य से	पृथ्वीवाज रासो से
१	२	३	४	५	६	७
	सामंत जयराज विग्रह चंद्र गोपेन्द्र	चाहमान वासुदेव सामन्तराज जयराज विग्रहराज चंद्रराज गोपेन्द्रराज	वासुदेव सामन्त नरदेव अजयराज विग्रहराज विजयराज चन्द्रराज गोविन्द्राज	चाहमान वासुदेव नरदेव चन्द्राज जयपाल चक्री जयराज	वासुदेव नरदेव अजयपाल अजयराज सामन्तसिंह	चाहुवान सामन्तदेव महादेव मोहन्त अजयसिंह रामसिंह वीरसिंह विगनुदसूर उद्धारहार अशोक शंकोविडार बैरसिंह

१	२	३	४	५	६	७
						वरीसिंह
				सामन्तसिंह		वीरदण्ड
	दुर्लभ	दुर्लभराज	दुर्लभराज			अरिमंत
गूवक	गूवक	गोविन्दराज				मानिकराय
चन्द्रराज	शशिनृप	चंद्रराज (द्वितीय)				महासिंह
गूवक (द्वितीय)	गूवाक (द्वितीय)	गूवक		गूवक	गुर्जर	संग्राम
चन्दन	चन्दन	चन्दनराज		नन्दन	चन्द्र	चन्द्रगुरु
					वज्र	
वाक्पतिराज	वप्पयराज	वाक्पति	वत्सराज	वप्रराज	विश्वपति	प्रतापसिंह
				हरिराज	हरिराज	मोहसिंह
						सेनराय
सिंहराज	सिंहराज	सिंहराज	सिंहराज	सिंहराज		सम्रतिराय
			दुर्योधन	भीम	भीम	नागहस्त
विग्रहराज	विग्रह	विग्रहराज द्वितीय	विजयराज	विग्रहराज	विग्रहदेव	स्थूलनंद
(वि०सं० १,०३०)						आनन्दराज
			वप्पेयीवर			लोहधीर
	दुर्लभ	दुर्लभराज	दुर्लभराज			धर्मसार
	गंडु	गोविन्दराज	गड्डराज	गंगदेव	गंडुदेव	विबुधसिंह
	वाक्पति	वाक्पतिराज (द्वितीय)	बालपदेव	वल्लभराज	वल्लभ	योगसूर

१	२	३	४	५	६	७
						चन्दराय
	वीर्यराम	वीर्यराम	विजयराज	राम	रामनाथ	कृष्णराज
	चामुंड	चामुंड	चामुंडराज	चामुंडराज	चामुंड	हरहरराय
	सिंहट					वालनराय
	दुसल	दुर्लभ	दूसलदेव	दुर्लभराज	दुर्लभराज	पृथ्वराय
				दुसल	दुसलदेव	अनेय
	वीसल	विग्रहराज (तृतीत)	विसलदेव	वीसल	वीसलदेव	धर्माधिराज
					वल्लभ	वीसलदेव
	पृथ्वीराज	पृथ्वीराज	पृथ्वीराज	पृथ्वीराज		सारंगदेव
	अजयदेव	अजयराज	आल्हणदेव	आल्हणदेव		आनलराउ
	अर्णोराज	अर्णोराज	अनालदेव	अनालदेव	आनलदेव	जयसिंह
	०	०	जगदेव	जगदेव	जगदेव	आनन्ददेव
	विग्रहराज	विग्रहराज (चतुर्थ)	वीसलदेव	वीसलदेव	वीसलदेव	
				जयपाल	अजयपाल	
		अपर गांगेय	अमर गांगेय	गंगपाल	गांगदेव	
	पृथ्वीराज (दूसरा)	पृथ्वीभट्ट	पीथलदेव			
	सोमेश्वर	सोमेश्वर	सोमेश्वर	सोमेश्वर	सोमेश्वर	सोमेश्वर
	(वि० सं० १२२६)					
		पृथ्वीराज हरिराज	पृथ्वीराज हरिराज	पृथ्वीराज हरिराज	पृथ्वीराज मानिकराज	पृथ्वीराज रेणसी

विजोलियाँ के लेख और पृथ्वीराज विजय की वंशावली भी पूर्णतः परस्पर मिलती है। विजोलियाँ के लेख का लौकिक नाम 'गण्डू' संस्कृत में गोविंदराज में,

'इसल' दुर्लभ में और 'वीसल[१]' विग्रहराज में बदल गए हैं। विजोलियाँ के लेख का सिंहट नाम 'पृथ्वीराज-विजय' में नहीं है और पृथ्वीराजविजय का अपरगांगेय (अमरगंगू)[२] उक्त शिलालेख में नहीं है। प्रबन्धकोप के अन्त में दी हुई चौहानों की वंशावली भी वीजोल्याँ के लेख और 'पृथ्वीराजविजय' से अधिकतर मिलती है; क्योंकि उसमें दिए हुए ३१ नामों में से २२ नाम ठीक मिल जाते हैं। हम्मीर महाकाव्य में दिए हुए ३१ नामों में से २१ नाम पृथ्वीराजविजय से और उनके अतिरिक्त ३ नाम प्रबन्धकोप से मिलते हैं। 'सुर्जनचरित' महाकाव्य वूँदी के चौहान राव सुर्जन के समय में वि० सं० १६३५ के आसपास वना, इसलिये उसमें प्राचीन ग्रंथों से बहुत अधिक समानता नहीं पाई जाती, तो भी २७ नामों में से १३ नाम मिल जाते हैं। उसमें और हम्मीर महाकाव्य तथा प्रबन्धकोप में अधिक समानता है। उपर्युक्त नामों के अतिरिक्त सुर्जनचरित के ७ नाम प्रबन्धकोप या हम्मीर महाकाव्य से मिलते हैं; परन्तु पृथ्वीराजरासो के ४४ नामों में से केवल कहीं कहीं के ७ नाम ही विजोलियाँ के लेख और पृथ्वीराजविजय के नामों से मिलते हैं, अन्य सब कृत्रिम और कल्पित हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि पृथ्वीराजरासो बहुत अधिक अर्वाचीन है। यदि रासो पृथ्वीराज के समय ही वना होता तो उसकी वंशावली में और 'पृथ्वीराजविजय' की वंशावली में इतना अधिक अन्तर न होता। पृथ्वीराजरासो १७ वीं सदी के पूर्वार्ध में वने हुए 'सुर्जनचरित' से भी पीछे प्रसिद्धि में आया, ऐसा ज्ञात होता है। राजपूताने में चौहानों का मुख्य और पुराना राज्य वूँदी है। यदि सुर्जन के समय पृथ्वीराजरासो वहाँ प्रसिद्धि में आगया होता, तो उसी के आधार पर 'सुर्जनचरित' में वंशावली लिखी जाती; परन्तु ऐसा न होना इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि उस समय तक वूँदी में उसकी प्रसिद्धि नहीं हुई थी। उस समय पृथ्वीराजरासो की कुछ कथाएँ जनश्रुति से लोगों में कुछ कुछ अवश्य प्रचलित थी।

---

१. अशोक के लेखवाले दिल्ली के सवालक स्तंभ पर के चौहान राजा विग्रहराज (वीसलदेव) के वि०सं०१२२० वैशाख सुति (सुदि) १५ के लेखों में वीसल और विग्रहराज दोनों एक ही राजा के नाम दिए हैं। इण्डियन ऐंटिक्वेरी, जिल्द १९, पृष्ठ २१८ और प्लेट।

२. अबुलफ़जल ने अमर गंगू नाम दिया है। वह थोड़े ही दिन राज्य कर बचपन में मर गया था, जिससे उसका नाम छोड़ दिया गया हो।

पृथ्वीराज रासो और पृथ्वीराज की माता

पृथ्वीराज रासो में लिखा है—दिल्ली के तँवर राजा अनंगपाल ने अपनी छोटी कुँवरी कमला का विवाह सोमेश्वर के साथ किया[१], जिससे पृथ्वीराज का जन्म हुआ था। अंत में अनंगपाल देहली का राज्य अपने दौहित्र पृथ्वीराज को देकर बदरिकाश्रम में तप करने को चला गया[२]।" यह सारी कथा कल्पित है, क्योंकि उस समय न तो अनंगपाल दिल्ली का राजा था और न उसकी पुत्री कमला का विवाह सोमेश्वर के साथ हुआ था। दिल्ली का राज्य तो पहले ही सोमेश्वर के बड़े भाई विग्रहराज (चतुर्थ) ने ही अपने राज्य (अजमेर) के अधीन कर लिया था। बिजोलियाँ के उक्त लेख में विग्रहराज का दिल्ली और हाँसी को लेना लिखा है[३]। तबक़ाते नासिरी में शहाबुद्दीन ग़ोरी के साथ की पहली लड़ाई में दिल्ली के राजा गोविंदराज का पृथ्वीराज के साथ होना और उसी (गोविंदराज) के भाले से सुलतान का घायल होकर लौटना तथा दूसरी लड़ाई में, जिसमें पृथ्वीराज की हार हुई, उस (गोविंदराज) का मारा जाना लिखा है[४]। इससे निश्चित है कि पृथ्वीराज (तीसरे) के समय दिल्ली अजमेर के उक्त सामंत के अधिकार में थी।

पृथ्वीराज की माता का नाम भी कमला नहीं, किंतु कर्पूरदेवी था और वह दिल्ली के राजा अनंगपाल की पुत्री नहीं, किंतु त्रिपुरी (चेदि अर्थात् जबलपुर के आसपास के प्रदेश की राजधानी) के हैहय (कलचुरि) वंशी राजा तेजल (अचलराज) की पुत्री थी।[५]

---

१ पृथ्वीराजरासो; आदि पर्व, रासोसार, पृ० १५।

२ वही; दिल्ली-दान-प्रस्ताव, अठारवाँ समय, रासोसार, पृ० ६२।

प्रतोल्यां च वलभ्यां च येन विश्रामितं यशः [।]

ढिल्लिकाग्रहणश्रांतमाशिकालाभलंभितः (तं) ॥ २२ ॥

बिजोलियाँ का लेख (छाप पर से)।

४ तबक़ातेनासिरी का अँगरेजी अनुवाद (मेजर रावर्टी का किया हुआ); पृ०४५९-६८।

५ इति साहससाहचर्यचर्यसमयज्ञैः प्र[तिपादि] त प्रभावाम्।

तनयां स सपादलक्षपुण्यज्ञैरुपयेमे त्रिपुरीपुर[न्द]रस्य ॥ [१६] ॥

पृथ्वीराजविजय; सर्ग ७।

यदि पृथ्वीराजरासो पृथ्वीराज के समय में लिखा जाता, तो उसमें यह घटना ऐसी कल्पित न लिखी जाती। पंद्रहवीं शताब्दी का लेखक नयचंद्र भी 'हम्मीर-महाकाव्य' में पृथ्वीराज की माता का नाम कर्पूरदेवी देता है[1] और सुर्जनचरित्र का कर्त्ता भी कर्पूरदेवी ही लिखता है, तथा उसको दिल्ली के राजा की पुत्री नहीं; किन्तु दक्षिण के कुंतल देश के राजा की पुत्री बतलाता है।[2]

पृथ्वी पवित्रतां नेतुं राजशब्दं कृतार्थताम्।
चतुर्वर्णधनं नाम पृथ्वीराज इति व्यधात्॥ [३०]॥

वही; सर्ग, ८।

मुक्तेवति सुधन्वावंशं गलत्पुरुषमौक्तिक।
देवं सोमेश्वरं द्रष्टुं राजश्रीरुदकण्ठत॥ [५७]॥

आत्मजाभ्यामिव यशः प्रतापाभ्यामिवान्वितः।
सपादलक्षमानिन्ये महामात्यैर्महीपतिः॥ [५८]॥

कर्पूरदेव्यथादाय दानभोगविवात्मजौ।
विवेशाजयराजस्य संपन्मूर्तिमती पुरीम्॥ [५९]॥

वही; सर्ग ८।

१. इलाविलासी जयति तस्मात्
सोमेश्वरोऽनश्वरनीतिरीतिः॥ ६७॥

कर्पूरदेवीति बभूव तस्य
प्रिया [प्रिया] राधमसावधाना॥ ६८॥

हम्मीरमहाव्य; सर्ग २।

२. शकुन्तलाभा गुणरूपशीलैः
स कुन्तलानामधिपस्य पुत्रीम्।

कर्पूरधारां जनलोचनानां
कर्पूरदेवीमुदुवाह विद्वान्॥ ४॥

सुर्जन चरित; सर्ग ६।

पृथ्वीराज-रासो और पृथ्वीराज की बहिन

पृथ्वीराज-रासो में लिखा है-'पृथ्वीराज की बहिन पृथा का विवाह मेवाड़ के राजा समरसिंह (रावल तेजसिंह के पुत्र और रत्नसिंह के पिता) के साथ हुआ था[1], जो पृथ्वीराज के पक्ष में लड़ता हुआ शहाबुद्दीन के साथ की लड़ाई में मारा गया[2] ।

यह कथा भी बिलकुल कल्पित है; क्योंकि समरसिंह पृथ्वीराज के बहुत समय बाद हुआ। पृथ्वीराज का देहांत (वि०सं०१२४९ ई०सं० ११९२ में) होगया था। समरसिंह का दादा जैत्रसिंह उक्त संवत् के बहुत बाद तक विद्यमान था। उसके समय के दो शिलालेखों में से एक एकलिंगजी के मन्दिर के चौक में और दूसरा नादेसमा गाँव में चारभुजा के मंदिर के निकटवर्ती सूर्य-मंदिर के स्तंभ पर तथा दो हस्तलिखित पुस्तकें मिली हैं। दोनों शिलालेख क्रमशः वि० सं० १२७०[3] और १२७९[4] के हैं। उसी के समय में 'पाक्षिकवृत्ति' वि० सं० १३०९[5] लिखी गई। इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि जैत्रसिंह वि० सं० १३०९ तक विद्यमान था। समरसिंह का पिता तेजसिंह वि० सं० १३२४[6] तक तो अवश्य विद्यमान था, जैसा कि उसके

---

१. पृथ्वीराजरासो, पृथाव्याह कथा; (इक्कीसवाँ समय) रासोसार; पृ०७०-७१ ।

२. पृथ्वीराजरासो, बड़ी लड़ाई; (छासठवाँ समय) रासोसार पृ०४२८ ।

३. सवत् १२७० वर्षे महाराजाधिराज श्री जैत्रसिंह देवेपु······ (भावनगर प्राचीन-शोधसंग्रह; पृ०४७, टिप्पण । भावनगर इन्स्क्रिप्शंस; पृ०९२, टिप्पण) ।

४ ओं संवत् १२७९ वर्षे वैशाख सुदि १३ सु (शु) के अद्येह श्रीनागद्रहे महाराजाधिराज-श्रीजयतसिंहदेवकल्याणविजयराज्ये················ (नादेशमा का शिलालेख) ।

५. संवत् १३०९ वर्षे माघ वदि १४ सोमे स्वस्ति श्रीमदाघाटे महाराजाधिराजभगवन्नारायणदक्षिण-उत्तराधीशमानमर्दनश्रीजयतसिंहदेवतत्पदविभूषणराजाश्रिते जयसिंहविजयराज्ये ··········· ···ठ० वयजलेन पाक्षिक वृत्तिर्लिखितेति ॥

(पीटर्सन की तीसरी रिपोर्ट; पृ० १३०) ।

६. संवत् १३२४ वर्षे इहचित्रकूटमाहादुर्गे तलहट्टिकायां पवित्र·····················
महाराज श्रीतेजःसिंहदेवकल्याण विजयी······।

दी जर्नल आफ् एशियाटिक सोसाइटी आफ् बंगाल; जि० ५५ भाग १ १८८६ पृ० ४६-४७ ।

समय के उक्त संवत् के शिलालेख से, जो गंभीरी नदी (चित्तौड़ के पास) के पुल के नवें कोठे (महराव) में लगा है, पाया जाता है। समरसिंह के समय के आठ शिलालेख मिले हैं, जिनमें से प्रथम वि० सं० १३३०[1] का है, जो चीरवे के विष्णु-मंदिर की दीवार में लगा है और अंतिम लेख वि०सं०१३५८[2] का है, जो चित्तौड़ के रामपोल दरवाजे के बाहर पड़ा हुआ पाया गया। इनसे स्पष्ट है कि रावल समरसिंह वि० सं० १३५८ तक अर्थात् पृथ्वीराज की मृत्यु से १०६ वर्ष पीछे तक तो अवश्य जीवित था। ऐसी अवस्था में पृथाबाई के विवाह की कथा भी कपोलकल्पित है। पृथ्वीराज, समरसिंह और पृथाबाई के वि० सं० ११४३ और ११४५ (इस संवत् के दो); वि०सं० ११३६ और ११४५; तथा वि०सं० ११४५ और ११५७ के जो पत्र, पट्टे, परवाने नागरीप्रचारणी सभा द्वारा प्रकाशित हिंदी पुस्तकों की खोज में फोटो सहित छपे हैं, वे सब जाली हैं, जैसा कि हमने नागरीप्रचारिणी पत्रिका (नवीन संस्करण) भाग १, पृ० ४३२–५२ में बतलाया है।

पृथ्वीराज-रासो और सोमेश्वर की मृत्यु

रासो का कर्त्ता लिखता है गुजरात के राजा भीम के हाथ से पृथ्वीराज का पिता सोमेश्वर मारा गया। अपने पिता का वैर लेने के लिये पृथ्वीराज ने गुजरात पर चढ़ाई कर भीमदेव को मारा और उसके पुत्र कचराराय को अपनी ओर से गद्दी पर बिठाकर गुजरात के कुछ परगने अपने राज्य में मिला लिए।[3]

यह सारी कथा भी असत्य है, क्योंकि न तो सोमेश्वर भीमदेव के हाथ से मारा गया और न भीम पृथ्वीराज के हाथ से। सोमेश्वर के समय के कई शिलालेख मिले हैं, जिसमें से पहला वि० सं० १२२६ फाल्गुनवदी ३ का बिजौलियाँ का

---

१. यह शिलालेख मेरी तैयार की हुई छाप के आधार पर छप चुका है (विएना ओरिएंटल जर्नल; जि० २१, पृ० १५५–१६२)।

२. ओं ॥ संवत् १३५८ वर्षे माघ शुदि १० दशम्यां······महाराजाधिराज श्रीसमरसिंह दे [वक] ल्याणविजयराज्ये·········।

आंवलदा गांव का लेख (अप्रकाशित)

यह शिलालेख उदयपुर के विक्टोरिया हाल में सुरक्षित है।

३. पृथ्वीराजरासो; भीमवध (चौवालीसवाँ समय), रासोसार; पृ० १५६।

प्रसिद्ध लेख है[1] और अन्तिम वि० सं० १२३४ भाद्रपद सुदी ४ का है[2]। पृथ्वीराज का सबसे पहला लेख वि० सं० १२३६ आषाढ़ वदि १२ का है[3]। वि० सं० १२३६ के प्रारम्भ में सोमेश्वर का देहांत और पृथ्वीराज की गद्दीनशीनी मानी जा सकती है, जैसा कि प्रबन्धकोष के अन्त की वंशावली से ज्ञात होता है।[4] भीमदेव वि० सं० १२३५ में गद्दी पर बिलकुल बाल्यावस्था में बैठा और ६३ वर्ष अर्थात् वि०सं० १२९८ तक वह जीवित रहा[5]। इतनी बाल्यावस्था में वह सोमेश्वर को नहीं मार सकता और न पृथ्वीराज ने उसका बदला लेने के लिये उसपर चढ़ाई कर उसे मारा था। गुजरात के ऐतिहासिक संस्कृत ग्रंथों में भी कहीं इस बात का उल्लेख नहीं है। राजपूताना म्यूजियम में भीमदेव का वि० सं० १२६५ का एक शिलालेख विद्यमान है[6]। आबू पर देलवाड़ा गाँव के प्रसिद्ध तेजपाल के जैन-मन्दिर की वि० सं० १२८७ की प्रशस्ति के लिखने के समय भी भीमदेव विद्यमान था[7]।

---

१ दी जर्नल, एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल; जिल्द ५५, भाग १, ई०सं० १८८६ पृ० ४० ४६।

२ ओं। स्वस्ति श्रीमहाराजाधिराज श्रीसोमेस्व(श्व)रदेवमहाराये(ज्ये)·········
संवत् १२३४ भाद्र[पद]शुदि ४ शुक्रदिने०।

आंवलदा गांव का लेख (अप्रकाशित।

यह लेख उदयपुर के विक्टोरिया हाल में सुरक्षित है।

३ संवत् १२३६ आषाढ़ वदि १२ श्रीपृथ्वीराज्ये·········

लोहारी गाँव का लेख (अप्रकाशित)।

यह लेख उदयपुर के विक्टोरिया हाल में सुरक्षित है।

४ पृथ्वीराजः संवत १२३६ वर्षे राज्यं चकार। संवत् १२४८ मृतः।
(यह वि० सं० १२४८ कार्तिकादि है, चैत्रादि १२४९ होगा)

प्रबन्धचिन्तामणि; पृष्ठ ५४।

५ सं० १२३५ पूर्ववर्षाद्वर्षं ६३ श्रीभीमदेवेन राज्यं कृतं········ वही; पृ० २४६।

६ यह लेख इंडियन ऐंटिक्वेरी; जि० ११, पृष्ठ २२१-२२ में प्रकाशित हो चुका है।

७ ओं नमः········ [सव] त् १२८७ वर्षे लौकिक फाल्गुन वदि ३ रवौ अद्येह श्रीमदणहिलपाटके·········महाराजाधिराज श्री भ······ विजयिराज्ये······ तस्यैव महाराजाधिराज श्रीभीमदेवस्य प्रसा[द]······।

एपिग्राफिया इंडिका; जि० ८ पृष्ठ २१९।

डाक्टर बूलर ने वि०सं० १२६६ मार्गशीर्ष वदि १४ का भीमदेव का दानपत्र प्रकाशित किया है।[१] इससे निश्चित है कि भीमदेव पृथ्वीराज की मृत्यु से अनुमान पचास वर्ष पीछे भी विद्यमान था।

पृथ्वीराज-रासो और पृथ्वीराज के विवाह

नाहरराय की पुत्री से विवाह

पृथ्वीराज-रासो का कथन है कि पृथ्वीराज का प्रथम विवाह, ग्यारह वर्ष की अवस्था में, मंडोवर के पड़िहार नाहरराय की कन्या से हुआ[२]। यह कथन भी सत्य नहीं है। मंडोवर का नाहरराय पड़िहार पृथ्वीराज से कई सौ वर्ष पूर्व हुआ था, जैसा कि मंडोवर के पड़िहारों के वि० सं० ८९४ के शिलालेख से पाया जाता है[३]। वि० सं० १२०० से पूर्व मंडोवर पर से पड़िहारों का राज्य अस्त हो गया था और नाडोल के चौहानों ने उस पर अधिकार कर लिया था। पृथ्वीराज के समय के आस पास तो नाडोल के चौहान रायपाल के पुत्र सहजपाल का मंडोवर पर अधिकार था, जैसा कि वहीं से मिले हुए उसके शिलालेख से पाया जाता है[४]।

इच्छनी से विवाह

पृथ्वीराज-रासो में लिखा है कि १२ वर्ष की अवस्था में, पृथ्वीराज ने आबू के परमार राजा सलख की पुत्री और जैत की बहिन इच्छनी से विवाह किया[५]। यह कथा भी ऐतिहासिक नहीं है। आबू पर सलख या जयत नाम का परमार राजा कभी हुआ ही नहीं। आबू पर की वि० स० १२८७ की वस्तुपाल के मंदिर की प्रशस्ति में आबू के परमारों की उस समय तक की वंशावली दी है[६]। उसमें वहाँ के परमार राजा यशोधवल का पुत्र धारावर्ष होना लिखा है। यशोधवल का वि० सं० १२०२ का

---

१. इंडियन ऐंटिक्वेरी; जि० ६, पृ० २०६–२०८।

२. पृथ्वीराजरासो; विवाह समय (पैंसठवाँ समय), रासोसार; पृ० ३८२।

३. एपिग्राफिया इंडिका; जि० १८, पृ० ९५–९७।

४. आर्कियालॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, एन्युअल् रिपोर्ट, ई० सं० १९०९–१०, पृष्ठ १०२–१०३।

५. पृथ्वीराजरासो; विवाह समय (पैंसठवां समय), रासोसार; पृष्ठ ३८२।

६. एपिग्राफिया इंडिका; जिल्द ८, पृष्ठ २०८–२१३।

शिलालेख राजपूताना म्यूज़ियम (अजमेर) में विद्यमान है। उसके पुत्र धारावर्ष के १४ शिलालेख और १ ताम्रपत्र मिला है, जिनमें से वि०सं० १२२० ज्येष्ठ सुदि १५,[1] वि०सं० १२६५, १२७१ और १२७४[2] के चार मूल लेख राजपूताना म्यूज़ियम में सुरक्षित हैं, जिनसे निश्चित है कि पृथ्वीराज की गद्दीनशीनी के पूर्व से लगाकर उसकी मृत्यु के बहुत पीछे तक आबू का राजा धारावर्ष था, न कि सलख या जैत।

दाहिमा चावंड की बहिन से विवाह

पृथ्वीराजरासो में लिखा है कि, १३ वर्ष की अवस्था में पृथ्वीराज ने दाहिमा चावंड की बहन से विवाह किया, जिससे रैणसी का जन्म हुआ[3]। यह कथन भी निराधार कल्पित है, क्योंकि पृथ्वीराज का पुत्र रैणसी नहीं, किंतु गोविन्दराज था, जो पृथ्वीराज के मारे जाने के समय बालक था। फ़ारसी तवारीखों में उसका नाम 'गोला' या 'गोदा' पढ़ा जाता है, जो फ़ारसी वर्णमाला की अपूर्णता के कारण गोविंदराज का बिगड़ा हुआ रूप ही है। हम्मीर–महाकाव्य में भी गोविंदराज नाम मिलता है[4]। सुलतान शहाबुद्दीन ने अपनी अधीनता में उसे अजमेर की गद्दी पर बिठाया, परन्तु उसके सुलतान की अधीनता में रहने के कारण पृथ्वीराज के छोटे भाई हरिराज ने उसे अजमेर से निकाल दिया, जिससे वह रणथंभोर में जा रहा। हरिराज का नाम पृथ्वीराजरासो में नहीं दिया, परंतु पृथ्वीराज-

---

१. ओं ॥ स्वस्ति श्री संवत् १२२० जेष्ठ सु [शु] दि १५ शनिदिने सोमपर्व्वे महाराजाधिराजमहामंडलेश्वर श्रीधारावर्षदेवेन शासनं प्रदत्तं......... ।

इंडियन ऐंटिक्वेरी; जि० ५६, पृ० ५१।

२. संवत् १२७४ माघफाल्गु (ल्गु) नयो [म]ध्ये [सो] मग्रहणपर्व्वे श्रीधोमराजसंतान जसधवलदेवसूत (सुत) श्रीधारावर्ष विजयराज्ये।

वही; जि० ५६, पृ० ५१।

३. पृथ्वीराजरासो; विवाह समय (पैंसठवां समय), रासोसार; पृ० ३८२।

४ तत्रास्ति पृथ्वीराजस्य प्राक् पित्रातो निरासितः।
पुत्रो गोविन्दराजाख्यः स्वसामर्थ्यात्तभैमवः ॥ २४ ॥

हम्मीरमहाकाव्य, सर्ग ४।

विजय, प्रबन्धकोश के अंत की वंशावली और हम्मीर महाकाव्य में दिया है[1] और फारसी तवारीखों में हीराज या हेमराज मिलता है,[2] जो उसी के नाम का बिगड़ा हुआ रूप है।

इसी तरह रासे में देवगिरि के यादव राजा भान की पुत्री शशिव्रता और रणथंभोर के यादव राजा भानराय की पुत्री हंसावती से विवाह करना लिखा है[3]। ये दोनों बातें भी कल्पित हैं, क्योंकि देवगिरि में भान नाम का कोई राजा ही नहीं हुआ। रणथंभोर पर कभी यादवों राज्य ही नहीं रहा। उस पर तो पहले से ही चौहानों का अधिकार था। पृथ्वीराज के मारे जाने के बाद उसके भाई हरिराज ने अपने भतीजे गोविंदराज को अजमेर से निकाला, तब वह रणथंभोर में रहा[4] और हम्मीर तक उसके वंशजों ने वहीं राज्य किया[5]।

शशिव्रता और हंसावती से विवाह

इसी प्रकार ११ वर्ष की अवस्था से लगाकर ३६ वर्ष की अवस्था तक के १४ विवाह होना पृथ्वीराज रासो में लिखा है, जो ऊपर जाँच किए हुए पाँच विवाहों के समान निर्मूल हैं। पृथ्वीराज ३६ वर्ष तक जीवित भी नहीं रहा।

---

१ जर्नल ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसाइटी; ई० सं० १९१३, पृ० २७०-७१।

२ इलियट; हिस्ट्री आफ इंडिया; जिल्द २, पृष्ठ २१६।

३ पृथ्वीराजरासो; विवाह समय (पैसठवाँ समय), रासोसार; पृ० ३८२।

४ मंत्रयित्वेति भूपीयं सर्वं कोशबलादिकं।

महादाश्च चलंति स्म रणस्तंभपुरं प्रति॥ २६॥

दावपावकवत् वाद्यं ज्वालयन् देशमुद्रसं।

शकः पश्चादुपागत्याऽजयमेरुपुरं ललौ॥ २७॥

अथ प्राप्य रणस्तंभं पुरं गोविन्दभूपतेः।

समगंसत ते सर्वे वृत्तान्तं च न्यगादिषुः॥ २८॥

पितृव्यस्य तथाभूतं मृत्युं श्रुत्वा धराधिपः।

वाचामगोचरं कष्टं कलयामास मानसे॥ २९॥

हम्मीरमहाकाव्य; सर्ग ४।

५ वही सर्ग ४ से सर्ग १४ तक।

वह तो ३० वर्ष से पहले ही मारा गया था। वि० सं० १२२६ में जब वह गद्दी पर बैठा, उस समय वह बालक था और उसकी माता कर्पूरदेवी अपने मन्त्री कादंबवास की सहायता से राज्य-कार्य करती थी[1]।

यदि पृथ्वीराज रासो पृथ्वीराज के समय में लिखा गया होता, तो पृथ्वीराज का वंश परिचय, उसके पूर्व पुरुषों की नामावली, माता, पिता, बहिन और रानियों आदि का तो शुद्ध परिचय मिलना चाहिए था। ऐसा न होना यही बतलाता है कि वह पृथ्वीराज के कई सौ वर्ष पीछे चौहानों के इतिहास से अनभिज्ञ चंद बरदाई नाम के किसी भाट ने लिखा होगा।

पृथ्वीराज रासो में दिए हुए भिन्न भिन्न संवतों की जांच

पृथ्वीराजरासो में दिए हुए सभी संवत् अशुद्ध हैं। कर्नल टॉड ने पृथ्वीराजरासो के आधार पर चौहानों का इतिहास लिखते समय संवतों की जाँच कर उन्हें अशुद्ध बताया और लिखा कि आश्चर्यजनक भूल के कारण सब चौहान जातियाँ अपने इतिहासों में १०० वर्ष पहले के संवत् लिखती हैं[2]। रासो को प्राचीन सिद्ध करने की खींचतान में पं० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या ने टॉड का बतलाया हुआ १०० वर्ष का अन्तर देखकर एक नए 'भटायत' संवत की कल्पना कर वि०सं०१६४४ में 'पृथ्वीराजरासो की प्रथम संरक्षा' नामक पुस्तिका लिखी, परन्तु इस कल्पना से भी पृथ्वीराजरासो के संवतों की अशुद्धि दूर न हुई। इससे पृथ्वीराज के जन्म संवत १११५ में ४२ साल जोड़कर उसकी मृत्यु ११५८ भटायत संवत् अर्थात् विक्रम

---

१ ऋणशुद्धि विनिर्माय निर्माणैरोदशैः पितुः।
तत्त्वरे दर्शनं कर्तुं परलोकजयी नृपः॥ [७१]॥
ए [काकिना हि] मत्पित्रा स्थीयते त्रिदिवे कथम्।
बालश्च पृथिवीराजो मया कथमुपेक्ष्यते ॥ [७२] ॥
[इतिवास्याभिषिक्तस्य रक्षार्थव्रतचारिणीम्।
स्थापयित्वा निजां देवीं पितृ] भक्त्या दिवं ययौ ॥ [७३] ॥

पृथ्वीराजविजय; सर्ग ८।

२ टॉड राजस्थान (कलकत्ते का छपा अँगरेजी), जिल्द २ पृ० ५००, टिप्पण।

संवत् १२४८ में माननी पड़ती थी, परन्तु वि० सं० १२४६ में अन्य ऐतिहासिक प्रमाणों से उसकी मृत्यु सिद्ध थी। इस वास्ते इन ६ वर्षों की कमी पूरी करने के लिये उन्होंने पृथ्वीराज के जन्म संवत् संबंधी दोहे[1] में 'अनंद' शब्द को देखकर अनंद संवत् की कल्पना की और उक्त शब्द का अर्थ 'अनंद' अर्थात् नौ रहित' किया। फिर इसे नौ रहित सौ अर्थात् ६१ वर्ष का अंतर बताकर उन्होंने उक्त नवीन संवत् की कल्पना की और कहा कि पृथ्वीराजरासो में दिए हुए सब संवतों में ६१ जोड़ देने से वे शुद्ध विक्रम संवत् हो जाते हैं! 'अनंद संवत् की कल्पना' नाम के विस्तृत लेख[2] में हमने इसकी निराधारता सिद्ध की है। अब हम पृथ्वीराजरासो में दिए हुए कुछ संवतों की जांच नीचे करते हैं—

वीसलदेव की गद्दीनशीनी का संवत्

पृथ्वीराजरासो में वीसलदेव की गद्दीनशीनी का संवत् ८२१ दिया है[3] और लिखा है कि उसने शत्रुओं से अजमेर लिया और उसके बुलाने पर वीसल-सरोवर (वीसलिया नाम का तालाव, अजमेर में) पर अन्य राजा तो आ गए, परन्तु गुजरात के चालुक्य राजा वालुकाराय के न आने के कारण वीसलदेव ने उसकी राजधानी पाटन पर चढ़ाई की। वालुकाराय के मंत्रियों ने उससे मिल कर संधि करली[4]।

यह संपूर्ण कथन भी निराधार है। अजमेर वसने के बाद वीसलदेव नाम का एक ही चौहान राजा (सोमेश्वर का बड़ा भाई) हुआ, जिसने अपने नाम से वीसलसर तालाब बनवाया और उसके समय के शिलालेख वि०१२१०-१२११ और १२२० के मिले हैं[5], जिनसे वि०सं०८२१ अर्थात् पंड्याजी के अनंद संवत के अनुसार वि०

---

१. एकादस सै पंचदह, विक्रम साक अनंद। तिहिंरिपु जय पुर हरन कौं, भय पृथ्वीराज नरिंद।

२. नागरी प्रचारिणी पत्रिका; (नवीन संस्करण) जिल्द १, पृष्ठ ३७७–४५४।

३. आठ सै रु इक ईस। वैठि वीसल सु पाट वख। सुक्रवार प्रतिपदा मास वैसाख सेत पख॥ .... ३३६॥

पृथ्वीराजरासो; आदिपर्व, पहिला समय पृ० ६६।

४. पृथ्वीराजरासो; आदि पर्व, पहला समय, रासोसार पृ० ११।

५, संवत् १२१० मार्ग शुदि ५ आदित्यदिने श्रवण नक्षत्रे मकरस्थे चन्द्रे हर्षणयोगे वालवकरणे

सं० ६३१ में उसका राज्याभिषेक होना किसी प्रकार नहीं माना जा सकता। इसी तरह पंड्याजी के माने हुए संवत् तक पाटन में सोलंकियों का अधिकार भी नहीं हुआ था। उस समय तो क्षेमराज चावड़ा गुजरात का राजा था। वि० सं० १०१७ में सोलंकी मूलराज ने अपने मामा सामंतसिंह को मारकर पाटन का राज्य लिया और चावड़ा वंश की समाप्ति की। बालुकाराय नाम का सोलंकी राजा गुजरात में कोई हुआ ही नहीं।

विग्रहराज (वीसलदेव) नाम के चार चौहान राजा हुए, जिनमें से तीन तो अजमेर बसने से पूर्व हुए थे। दूसरे विग्रहराज ने, जिसके समय की वि० सं० १०३० की हर्षनाथ के मंदिर की प्रशस्ति है, मूलराज सोलंकी पर, जिसने १०१७ से १०५२ तक राज्य किया था [1]शाकंभरी (साँभर) से चढ़ाई की थी। इस चढ़ाई का वर्णन पृथ्वीराजविजय, हम्मीर महाकाव्य और प्रबंध-चिंतामणि में मिलता है; परंतु पृथ्वीराजरासो के कर्त्ता को तो केवल एक वीसलदेव का ज्ञान था, जिसने वीसलसर बनाया था। वप वस्तुतः चतुर्थ विसलदेव था। वीसलदेव (दूसरे) की सोलंकी राजा मूलराज पर चढ़ाई करने की परपरागत स्मृति से रासो के कर्त्ता ने चौथे वीसलदेव की गुजरात पर चढ़ाई लिख दी और वहाँ के राजा का ठीक नाम ज्ञात न होने से उसका नाम बालुकराय धर दिया।

पृथ्वीराजरासो में वि० सं० ११११५ में पृथ्वीराज का जन्म होना लिखा है। यदि पंड्याजी के कथनानुसार इसे अनंद विक्रम संवत् मानें, तो भी (१११५+६१)

हरकेलि–नाटकं समाप्तं ॥ मंगलं महाश्रीः ॥ कृतिरियं महाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीविग्रहराज-देवस्य······।

(शिलाओं पर खुदा हुआ हरकेलि नाटक, राजपूताना म्यूजियम, अजमेर में सुरक्षित)।

ॐ ॥ संवत् १२११ श्रीः (श्री) परमपासु (शु) पताचार्येन (ण) विश्वेश्वर [प्र] ज्ञेन श्रीवीसलदेवराज्ये श्रीसिद्धेश्वरप्रसादं मण्डपं [भूषित] ॥

(लोहारी के मंदिर का लेख, अप्रकाशित)।

ॐ संवत् १२२० वैशाख शुदि १५ शाकंभरी भूपति श्री मदन्नल्लदेवात्मज श्रीमद्वीसलदेवस्य ॥

इंडियन ऐंटिक्वेरी; जिल्द १६, पृ० २१८।

[1] राजपूताने का इतिहास; जिल्द १, पृष्ठ २१४–१५।

पृथ्वीराज का जन्म संवत्

विक्रम संवत् १२०६ में पृथ्वीराज का जन्म मानना पड़ता है, जो सर्वथा असंभव है, क्योंकि पृथ्वीराजविजय में लिखा है कि सोमेश्वर के देहांत के समय (वि०सं० १२३६ में) पृथ्वीराज बालक था। वि० सं० १२०६ तक तो पृथ्वीराज का पिता सोमेश्वर भी बालक था और उसका विवाह भी नहीं हुआ था। पृथ्वीराजविजय में लिखा है कि सोमेश्वर के उत्पन्न होने पर उसके नाना जयसिंह (सिद्धराज) ने उसे अपने यहाँ बुला लिया। उसके बाद कुमारपाल ने बालक सोमेश्वर का पालन किया। सोमेश्वर बहुत वीर हुआ। एक युद्ध में उसने कुमारपाल के शत्रु कोंकण के शिलारा राजा मल्लिकार्जुन को मारा था। फिर उसने चेदि कलचुरि राजा की पुत्री से विवाह किया, जिससे ज्येष्ठ की द्वादशी को पृथ्वीराज का जन्म हुआ। उसका चूड़ाकर्म संस्कार होने के नौ मास बाद हरिराज उत्पन्न हुआ।[1]

इस वर्णन से दो तीन बातें स्पष्ट होती हैं कि कुमारपाल के गद्दी पर बैठने के समय अर्थात् वि० सं० ११९९ में सोमेश्वर बालक था। मल्लिकार्जुन के वि० सं० १२१३ और १२१७ के लेख[2] और उसके उत्तराधिकारी अपरादित्य का प्रथम लेख

---

१ ज्येष्ठस्य प्रथयन्परन्तपतया ग्रीष्मस्य भीष्मां स्थितिम्।
द्वादश्यास्तिथिमुख्यतामुपदिशन्भानोः प्रतापोन्नतिं
तन्वन्गोत्रगुरोर्निजेन नृपतेर्जज्ञे सुतो जन्मना ॥ [५०] ॥

पृथ्वीराजविजयः सर्ग ७।

प्रसूतपृथ्वीराजा देवी गर्भवती पुनः।
उदेष्यत्कुमुदा फुल्लपद्मेव सरसी बभौ ॥ [४७] ॥
माघस्याथ तृतीयस्यां सितायामपरं सुतम्।
प्रसादमिव [पार्वत्या मूर्तं] परमवाप सा ॥ [४८] ॥
युद्धे ध्वस्य हस्तिदलनलीलां भविष्यन्तीं जानतेव हरिराजनाम्नार्थं स्वस्य कृतार्थत्वायेव स्पष्टः हरिराजो हि हस्तिमर्दनः।

श्लोक ५० पर जौनराज की टीका, मूल श्लोक बहुत सा नष्ट हो गया है।

वही; सर्ग ८।

२ बंबई गज़ेटियर, जिल्द १, भाग १, पृ० १८६।

वि० सं० १२१६ का[1] मिला है। इससे स्पष्ट है कि मल्लिकार्जुन वि० सं १२१८ में सोमेश्वर के हाथ से मारा गया, जिसके पीछे सोमेश्वर ने चेदि देश में जाकर कर्पूरदेवी से विवाह किया। बहुत संभव है कि वि० १२२० या उसके कुछ पीछे पृथ्वीराज का जन्म हुआ हो। पृथ्वीराज विजय में विग्रहराज (वीसलदेव) चौथे की मृत्यु के प्रसंग में लिखा है कि अपने भाई (सोमेश्वर) के दो पुत्रों के पैदा होने का समाचार सुनकर वह मरा[2] वीसलदेव की मृत्यु वि० सं० १२२१ और १२२४ के बीच किसी संवत् में हुई, जैसा कि उसके अंतिम लेख वि० सं० १२२० और उसके उत्तराधिकारी पृथ्वीभट्ट (पृथ्वीराज दूसरे) के वि० सं १२२४ के लेख से मालूम होता[3] है। इस तरह पृथ्वीराजरासो का वि० सं० १११५ तथा पंड्याजी की उक्त नवीन कल्पना के अनुसार वि० सं० १२०६ में पृथ्वीराज का जन्म होना सर्वथा असंभव है।

पृथ्वीराजरासो में लिखा है कि वि० सं० ११३६ में पृथ्वीराज के सामंत सलख (आबू का परमार) ने शहाबुद्दीन को कैद किया[4]। यह कथन भी कल्पित है। हम ऊपर बतला चुके हैं कि आबू पर सलख नाम का कोई परमार राजा ही नहीं हुआ। यदि इस संवत् को अनंद विक्रम संवत् अर्थात वि० सं० १२२७ माना जाय, तो भी यह संवत ठीक नहीं ठहरता। वि० सं० १२२७ तक तो पृथ्वीराज गद्दी पर भी नहीं बैठा था और न उस समय तक शहाबुद्दीन गोरी भारत में आया था। वि० सं० १२२०–२१ में गयासुद्दीन गोरी ने गोर का राज्य पाया। उसके छोटे भाई शहाबुद्दीन गोरी ने वि० सं०१२३० में गज़नी भी छीनी, जिस पर गयासुद्दीन ने उसे वहाँ का हाकिम बनाया। उसने

पृथ्वीराज के सामंत सलख के शहाबुद्दीन को कैद करने का संवत्

---

१ वही; पृष्ठ १८६।

२ अथ भ्रातुरपत्याभ्यां सनाथां जानता भुवम्।
जग्मे विग्रहराजेन कृतार्थेन शिवान्तिकम्॥ [५३]॥

पृथ्वीराजविजय; सर्ग ८।

३ इन्डियन ऍटिक्वेरी; जिल्द ४१, पृ० १६।

४ पृथ्वीराजरासो; सलख युद्ध समय (तेरहवां समय); रासोसार, पृ०५३।

वि० सं० १२३२ में भारत पर चढ़ाई कर मुलतान लिया तो वि० सं० १२२७ में पृथ्वीराज का शहाबुद्दीन को कैद करना कहाँ तक ठीक सिद्ध हो सकता है ? इसी तरह रासो में दिया हुआ वि० सं० १२३८ और अनंद विक्रम संवत के अनुसार वि० सं० १२२९ में चामुण्डराय द्वारा शहाबुद्दीन गोरी को कैद करना भी ठीक नहीं है, क्योंकि गोरी तो वि० सं० १२३२ में भारत आया था और उस समय तक पृथ्वीराज गद्दी पर भी नहीं बैठा था।

कुछ अन्य संवत्

रासो में लिखा है कि पृथ्वीराज वि० सं० ११३८ में दिल्ली की गद्दी पर बैठा[1] और उसी वर्ष में उसने खाटू के जंगल से धन निकाला[2]। समुद्रशिखर के यादव राजा विजयपाल की पुत्री पद्मावती से वि० सं० ११३९ में उसने विवाह किया[3]। वि०सं० ११४१ में दक्षिण देशीय राजाओं ने कर्नाट देश की एक सुन्दरी वैश्या पृथ्वीराज को अर्पण की[4]। ये सारे सम्वत् कल्पित हैं। अनंद सम्वत् मानने से ये सम्वत् क्रमशः १२२९, १२३० और १२३२ होते हैं, तो भी वे निराधार ठहरते हैं, क्योंकि उस समय तक तो पृथ्वीराज गद्दी पर भी नहीं बैठा था।

इसी तरह पृथ्वीराजरासो में दिए हुए सभी सम्वत् कल्पित हैं, जिनका 'विवेचन हम अनंद विक्रम सम्वत् की कल्पना' नामक लेख में कर चुके हैं। यदि रासो का कर्त्ता पृथ्वीराज का समकालीन होता, तो सम्वतों में इतनी अशुद्धियाँ न होतीं।

पृथ्वीराजरासो की कुछ मुख्य-मुख्य घटनाएँ

पृथ्वीराजरासो में केवल उपर्युक्त घटनाएँ और सम्वत् ही अशुद्ध नहीं दिए, परन्तु उसका मूल कथानक भी ऐतिहासिक कसौटी पर परीक्षा करने से प्रायः संपूर्ण अशुद्ध ठहरता है। उसमें दी हुई मुख्य घटनाएँ प्रायः सभी निराधार तथा अनैतिहासिक हैं। उनमें से बहुत सी घटनाओं की जाँच ऊपर हो चुकी है।

---

१ पृथ्वीराजरासो; दिल्लीदान प्रस्ताव (अट्ठारहवाँ समय); रासोसार; पृ० ६२-६३।

२ वही; धन कथा (चौबीसवाँ समय); रासोसार; पृ० ७४।

३ वही; पद्मावती-विवाह-कथा (बीसवाँ समय); रासोसार; पृ० ६८-६९।

४ वही; कर्नाटी पात्र समय (तीसवाँ समय), रासोसार; पृ० ११२।

अतएव बाकी की घटनाओं में से कुछ मुख्य-मुख्य घटनाओं की जाँच यहाँ करते हैं—

चन्दबरदाई ने लिखा है कि अनंगपाल ने अपने दोहते पृथ्वीराज को गोद लेकर वि० सं० ११३८ में दिल्ली का राज्य दे दिया। यह कथा भी सर्वथा निराधार है। हम ऊपर बता चुके हैं कि दिल्ली का राज्य तो वीसलदेव ने पहले ही अपने राज्य में मिला लिया था और अनंगपाल की पुत्री से पृथ्वीराज का जन्म नहीं हुआ था। दिल्ली का राज्य तो अजमेर के राज्य का सूबा मात्र था।

पृथ्वीराज का दिल्ली गोद जाना

पृथ्वीराजरासो में लिखा है कि सोमेश्वर ने मेवात के मुगल राजा (मुग्दलराय) से अन्य राजाओं के समान कर माँगा। उसके इन्कार करने पर सोमेश्वर ने उस पर चढ़ाई करदी। पृथ्वीराज भी कुछ समय बाद अजमेर से चला और रातो-रात मुगल सेना पर उसने आक्रमण कर दिया। युद्ध में मुगल राजा का ज्येष्ठ पुत्र बाजिदखाँ मारा गया और वह स्वयं कैद हुआ[१]।

मेवाती मुगल से युद्ध

यह कथा भी कल्पित है। सोमेश्वर के समय में तो मेवात प्रदेश अजमेर के राज्य के अन्तर्गत था। वहां कोई स्वतन्त्र राजा नहीं था और मुगलों का तो क्या, अन्य मुसलमानों तक का उस प्रदेश पर अधिकार नहीं था। सोमेश्वर की जीवित अवस्था में पृथ्वीराज इतना बड़ा न था कि युद्ध में जा सकता।

चंदबरदाई लिखता है कि कन्नौज के राजा विजयपाल ने, जिसने दिल्ली के अनंगपाल की पुत्री सुंदरी से विवाह किया था, विजय-यात्रा करते हुए सेतुबंध तक का सारा प्रदेश जीत लिया। बहुत से राजा अधीन हो गए, परन्तु पृथ्वीराज ने उसकी अधीनता स्वीकार न की। विजयपाल के सुन्दरी से उत्पन्न पुत्र जयचंद ने भी जब राजसूय यज्ञ के लिये सब राजाओं को निमंत्रित किया, तब भी पृथ्वीराज न आया। इस लिये और पृथ्वीराज से अपने नाना अनंगपाल का आधा दिल्ली का राज्य लेने के

संयोगिता का स्वयंवर

---

१. पृथ्वीराजरासो; मेवाती मुगलकथा (आठवाँ समय); रासोसार; पृ०२८।

लिये उसने पृथ्वीराज और उसके सहायक रावल समरसिंह पर आक्रमण किया, परंतु उसमें सफलता न हुई। इसलिये उसने राजसूय के साथ संयोगिता के स्वयंवर मंडप में द्वारपाल के स्थान पर पृथ्वीराज की स्वर्ण-प्रतिमा रखी। संयोगिता ने, जो पृथ्वीराज की वीरता पर पहले से ही मुग्ध थी, उसकी प्रतिमा के गले में ही वरमाला डाली। इस पर जयचन्द ने क्रुद्ध होकर संयोगिता को कैद कर लिया। पृथ्वीराज यह सुनकर ससैन्य कन्नौज पर चढ़ा और युद्ध कर संयोगिता को लेकर दिल्ली लौट आया। इस पर लाचार होकर जयचंद ने अपने पुरोहित श्रीकंठ को दिल्ली भेजकर दोनों का विधि-पूर्वक विवाह करा दिया[1]।

इस संपूर्ण कथन में विजयपाल के पुत्र जयचंद के उसके पीछे गद्दी पर बैठने और पृथ्वीराज तथा जयचंद की समकालीनता के सिवा एक भी बात सत्य नहीं है। सोमेश्वर के समय अनंगपाल दिल्ली की गद्दी पर था ही नहीं और न उसकी पुत्रियों का विजयपाल और सोमेश्वर से विवाह हुआ था। कमला के सोमेश्वर के साथ विवाह की कथा के समान सुंदरी के विजयपाल के साथ विवाह की की कथा भी कल्पित ही है। विजयपाल के दिग्विजय की कथा भी निर्मूल है। रासो में उक्त प्रसंग के सम्बंध में जिन–जिन राजाओं के नाम दिए हैं, वे सब प्रायः कल्पित हैं। समरसिंह का जन्म भी उस समय तक नहीं हुआ था, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है। जयचंद के राजसूय यज्ञ की बात मनगढ़ंत कथा ही है। जयचंद बहुत दानी राजा था। उसके कई उपलब्ध दानपत्रों से पाया जाता है कि उसने प्रसंग-प्रसंग पर अनेक भूमिदान किए। यदि उसने राजसूय यज्ञ किया होता, तो उस महत्त्वपूर्ण अवसर पर वह बहुत अधिक दान करता, परन्तु उसके संबंध का न तो अब तक कोई दानपत्र ही मिला और न किसी शिलालेख या प्राचीन पुस्तक में उसका उल्लेख है। इसी तरह पृथ्वीराज और जयचंद की परस्पर लड़ाई और संयोगिता-स्वयंवर का कथा भी ऐतिहासिक नहीं है। ग्वालियर के तँवर राजा वीरम के दरबार के प्रसिद्ध कवि जयचंद्र ने वि०सं० १४६० के आसपास 'हम्मीर महाकाव्य' बनाया, जिसमें पृथ्वीराज का विस्तृत वर्णन दिया है और उसी की रची हुई 'रंभामंजरी' नाम की नाटिका में उसने जयचन्द को उसका नायक बनाया है, जिसकी प्रशंसा में लगभग दो पृष्ठ उसके विशेषणों के दिए हैं। इन दोनों

---

१. पृथ्वीराजरासो; संयोगिता नाम प्रस्ताव (पचासवाँ समय); रासोसार; पृ० १८५–८८।

पुस्तकों में पृथ्वीराज और जयचन्द की पारस्परिक लड़ाई, राजसूय यज्ञ और संयोगिता के स्वयंवर का उल्लेख तक नहीं है। इससे स्पष्ट है कि वि० सं० १४६० तक ये कथाएँ प्रसिद्धि में नहीं आई थीं।

रावल समरसिंह के ज्येष्ठ पुत्र कुम्भा का बीदर जाना

रासे के ६६ वें समय से पाया जाता है कि रावल समरसिंह ने, शहाबुद्दीन के साथ की अंतिम लड़ाई में जाते समय, अपने छोटे पुत्र रतनसिंह को उत्तराधिकारी बनाया, जिससे उसका ज्येष्ठ पुत्र कुम्भ (कुम्भा) दक्षिण में बीदर के मुसलमान बादशाह के पास जा रहा।

शहाबुद्दीन के साथ की पृथ्वीराज की लड़ाई तक न तो समरसिंह का जन्म हुआ था और न दक्षिण में मुसलमानों का प्रवेश हुआ था। मुसलमानों का प्रथम प्रवेश दक्षिण में अलाउद्दीन खिलजी के समय वि०सं० १३५६ में हुआ। बहमनी सुलतान अलाउद्दीन हसन ने दिल्ली के सुलतान से विद्रोह कर बहमनी राज्य की स्थापना की थी। इस वंश का दसवां सुलतान अहमदशाह वली ई० स० १४३० (वि०सं०१४८७) में बीदर बसाकर गुलबर्गे से अपनी राजधानी वहाँ ले आया। अतएव ऊपर लिखा हुआ कुम्भा का वृत्तांत वि० सं० १४८७ से पीछे लिखा जा सकता है, जिससे पूर्व बीदर का पृथक् राज्य भी स्थापित नहीं हुआ था।

पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन की मृत्यु

चंदबरदाई, पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन की अन्तिम लड़ाई का वर्णन करते हुए लिखता है कि शहाबुद्दीन पृथ्वीराज को कैद कर गजनी ले गया। वहाँ उसने उसकी आँखें निकलवा लीं। फिर चंद कवि योगी का भेष धारण कर गजनी पहुँचा और उसने सुलतान से मिलकर उसको पृथ्वीराज की तीरंदाजी देखने को उत्सुक किया। पृथ्वीराज ने चंद के संकेत के अनुसार शब्द वेधी बाण चलाकर सुलतान का काम तमाम कर दिया। फिर चंद ने अपने जूड़े में से छुरी निकालकर उसने अपना पेट काटकर वह छुरी पृथ्वीराज को दे दी, जिससे उसने भी अपना पेट फाड़ लिया। इस प्रकार तीनों की मृत्यु हुई। पृथ्वीराज के पीछे उसका पुत्र रैणसी दिल्ली की गद्दी पर बैठा[1]।

---

१ पृथ्वीराज रासो, बड़ी लड़ाई समय (छासठवां समय); रासोसार, पृ० ३८२–४३४।

यह संपूर्ण कथन भी ऐतिहासिक दृष्टि से ठीक नहीं है, क्योंकि शहाबुद्दीन की मृत्यु पृथ्वीराज के हाथ से वि०सं० १२४६ में नहीं, किंतु वि० स० १२६३ चैत्र सुदि ३ को गक्खरों के हाथ से हुई थी। जब वह गक्खरों को परास्त कर लाहोर से गजनी जा रहा था उस समय, धमेक के पास, नदी के किनारे बाग में नमाज पढ़ता हुआ वह मारा गया। पृथ्वीराज के पीछे भी उसका पुत्र गोविंदराज दिल्ली की गद्दी पर नहीं; किंतु अजमेर की गद्दी पर बैठा था, न कि रैणसी, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है।

इस तरह ऊपर कुछ मुख्य घटनाओं की जांचकर हमने देखा कि वे बिलकुल असत्य हैं और उनका लेखक चौहानों के इतिहास से बिलकुल अपरिचित था। यदि रासो का कर्त्ता पृथ्वीराज का समकालीन होता, तो इतनी बड़ी भूलें न करता।

पृथ्वीराजरासो का समय–निर्णय

यहाँ तक हमने पृथ्वीराजरासो की विभिन्न घटनाओं की जांच कर यह दिखलाने का प्रयत्न किया है कि वह ग्रंथ पृथ्वीराज के समय में नहीं बना। तब वह कब बना, इस पर विचार करना आवश्यक है। हमारी सम्मति है कि वह ग्रंथ विक्रम संवत् १६०० के आस-पास बना। इसके लिये हम संक्षेप से नीचे विचार करते हैं—

वि०सं० १४६० में 'हम्मीर महाकाव्य' बना, जिसका निर्देश ऊपर कई जगह किया गया है। उसमें चौहानों का विस्तृत इतिहास है, परन्तु उसमें पृथ्वीराजरासो के अनुसार चौहानों को अग्निवंशी नहीं लिखा और न उसकी वंशावली को आधार माना गया है। इससे ज्ञात होता है कि उस समय तक पृथ्वीराजरासो प्रसिद्धि में नहीं आया। यदि रासो की प्रसिद्धि हो गई होती, तो हम्मीर महाकाव्य का लेखक उसी के आधार पर चलता।

चन्दबरदाई ने रावल समरसिंह के ज्येष्ठ पुत्र कुम्भा का बीदर के मुसलमान बादशाह के पास जाना लिखा है, जिसकी जांच हम ऊपर कर चुके हैं। पृथ्वीराज के समय में तो दक्षिण में मुसलमानों का प्रवेश भी नहीं हुआ था। बीदर का राज्य तो बहमनी राज्य की उन्नति के समय में अहमदशाह वली ने ई० सं० १४३० (वि० सं० १४८७) में स्वतन्त्र रूप से स्थापित किया। इससे यह निश्चित है कि पृथ्वीराजरासो उक्त संवत् के पीछे बना होगा।

चन्दवरदाई ने सोमेश्वर और पृथ्वीराज की मेवात के मुगल राजा से लड़ाई और उसमें उसके कैद होने तथा उसके पुत्र वाजिदखाँ के मारे जाने की कथा लिखी है, जिसकी जाँच हम ऊपर कर आए हैं। हिन्दुस्तान में मुगल राज्य तो वि० सम्वत् १५८३ में बाबर ने स्थापित किया। उससे पूर्व भारत में मुगलों का कोई राज्य था ही नहीं और मुगलों का सबसे पहला प्रवेश, मुगल तमूरलंग द्वारा वि० सं० १४५५ में हुआ, जिससे पहले मुगल-राज्य की भारत में कल्पना भी नहीं की जा सकती। इससे यह स्पष्ट है कि पृथ्वीराजरासा वि० सं० १५८३ से और यदि बहुत पहले भी मानें तो वि० सं० १४५५ से पूर्व नहीं बन सकता।

महाराणा कुम्भकर्ण ने वि० सं० १५१७ में कुम्भलगढ़ के किले की प्रतिष्ठा की और वहाँ के मामादेव (कुम्भ स्वामी) के मन्दिर में बड़ी-बड़ी पाँच शिलाओं पर कई सौ श्लोकों का एक विस्तृत लेख खुदवाया, जिसमें मेवाड़ के उस समय तक के राजाओं का बहुत कुछ वृत्तांत दिया है। उसमें समरसिंह के पृथ्वीराज की बहिन पृथा से विवाह करने या उसके साथ शहाबुद्दीन की लड़ाई में मारे जाने का कोई वर्णन नहीं है, परन्तु वि० सं० १७३२ में महाराणा राजसिंह ने अपने बनवाए हुए राजसमुद्र तालाब के नौचौकी नामक बाँध पर २५ बड़ी-बड़ी शिलाओं पर एक महाकाव्य खुदवाया, जो अब तक विद्यमान है। उसके तीसरे सर्ग में लिखा है कि "समरसिंह ने पृथ्वीराज की बहिन पृथा से विवाह किया और शहाबुद्दीन के साथ की लड़ाई में वह मारा गया, जिसका वृत्तांत भाषा के 'रासा' नामक पुस्तक में विस्तार से लिखा हुआ है।"[१] इन दोनों लेखों से निश्चित है कि पृथ्वीराजरासो

---

१ ततः समरसिंहाख्यः पृथ्वीराजस्य भूपतेः।
पृथाख्याया भगिन्यास्तु पतिरित्यतिहार्दतः ॥ २४ ॥
गोरीसाहिबदीनेन गज्जनीशेन संगरं।
कुर्वताऽखर्वगर्वस्य महासामंतशोभितः ॥ २५ ॥
दिल्लीश्वरस्य चोहाननाथस्यास्य सहायकृत्।
स द्वादशसहस्रैः स्ववीराणां सहितो रणे ॥ २६ ॥
बध्वा गोरीपतिं दैवात् स्वर्यातः सूर्यबिंबभित्।
भाषारासापुस्तकेस्य युद्धस्योक्तोस्ति विस्तरः ॥ २७ ॥

राजप्रशस्ति महाकाव्य; सर्ग ३।

वि० सं० १५१७ और १७३२ के बीच किसी समय में बना होगा। वि० सं० १६४२ की पृथ्वीराजरासो की सबसे पुरानी हस्तलिखित प्रति मिली है, इसलिये उसका वि०सं० १५१७ और १६४२ के बीच अर्थात् १६०० के आसपास बनना अनुमान किया जा सकता है।

पृथ्वीराजरासो की भाषा

पृथ्वीराजरासो की भाषा विक्रम की तेरहवीं शताब्दी की नहीं, किंतु वि० सं० १६०० के आसपास की है। हेमचंद्र के 'प्राकृत-व्याकरण' में अपभ्रंश भाषा के छंदोबद्ध उदाहरणों, सोमप्रभ के 'कुमारपाल प्रतिबोध', मेरुतुंग की 'प्रबंध-चिंतामणि' तथा 'प्राकृत-पिंगल' में दिए हुए रणथंभोर के अंतिम चौहान राजा हम्मीर के प्रशंसात्मक पद्य, तथा वि०सं० १५९२ के बीठू सूजा रचित 'जैतसी राव को छंद' नामक ग्रंथ में मिलने वाले छंदों की भाषा से पृथ्वीराजरासो की भाषा का मिलान किया जाय, तो बहुत बड़ा अन्तर मालूम होता है। पठित चारण और भाट लोग अब भी कविता बनाते हैं, उसमें वीर रस की कविता बहुधा डिंगल भाषा में करते हैं और दूसरी कविता साधारण भाषा में। डिंगल भाषा की कविता में व्याकरण की ठीक व्यवस्था नहीं होती और शब्दों के रूप तथा विभक्तियों के चिह्न कुछ पुराने ढंग के होते हैं। एक ही ग्रंथ में भिन्न-भिन्न प्रकार की कविता देखनी हो, तो विक्रम संवत् १८७६ में आढ़ा किशन के बनाए हुए 'भीमविलास' और विक्रम की बीसवीं सदी में बने हुए मिश्रण सूर्यमल के वृहद्ग्रंथ 'वंशभास्कर' को देखना चाहिए। राजस्थानी भाषा की कविता में पहले फारसी-शब्दों का प्रयोग नहीं होता था, पीछे से कुछ-कुछ होने लगा। पृथ्वीराजरासो में प्रति सैकड़ा दस फ़ारसी शब्द पाए जाते हैं, जो उसकी प्राचीनता सिद्ध नहीं करते। आधुनिक लेखक भी स्वीकार करते हैं कि 'भाषा' की कसौटी पर यदि ग्रन्थ (पृथ्वीराजरासो) को कसते हैं तो और भी निराश होना पड़ता है, क्योंकि वह बिल्कुल बेठिकाने है—उसमें व्याकरण आदि की कोई व्यवस्था नहीं है। दोहों की और कुछ-कुछ कवित्तों (छप्पयों) की भाषा तो ठिकाने की है, पर त्रोटक आदि छोटे छंदों में तो कहीं-कहीं अनुस्वारांत शब्दों की ऐसी मनमानी भरमार है, जैसे किसी ने संस्कृत-प्राकृत की नकल की हो। कहीं-कहीं तो भाषा आधुनिक सांचे में ढली सी दिखाई पड़ती है, क्रियाएँ नए रूपों में मिलती हैं। पर साथ ही कहीं-कहीं भाषा अपने असली

प्राचीन साहित्यिक रूप में भी पाई जाती है, जिसमें प्राकृत और अपभ्रंश शब्दों के साथ साथ शब्दों के रूप और विभक्तियों के चिन्ह पुराने ढंग के हैं। इस दशा में भाटों के इस वाग्जाल के बीच कहाँ पर कितना अंश असली है, इसका निर्णय असंभव होने के कारण यह ग्रन्थ न तो भाषा के इतिहास के और न साहित्य के इतिहास के जिज्ञासुओं के काम का रह गया है[1]।

भाषा की दृष्टि से भी रासो वि०सं० १६०० से पूर्व का सिद्ध नहीं हो सकता।

पृथ्वीराजरासो का परिमाण

भाषा साहित्य के आधुनिक इतिहास-लेखक जब पृथ्वीराजरासो की घटनाएँ अशुद्ध पाते हैं, तब यह कहते हैं कि 'मूल पृथ्वीराजरासो छोटा होगा और पीछे से लोगों ने उसे बढ़ा दिया हो, यह सम्भव है', परन्तु यह कथन भी स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि चन्दबरदाई के वंशधर कवि जदुनाथ ने करोली के यादव राजा गोपालपाल (गोपालसिंह) के राज्य-समय अर्थात् वि० सं० १८०० के आसपास 'वृत्तविलास' नाम का ग्रन्थ बनाया। उसमें वह अपने वंश का परिचय देते हुए लिखता है कि 'चन्द ने १०५००० श्लोक (अनुष्टुप् छन्द) के परिमाण का पृथ्वीराज के चरित्र का रासो बनाया।'[2] यह कथन नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित रासो द्वारा प्रकाशित रासो के परिमाण से मिल जाता है। जदुनाथ के यहाँ अपने पूर्वज का बनाया हुआ मूल ग्रंथ अवश्य होगा, जिसके आधार पर ही उसने उक्त ग्रंथ का परिमाण लिखा होगा। ऐसी स्थिति में पृथ्वीराज-रासो के छोटा होने की कल्पना भी निर्मूल है।

पृथ्वीराजरासो को प्राचीन सिध्द करनेवालों की कुछ अन्य युक्तियां

पृथ्वीराजविजय के पांचवें सर्ग में विग्रहराज के पुत्र चन्द्रराज का वर्णन करते हुए जयानक ने उसे अच्छे वृत्त (छन्द) संग्रह करनेवाले चन्द्रराज से उपमा

---

१. नागरीप्रचारिणी पत्रिका; (नवीन संस्करण) भाग ६, पृ०२३-२४।

२. एक लाख रासौ कियो सहस पंच परिमान ।
पृथ्वीराज नृप को सुजसु जाहर सकल जिहान ॥ ५६ ॥
नागरीप्रचारिणी पत्रिका; भाग ५, पृष्ठ १६७

दी है। इस पर से कोई-कोई विद्वान् यह कल्पना करते हैं कि अच्छे छन्दों का वह संग्रह-कर्त्ता चन्दबरदाई हो[1], परन्तु यह युक्ति भी स्वीकार नहीं की जा सकती, क्योंकि चन्दबरदाई रासो में अपने को पृथ्वीराज का मित्र और सर्वेसर्वा होना बतलाता है। इसके विपरीत पृथ्वीराजविजय का कर्त्ता पृथ्वीराज के बंदिराज अर्थात् मुख्य भाट का नाम 'पृथिवीभट' देता है, न कि चन्द। कश्मीरी पंडित जयानक ने जिस चन्द्रराज का उल्लेख किया है, वह वही चन्द (चन्द्रक) कवि हो सकता है, जिसका उल्लेख विक्रम की ग्यारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में होने वाले कश्मीरी क्षेमेंद्र ने भी किया है[2]। इसके सिवाय चन्द्र नाम के कई और भी ग्रंथकार हुए, परन्तु उनमें से किसी को हम चंदबरदाई नहीं मान सकते।

मिश्रबन्धुओं का लिखना है कि 'यदि कोई मनुष्य सोलहवीं शताब्दी के आदि में इसे बनाता, तो वह स्वयं अपना नाम न लिख कर ऐसा भारी (२५००-पृष्ठों का) बढ़िया महाकाव्य चंद को क्यों समर्पित कर देता'[3]। इसके उत्तर में इतना ही लिखना आवश्यक होगा कि चंद नाम के अनेक कवि समय समय पर हो सकते हैं। कालिदास नामक अनेक कवि हो गए और तेरहवीं सदी के आस-पास होने वाले 'ज्योतिर्विदाभरण' के कर्त्ता ज्योतिषी कालिदास ने अपने को विक्रम का मित्र और उसके दरबार के नवरत्नों में से एक होना लिख दिया है। इतना ही नहीं, किंतु कलियुग संवत् ३०६८ (वि०सं० २४) में अपने ग्रन्थ का प्रारंभ और अन्त होना भी लिख डाला है।

उपसंहार

इस तरह हमने जाँचकर देखा कि पृथ्वीराजरासो बिलकुल अनैतिहासिक ग्रंथ है। उसमें चौहानों, प्रतिहारों और सोलंकियों की उत्पत्ति के सम्बन्ध की कथा चौहानों की वंशावली, पृथ्वीराज की माता, भाई, बहिन, पुत्र और रानियों आदि के विषय की कथाएँ तथा बहुत सी घटनाओं के संवत् और प्रायः सभी घटनाएँ

---

१. नागरीप्रचारिणी पत्रिका; भाग ६, पृ० ३४।

२. आफ्रेक्ट; कैटेलॉगस कैटेलॉगरम; भाग १, पृ० १७६।

३. मिश्रबंधु; हिंदीनवरत्न; (तृतीय संस्करण) पृ० ५६१।

तथा सामंतों आदि के नाम अशुद्ध और कल्पित हैं; कुछ सुनी सुनाई बातों के आधार पर उक्त बृहत् काव्य की रचना की गई है। यदि पृथ्वीराजरासो पृथ्वीराज के समय में लिखा जाता तो इतनी बड़ी अशुद्धियों का होना असंभव था। भाषा की दृष्टि से भी यह ग्रंथ प्राचीन नहीं दीखता। इसकी डिंगल भाषा में जो कहीं-कहीं प्राचीनता का आभास होता है, वह तो डिंगल की विशेषता ही है। आज की डिंगल में भी ऐसा आभास मिलता है, जिसका बीसवीं सदी में बना हुआ 'वंश-भास्कर' प्रत्यक्ष उदाहरण है। रासो की भाषा में फारसी शब्दों की बहुलता भी उसके प्राचीन होने में बाधक है। वस्तुतः पृथ्वीराजरासो वि०सं० १६०० के आस-पास लिखा गया। वि०सं० १५१७ की प्रशस्ति में रासो की घटनाओं का उल्लेख नहीं है और रासो की सब से पुरानी प्रति वि०सं० १६४२ की मिली है, जिसके बाद यह ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध हो गया, यहाँ तक कि वि० सं० १७३२ की राजप्रशस्ति में रासो का स्पष्ट उल्लेख है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि पहले पृथ्वीराजरासो का मूल ग्रंथ उसके वर्तमान परिमाण से बहुत छोटा था, परन्तु पीछे से बढ़ाया गया है, क्योंकि आज से १८५ वर्ष पूर्व उसी के वंशज कवि जदुनाथ ने उसका १०५००० श्लोकों का होना लिखा है। पृथ्वीराजरासो को प्राचीन सिद्ध करने के लिए जो दूसरी युक्तियां दी जाती हैं, वे भी निराधार ही हैं। अनंद विक्रम संवत् की कल्पना तो बहुत व्यर्थ और निर्मूल है, जिसका विस्तृत खंडन नागरी-प्रचारिणी पत्रिका में किया जा चुका है। संक्षेप से इस लेख में भी उसकी जाँच की गई है।

इस ग्रंथ के प्रसिद्धि में आने के कारण राजपूताने के इतिहास में बहुत अशुद्धि हुई। उदयपुर, जोधपुर, जयपुर आदि राज्यों की ख्यातों के लिखने वालों ने रासो के संवतों को शुद्ध मानकर वहाँ के कई पुराने राजाओं के संवत् मनमाने झूठे धर दिए। हिंदी भाषा का इतिहास लिखने वाले जो विद्वान् चंदबरदाई को पृथ्वीराज का समकालीन मानते हैं, वे सत्य जांच की उपेक्षा कर हठधर्मी ही करते हैं। यदि वे निष्पक्ष होकर इसकी पूरी जांच करें, तो उन्हें स्पष्ट मालूम हो जायगा कि रासो वि०सं०१६०० से पूर्व का बना हुआ नहीं है और न वह ऐतिहासिक ग्रंथ है।



पृथ्वीराज रासो की विवेचना

विभाग द्वितीय

वर्णित विषय



पं० मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या, उदयपुर

महाकवि चंद बरदई कृत

पृथ्वीराज रासे की प्रथम संरक्षा*

परम प्रसिद्ध और सर्वमान्य चंदबरदई कृत पृथ्वीराज रासे की प्राचीनता प्रामाणिकता और सत्यता पर कविराज श्रीश्यामलदासजी का आक्षेप लेख कि जो एशियाटिक सोसाईटी बंगाल के जर्नेल पुस्तक ५५ भाग १ अंक १ में प्रकाशित हुआ है और उसका "पृथ्वीराज रासे की नवीनता" नामक लोक-भाषा में अनुवाद ॥

१—मैंने कविराज जी के इस आक्षेप-लेख को बहुत विचार और अनुराग के साथ अवलोकन किया। उसका स्पष्ट अभिप्राय सर्व साधारणों को इस झूंठे अनुभव के धोके से बचाने का है कि पृथ्वीराज रासा जो इतने दिनों से चंदबरदई कृत करके प्रसिद्ध है, वह वास्तव में उसका रचा नहीं है; किन्तु वह पंदरवें अथवा सोलवें शतक में एक जान बूझ कर किया हुआ जाल है। यह आश्चर्य की बात नहीं है कि यह लेख जो इतनी बड़ी प्रतिज्ञा और सब बातों को उलट पलट कर देने को इतना बड़ा साहस करता है, वह इतिहास वेत्ताओं की मंडलियों में कोलाहल

* म० म० कविराजा श्यामलदास के 'पृथ्वीराज रहस्य की नवीनता' शीर्षक निबन्ध के उत्तर में उपर्युक्त पण्ड्याजी ने इस लेख को सन् १८८७ ईस्वी में बनारस मेडिकल हॉल नामक यंत्रालय में मुद्रित करवा कर प्रकाशित किया था। इससे रासो के विषय में पण्ड्या जी की कैसी मान्यता थी, उसका भली प्रकार से ज्ञान हो सकेगा। आगे हम इसी क्रम से अन्यान्य विद्वानों की विचार-धाराओं को भी प्रस्तुत करेंगे, जिन्होंने रासो पर अध्ययन किया है और उसके पक्ष-विपक्ष में उनका कुछ मत है, जो भावी शोधकों एवं अन्वेषकों को रासो सम्बन्धी गूढ़ समस्या सुलझाने में पथ-प्रदर्शक का काम देगा, एवं इस ग्रन्थ सम्बन्धी शोध सामग्री एक ही स्थान पर इस ग्रन्थ में मिल जायगी। अन्त में रासो के विषय में नवीन दृष्टि बिन्दु और शिलालेख ताम्रपत्र आदि का भी परिचय देंगे, जो अब तक प्रकाश में नहीं आये हैं। —सम्पादक

उत्पन्न न करें। मेरे इस विषय में इतिहास की पुरानी पुस्तकों और राजपूताने के वृद्ध चारण भाटादि जो इस रासे में पारंगत हैं—उनसे निश्चय करने में मुझे यह विचार कर कहने को निर्देश किया है कि कविराज के तर्क और अनुमान अयुक्त और असंतोषक हैं।

२—उक्त लेख को ध्यान देकर पढ़ने वालों को उसकी लिखावट का प्रकार यह विदित करता है कि उसके ग्रन्थकर्ता (कविराज जी) भाटों और बेदले[1] के चौहानों के साथ कुछ अमित्र भावना रखते हैं और वह चंद बरदाई कृत इस महाकाव्य को अपनी महिमा में खड़े हुए देख सहन नहीं कर सकते—कि जो चंद कवि की महाकाव्य-शक्ति का एक अमर स्मारक चिह्न है; क्योंकि जिस सिद्धान्त का उन्होंने अपने ग्रन्थभर में अवलम्ब किया है और जिस पर से उनकी दृष्टि अन्यत्र कहीं नहीं गई है, वह यह है कि यह रासा राजपूताने के किसी कल्पना करने वाले भाट का व्यर्थ बनाया हुआ झूंठा और जाली सिद्ध हो।

यद्यपि पक्षपात रहित न्याय करने वाले की सहायता करने को रासे में बहुत से स्थल ऐसे[2] हैं, जो कि इसकी सत्यता सिद्ध करते हैं, तथापि मुझे यह कहते शोक होता है कि ग्रंथकर्ता ने उन स्थलों को अपने विचार करने में त्याग दिये हैं कि जिन पर उन्हें सत्य के पक्षपात रहित अन्वेषण करने में अवश्य विचार करना योग्य था।

३—ग्रंथकर्त्ता [कविराज] मिस्टर जोन बीम्स और अन्य विद्वान् शोधकों के इस कहने से असम्मत हैं कि पृथ्वीराज रासा नामक महाकाव्य दिल्ली और अजमेर के अंतिम चौहान बादशाह के कविराज चंद बरदाई का बनाया हुआ है और वह बारहवें शतक के लगभग के बने हुए हिन्दी के सब काव्यों में बहुत ही प्राचीन है। बरुक ग्रंथ कर्त्ता (कविराज) यह कहते हैं कि पृथ्वीराज रासा तुलसीकृत रामायण और रायमल्ल रासे के पीछे बना हुआ है। परन्तु यह उनकी भूल है; क्योंकि उन्होंने पिछली दोनों पुस्तकों के बनने का ठीक समय विदित नहीं किया

---

१. "हमारे वृद्ध और बुज़ुर्ग बनारस वाले राजा श्री शिवप्रसाद जी महाशय सी. एस. आई. कविराज जी के लेख को विचार कर यथावत् कहते हैं कि कविराजजी चौहानों से कुछ खफ़ा से मालूम होते हैं।

है। वे अपने केवल इस बहुत दृढ़ और सुनिश्चित कहने पर ही संतुष्ट हैं कि रासा संवत् १६४० से लेकर सं० १६७० के बीच के समय में अवश्य ही जाली बना है। यह बात विचार करने लायक है कि नीचे लिखे दोहे के अनुसार गुसांई तुलसीदास का मरण सं० १६ ० में होना स्पष्ट निश्चित है:—

संवत् सोरह सौ असी, असी गंग के तीर।
सावन सुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो शरीर॥

और तुलसीदासजी के जीवन चरित्र[1] की कथा में से यह विख्यात है कि उन्होंने बाल्यावस्था व्यतीत होने पर सोरों में विद्या पढ़ी, उनके पिता के मरने पर उनका विवाह हुआ। तदनन्तर उनके कुछ दिन आनन्द पूर्वक गृहस्थाश्रम के सब व्यवहारों में व्यतीत हुए। उनके एक लड़का उत्पन्न हुआ और वे अपनी स्त्री पर अति प्रेम रखने वाले पुरुष थे। एक दिन उनकी स्त्री उनसे बिना पूछे अपने नैहर चली गई। जब कि वह उनके घर में न मिली, तब वे उसे देखने को अपने स्वसुर के घर गये। स्त्री ने उनको स्नेह के मारे वहाँ आये देख कर नीचे लिखे दोहे कह ताड़ना दिया:—

दोहा

लाजन लागत आप कों, दौरे आयेहु साथ।
धिक धिक ऐसे प्रेम को, कहा कहौं मैं नाथ॥ १॥

अस्थि चर्म मय देह मम, तामों जैसी प्रीति।
तैसी जो श्रीराम मह, होत न तौ भौ भीति॥ २॥

यह सुनते ही उनको ज्ञान उत्पन्न हुआ। उसके वचन के प्रभाव का उनको अनुभव हुआ। उन्होंने संसार का त्याग किया और राम का ध्यान करते करते अयोध्या को गये। वहाँ उन्होंने रामानन्दी संप्रदाय के गोस्वामी होकर कुछ समय तक तप किया। फिर पीछे वे काशी आय रहे और अस्सी घाट पर जहाँ उनका अब भी आश्रम है, वहाँ उन्होंने कुछ समय तक जप और अनुष्ठान किया। वहाँ उन्होंने

---

१. पंडित विश्वेश्वरदत्त कृत भक्तमाल की कथा पंडित बिहारीलाल चौबे कृत वर्णना बोध और मिस्टर ग्राउज़ साहब कृत रामायण के अमूल्य अंग्रेजी अनुवाद को देखो।

रामायण की कथा का सप्रेम श्रवण और पाठ किया। इसके थोड़े ही समय पीछे रामचन्द्रजी ने उनको स्वप्न में दर्शन दिये और भाषा में रामायण बनाने का आज्ञा कियी। यही कारण उनके परम प्रसिद्ध ग्रन्थ रामायण के बनने का हुआ। अब जो उनकी उम्र ८० वर्ष की भी मानें तो भी हमें विचारना चाहिये कि प्रथमतः कान्यकुब्ज ब्राह्मणों में विवाह का अवस्था क्या है? क्योंकि बहुत ही बाल्यावस्था के विवाह का प्रचार इन लोगों में प्रचलित नहीं है और जो उनमें शीघ्र से शीघ्र विवाह होता है, तो भी ३० वर्ष अथवा उसके लगभग की अवस्था में होता है और बहुत से स्त्री-पुरुष आज भी चालीस वर्ष की वय तक के कुँवारे मिल सकते हैं। दूसरे उनको गृहस्थाश्रम के सब व्यवहार कर के अपनी अवस्था के कौन से भाग में रामायण बनाने का समय मिला था। यदि हम ठीक जवानी में अर्थात् ४० वर्ष की अवस्था में भी रामायण बनाई मानें तो भी सं० १६४० से पहले रामायण बनाने का समय नहीं हो सकता। अब यह स्पष्ट है कि ग्रन्थकर्ता की सन्मति के अनुसार भी उक्त काव्य सं० १६४० से १६७० तक के समय में ही बने हैं। तब फिर यह कैसे सिद्ध हो सकता है कि रामायण[1] और रायमल रासा पहले के बने हुए हैं। यदि ग्रन्थकर्ता (कविराज) ने उक्त काव्यों के भिन्न २ सम्बत् मिति खोज कर प्रकाश किये होते तो उनका अनुमान विश्वास करने और सर्व साधारणों के मानने के योग्य होता।

---

१. कविराजजी अपने लेख में स्पष्ट नहीं लिखते हैं कि वे रामायण के बनने का सही सम्वत् कौनसा मानते हैं। तथापि मालूम होता है कि उन्होंने सं० १६३१ को शुद्ध माना है। बालकांड के एक छन्द पर उनका विश्वास है। परन्तु यह छन्द कितने विश्वास योग्य है यह एक संशय भरी बात है; क्योंकि रामायण भी पृथ्वीराज रासे जैसी है और वह क्षेपक अंग से खाली नहीं है। अतएव बाजारू छपी हुई पुस्तकों के सिवाय पुरानी पुस्तकों की विश्वास करने योग्य साक्षी और तुलसीदासजी के जीवन चरित्र सम्बन्धी समाचार अन्य प्रकार से सत्य के प्राप्त करने के लिये अत्यावश्यक हैं। वाल्मीक रामायण में और तुलसीकृत में बहुत फरक है। बालकांड में लिखि ग्रन्थकर्ता की भूमिका में बहुत भूलें हैं। मैं बालकांड में लिखे हुए सम्वत् मिति को शुद्ध नहीं मानता हूँ; क्योंकि जो क्षेपक अंग में कुछ समय से एकत्र करता रहा हूँ उससे बहुत सी भूलें पाई जाति है।

४—ग्रन्थकर्ता (कविराज) कहते हैं कि मेवाड़ राज्य के अव्वल दर्जे के उमराव वेदले और कोठारिया के घराने के किसी पढ़े लिखे भाट ने अपनी जाति का वड़प्पन दिखाने और हिन्दुस्थान के दूसरे प्रदेशों से आये हुए इन चौहानों की राजपूताने के क्षत्रियों में समान प्रतिष्ठा बतलाने को यह पृथ्वीराज रासा नामक महाकाव्य जाली बनाया है। उनका यह कहना बिलकुल ध्यान में नहीं आ सकता, क्योंकि सब अंग्रेजी, फ़ारसी और देशी इतिहास चौहानों का कुलीन और प्रतापी होना हमको अच्छी तरह स्पष्ट सिद्ध कर बताते हैं इसके सिवाय यह एक कैसा बड़ा प्रमाण है कि जब से यह वेदले और कोठारिये के चौहान मेवाड़ में आये हैं, तब से आज तक मेवाड़ के परम कुलीन महाराणाओं ने उनकी अव्वल दर्जे की प्रतिष्ठा कियी है और अपनी लड़की का सगपण [1] तक उनके साथ किया है। यह बात उनकी प्रतिष्ठा विदित करती है। अर्थात् जो यह लोग राजपूताने के क्षत्रियों के समान प्रतिष्ठा वाले न होते तो उनको कन्यादान कभी न दिया जाता। अब भी यदि कोई महाराणा साहब मेवाड़ से निश्चय करे तो मुझे आशा है कि वे उनको ऐसे ही प्रतिष्ठित बतलावेंगे तो फिर इनको इस जाली रासे के द्वारा राजपूताने के क्षत्रियों के समान प्रतिष्ठा बतलाने की कोई आवश्यकता नहीं थी और न ऐसी ही कोई आवश्कता भाटों [2] को महाराणाजी के गुण गाने से थी। क्योंकि इस जाली रासे से उनकी जातका कुछ वड़प्पन नहीं बढ़ा है। किन्तु इतिहासों से सिद्ध है कि जैसे वे इस रासे से पहिले जागीरें रखते थे, वैसे ही वे उसके पीछे अब भी रखते हैं।

५—ग्रंथकर्ता (कविराज) कहते हैं कि इस जाली रासे के बनाने वाले मेवाड़ के राजाओं की बहुत प्रशंसा का आश्रय सर्व साधारणों को अपने ग्रंथ की सत्यता और प्रामाणिकता मनवाने के लिये धोखा देने को किया है। फिर भी यह

---

१. हिन्दुओं में परस्पर विवाह का होना उभय पक्षवालों की समान प्रतिष्ठा का पूर्ण प्रमाण है।

२. यह प्रसिद्ध है कि सतयुग में वेलंग और वलास नामक भाट चंडी देवी की सेवा में और शेष के पास भीमसी थे। त्रेता में बलिराम के पास पिंगल और रामराज के पास रामपाल थे। द्वापर में पांडवों के पास संजय और नैमिषारण्य में शौनकादिक के पास वेताल, पृथ्वीराज के पास चंद और अकबर के पास गंग भाट थे।

इस रासे के जाली होने का कोई प्रबल कारण नहीं है। क्योंकि मेवाड़ के राजा भरतखंड भर में सदा से परम कुलीन और प्रतापी प्रसिद्ध हैं और यावत् क्षत्रिय उनको अपना शिरोमणी मानते आये और मानते हैं। जो कदाचित् मेवाड़ के राजा साधारण प्रतिष्ठा के होते तो ग्रंथकर्ता का यह कहना मानने योग्य होता। परन्तु जाली ग्रंथ बनाने वाला उस मनुष्य की प्रशंसा करने से अपना क्या प्रभाव सर्व साधारणों पर प्रकाश कर सकता है कि जो प्रत्येक मनुष्य की प्रशंसा का पात्र है?

६—अब ग्रंथकर्ता (कविराज) कहते हैं कि जाल करने वाले ने आशंका टालने के लिये, अपने महाकाव्य को चंद के नाम से प्रसिद्ध किया, यह उनकी फिर भी भूल है। क्योंकि यह सहसा ध्यान में नहीं आ सकता कि कोई मनुष्य, जो पृथ्वीराज रासे जैसे महाकाव्य बनाने की व्युत्पत्ति और शक्ति सम्पन्न हो और वह अपने रचे महाकाव्य के ग्रन्थकर्ता पने का मान किसी अन्य पुरुष को दे कि जो उससे किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखता। यदि हम ग्रंथकर्ता के इस कहने को सत्य होना भी स्वीकार करें, तथापि उनका यह कहना उनकी इस प्रतिज्ञा को हानि करता है कि चंद नामक कवि ही नहीं हुआ। इसके सिवाय ग्रंथकर्ता का कहना ही यह सिद्ध करता है कि पृथ्वीराज के समय में चंद नामक एक परम प्रसिद्ध कवि था—कि जिसके देखा-देखी काव्यरचना करने की आकांक्षा साधारण भाटादि को थी और उसी ने पृथ्वीराज रासा बनाया है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि इस जाल होने के समय सर्व साधारणों के चित्त पर यह संस्कार था कि पृथ्वीराज रासा नामक कोई काव्यग्रंथ है और उसे चंद कवि ने बनाया है। यदि ऐसा न होता तो जाल करने वाला अपने रचे ग्रंथ को चंद के नाम से प्रसिद्ध न करता और न यह भरतखंड भर में इतने मान से प्रचार को प्राप्त होता।

७—केवल यही बात, कि पृथ्वीराज रासे में राजपूताने की कविता के बहुत से ऐसे शब्द और वागरीति मिलती है कि जो राजपूताने में ही प्रचलित है। यह सिद्ध नहीं कर सकती है कि पृथ्वीराज रासे का अकृत्रिम ग्रन्थकर्ता कोठारिये वा बेदले के घराने का कोई भाट था। क्योंकि प्रथम तो यह सिद्ध होना कठिन है कि राजपूताने की भाषा के शब्द और वागरीति उस समय की हिन्दी भाषा में क्यों न जारी रहे हों। क्या दिल्ली के अंतिम हिन्दू बादशाह और उनकी प्रजा और राजपूताने के राजा और उनकी प्रजा में परस्पर कोई प्रकार का व्यवहार न था?

क्या दिल्ली और राजपूताने के राज्यों में परस्पर विवाह का व्यवहार प्रचलित न था? यदि यह बातें होना संभव है तो दिल्ली की हिन्दी भाषा में राजपूताने के शब्द और वाग्रीतियों का प्रयोग होना किसी भाँति असम्भव नहीं था। दूसरे पृथ्वीराज और चन्द दोनों राजपूताने में हो बड़े हुए थे और दोनों ने शिक्षा भी राजपूताने में ही पाई थी। क्या यह बहुत विलक्षण बात है और क्या यह एक आश्चर्य-दायक बात है कि चन्द ने अपने महाकाव्य में अपनी मातृ भाषा के वाक्यों का प्रयोग किया ? जो ग्रन्थकर्ता को मेरी तरह यह मालूम होता तो वह अपने कहने को पीछा फेर लेते कि महाकवि चन्द और उसके भाई के वंश के वरदई राजोरा और राज्योरा-राव अब तक राजपूताने के देशी राज्यों में उपलब्ध हैं। यह लोग अब भी जागीरें रखते हैं। वेदले जैसे एक अति समीप ठिकाने में हम उक्त घरानों में एक नाथजी नामक राव को देखते हैं कि जिन पर वेदले रावजी महाशय बड़ा अनुग्रह रखते हैं और उनको वे उक्त महाकवि के उक्त घरानों में का एक संतान होना मानते हैं। तीसरे सत्त, फूल्यौ. चावद्दिसि, उत्त, पारत्थ, सारत्थ, भारत्थ, आदि जैसे शब्दों के प्रयोगों के लिये कोई विशेषता राजपूताने में ही नहीं थी, क्योंकि जब कोई छंद भरपूर वीररस में लिखा जाता है तो हिन्दुस्थान भर की भाषाओं में यह नियम है कि प्रायः अक्षरों को द्वित्त कर देते हैं, जो ऐसा न करें तो काव्यनिर्जीव और नीरस हो जाता है। इसके सिवाय किसी शब्द अथवा वाक्य खंड को बलपूर्वक उच्चारण करना होता है तो साधारण बोल-चाल की भाषा में भी प्रायः अक्षर द्वित्त कर दिये जाते हैं। इस प्रकार के प्रयोग हमको व्रज, मैनपुरी, गंगा, जमना, के बीच के देश, पंजाब और अन्य प्रदेशों में प्रायः मिलते हैं:—जैसे-इत्ते धरदै-नत्ते नांखदै-जत्रै, वाक्कूं, सत्त, चढ, आग्गो, तत्रै. वो सत्ती भई-हह. मिच्च, चुराई में डार दई वो कै त्तो जाय है, हट्टो वच्चो मैंने या बात की चच्चा करो ही-सत्त हरदत्त. गुरदत्त, दाता-राम राम सत्त है. दो चार नित्त है हम तौ भत्थ अथवा भरत्थ मिलाप को मेला देखने गये हैं। चूक शब्द का शब्दार्थ हिन्दुस्थान की सब भाषाओं में एकसा ही है; परन्तु उसका भावार्थ भिन्न-भिन्न प्रदेशों में भिन्न-भिन्न है। ग्रंथकर्ता का कहना कि चूक करने का आशय दगा से मार डालना-राजपूताने में ही विशेषता रखता है, वह स्पष्ट असंगत है। 'चूक' शब्द संस्कृत धातु चुक्क अथवा प्राकृत चुक्कई जिनका अर्थ

दुःख पहुँचाना है, उनसे बना है (देखो डाक्टर ए. एफ. आर. होर्नली साहब कृत हिन्दी धातुओं का संग्रह-एशियाटिक सोसाईटी बंगाल का जर्नल पुस्तक ४४ भाग १ अंक २ सन् १८८० पृष्ठ ६६)। यद्यपि इस शब्द का यह प्रयोग आज कल बहुत कम है, तथापि यह कोई तर्क नहीं है कि वह जिस समय रासा रचा गया था, वा उसके बहुत दिन पीछे तक की हिन्दी भाषा में प्रचलित नहीं था। देखो चूक आववी और चूक नाखवी इन दो गुजराती वाक्यों को कि जिनमें चूक शब्द बहुत प्राचीन समय के अर्थ में प्रयोग हुआ है (देखो-कविराज नर्मदाशङ्कर कृत नर्म (द) कोष पृ० २३६ और २३७)। इसके सिवाय बहुत से संस्कृत, व्रजभाषा, प्राकृत, मागधी, और पंजाबी भाषा के शब्द और उनसे परस्पर बिगड़ कर बने अपभ्रंश शब्द महाकवि चंद के समय की हिन्दी में वर्तमान थे। ग्रंथकर्ता को भाषा सम्बन्धी व्युत्पत्तिग्रहण करने को चाहिये कि वह हिन्दुस्थान की भाषाओं के सापेक्ष्य-व्याकरण और मिस्टर जोन बीम्स और डाक्टर होर्नली साहब और अन्य प्रसिद्ध विद्वानों के रचित भाषा-सम्बन्धी-विद्या के ग्रंथों को अवलोकन करें। चौथे राजपूताने की भाषा जिसका ग्रंथकर्ता (कविराज जी) को बहुत अभिमान होना विदित होता है, वह कोई बिलकुल स्वतंत्र भाषा नहीं है किंतु,वह प्रत्येक रूप और सर्व भाव से संस्कृत, हिन्दी, गुजराती और प्राकृत आदि भाषाओं से सम्बन्धित है। तब फिर वह कैसे अपने स्वतंत्र शब्द वाक्य और वागरीतियों के होने का दावा कर सकती है ?

८—जब कि मिस्टर जोन बीम्स साहब यह कहते हैं कि पृथ्वीराज रासे के ग्रन्थकर्ता ने बहुत से शब्दों पर अनुस्वार इस अभिप्राय से लगाये हैं कि वे संस्कृत के सदृश विदित हों, उनका यह कहना मेरी सम्मति में तो अन्यथा नहीं है। परन्तु अनुस्वारों के प्रयोग देख कर हमारे कविराज जी का यह अनुमान करना बिलकुल अयुक्त है कि रासे के रचने वाले को संस्कृत और मागधी भाषाओं का कुछ भी ज्ञान नहीं था। यदि हम पृथ्वीराज रासे की आज की बिगड़ी हुई दशा और जब वह बिलकुल शुद्ध दशा में उसके ग्रन्थकर्ता की लेखनी से सद्य लिखा गया था, विचारें तो हम उसके रचने वाले को उक्त भाषाओं के जानने का यह भारी अपराध किसी प्रकार से नहीं लगा सकते। आज का पृथ्वीराज रासा सात शतक पहिले का पृथ्वीराज रासा नहीं है। क्योंकि यदि हम काव्याधिकार की छूट भी करें, तो भी हम समय के फेर-फार को प्रत्येक पृष्ठ में प्रबल पाते हैं।

यहाँ तक हम कुशलता से कह सकते हैं कि नकल करने वालों और शोधन संस्कार करने वालों की अज्ञानता और राजपूताने में अब तक अशुद्ध हिन्दी लिखने के प्रचार ने पृथ्वीराज रासे को वर्तमान दशा में पहुँचाने के लिये बहुत कुछ किया है। अतएव क्या अज्ञानी मनुष्यों की किया हुई भूलों को ग्रन्थकर्ता कवि के द्वार पर रखना योग्य है? कभी नहीं। इसके सिवाय यह बड़ी विलक्षण बात है कि हमारे ग्रन्थकर्ता (कविराज) ने चन्द कृत काव्य को अनुस्वार के प्रयोग सहित होने के कारण दोषी ठहराया है। हमारे पाठकों की तृप्ति के लिये हम गायन सागर (जो सं० १९४१=ई० १८८५ में छपा है) से नीचे लिखे कुछ छन्द उद्धृत कर यह सिद्ध करने को प्रमाण देते हैं कि अब तक हिन्दुस्थान में कवि लोग ऐसे हिन्दी भाषा में काव्य, भाषा को अति गुणकारी करने के लिये लिखते हैं। मेरे इस कहने की पुष्टि में इस प्रकार के सैंकड़ों छन्द पुराने और नये कवियों के ग्रन्थों से उद्धृत कर प्रमाण में प्रवेश किये जा सकते हैं; जब कि अनुस्वार सहित काव्य रचने की यह दशा है, तो मैं नहीं जानता कि पृथ्वीराज रासे के ग्रन्थकर्ता को हमारे कविराज जी ने अपने नीचे लिखे वचनों के द्वारा संस्कृत नहीं जानने का अयोग्य दोष क्यों लगाया है:—

"ग्रन्थकर्ता स्वयं तो वह भाषा नहीं पढ़ा था, पर ऐसा मालूम होता है कि किसी मागधी काव्य का वर्णन उसने सुना होगा और अपना ग्रन्थ प्राचीन जताने के लिये उसने अनुस्वार लगाया, परन्तु यह खेद का विषय है कि इस प्रकार से बने हुए शब्द न तो हिन्दी के रहे न मागधी के। अनुस्वर लगाने से यह स्पष्ट जान पड़ता है कि वह संस्कृत कुछ भी नहीं जानता था, क्योंकि उसको विन्दु विसर्ग का ही ठीक ज्ञान न था।"

[गायन सागर पृष्ठ २६–२९]

तनूं धुर्ज्जटी के समानं प्रमानं, करालं विसालं सुचंद्रं सुहालं।
विशालं त्रिनेत्रं महाकाल कालं; जटा मध्य गंगा तरंगा उछालं॥
पटं शुभ्र अगं भुजा में भुजंगं, ग्रिवा मुण्डमाला सुशोभीत रंगं।
यही वीधरीतं बतावै सगीतं, गुनी गात गानेंरु होवै पुनीतं॥
अती है अनोपं सुगौरं स्वरूपं, पटं स्वेत धारं गले चंप हारं।
करे कंगनं हेम राजे विराजे, सितं कंचुकी रंग रेशम छाजे।

सुढालं सिवारं सिरं बाल कालं, तनूं पें छ्वाये सुकेशं विशालं ॥
फुलं पारिजात्तं सुहानं सुकानं, गुनी यों बतावें त्रिरारी प्रमानं ।
अती कोमलं निर्मलं हेम अंगं. पटं पीत पैने वपू शाम रंगं ।
पटं लाल रंगं महा क्रोध अंगं, सुकुमार बाला स्वरूपं रसालं ।
त्रिशूलं विशालं महाकाल कालं, महादेव पूजा करंति सुबालं ॥
पटं पीत भासं सदा मंद हासं, त्रिसूलं करैं शुभ्र रूपं उजासं ।
पुनी चर्चितं म्रगमदं गंध भालं; अनोपं रसाल कपालं बिसालं ॥
पटं शुभ्र अंगं घनश्याम रंगं, स्वरूपं सुरंगं तिया वीत संगं ।
शुभं मस्तके कांचनीयं किरीटं, करमें छरी पुष्प को पत्र वीटं ॥
अती चातुरं हास्य भासं विसालं, गले मुक्त माला सुजोतं उजासं ।
करे काम केलं धरि हांस जोसं, करैं गून गाने गुनी माल कौसं ॥
कपूरं सुहातं सुगंधं सुभालं, पटं शुभ्र है पद्म नेत्रं विसालं ।
रही कंचुकी स्तन्नमें रग शामं, सदा रंग भींजी रही अंग कामं ॥

६—कविराज कहते हैं कि पिंगल का शब्दार्थ कविता के तोल की किताब है। परन्तु यह अन्यथा है। उसका शब्दार्थ एक मुनि विशेष है—एक पिंगल नामक मुनि जो नागों के आचार्य हुए हैं, वह यही हुवे हैं कि जिनों ने छन्द सूत्र रचे हैं और जिनके नाम से पिंगल छन्द सूत्रम् नामक ग्रन्थ प्रसिद्ध है। हम पिंगल का शब्दार्थ मुनि विशेष होने के प्रमाण में हलायुध के नीचे लिखे वचन उद्धृत करके लिखते हैं:—

[पिंगल छन्दः सूत्रम्]

श्रीमत् पिङ्गल नागोक्त, छन्दः शास्त्र महोदधेः ।
वृत्तानि मौक्तिकानीव. कानिचिद्विचिनोम्यहं ॥ १ ॥
वेदानां प्रथमांगस्य, कवीनां नयनस्य च ।
पिंगलाचार्य्य सूत्रस्य, मया वृत्तिर्विधास्यते ॥ २ ॥
क्षीराब्धेरमृतं यद्वद्, उद्धृतं देव दानवैः ।
छन्दोऽब्धेः पिंगलाचार्य्यै, छन्दोऽमृतं तथोद्धृतं ॥ ३ ॥

यदि कविराज ने यह पिंगल का लाक्षणिक अर्थ होना कहा होता, तो कुछ सत्य भी होता। संस्कृत भाषा में तो यह शब्द स्पष्ट है। क्योंकि वह पिंगल छन्दः

सूत्रम् अर्थात् पिङ्गल कृत छन्द सूत्र कर के प्रसिद्धि है। परन्तु हिन्दी में कर्ता के नाम से उसका कर्म ग्रहण किया गया है। किन्तु अब बात यह है कि जैसे कविराज ने पिंगल का शब्दार्थ कविता के तोल की किताब माना है, वह कभी नहीं हो सकता। हम नहीं समझ सके कि उन्होंने "कविता के तोल की किताब" से क्या अर्थ माना है। यह वाक्य खण्ड वास्तव में एक बड़ी बुरी हिन्दी है। यूक्लिड़ का रेखागणित यूक्लिड़ करके कहलाता है, परन्तु हम यह नहीं कह सकते कि यूक्लिड़ का शब्दार्थ रेखागणित के तौल की किताब है, यद्यपि वह अलंकार विद्या के भावार्थ से कुछ सम्भव भी है। कविराजजी ने फिर भी एक भूल डिंगल के शब्दार्थ में कियी है। डिंगल नामक एक पुरुष पैशाची और मागधी आदि भाषाओं का हिन्दुस्थान में प्रचार हुआ उस समय हुआ है। उसकी कविता के नियम पिंगल से कुछ भिन्न हैं और वह उसके नाम से प्रसिद्ध हैं।

१०—कविराजजी ने पृथ्वीराज रासे को विध्वंस और लोप करने वाला निर्णय अपनी सम्मति को वर्तमान पृथ्वीराज रासे के संवत् मिति यथार्थ न मिलने के आधार पर स्थिर करके किया है। और उनका उसके जाली होने का प्रमाण भी मुख्य कर के इस पर ही आधार रखता है। अब यदि उनका किसी पुस्तक के जाली होने का सिद्धान्त उसमें लिखे संवत् मिति अशुद्ध होने के कारण से हमारे पाठक सर्व साधारण लोग एक सर्व तंत्र सिद्धान्त करके मान लें तो विचारे ग्रंथ-कर्ताओं की दुर्गति है, जिन्होंने अपने सिर पचाये हैं और अपने ग्रंथ रचन में कठिन परिश्रम व्यर्थ किये हैं। देखो टोड साहब कृत राजस्थान नामक पुस्तक के संवतों में जैसे छापे की भूल हैं, वैसे ही और भी होगी, अतएव कविराज जी माने हुवे सिद्धान्त के अनुसार यह एक प्रमाण है कि राजस्थान पुस्तक के संवतों में जैसे छापे की भूल हैं, वैसे ही और भी होंगी। अतएव कविराजजी के माने हुवे सिद्धान्त के अनुसार यह एक प्रमाण है कि राजस्थान पुस्तक का ग्रंथकर्ता कर्नेल टोड साहब नामक कोई पुरुष नहीं हुआ, टोड साहब का राजस्थान केवल एक जाल ग्रन्थ है और वह किसी महाराणा साहब के अँग्रेजी भाषा जानने वाले नोकर भाट ने बनाया है; क्योंकि उसमें मेवाड़ के राजाओं की बहुत प्रशंसा है। निदान कविराज जी को मानना चाहिये था कि चन्द ने शब्द और अंक में सम्वत् मिति शुद्ध लिखे थे; परन्तु सात सौ वर्ष के इतने अतिकाल में लेखक दोष की भूलें इस

महाकाव्य को बहुत भ्रष्ट करने को उसमें धीरे धीरे प्रवेश हो गई है। जब ऐसा होता है, तब भिन्न २ पुस्तकों में पाठान्तर हो जाते हैं; जैसे कि कविराज जी के दिये एक नीचे लिखे प्रमाण में:—

शाक सुविक्रम सत्त शिव अट्ठ अग्ग पंचास।

इसके अट्ठ शब्द पर एशियाटिक सोसाइटी के जर्नेल के एडिटर साहब ने नीचे लिखा है:—

"कि ग्रन्थकर्ता (कविराज) की पुस्तक में हम 'अट्ठ' पाठ देखते हैं, एक दूसरी में पंच, और टोड साहब वाली में भिन्न पाठ है।"

क्या चन्द अथवा जाली रासे का बनाने वाला उक्त भिन्न भिन्न पाठों के उत्तर दाता हैं।

११ ग्रन्थकर्ता (कविराज जी) ने आज के उपलब्ध पृथ्वीराज रासे में जो पृथ्वीराज जी की अंत की लड़ाई के सम्वत् ११५८ की सत्यता की परीक्षा करने में अपनी प्रसन्नता के अनुसार अब्बुलफ़िदा और तबक़ात नासरी नामक दो इतिहास अपने बहुत ही विश्वासी प्रमाण रूप मानकर सर्व साधारण को रासे में लिखित सम्वत् मिति अशुद्ध होने के लिये सचेत किये हैं, परन्तु उनका प्रथम प्रमाण अब्बुलफ़िदा नामक उनके अभिप्राय के अनुकूल पूर्ण रूप से साक्षी नहीं देता; क्योंकि कविराज जी स्वयम् कहते हैं कि "वह पृथ्वीराज की लड़ाई के विषय में कुछ नहीं लिखता है।" अतएव हम हमारे कविराज जी के इस अब्बुलफ़िदा नामक नाम-मात्र के प्रमाण को अस्पर्शित ही एक ओर रखते हैं। और तबक़ात नासरी नामक दूसरे प्रमाण के विषय में विचार करते हैं। तबक़ात नासरी का ग्रन्थकर्ता मिन हाज् इ-सराज शहाबुद्दीन के राज्य शासन के वर्णन में एक स्थान पर तो इस लड़ाई का संवत् हिजरी ५८८ ईस्वी ११६२ लिखता है; परन्तु एक दूसरे स्थान पर वह कहता है कि इस सम्वत् में शहाबुद्दीन सुलतान शाह से लड़ा था। इसी तरह सम्वत् हिजरी ५८१ ईस्वी ११८५ में तो वह लिखता है कि शहाबुद्दीन ने फिर लाहौर पर चढ़ाई कियी और खुसरो मालिक के वर्णन में वह स्वयं कहता है कि शहाबुद्दीन ने लाहौर पर केवल दो बार ही चढ़ाइयें कियीं अर्थात् प्रथम हिजरी ५७७ और दूसरी जब कि लाहौर विजय किया हि० ५८३ में यदि कविराजजी

मेजर रैवर्टी साहब कृत तबक़ात नासरी का अंग्रेजी भाषान्तर उनकी अमूल्य टिप्पणों के साथ अवलोकन करने का परिश्रम करेंगे तो हम को निश्चत है कि वे यह जान लेंगे कि उनका यह प्रमाण वैसा निर्दोषी नहीं है, जैसा कि उन्होंने उसे समझ रक्खा है; क्योंकि उसका कर्ता मिनहाज इ-सराज् प्राय: ऐसी-ऐसी भूलें करता है कि जो उस समय के ग्रन्थ रचनेवाले के लिये एक बड़ी शोक की बात है और यह भी विदित है कि उसकी स्मरण शक्ति ऐसी बुरी है कि वह किसी एक स्थान पर तो कुछ लिखता है और दूसरे स्थान पर अपने अगले लिखे को स्वयं खंडित करता है। उसने अपने बाप के क़ाज़ी नीयत होने का वर्णन एक स्थान पर तो किया है; परंतु जहाँ सब काज़ियों की एक फ़िहरिस्त लिखी है, वहाँ हमको उसका नाम ही नहीं मिलता। शहाबुद्दीन ने कैसी अयोग्य रीति से उछाह को प्राप्त किया कि इस बात को उसने बिलकुल ही छिपाया है। इसी तरह जहाँ कि उसने शहाबुद्दीन की जीत साफ़ल्यता और धर्म-युद्धों की गणना कियी है, वहाँ बहुत सी उसने भूलें कियी हैं। वह एक बड़ा बावदूक अर्थात् बढ़बोला भी है कि वह लिखता है कि गज़नी के खज़ाने में ठीक १५०० पंद्रै सौ मन केवल हीरे थे और उसी के साथ वह हमको अन्य जवाहर का भी इसी के अनुसार विचार कर लेने को निर्देश करता है। यदि हम उसके मन को तबरीज़् मन होना भी समझें कि जो अंग्रेजी दो पांउँड अर्थात् एक सेर के बराबर होता है, तो भी उसका वर्णन बहुत ही असंभव है। हम नहीं जानते कि हमारे कविराजजी ने उस समय के इतिहास लिखने वाले हसन निज़ामी आदि का तिरस्कार कर के केवल इस मिन हाज़्-इ-सराज को ही क्यों प्रसन्न किया है? क्या इसका यह कारण नहीं है कि वे इन बातों में असम्मत हैं? जो कि कविराज जी ने अपने लेख में यह स्वयं स्वीकार कर लिया है कि तबक़ात नासरी के ग्रन्थ कर्ता ने नामों में बहुत सी भूलें किये हैं। अतएव हम उनको अपने खडन में नहीं लेते। हम आशा करते हैं कि हमारे पाठकों को यह भले प्रकार ज्ञात है कि शहाबुद्दीन के राज्य समय का वर्णन मिनहाज़्-इ-सराज़् का लिखा हुआ इस विवाद विषय में सुनी हुई साक्षी है। क्योंकि वह हिज़री ५८९ में उत्पन्न हुआ था और उसने अपनी पुस्तक में स्वयं लिखा है कि हिज़री ६२४ में उसने प्रथम ही हिन्दुस्थान में पैर रक्खा था। हम पृथ्वीराज जी की आख़िरी लड़ाई का संवत् १२४८/४९ केवल तबक़ात नासरी के ही प्रमाण पर अंगीकार

नहीं करते; परंतु फारसी इतिहासों की वहु सम्मति और संप्रत शोधनों के प्रमाण पर स्वीकार करते हैं। अब हम को यह कहना वाकी है कि हमारे ग्रन्थकर्ता (कविर.जजी) को यह मानना अयोग्य न था कि अक्रित्रिम चंद कवि ने रासे में सही संवत् मिती लिखे थे, परन्तु वे इतने अतिकाल में भिन्न२ संस्करण करने वालों की भूलों से अशुद्ध हो गये हैं (जैसा कि वहुत से विद्वान् लोग इन भूलों को संख्या दोष सम्बन्धी समझते हैं) वा जो कुछ हमने हमारे निगमन में सतर्क प्रकाश किया है।

१२ हमारे ग्रन्थकर्ता (कविराज जी) कर्नेल टोड साहब पर अपने नीचे लिखे वचनों के द्वारा आक्षेप करते हैं:—कर्नेल टोड साहब ने अपनी 'राजस्थान' पुस्तक में सम्वत् १२४६ विक्रमी शहावुदीन और पृथ्वीराज की लड़ाई के वास्ते लिखा है; पर उन्होंने पृथ्वीराज रासा में लिखे हुए सम्वत् ११५८ के अशुद्ध होने का कारण कुछ नहीं लिखा। अर्थात् उसको अशुद्ध ठहराने के लिये कोई सवूत या दलील नहीं लिखी"

यदि कविराज जी ने जैसा कि उनको उचित था, कर्नेल टोड साहब की पुस्तकों को अच्छी तरह अवलोकन करके कि जो केवल उनकी प्रीत का एक परिश्रम है और उनमें रत्न रूपी संग्रहीत प्रत्येक विषय की सूक्ष्म दृष्टि से विवेचना कियी है, अपनी सम्मति को स्थिर कियी होती तो वे ऐसी एक दैवाधीन वृत्तान्त-व्याख्या न करते। हम उनको नीचे लिखी कर्नेल टोड साहब कृत राजस्थान भाग २ के पृष्ठ ४२० टिप्पण २ सूचन करते हैं:—

"हाड़ाओं का वंश वर्णन करने वाला (अस्तिपालजी का) सम्वत् ६८१ कहता है; परन्तु आश्चर्य की वात है कि चौहानों की सव शाखा वाले १०० वर्ष की एक सी भूल से अपने सम्वत् अगले लिखते हैं। जैसे वीसल देवजी के अनहलपुर पट्टन प्राप्त करने का सम्वत् १०८६ के स्थान में ६८६ लिखते हैं। परन्तु यह भूल चन्द में भी प्रवेश हो गई है कि जो पृथ्वीराज का कवि था, जिसका जन्म संवत् १२१५ के स्थान में १११५ कर दिया गया है, और सर्वरीत्या सम्भव है कि किसी कवि की अज्ञानता के द्वारा यहीं से भूल प्रारम्भ हुई है।"

क्या हमारे ग्रन्थकर्ता (कविराज जी) इस टिप्पण से पृथ्वीराज रासे में लिखे सम्वतों की सत्यता के विषय में टोड साहब की क्या सम्मति थी, यह नहीं अनुमान कर सकते ?

१३ कर्नेल टोड साहब ने लिखा है कि रावल समरसी जी के पौत्र राणा राहपजी ने विक्रमी सम्वत् के तेहरवें शतक में राज्य किया। परन्तु हमारे ग्रन्थकर्ता (कविराजजी) उनका राज्य समय चौदहवें शतक के चौथे भाग में स्थापना करते हैं। परन्तु जब तक यह मिस्टर जोन ब्रिम्स, डाक्टर होर्नली और डाक्टर आर० मित्र महाशय जैसे विद्वानों की साक्षी से समर्थन न हो, तब तक मैं उनके इस कहने को विश्वास कर मान नहीं सकता। क्योंकि मेवाड़ के महाराणा महाशयों की वंशावली वर्णन करने की जिस भूमि पर हमारे ग्रन्थकर्ता (कविराज) चलते हैं, वह बहुत नाजुक और फिसलनी है। उन्होंने एक अपनी मनमानी वंशावली बना रक्खी है। मुझे संदेह है कि वे जैसी उसे मानते हैं, वैसी वह वास्तविक बहुत ही शुद्ध नहीं है। अतएव जब तक उसके गुणदोष की परीक्षा होकर उसे विद्वान् अंगीकार न कर लें, तब तक मुझे संतुष्ट होने का कोई योग्य कारण नहीं है और विशेष करके इससे भी कि वह कर्नेल टोड, डाक्टर हंटर और मिस्टर फोर्बस् साहब की लिखित वंशावली के संवतों से सम्मत नहीं है। यदि यह भी मान लें कि इन विद्वान् महाशयों ने भूल कियी है, तथापि इससे यह सारांश नहीं निकल सकता कि रासा आद्योपान्त जाली है।

१४ यह विलक्षण बात है कि पृथ्वीराज रासे ने ही सब इतिहासों और बड़वा भाटों के लेखों में भूल डाल दी हैं; क्योंकि जो कुछ अंग्रेजी तवारीखों में लिखा है, वह केवल पृथ्वीराज रासे से ही लेकर नहीं लिखा गया है; किन्तु अन्य मूलों से बहुत विचार और शोध करके सब वृत्त लिखे गये हैं। यह भी नहीं है कि राजपूताने के राजाओं के घरानों के निज इतिहास भी सब रासे के प्रमाण से ही लिखे गये हैं। किसी बड़वा भाट अथवा चारण से पूछो और वह तुमको नीचे लिखे प्रमाण एक सरल और अकृत्रिम उत्तर देंगे कि "बापजी, यह सम्वत् मिती और वंशावली जैसे हमारे बापदादे लिखते आये हैं, वह हाज़िर है। इनको एक बार आगे कर्नेल टोड साहब ने भी देखे थे और उन्होंने अमुक २ स्थानों में भूलें बतलाई थीं। यदि कहीं कोई भूल हो, तो उनको आप शुद्ध कर लीजिये।" जो

कुछ हमारे रासे की पुस्तकों में भूलें होंगी उनका उत्तरदाता उसका ग्रन्थकर्ता नहीं है; किन्तु लेखकों ने भूल की हैं और असूया वाले मनुष्यों ने अपने किसी अभिप्राय के सिद्ध करने को संवतों में फेरफार कर दिया होगा।

१५ ग्रन्थकर्ता (कविराज जी) ने बीजोली की प्रशस्ति सम्वत् १२२६ की कि जिसमें सोमेश्वर के पीछे किसी अजमेर के चौहान राजा का नाम नहीं लिखा है, उससे जो तात्पर्य निकाला है कि तब तक पृथ्वीराज जी राज गद्दी पर नहीं बैठे थे, वह असत्य है। उसका कारण यह है कि पृथ्वीराज जी इसके पहिले ही दिल्ली चले गये थे और तँवर राजाओं के कुल में गोद रह गये थे। इसलिये उनका नाम यथार्थता से अजमेर वालों की नामावली में नहीं लिखा गया है। ग्रन्थकर्ता (कविराज) का यह अनुमान है कि पृथ्वीराज जी मेनालगढ़ की की प्रशस्ति लिखी सम्वत् १२२६ के चैत्र कृष्णा १५ के पीछे ४२ दिन के अवसर में दिल्ली की राजगद्दी पर बैठे होंगे। मेरी सम्मति में बिलकुल ही असत्य है। क्योंकि पृथ्वीराज जी के राज्य शासन समय की एक प्रशस्ति कर्नेल स्किनर साहब को सन् १८१८ ई० में हाँसी में से सम्वत् १२२४ की मिल चुकी है कि जिसको उन्होंने हिन्दुस्थान के गवर्नर जनरैल लोर्ड हेस्टिङ्गस साहब बहादुर के नज़र करी थी। इस प्रशस्ति का कुछ अंग रौयल एशियाटिक सोसाईटी लंडन के ट्रैन्जैक्शन्स पुस्तक १ में छप चुका है। इसके सिवाय एक प्रशस्ति संवत् १२२० की दिल्ली में फ़ीरोजशाह के महल में से प्राप्त हुई है। इस प्रशस्ति को कई एक प्राचीन शोधों के अनुरागी विद्वान् शोधकों ने बहुत सूक्ष्म विचार और गुणदोष की परीक्षा के साथ मनन कर के पृथ्वीराज जी के राज्याभिषेक का संवत् १२२० निर्णय किया है। इन प्रशस्तियों के प्रमाणों के साथ कर्नैल टोड साहब के राजस्थान पुस्तक १ पृष्ठ ८० में के नीचे लिखे वचन भी मेरे कहने को पुष्ट करते हैं:—

"दिल्ली जिसका प्राचीन नाम इन्द्रप्रस्थ है, उसे युधिष्ठिर ने स्थापन किया था और उसका आठ शतकों तक निर्जन पड़ा रहना ख्याति वर्णन करती है इसको अनंगपाल तँवर ने सं० ८४८ (ई० ७९२) में पुनश्च स्थापन किया और बसायी। उसके पीछे इस घराने में राजा हुए जिनमें अंतिम राजा स्थापन करने वाले के नाम

का अनंगपाल नामक ही हुआ कि जिसने सं० १२२०=ई० ११६४ में राजपूतों की रीति के विरुद्ध अपने संतान रहित होने के कारण अपनी पुत्री के पुत्र चौहान पृथ्वीराज को राज देकर छोड़ दियी।"

१६ यह एक विचित्र बात है कि ग्रन्थकर्ता (कविराजजी) यह नहीं मानते कि समरसीजी का बादशाह पृथ्वीराजजी की बहन पृथाबाई से विवाह हुआ था। इसमें वे असंदिग्ध प्रमाण उनके विपक्ष में होते हुए भी हठ से अविश्वास करते हैं। उनके स्वमताभिमान का यह कारण मालूम होता है कि वे चाहते हैं कि रासा जाली सिद्ध होकर निष्फल सिद्ध हो। यदि वे उनके विवाह का होना सत्य मान लें तो उनका पक्ष झूठा हो जाय; क्योंकि तब तो फिर समरसी जी का पृथ्वीराज जी के समय में होना प्रमाण होजाय। अब देखिये कि राजसमुद्र पर की प्रशस्ति जो महाराणा राजसिंहजी के आज्ञानुसार बनाई गई है, वह पृथाबाई का विवाह समरसी जी से होने की नीचे लिखी साक्षी देती है:—

ततः समरसिंहाख्यः पृथ्वीराजस्यभूपतेः।
पृथाख्याया भगिन्यास्तु पतिरित्यति हार्दतः॥

जो कि ग्रन्थकर्ता (कविराजजी) ने उक्त प्रशस्ति में अभी तक दोष नहीं निकाला है. अतएव मैं विचारता हूँ कि वे उसे प्रामाणिक मानते होंगे, परन्तु मुझे डर है कि वे उसे अपने पक्ष को प्रतिपादन करने वाली न देखकर पृथ्वीराज रासे की तरह झूंठी होना न प्रकाश करें। दूसरे सनावड अर्थात् सनाढ्य ब्राह्मण आदि को मेवाड़ में बसने का एक दूसरा वृत्तान्त कभी असिद्ध और त्याग नहीं हो सकता कि वे प्रथम ही पृथाबाई के दायजे में आकर राजपूताने के इस भाग में बसे हैं और उनके संतान अब तक जागीरें खाते हैं।

१७ समरसीजी न तो पृथ्वीराजजी के समय में हुवे और न उन्होंने उनकी बहन से विवाह किया. यह ग्रन्थकर्ता (कविराजजी) का मान लेना ही इस बात का कारण है कि वे पृथ्वीराज रासे का जाली होना और मेवाड़ तथा हिन्दुस्थान की अन्य प्रान्तों के इतिहासों में भूलों का हो जाना सिद्ध और प्रकाश करते हैं। उन्होंने कई एक प्रशस्तियों की साक्षी पर यह सिद्ध किया है कि समरसीजी सम्वत् १३३२ से सं० १३४४ तक के समय में हुवे होंगे। अब मैं उनकी प्रशस्तियों के

प्रमाणों में दोष दिखा कर कितनेक प्रतिष्ठित सरदार, उमराव; पंडित, भाट और चारण, जो कि ग्रन्थकर्ता के जाति बन्धु हैं उनको सम्मति से यह सिद्ध कर बताऊँगा कि समरसिंहजी अपने साले पृथ्वीराजजी के समय में हुए थे।

१८ चित्तौड़ के किले के नीचे बहने वाली गम्भीरी नदी के पुल में की प्रशस्ति सम्वत् १३२४ की में केवल महाराज तेजसिंह का नाम लिखा होने ने ही ग्रन्थकर्ता (कविराजजी) को भ्रम में डाल दिये हैं और इन महाराज तेजसिंह को रावल समरसीजी के पिता सहसा कर ठहराने में उन्हें भुला दिये हैं। यदि ग्रन्थकर्ता (कविराजजी) ने सावधानता और गम्भीरता से उक्त नाम के सम्बन्धित सब बातों को पक्षपात रहित निर्णय करने के लिये विचार किया होता तो वे ऐसी आकस्मिक सम्मति से धोखा न खाते। अब हमें उस नाम के पहिले के विशेषण महाराज को एक क्षण भर विचारना चाहिये; क्योंकि केवल महाराज शब्द का किसी प्रशस्ति में किसी महाराणा साहब मेवाड़ के नाम के पहिले प्रयोग हुवा नहीं पाया जाता है। यदि हम यह भी मानलें कि कहीं २ ऐसा भी हुवा है, तथापि हम वहाँ उस नाम को महाराणा साहब के घराने के अन्य निज विशेषणों से विभूषित पाते हैं कि जिससे यह जानने में कठिनता नहीं रहती कि अमुक कौन से महाराणा हैं। इसके सिवाय यह प्रशस्ति जो विवाद में है, वह एक बड़ी विचित्र है; क्योंकि वह वैसी नहीं है कि जैसी सब प्रशास्तियाँ हुआ करती हैं और न उससे प्रशस्ति विषयक कुछ निमित्त स्पष्ट मालूम हो सकता है। अतएव जब तक अन्य प्रशास्ति से यह समर्थन न हो, तब तक मैं समरसी जी के होने के सर्वमान्य समय को मिथ्या मानने को उसे पूर्ण प्रमाण रूप नहीं स्वीकार कर सकता।

१६ अब हम अन्य तीन प्रशस्तियों को परीक्षा करेंगे कि जिनको ग्रन्थकर्ता (कविराजजी) ने प्रमाण में दियी हैं। प्रथम तो वह जो गंभीरी नदी के पुल में संवत् १३-२ के ज्येष्ठ शुक्ला १३ को मिली है, दूसरो सं० १३३५ के वैशाख शुदी ५ गुरुवार की और तीसरी वैद्यनाथ जी के मंदिर को धरती भेंट हुई उसकी सवत् १३४४ के वैशाख शुदी ३ की। मालूम होता है कि यह प्रशस्तियें भी अनादर किये गये पृथ्वीराज रासे के माजने की ही हैं! क्योंकि रासे में तो संवत् मिती सत्य संवतों की अपेक्षा एक शतक पहिले के हैं और इन में एक सौ वर्ष पीछे के हैं। इन प्रशस्तियों के अंतर के विषय में मेरे एतद्देशीय प्रतिष्ठित और ज्ञाता

पुरुषों से निश्चय करने पर मुझे यह कारण मालूम हुआ कि किसी असूया वाले ने दो २ के अंक को तीन ३ बनादिया है। मुझे इस सम्मति के अविश्वास करने को कोई कारण नहीं है। क्योंकि इतने ही परिवर्तन के मान लेने से समरसीजी का ठीक समय आय मिलता है और दूसरे एतद्देशीयों के इस सतर्क कहने के आगे हमारे ग्रन्थकर्ता और शोधक का कहना अयुक्त है। मेनाल में के समरसी के मंदिर को प्रशस्ति सं० १२-२ की इनको सं० १२३२, १२३५ और १२४४ की होना प्रमाण करती और विश्वास दिलाती है। इसके सिवाय यह प्रशस्तियें सुरह मालूम देती हैं और सुरहों पर पूर्ण विश्वास नहीं किया जाता है; क्योंकि बहुत सी सुरह और ताँबापत्र जमीन प्राप्त करने के लिये अर्थी लोगों ने जाली बना रक्खे हैं। हमने यह मान लिया कि कविराजजी की प्रमाण में दियी प्रशस्तियें झूठी नहीं हैं; तथापि हम यह मानेंगे कि इनके संवत् मिति असत्य हैं और वे उनमें लिखे वर्तमानों के बहुत दिन पीछे लगाई गई हैं।

२० अब हमको आबू पर्वत पर के अचलेश्वर महादेव के मन्दिर की प्रशस्ति की परीक्षा करना बाकी रहा है। इसके सम्वत् मिति अर्थात् सम्वत् १३४२ मृगशिर शुदी १ के विषय में सब एतद्देशीय प्रतिष्ठित पंडित और भाटों का सम्मत होकर यह कहना है कि यह सम्वत् मिति महाराणा समरसीजी के मन्दिर के जीर्णोद्धार कराने का नहीं है; किन्तु प्रशस्ति के लगाये जाने का है। इन लोगों के कहने पर ही संतुष्ट न होकर मैंने मेरे विद्वान् मित्र काशी के पंडितों से भी इस विषय में सम्मति लियी तो मेरे निर्णय करने का फल एतद्देशीयों के ही कथन को समर्थन करता है। यदि पक्षपात रहित होकर निर्धार किया जावे तो मेरे तर्क और अनुमान जो अब तक मैंने वर्णन किये हैं और अब आगे कहूँगा, उनकी संगती मिलाकर विचार करने से मालूम होगा कि मेरे एतद्देशीय मित्रों का कहना सत्य है। प्रशस्ति को ४६ वें श्लोक से अन्त पर्यन्त पढ़िये, आपको मालूम हो जावेगा कि उसमें लिखा सम्वत् प्रशस्ति लगाने का सम्वत् है; क्योंकि प्रशस्ति कृत यह वाक्यखण्ड मेरे इस कहने को पुष्ट करता है। ऐसा होना असामान्य नहीं है कि कोई स्थान कभी बनता है और उसकी प्रशस्ति कई वर्ष पीछे लगाई जाती है। इसके सिवाय यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि उसका संवत् क्षेपक न हो और ऐसी दशा में वह उक्त तीन प्रशस्तियों के प्रकार की न हो। इसके साथ यह

मैं स्वीकार करता हूँ कि इस प्रशस्ति के संवत् मिती अशुद्ध होने और उसके ४६ वें श्लोक के उपलब्ध्य के विषय में जो नीचे लिखी सम्मति डाक्टर होर्नली साहब की है, वह असत्य नहीं है; किन्तु बहुत ही संभवित है। उक्त डाक्टर साहब कहते हैं कि:—

"रावल समरसी का एक पुरानी संस्कृत प्रशस्ति में वर्णन है कि जो उनके राज्य शासन समय में लिखी गई होना विदित करती है और वह उनके आबूपर्वत पर के बनाये एक मंदिर के स्मरणार्थ लगाई गई है। इस प्रशस्ति का एच० एच० विलसन साहब कृत एक निरूपण और अनुवाद एशियाटिक रिसर्चेज़ पुस्तक १६ पृष्ठ २८४ तथा २६१ से २६८ तक अंक १० में प्रकाश हुआ है। उसके ४६ वें श्लोक में समरसी का तुरुष्कों को सेना के हाथ से गुर्जर देश को बचाना लिखा है। संभव है कि यह हवाला शहाबुद्दीन की गुजरात की निष्फल हुई चढ़ाई सन् ११७८ ई० का है, जब कि वह भीमदेव से पराजित हुआ था; कि जो उस समय अपने भाई गुजरात के राजा मूलराज के हाथ नीचे पाटवी कुँवर था (देखो फोर्बस साहब कृत रासमाला पुस्तक १, पृष्ठ २०५) और मालूम होता है कि उसने समर-सिंह के लिये बहुत ही पीछे का है। इसमें ठीक १०० वर्ष की भूल है; क्योंकि ई० सन् ११८५ उनके लिये बहुत ठीक होगा। संभव है कि प्रशस्ति का संवत् १२४२= ११८५ अवश्य होगा (देखो डाक्टर होर्नली साहब कृत पृथ्वीराज रासे का अंग्रेजी अनुवाद, भाग २, अंक १, पृष्ठ ३१, टिप्पणी १८७)।

२१ ग्रन्थकर्ता (कविराजजी) की प्रमाण में प्रवेश कियी हुई प्रशस्तियों में तो जो ऊपर कह आये, वह टंटा है, पर अब हम हमारे कहने को सिद्ध करने के लिये बिना टंटे के नीचे प्रमाण देते हैं:—

[क] मेनाल में समरसी का एक मन्दिर है, उसकी प्रशस्ति का सम्वत १२-२ है। उसमें समरसी और अर्णोराज की प्रशंसा है और पृथ्वीराज का भी उसमें वर्णन है। इसका नीचा लिखा प्रमाण कर्नैल टोड साहब कृत राजस्थान भाग २ के पृष्ठ ६८६ में हमारे पाठकों को नाम मात्र का भी परिश्रम न होकर प्राप्त हो सकता है:—

"समरसी के मन्दिर में हमको एक प्रशस्ति का जीर्ण टुकड़ा सम्वत् १२-२ का मिला। उसमें समरसी और अर्णोराज, देश के मालिक की प्रशंसा है और

और उसमें पृथ्वीराज का भी नाम है कि जिसने यवनों का नाश किया और वह सावंतसिंह के नाम पर अन्त हुई है।"

(ख) राजसमुद्र पर की बड़ी प्रशस्ति सम्वत् १७२९ के माघ शुदी १५ की जो मेवाड़ राज्य के आज्ञानुसार लगाई गई है उसमें नीचे लिखे श्लोक हैं कि जिसकी सत्यता पर अभी तक न तो ग्रन्थकर्ता ने और न किसी अन्य महाशय ने प्रश्न किया है:—

ततः समर सिंहाख्याः पृथ्वीराजस्य भूपते।
पृथाख्याया भगिन्यास्तु पतिरित्यति हार्दतः॥ २४॥
गौरी साहिवदीनेन गज्जनीशेन संगरं।
कुर्वतोऽखर्व गर्वस्य महा सामंत शोभिनः॥ २५॥
दिल्लीश्वरस्य चौहान नाथस्यास्य सहाय कृत्।
सद्वादश सहस्रैः स्ववीराणां सहितो रणे॥ २६॥

(ग) एक भीखा रासा नामक पुस्तक में समरसिंहजी का पृथ्वीराजजी के समय में होना और उनकी बहन पृथाबाई से विहाना और अपने साले की शहाबुद्दीन गोरी के साथ लड़ाई में सहायता देना लिखा है। मैंने इस ऐतिहासिक पुस्तक की बड़ी खोज की, परन्तु दुःख है कि मेरा परिश्रम सफल न हुआ। आश्चर्य है कि राजपूताने के चारण और भाट इस पुस्तक के होने से नटते हैं। पर मुझे स्मरण है कि मैंने यह पुस्तक सरजोन म्योर साहब के पास उनके भतीजे कर्नेल जे० डवल्यू० जे० म्योर साहब पोलीटीकैल एजेन्ट हाडोती और टोंक के कहने से झालावाड़ में एक भाट के पास से रु० १५) में मोल लेकर भेजी थी। मैंने जो कुछ समरसीजी के विषय में ऊपर लिखा है, वह उसमें पढ़ा था। मेरे इस पुस्तक के प्राप्त न होने के शोक में भाग्यबल से उसके नाम का नीचे लिखा हवाला राजसमुद्र का प्रशस्ति में मिल गया:—

बध्वा गोरिपतिं दैवात् स्वर्यातः सूर्य विम्ब भित्।
भीखारासा पुस्तकेस्य युद्धस्योक्तोस्ति विस्तरः॥

(घ) मेवाड़ में हरेक क्या बड़े और क्या छोटे, क्या धनवान और क्या निर्धन जानते हैं कि पृथाबाई महाराणा समरसिंहजी को वियाही थी और नीचे लिखी जातियें उनके साथ दहेज में आई:—

१– सनावड़ अथवा सनाढ्य ब्राह्मण

२– दैपुरा महाजन

३– राजोरा राव आदिक

इन घरानों की संतान अब तक उनके पुरुषाओं के मेवाड़ में बसने के कारण से जागीरें खाते हैं। यदि कोई उनके पृथाबाई के दहेज में आने के विषय में प्रश्न करै, तो वे उससे बुरा मानते हैं—वे इसको एक प्रतिष्ठा की बात समझते हैं। अतएव मैं इसको समरसिंहजी के पृथ्वीराजजी के समय में होने का एक सर्वसाधारण मान्य प्रमाण मानता हूँ।

(ङ) इसी तरह मैं कर्नेल टोड साहब के लिखने को ऐतिहासिक और प्राचीन शोध सम्बन्धी बातों में प्रमाण रूप मानता हूँ। वे समरसीजी का जन्म सं० १२०६ में लिखते हैं कि जो मेनाल की प्रशस्ति से मिलता हुआ है। वे समरसिंहजी का सविस्तर जीवन चरित्र लिखते हैं। यदि उनके मन में थोड़ासा भी संदेह हुआ होता और कोई टंटे रूपी बात उनको मिली होती तो वे सब प्रशस्तियों को उलटे बिना कभी संतुष्ट न हुवे होते। शोक है कि आज कर्नेल टोड राजपूताने की तवारीख लिने को नहीं है!

(च) मेरे कहने को पुष्टि करने वाला एक दूसरा प्रमाण कर्नेल टोड साहब के लेख का यह है कि जो वे अपनी निज वार्ताओं में पुस्तक २ के पृष्ठ ६८२ में ता० २१ फरवरी के दिन अपने वार्षिक पर्यटन के अवसर में खास मोके पर मेनाल में पहुँच और वहाँ के स्थानों को देखकर उनका वृत्तान्त लिखते हैं। उन्होंने जो संक्षिप्त वृत्तान्त पृथ्वीराजजी और समरसीजी के महलों का लिखा है, वह हम नीचे उद्धृत कर लिखते हैं। क्या यह समरसिंहजी के पृथ्वीराजी के समय में होने का प्रौढ प्रमाण नहीं है?

"कंदरा के शृङ्ग के ठीक किनारे पर एक दूसरे से सटे हुवे मंदिर और रहने के स्थानों का एक वृन्द झुक रहा है कि जो पृथ्वीराज के नाम को धारण

करता है। उसी के सामने की ओर वैसा ही एक वृन्द चित्तौड़ के समरसी के नाम से प्रसिद्ध है कि जो दिल्ली और अजमेर के चौहान बादशाह का बहनेऊ था और जिसकी स्त्री पृथाबाई को चंद ने उसके पति और भाई के साथ अमर की है। यहाँ, जहाँ कि उन दोनों के बीच में यह एक बड़ी कंदरा है, यह दोनों घरानों के राजपूत अपने इन अंतिम गढ़ों में अपने-अपने परिवार सहित मिलकर रहते थे और परम प्रीति पूर्वक अपने दिन व्यतीत करते थे कि जिससे उस समय की हिन्दुस्थान की पोलिटीकैल दशा निस्सन्देह बड़ी ही प्रौढ थी। यदि हम चंद की साक्षी पर विश्वास करें, और उसके न विश्वास करने के लिये हमें कोई कारण नहीं प्राप्त होता, कि जो पृथ्वीराज हिन्दुओं के यूलिसिस् की सलाहों को ध्यान देकर मानता तो मुसलमान हिन्दुस्थान के अधिपति न होते।"

२२ कविराजजी जयपुर, जोधपुर, बूँदी के राजाओं के सम्वतों में जो अन्तर पड़ता है, उसके विषय में बड़ा चाव करते हैं। परन्तु जो प्राचीन शोधन करने के अनुरागी विद्वान् लोग मेरे निगमन में कहे हुए प्रकार और सब वंश लिखने वालों की सम्मति को ग्रहण और अंगीकार करलें, तो यह बड़वा भाट और चारणों के सब लेखों में सौ वर्ष का एकसा अन्तर पड़ता है, उसका लेखा लग जावे।

२३ ग्रन्थकर्ता (कविराजजी) कहते हैं कि रासे में लेखक दोष अथवा किसी कवि के शोधन करने के दोष सम्बन्धी भूलें चार तर्कों से नहीं हो सकती। यद्यपि यह तर्क अयुक्त और झट खंडन हो सकने जैसी है, तथापि हम उनके सन्तोष के लिये उनकी नीचे विवेचना करते हैं:—

(क) यदि हम नीचे लिखे छन्दों में केवल तर्क के लिये मानली हुई उक्त भूलों को शुद्ध कर पढ़ें तो छन्द बिलकुल नहीं टूटता है—

जैसे इसको	जैसे यह पढ़ो
एकादश से पंच दह	दूवादश से पंच दह
संवत इक्क दस पंच अग्ग	संवत दुक्क दस पंच अग्ग
एकादश संवतह	दूवादस संवतह
ग्यारह से अठतीस भनि	बारह से अरु बीस भनि

बारह से अठतीसा मानं	बारह से अरु बीसा मानं
ग्यारह से चालीस	बारह से चालीस
ग्यारह से इक्यावनं	बारह से चालीसं इक्क
एकादश से सत्त	दूवादस से सत्त
अट्ठ पंचास अधिक तर	अट्ठ चालीस अधिक तर

(ख) यदि हम शिव और हर को लेखकों वा क्षेपक मिलाने वालों की भूलें होना मानें; किन्तु उनको परम प्रसिद्ध चंद कवि की नहीं मानें और उनके स्थान में रवि बारह के वाचक का लगादें तौ भी छंद नहीं टूटता है।

जैसे इसको	जैसे यह पढ़ो
संवत् हर चालीस	संवत् रवि चालीस
शाक सुविक्रम सत्त शिव	शाक सु विक्रम सत्त रवि

[ग] ग्रन्थकर्ता का यह कहना तो सत्य है कि रासे की सौ दो सौ वर्ष की और हाल की लिखी पुस्तकों में सं० ११०० सो का ही पाठ मिलता है; परन्तु सम्वत् का यह समानता और अविरोधता ग्रन्थकर्ता के रासे को जाली सिद्ध करने के तात्पर्य को सिद्ध नहीं कर सकती है। क्योंकि जैसे ग्यारह सौ का पाठ एक सा है, वैसे अंग्रेजी सम्प्रत शोधों के अनुसार अन्तर भी सौ वर्ष का एक सा ही है। सो जब कि हम पृथ्वीराजजी के समय की दो प्रशस्ति सम्वत् १२२० और १२२४ की शोधक विद्वानों को मिल जाना देख चुके हैं, तो फिर इन सवत् मिती की भूलों को किसी लेखक वा कवि वा संस्कार करने वाले के पल्ले लगाने में क्या हानि है ?

(घ) यदि पृथ्वीराजजी की जन्म पत्री में लिखे सवत् मिती आदि गणित करने से ठीक नहीं मिलैं, तो इससे यह सिद्ध नहीं हो सकता कि रासा जाला है। क्योंकि जब यह मान लिया गया है कि पृथ्वीराजजी का जन्म संवत् अशुद्ध है, तो उसी भूल से हम कुशलता पूर्वक ठीक २ विचार सकते हैं कि उनके जन्म दिन महीने, ग्रहस्थिति और इष्ट आदि में भी भूल होगी। क्योंकि जब प्रश्न ही अशुद्ध है तो फिर उसका उत्तर भी स्वतः वैसा ही होगा। इसमें पं० नारायण देवजी शास्त्री का कुछ दोष नहीं है। क्योंकि जब उनको अशुद्ध प्रश्न दिया गया है, तब उत्तर कैसे शुद्ध निकले, जो कदाचित् कविराजजी ने पंडितों से जन्म पत्री की भूलें शुद्ध करवाई होती तो यह अत्युत्तम हुआ होता।

२४ यह बड़े शोक की बात है कि ग्रन्थकर्ता (कविराजजी) इस बात की यह अड़ करते हैं कि चंद न तो सोमेश्वरदेवजी और न पृथ्वीराजजी का कविराज था, वरुक अपनी हिन्दी की मूल पुस्तक में इतना विशेष लिखते हैं कि चन्द वरदाई का होना भी केवल पृथ्वीराजरासे से ही प्रसिद्ध है—अतएव मैं लाचार होकर ग्रन्थकर्ता के जड़मूल सहित नष्ट करने वाली वृत्तान्त व्याख्या के विरुद्ध परम प्रसिद्ध आद्र-कवि सूरदासजी कृत दृष्ट कूट की टीका के नीचे लिखे अंतिम पद इस विषय के प्रमाण में प्रवेश करता हूँ। क्या यह पद यह बात सिद्ध नहीं करते कि चंद पृथ्वीराजजी का कविराज था?

पद

प्रथम ही प्रथ जगात में प्रगट अद्भुत रूप।
ब्रह्मराव विचारि ब्रह्मा राख नाम अनूप॥
पान पय देवी दियो सिव आदि सुर सुख पाय।
कह्यो दुर्गा पुत्र तेरो भयो अति अधिकाय॥

पारि पायन सुरन के सुर सहित अस्तुति कीन।
तासु वंस प्रसिद्ध में भौ चन्द चारु नवीन॥
भूप पृथ्वीराज दीन्हों तिन्हें ज्वाला देस।
तनय ताके चार कीन्हों प्रथम आप नरेस॥

दूसरे गुनचंद ता सुत सीलचन्द सरूप।
वीरचन्द प्रताप पूरन भयो अद्भुत रूप॥
रन्तभार हमीर भूपत सङ्ग खेलत आय।
तासु वंस अनूप भौ हरिचंद अति विख्याय॥

आगरे रही गोपचल में रही ता सुत वीर।
पुत्र जनमें सात ताके महाभट्ट गम्भीर॥
कृष्णचन्द उदारचन्द जु रूपचद सुभाइ।
बुद्धिचन्द प्रकाश चोथो चंद में सुख दाइ॥

देवचन्द प्रबाध संसृत चंद ताको नाम।
भयो सप्तो नाम सूरजचन्द मंद निकाम॥

सा समर करि स्याहि सेवक गए विधके लोक ।
रह्यो सूरजचन्द द्रगतें हीन भर वर सोक ॥
परो कूप पुकार काहू सुनीना संसार
सातऐं दिन आई जदुपति कीन आपु उधार ॥
दियौ चक्खै कही सिसु सुनु मांग वर जो चाइ ।
हों कही प्रभु भगति चाहत सत्रु नाम सु भाइ ॥
दूसरो ना रूप देखो देखि राधास्याम ।
सुनत करुना सिन्धु भाखो एव मस्तु सु धाम ॥
प्रबल दच्छिन विप्र कुलतें सत्रु ह्वै हैं नास ।
अखिन वुधि विचारि विद्या मान मानैं सास ॥
नाम राखे मोर सूरजदास सूर सुश्याम ।
भए अंतर धान बीते पाछलो निसि जाम ॥
मोहि पनसों रहे ब्रज की बसे सुख चित थाप ।
थापि गोसांई करी मेरी आठ मद्धे छाप ॥
विप्र प्रथ जगात को है भाव भूरि निकाम ।
सूर है नँद नन्द जूको लयो मोल गुलाम ॥

इसके सिवाय फ़ारसी और जम्मू की तवारीख भी इस बात की साक्षी देती है कि चंद हमारे हिन्दुओं के अंतिम बादशाह का परम प्रिय कविराज और सहचर था। यदि हम उन पुस्तकों का मूल उद्धृत कर के यहाँ प्रमाण में प्रवेश करें तो ग्रन्थ के बहुत बढ़ जाने का भय है। अतएव हम मेजर रैवर्टी साहब की एक टिप्पणी को उद्धृत कर प्रमाण में इस अभिप्राय से देते हैं कि हमारे पाठकों को इस विषय का अनुभव एक थोड़ी सी पंक्तियों से ही हो जाय। नीचे लिखी थोड़ी सी पंक्तियों केवल यही नहीं सिद्ध करती हैं कि चंद कवि पृथ्वीराजजी के समय में हुआ था, परन्तु रासे में लिखे कतिपय और वृत्तान्त भी कुछ फेरफार के साथ सिद्ध करती हैं।

(मेजर रेवर्टी साहब कृत तबकात नासरी पृष्ठ ४८६)

"हिन्दु लोग एक भिन्न वृत्तान्त लिखते हैं कि उसी को अब्बुलफज़ल ने और जम्मू की तवारीख वाले ने भी थोड़े से फरक के साथ वर्णन किया है।

यद्यपि फ़ारसी इतिहासवेत्ता लिखते हैं कि राय पिथोरा तलावरी (तराई) पर लड़ाई में मारा गया और मुईज़ुद्दीन दमयक में एक खोखर के हाथ से मारा गया कि जो इसी काम के लिये उतारू हो रहा था, और ऐसे ही वृत्तान्त का अवलंब तबक़ात अकबरी और फरिश्ता के ग्रंथकर्ताओं ने किया है; तथापि हिन्दू भाटों के मुख ज़बानी वर्णन से, कि जो प्रत्येक नामांकित साखे की ख्यातों के भंडार हैं और जो पीढ़ियों तक कंठस्थ वृत्तान्त एक दूसरे को उपदेश करते आये हैं, यह वर्णन किया गया है कि राय पिथोरा के लड़ाई में कैद हो जाने और गज़नी को ले गये। पीछे एक चंद जिसे कोई चाँदा कर के भी लिखते हैं कि जो राय पिथोरा का स्तुतिपाठक और विश्वासी सहचर था, कोई ग्रन्थकर्ता उसे राय पिथोरा का कविराज करके भी लिखते हैं, वह अपने अच्छे प्रयत्नों के बल से प्रवन्ध कर सुलतान मुइज़ुद्दीन का सेवा में प्राप्त हुआ और बंदीगृह में राय पिथोरा के साथ बातचीत करने में भी सफल हुआ। यह दोनों किसी एक युक्ति पर सम्मत हुवे और एक दिन चंदा ने अपने छल-बल के द्वारा सुलतान के मन में राय पिथोरा की बाण विद्या में परम कुशलता देखने की नितान्त इच्छा उत्पन्न की और उसको चन्दा ने इतनी सराही की सुलतान का मन उसे देखे बिना न रहने लगा। निदान बंधुआ राजा सम्मुख लाया गया और उससे उसकी बाण विद्या की परम कुशलता दिखाने की विनती की गई। उसके हाथ में एक धनुष और बाण दिये गये। उसने अपनी स्वीकृत युक्ति के अनुसार जो निशाना सुलतान ने नियत कराया था उसे छोड़कर खास सुलतान के ही बाण मारा कि वह वहीं मर गया और सुलतान के पास वालों ने राय पिथोरा और चंदा को काटकर टुकड़े २ कर डाले।

जम्मू की तवारीख वाला लिखता है कि राय पिथोरा अंधा कर (देखो टिप्पण १, पृष्ठ ४६६) दिया गया था और जब वह बंदीगृह से बाहर लाया गया और उसके निज धनुष और बाण उसे दिये गये। यद्यपि वह अंधा था, तथापि उसने बाण चढ़ाकर और साधकर सुलतान के शब्द के अनुसंधान और चन्दा की सूचना के अनुसार सीधा ऐसा मारा कि वह सुलतान के जाकर लगा। बाक़ी का वृत्तान्त तदनुसार ही है।

२५ ग्रन्थकर्ता कविराजजी ने लिखा है कि जिस समय उदयसिंहजी मारवाड़ वाले अकबर के दरबार में रहते थे, उस समय में मारवाड़ के कवियों का दिल्ली में अधिक आना-जाना होने लगा और कितनेक हिन्दी के प्रसिद्ध कवि जैसे तुलसीदास, केशवदास, सूरदास, ईश्वरदास, बारठलक्खा और नरहरदास आदि-को ने उन्नति पाई। ग्रन्थकर्ता इन सब कवियों को बड़े २ कवि होने का जो एकसा विशेषण देते हैं, हम उससे असम्मत हैं; क्योंकि सूरदासजी, तुलसीदासजी और बारेटलक्खा एवं नरहरदास के काव्य-रचन विषयिक गुण-शक्ति में बड़ा अन्तर है। हमको आशा है कि यह नीचे लिखा दोहा ग्रन्थकर्ता के जानने में होगा:—

दोहा

सूर सूर्ज तुलसी ससी, उडगन केसोदास।
और कवि खज्जोत सम, जहँ-तहँ करत प्रकास॥

इसके सिवाय ग्रन्थकर्ता (कविराजजी) के कहने के अनुसार यह सब कवि एक समय में ही उन्नति को प्राप्त नहीं हुवे थे। अतएव अब हम सूरदासजी का समय केवल उदाहरण के लिये निर्णय करते हैं श्रीमद्वल्लभसम्प्रदाय के ग्रन्थों से स्फुट है कि श्रीमद्वल्लभाचार्यजी का व्रज में प्रथम हा प्रथम सं० १५४८। ४६ में श्रीनाथजी को गिरिराज पर्वत पर प्रकट करने के लिये पधारना हुवा। वे मथुरा को आते समय गौ घाट पर ठहरे कि जो मथुरा और आगरे के बीच में है। वहाँ सूरदासजी का आश्रम था। अब तक वे बहुत से शिष्य कर चुके थे और उनके महा-आर्द्र कवि होने का यश भरत खंड भर में सर्वत्र प्रसिद्ध था। इस स्थान पर दोनों गोस्वामियों की भेंट हुई और सूरदासजी अपने शिष्य वर्ग सहित श्रीवल्लभाचार्यजी के शिष्य हुए। तदनन्तर वे सूरदासजी को अपने साथ गिरिराज ले गये और श्रीनाथजी का प्रागट्य करके उन्होंने सूरदासजी को अष्ट-छाप अर्थात् अष्ट आर्द्र कवियों में मुख्य नियत किये। इसके थोड़े दिन पीछे श्री वल्लभाचार्यजी का सं० १५८७ में लीला विस्तारना हुवा और उनके थोड़े समय पीछे यह महा आर्द्र-कवि भी श्री कृष्ण की नित्य लीला में पधार गये। अब यह लक्ष करने लायक बात है कि सूरदासजी औरों सदृश शुष्क कवि तो थे ही नहीं; किन्तु महा आर्द्र-कवि थे और वे गायन विद्या के गुण की एक अनूठी शक्ति सम्पन्न साधु पुरुष थे। जिस समय में श्रीवल्लभाचार्यजी से मिले उस समय उनकी वय ५०

पचास वर्ष के लगभग अवश्य होगी और जो उसमें ५० पचास वर्ष और भी जोड़ दें तो भी ग्रन्थकर्ता का प्रतिज्ञा किया हुवा समय सं० १६३६ का अशुद्ध है । इस तरह जब कि यह स्पष्ट है कि सूरदासजी सं० १६०० के पहिले ही हुवे, तो ग्रन्थकर्ता (कविराजजी) का हिन्दी के कवियों के काव्यों में फ़ारसी शब्दों के प्रयोग होने के विषय में प्रतिज्ञा कर कहना भी असत्य है। हमारे पाठकों को सूरदासजी के नीचे लिखे पदों की परीक्षा कर देखने से तुरन्त ज्ञात होगा कि ग्रन्थकर्ता (कविराजजी) के प्रतिज्ञा किये स० १६३६ के पूर्व ही हिन्दी भाषा के काव्यों में कितने फ़ारसी शब्द प्रयोग होते थे अर्थात् फ़ारसी शब्दों का प्रयोग सं० १६३६ से पहिले ही होने लग गया था:—

राग भैरव

चलना रे प्रभु के दरबार, कालबली ठाड़ो चोबदार ।
इह हजूर में याद तिहार, चलने की कछु करो तयार ॥
जिससें हुरमत रहै तुमार, ऐसी करनी कर ले यार ।
जिसको खांविंद पकड़ बुलावै. जतन कर कछु बन नहीं आवै ॥
बिन मरज़ी कोई रहन न पावै, क्या गरीब क्या साह कहावै ।
जब जम आवै कछुन बसावै, छिन में बांध पकर ले जावै ॥
तब तौ तू कहू कौन छुडावै, ढिग बैठा कलपै कलपावै ।
मोजूदात की तयारी कीजै, दरसन तलब बेग चल लीजै ॥
जो खांविंद तोहि देख पसीजै, कंठ लगाय रंग में भीजै ।
करनी का कर कमर कटारा, सील सिपर तप तेग़ तुमारा ॥
धरे तोष कर ध्यान पियारा, ज्ञान घोड़ हूजै असवारा ।
जो तू ऐसा होय चलैगा, मालिक मन में बहुत खिलैगा ॥
काम क्रोध मद लोभ मोह मद, यह संसार सपन दहैगा ।
निसबासर हरि नाम उचार के रसना जपले परम पद लहैगा ॥
सूरदास सुख जो तू चाहे, गोविन्द के गुण ज्यो तू गावै ।
पतित सुधार बिरद कहावै, चरण शरण नति ध्यावै ॥१५॥

२६ ग्रन्थकर्ता (कविराजजी) की पृथ्वीराज रासे के जाली सिद्ध करने में बड़ी बलवान तर्कों में से एक यह है कि रासे में दस भाग में एक भाग के फ़ारसी

शब्द हैं। उनकी इस प्रतिज्ञा की परीक्षा करने के लिये हमने डाक्टर हौर्नली साहब के मुद्रित किये हुवे रासे के देवगिरि समय के सब शब्द गिनें तो सब समय के २६७३ शब्दों में नीचे लिखे मीरबंदा, सुरतान, सिलह, गज्जनेश, गोरी, साहिबखां, हुसैन, दरवार और फ़रमान जैसे ३० शब्दों के लगभग मिले। अब देखना चाहिये कि ३० का २६७३ में १:६६-१ वां भाग-जो बहुत ही अल्प है। इस गणना से हमारे पाठक ग्रन्थकर्ता (कविराजजी) के तर्क का मूल्य जाँच लेंगे। इसके सिवाय हम उनसे पूछते हैं कि इन शब्दों के स्थान में चंद को कौन से शब्द प्रयोग करने योग्य थे ?

२७ ग्रन्थकर्ता (कविराजजी) नें नीचे लिखे छंदों के प्रमाण पर अनुमान करके रासे का जाली वनाना संवत् १६४० से १६७० के वीच में ठहराया है:—

कलंकिया राय केदार।
पापियां राय प्रयाग॥
हत्यारां राय वाणारसी।
मदवान राय राजानरी गंग॥
सुलतान ग्रहण मोखन।
सुलतान मान मलन॥

उनका यह कहना कि इन छन्दों में राणा संग्रामसिंहजी का उपलक्ष्य अर्थात् हवाला है और पृथ्वीराजजी के समय के रावल समरसीजी का नहीं है—यह अनुमान एक अत्यन्ताभाव का किया हुआ और कवि के निज अर्थ के बिलकुल विरुद्ध है:—क्योंकि भला कवि समरसीजी की प्रशंसा करते हुए सांगाजी की प्रशंसा क्यों करता—कि जो कई शतक पीछे उत्पन्न हुवे थे। मुझको आश्चर्य है कि इन छन्दों में हमारे विद्वान् गुणदोपान्वेषी को ऐसी क्या वात दीखी कि जिससे उन्होंने सहसा सिद्धान्त का करना यथार्थ समझ लिया और रासे को सौलहवें शतक का जाली होना सिद्ध किया। देखो, सब साक्षी के विरुद्ध पक्ष में होने की विद्यमानता में छन्दों के स्पष्टार्थ की विद्यमानता में, जिसमें भी एक वह अर्थ कि जो छन्दों के ऊपरि भाग पर स्थित है—समय और स्थान के अविरोध की विद्यमानता में वे (कविराजजी) इतने धैर्य से अपनी कल्पना के एक बड़े अति—प्रयत्न के द्वारा उक्त छन्दों के उपलक्ष्य अर्थात् हवाले का विपरीतार्थ अमर-रासे को जाली सिद्ध

करने लिये करते हैं। राजपूताने के राव भाट और चारणादि जो हमारे गुण-दोषान्वेषी ग्रन्थकर्ता के सदृश नहीं हैं, वे कोई यथार्थ तर्क इस बात की नहीं देखते कि यह छन्द जो वास्तव में रावल समरसीजी की प्रशंसा में निर्माण किये गये हैं, वे राणा संग्रामसिंहजी पर क्यों घटाये जावें ? यदि हम यह भी मानलें कि कविराजजी का अर्थ सत्य है, तथापि उनकी तर्क का हेत्वाभास हमको चमत्कृत करता है—क्योंकि यह छन्द किसी पीछे के कवि की लेखनी से लिखे गये कहे जा सकते हैं, परन्तु तब भी वे पृथ्वीराज रासे की अकृत्रिमता ही सिद्ध करते हैं।

अब नीचे लिखे दोहे के विषय में कि जिसमें भविष्यवाणी कही गई है, ग्रन्थकर्ता की तर्क में सत्याभास का एक आडम्बर है। प्रथमतः इस दोहे[1] का अर्थ व्याकरण के अनुसार एक साधारण दृष्टि देनेवाले के निकट स्पष्ट है कि उसमें एक भविष्य बात कही है। यह हो सकता है कि कोई कवि अत्याभिलाप और अत्यानुराग से उत्तापित् होकर कभी-कभी कोई असंगत वाक्य रचना भी कर देता है। यह जो झगड़ा हमारे सम्मुख है, उसमें हम इस भविष्योक्ति को मिथ्या करके उसका तिरस्कार कर सकते हैं; क्योंकि उसकी कविता में चंद की कविता का सा लावण्य और लालित्य नहीं पाया जाना स्वतः सिद्ध है। दूसरे कविराजजी का न्याय शास्त्र सम्बन्धी अनुमान हमको आश्चर्य कराता है; वे कहते हैं कि "कवि यह एक भविष्य बात कहता है कि चित्तौड़ के राजा दिल्ली विजय करेंगे। अतएव स्पष्ट सिद्ध है कि यह दोहा और इसलिये रासा सम्वत् १६७७ के पहिले किसी समय बना है।" ग्रन्थकर्ता (कविराजजी) का यह कहना हमारी समझ और यथार्थ तर्क के नियमों को गँवाता है—कैसे यदि किसी वस्तु का एक भाग अशुद्ध है, तो वह सब की सब अशुद्ध है-ग्रन्थकर्ता के दृढ़ निश्चय करने का प्रकार विदित करता है कि वे एक भाग का सम्पूर्ण के बराबर होना मानते हैं, यह विचारण के इतिहास में एक अद्भुत अपूर्व तर्क है, अब ग्रन्थकर्ता के माने हुवे सिद्धान्त के अनुसार हमको यह विचार करना सीखना चाहिये कि शाही रुपिये अर्थात् कलदार रुपये में कुछ कांसा है

---

१. दोहा—सोरह से सत्तोतरे विक्रम साक वदीत।
दिल्ली धर चित्तोडपत, ले खग्गां बल जीत ॥ १ ॥

अतएव वह सब रुपिया कांसे का है। परम विद्वान् डाक्टर राजेन्द्रलालजी मित्र कृत उड़ीसा के प्राचीन शोधों के पुस्तकों में के एक अथवा दो वाक्य खंड अशुद्ध हैं। अतएव सब पुस्तक—नहीं जी वे दोनों पुस्तक बिल्कुल अशुद्ध हैं। जबकि हमारे ग्रंथकर्ता (कविराजजी) इस भविष्य कहने वाले दोहे में चित्तौड़ शब्द होने के कारण अपनी प्रसन्नता के अनुसार अपना तात्पर्य निकालते हैं, तो फिर कोई मेवाती टोड़ साहब वाली पुस्तक में चित्तौड़ के स्थान में मेवात शब्द होने के कारण अपना एक भिन्न तात्पर्य क्यों नहीं निकाल सकता है। इसी तरह गुजरात देशान्तर्गत, कच्छ राज्य भी नीचे लिखी भविष्यवाणियों के छंद उस देश में उपलब्ध होने वाले पृथ्वीराज रासे में होने के आधार से वर्तमान समय के बड़े २ अनुभवी और प्रमाण रूप विद्वान् शोधकों के सन्मुख अपनी प्रसन्नता पूर्वक यह दावा करके डिग्री प्राप्त कर सकता है कि रासे को उसके पुत्र चारणों ने संवत् १६४२ में कृत्रिम बनाया है:—

(१) छंद

कच्छ ही देश सिन्धु समध्य, चत्रसेन इक पर्वत सनध्य।
संवत् अठार ओगनीस सोई, कल्पांत इक संग्राम होइ॥
पासेर भार सव्वा प्रमान, तरहे पपान चहुआन रान।
संवत् अठार छत्तीस जान, कच्छ ही सिन्धु डोलत निधान।
पर सिंधु बंध कारन प्रमान, इह सुनहि वात चहुआन रान॥
कच्छ ही देश भूपाल होई, शूद्रहि कर्म करि होत कोइ।
षट दरस तास न माने अज्ञान, गोहत्या वहोत करिहे निधान॥
संवत् अठार इकताल सोइ, अद्भुत भयंकर काल होई।
आगे सुकाल केते सराहे, इकता० समो कोर काल नाहे॥
सतताल वरस कारन सकोई, कच्छ देश भूप पृथिराज होइ।
राजान राज करिहे निधान, इह सुनहि वात चहुआन रान॥

---

१. देखो आत्माराम केशवजी द्विवेदी कृत पृथ्वीराज चौहान गुजराती भाषा में द्वितीय बार संवत् १६४१=ई० १८८४ का छपा पृष्ठ १२६।

एकीस बरस इक पुत्र होय, तपवंत ताहि नवघनति कोइ।
नवघनह सुत षंगार होय, संग्राम मध्य मृत्यु काल होइ ॥
बरसहि तास आयस प्रमान; पच्चास इक होइ गे निदान।
पंगार राज भूपाल होइ, संवत तास ओगनीस सोइ ॥
वेहंताल इक अतिकाल होइ,.........................।
गढ रयन भूप संग्राम जान, तास पुत्र इक लखपत प्रमान।
परधान इक त्रिवंध होइ, जगवीर नाम बाको सकोइ ॥
नवधना सुत खंगार होइ, लखधीर संग ए मंत्र होइ।
सिधहि राज करि हेति कोइ, साम्रथवंत भूपाल होइ ॥

२८ ग्रंथकर्ता (कविराजजी) पृथ्वीराजरासे के जाली होने के प्रमाण में कहते हैं कि उसमें लिखे संवत्, मिति, कथा, और मनुष्यों के नाम फ़ारसी तवारीखों में नहीं मिलते। परन्तु यह कैसे ज्ञात हुआ कि इन फ़ारसी तवारीखों में लिखे सब वृत्त बिलकुल सही हैं? क्या उनमें कुछ भूल नहीं है? क्या उनके ग्रन्थकर्ता कहीं नहीं भूले हैं? यदि उनमें सत्य और असत्य दोनों का मेल है, तो फिर वे यह कैसे सिद्ध कर सकते हैं कि पृथ्वीराजरासा एक निरा जाली ग्रंथ ही है? ऐसा एक विचित्र सिद्धान्त कर लेने पहिले हमारे ग्रंथकर्ता (कविराज) को योग्य था कि वे प्रथम पृथ्वीराज रासे में लिखे हुए मनुष्यों के नाम और कथा और अन्य सब बातों का भले प्रकार प्रयत्न कर पता लगाते कि जैसे मेरे मान्यवर शिक्षक डाक्टर होर्नली साहब बड़ा ही परिश्रम कर कितने ही नामादि के पता लगाने में सफल हुए हैं। अब हम उक्त डाक्टर साहब के लगाये हुवे थोड़े से; किन्तु बड़े उपयोगी पतों को हमारे पाठकों और उन विद्वानों के विचारार्थ प्रमाण में प्रवेश करते हैं कि जो कविराजजी के आक्षेप और मेरी इस संरक्षा का न्याय करने को सुशोभित होंगे। उक्त डाक्टर साहब ने जो कुछ लिखा है, यदि उसका अनुवाद यहाँ पर लिखा जावे, तो बहुत स्थान चाहिये। अतएव हम उनके लेख में से उपयोगी वचनों का अनुवाद करके नीचे लिखते हैं और जिन पाठकों को उनका लिखा पूरा-पूरा पढ़ना आवश्यक हो, वह मेरी रचित अंग्रेजी भाषा की संरक्षा में पढ़ लेवें:—

१ हिन्दूखां—यह ख्वारज्म शाहियाह वंश का था; मलिकशाह का बड़ा बेटा ख्वारज्म और खुरासान के सुलतान तक़िश का पोता था इसका कुछ हाल तबक़ात नासरी में लिखा है (देखो मेजर रेवर्टी साहब कृत तबक़ात नासरी २५१और २५६।

२ वजीरीखां=यह वजीरखां वजीरिस्तान का रहनेवाला मलिक असाद उद्दीन शेर मलिक वजीरो था कि जिसका नाम शहावुद्दीन के सरदारों की फैरिस्त में लिखा है (देखो मेजर रेवर्टी साहब कृत तवकात नासरी पृष्ठ ४६१ ।

३ साहिजादा और महमूद=शहावुद्दीन के बड़े भाई गिआजुद्दीन का बेटा महमूद कि जिसको उसके बाप के मरने पर बस्त, इसफिज़ार और फराह के इलाकों का मालिक किया था । (देखो उक्त तवक़ात नासरी पृष्ठ २५८, ३८६, ३६४, ३६६, ४६०, ५१६, और ५२३)

४ खिलचीखां=खळजी गयाजुद्दीन इवज़ नामक शहावुद्दीन के बड़े सामंतों अर्थात् जनैलों में था कि जो पीछे लखनावती का सुलतान हुआ था (देखो तबकात पृष्ठ ४८६ और ५८०) अथवा एक दूसरा खळजी महम्मद नामक महमूद का बेटा शहावुद्दीन की सेवामें था कि जिसका पृथ्वीराज की आखिरी लड़ाई में होना स्पष्ट लिखा है (देखो तवकात पृष्ठ ५४६)

५ तातार मारूफ=मुसलमानी इतिहासों के अनुसार उस समय के साखों में कुतुवुद्दीन ईवक नामक शहावुद्दीन का प्रसिद्ध सामंत खलजियों के साथ बराबर समोप सम्बन्ध में वर्णन किया गया है । देखो तवकात ४८६ और ५५१ पृष्ठ) कुतुवुद्दीन तातार शाखा का एक तुर्क था । यह नाम उसकी पदवी का नाम है । ईवक उर्फी नाम है । अतएव मारूफ उसका निज नाम होगा । मुसलमानी इतिहास वेत्ताओं के अनुसार शहावुद्दीन के सामंतों में मुख्य सामंत 'कुतुवुद्दीन था और चंद के लेखानुसार मारूफ खां ।

६ हव्वास खां, हव्वासी हुजाव=अमीर-इ-हाजिव, हुसैन-इ-मुहम्मद हसन नामक तवकात की फेहरिस्त में लिखा है (देखो पृष्ठ ४६१) कोई २ लिखित पुस्तकों में हसन के स्थान में हवाशी लिखा है ।

७ हजरती और सजरती खां=मलिक इख्तियार-उद्दीन खरवार और मीर-इ-हाजिव हुसैन इ सुर्ख नामक तवकात की फैरिस्त में लिखे हैं (पृ० ४६१) खरवर और सुर्ख के अनेक पाठांतर होते होते इन हिन्दी नामों से मिलते हुए हो गये हैं और इसमें कुछ सन्देह नहीं है कि फ़ारसी पाठ बहुत खराब है ।

८ हुसैन खां—इसको चन्द ने सुलतान शहाबुद्दीन की परम प्यारी बड़ी स्वरूपवती पासवान चित्र रेखा नामक का भगा लाने वाला और उसकी सविस्तर कथा लिखी है सो यह नासीर-उद्दीन-हसन नामक था! इसके चलन के विषय में तबक़ात नासरी में यह लिखा है कि "वह युवा स्त्रियों और कुँवारी कन्याओं का बड़ा कामी था और वह सुलतान के रणवास में से अनेक सहेलियों और दासियों को ले भगा था," (देखो तबक़ात पृष्ठ ३६४)।

२६ ग्रन्थकर्ता (कविराजजी) अपने लेख के अन्त में मिस्टर वी० ए० स्मिथ साहब के इस कहने से सम्मत होते हैं कि "रासा जैसा आज विद्यमान है, वह मार्ग भुलाने वाला और इतिहास वेत्ताओं के कार्य के लिये निष्फल है।" परन्तु यह बात बड़े शोक और आश्चर्य की है कि ग्रन्थकर्ता (कविराजजी) जिनका अपने लेख कोसोसाइटी के जर्नल में प्रकाश करने से यह अभिप्राय था कि सर्वसाधारण लोग जो आज तक मिथ्या विश्वास करते हैं उनको सचेत करें कि रासा चन्द अथवा उस समय के किसी अन्य कवि का बनाया हुआ नहीं है । उन्होंने न जाने कैसे अपने सम्मत हुवे वचन पर का उस एशियाटिक सोसाइटी के एडिटर की नीचे लिखी टिप्पणी को छिपाकर पाठकों को भ्रमाया है:—

"चन्द कृत महाकाव्य अभी तक ऐसा बिलकुल सिद्ध नहीं हुआ है कि यह पाटी-माँजने वाला वचन समर्थन हो सके।"

क्या इस टिप्पणी का मूल वचन के साथ नहीं लिखना सोसाईटी के जर्नल के जो ग्राहक नहीं हैं, उनके चित्त पर एक मिथ्या विश्वास अंकित नहीं करता और जबकि उनको सत्य विदित होगा, तब क्या वे यह नहीं समझेंगे कि ग्रन्थकर्ता की सम्मति और विचार पक्षपात सहित हैं ?

निगमन

३० अब मैं पृथ्वीराज रासे के विषय में अपने विचार अनुमान और सिद्धान्तों को प्राचीन विद्याओं के परिज्ञाता विद्वानों के मनन करने के लिये प्रकाश करता हूँ।

(क) विद्यमान पृथ्वीराज रासा दिल्ली और अजमेर के अंतिम चौहान बादशाह पृथ्वीराज जी के कविराज चंद बरदाई का बनाया हुआ है।

(ख) मैं मिस्टर जौन बिम्स साहब मिस्टर एफ० एस० ग्राऊज सा० सी० एस० एम० ए० और डाक्टर होर्नली साहब एल०एल०डी० आदि जैसे प्राचीन विषयों के शोधक और ज्ञाता विद्वानों से इस बात में सम्मत हूँ कि रासा बारहवें शतक का बना है।

(ग) इसमें कुछ संदेह नहीं है कि यह रासा बहुत सी क्षेपक वृद्धि और परिवर्तन से भ्रष्ट हुआ है। मेरे मान्यवर शिक्षक डाक्टर ए०एफ०आर० होर्नली साहब की जो यह उक्ति है कि इस रासे के आज तक तीन बार भिन्न २ संस्कार हुवे हैं, वह मेरे ध्यान में बहुत ही सत्य प्रतीत होती है और मैं उक्त डाक्टर साहब से बिलकुल सम्मत हूँ। क्योंकि मैंने मेरे पंदरह वर्ष के लगभग राजपूताने के कई एक राज्यों में रहने के समय में इस बात का अन्वेषण किया तो मुझे मालूम हुवा कि चारण कवियों और राव-भाट बड़वा आदिकों में कई एक पीढ़ियों से अनबन है। कोई २ समय मुझे इन लोगों के प्रबल विवाद देखने का भी अवसर मिला है कि जिसमें इन्होंने एक दूसरे को निन्दा और दोष प्रकाश किये हैं। मैंने चारण कवियों में असूयावालों के नाम सुने हैं कि जिनको राव लोग रासे में क्षेपक मिलाने के दोष लगाते हैं और चारणों के पक्ष में भी मुझे न्याय रीत्या कहना आवश्यक है कि रावादि ने भी उसके बदले में इन लोगों के ग्रन्थ नष्ट-भ्रष्ट कर दिये हैं। चारण कवियों में जो लोग हमारे ग्रंथकर्ता की अपेक्षा अधिक विद्वान् धनवान और मान्यवर हैं उनकी सम्मति ग्रंथकर्ता की सो नहीं है कि यह रासा जो चंदकृत करके प्रसिद्ध है वह पंदरहवीं अथवा सोलहवीं सदी में बना जाली है। परन्तु उनकी सम्मति संप्रतकाल के प्राचीन विद्या के शोधक विद्वानों से मिलती हुई है कि वर्तमान पृथ्वीराज रासा क्षेपक अंग से बहुत भ्रष्ट हो गया है।

२१ भाट और बड़वा लोग जो संवत् अपने लेखों में लिखते हैं, उसमें और शास्त्रीय संवतों में सौ १०० वर्ष का अंतर है। अब मैं यह विदित करूँगा कि मैं किस तरह इन बड़वा भाटों के संवत से परिज्ञात हुआ। पृथ्वीराजरासे को बनारस में डाक्टर होर्नली साहब के पास देखे पीछे, मैं कुछ समय तक उसकी भाषा की अप्रशंसा ही नहीं करता रहा, वरुक उसको तुच्छ समझ कर अनादर करता था। जब से मैं राजपूताने आया, मैंने इस ग्रन्थ को यहाँ के

सब राजा और उमराव सरदारों को बड़े मान और प्रेम के साथ पढ़ते और सुनते देखा। यहाँ रहने के कुछ दिनों तक भी मैं इस ग्रन्थ को अपसन्द करता था और हमारे प्रिय मित्र ग्रन्थकर्ता कविराजजी की सी दृष्टि से ही देखता था। इस ग्रन्थ को राजपूताने में सर्व प्रिय और सर्व मान्य देखकर मुझे भी उसके क्रमशः पढ़ने और उसकी उत्तमता की परीक्षा करने की उत्कंठा हुई। जब कि मैं कोटे में था, मैंने उसका थोड़ा सा भाग उस राज्य के उन प्रसिद्ध कविराज चंडीदानजी से पढ़ा कि जिनके बराबर आज भी कोई चारण संस्कृत भाषा का विद्वान् नहीं है। उसके पढ़ते ही मेरे अन्तःकरण में एक नया प्रकाश हुआ और रासा मेरे मन के आकर्षण का केन्द्र हुआ और मेरे मन के सब सन्देह मिट गये। तदनन्तर बूँदी और अन्य स्थलों के चारण और भाट कवियों के आगे उसमें लिखे सम्वतों के विषय में उन कविराजजी से मेरा एक बड़ा वाद हुआ। उसका सारांश यह हुआ कि चंडीदानजी ने सप्रमाण यह सिद्ध किया कि जब विक्रम सम्वत् प्रारम्भ हुआ था, तब वह सम्वत् नहीं कहलाता था; किन्तु शक कहाता था। परन्तु जब शालिवाहन ने विक्रम को बँधुआ करके मार डाला और अपना सम्वत् चलाना और स्थापन करना चाहा, तब सर्व साधारण प्रजा में बड़ा कोलाहल हुआ। शालिवाहन ने अपने सम्वत् के चलाने का दृढ प्रयत्न किया, परन्तु जब उसने यह देखा कि विक्रम के शक को बन्द कर मेरा शक नहीं चलेगा; क्योंकि प्रजा उसका पक्ष नहीं छोड़ती और विक्रम को वचन भी दे दिया है, अर्थात् जब विक्रम बन्दीगृह में था, तब उससे कहा गया था कि जो तू चाहता हो, वह माँग कि उसने यह याचना कियी कि मेरा शक सर्व साधारण प्रजा के व्यवहार में से बंद न किया जावे। यह बात ग्लैड्विन्स साहब की अनुवादित आईन अकबरी में भी यों लिखी है:—

यह प्रसिद्ध है कि "कौमार शालिवाहन नामक ने विक्रमादित्य पर चढ़ाई करी और उसे युद्ध में पकड़ लैने पीछे, उसने पूछा कि तू जो चाहता हो वह मांग? विक्रम ने उत्तर दिया "कि मेरी केवल यही वांछा है कि मेरा शक सर्व साधारणों के सब व्यवहारों में से बंद न किया जावे।" शालिवाहन ने उसकी याचना अंगीकार करली परन्तु उसी अपने राज्याभिषेक के समय से अपना एक पृथक् शक चलाया।"

तदनन्तर शालिवाहन ने आज्ञा कियी कि उसका संवत् तो "शक" करके और विक्रम का "संवत्" कर के व्यवहार में प्रचलित रहे। पंडित और ज्योतिपियों ने तो जो आज्ञा दी गई थी उसे स्वीकार कियी। परन्तु विक्रम के याचकों अर्थात् आज जो चारण भाट राव और बड़वा आदि नाम से प्रसिद्ध हैं, उनके पुरुषाओं ने इस बात को अस्वीकार कर विक्रम की मृत्यु के दिन से अपना एक पृथक् विक्रम शक माना। इन दोनों सम्वतों में सौ १०० वर्षों का अन्तर है। शालिवाहन के शक और शास्त्रीय विक्रमी सम्वत् में १३५ वर्षों का अन्तर है। इन दोनों के अन्तरों में जो अन्तर है, उसका कारण यह है कि भाट और वंशावली लिखने वालों ने विक्रमी की सब वय केवल १०० सौ वर्ष की ही मानी है। यह लोग नहीं मानते कि विक्रम ने १३५ वर्ष राज्य किया और न उसके राजगद्दी पर बैठने के पहिले भी कुछ वय का होना, जो सम्भव है, वह मानते हैं। इस प्रकार विक्रम के उस समय के दो सम्वत् प्रारम्भ हुए, उनमें से जो पंडित और ज्योतिपियों ने स्वीकार किया, वह "शास्त्रीय विक्रमी सम्वत्" कहलाया और दूसरा जो भाटों और वंश लिखने वालों ने माना वह "भाटों का-सम्वत्" करके कहलाया। आदि में ही इस तरह मतान्तर हो गया और दो थोक इतने शीघ्र उत्पन्न हो गये। भाटों ने अपने शक का प्रयोग अपने लेखों में किया। यह भाटों का शक दिल्ली और अजमेर के अन्तिम चौहान बादशाह के राज्य समय तक कुछ अच्छा प्रचार को प्राप्त रहा और उसका शास्त्रीय विक्रमी सम्वत् से जो अन्तर है, उसका कारण भी उस समय तक कुछ लोगों को परिज्ञात रहा। तदनन्तर इसका प्रचार तो प्रतिदिन घटता गया और शास्त्रीय विक्रमी सम्वत् का ऐसा बढ़ता गया कि आज इसका नाम सुनते ही लोग आश्चर्यसा करते हैं। इस भाटों के शक का दूसरे राजपूतों के इतिहासों में प्रयोग होने की अपेक्षा चौहान शाखा के राजपुतों में अधिक प्रयोग होना देखने में आता है। यदि हम रासे में लिखे सम्वतों की भाटों के विक्रमी शक के नियमानुसार परीक्षा करें तो सौ १०० वर्ष के एक से अन्तर के हिसाब से वह शास्त्रीय विक्रमी सम्वत् से बराबर मिल जाते हैं और जो हम रासे के बनने के पहिले और पिछले सम्वतों को भी इसी प्रकार से जांचै तो हम हमारी उक्ति की सत्यता के विषय में तुरन्त सन्तुष्ट हो-जाते हैं, जैसे—उदाहरण के लिये देखो कि हाड़ा राजपुतों की वंशावली लिखने वाले

हाड़ाओं के मूल पुरुष अस्थिपालजी का असेर प्राप्त करने का सं० ९८१ (१०८१) और बीसलदेवजी का अनहलपुरपट्टन को प्राप्त करने का सं० ९८६ (१०८६) वर्णन करते हैं। भाटों का यह एक अपना पृथक शक मानना सत्य और योग्य है; क्योंकि किसी का नाम वंशावली में मृत्यु होने पर ही लिखा जाता है और सब सम्वत् जो आज तक जाने गये हैं, वह किसी न किसी स्मरण रखने योग्य बड़ी घटना के उपस्थित होने से ही प्रारम्भ हुवे हैं। जैसे कि किसी राजा अथवा प्रसिद्ध पुरुष का जन्म और मरण, मत-मतान्तर विषयक परिवर्तन, किसी राजा का राज्यभिषेक और राज्यच्युत् होना और किसी भूम्कप अथवा प्रलय का होना। इस मेरे कहने को ग्लैडविन्स साहब की अनुवादित आईन अकबरी नीचे लिखे प्रमाण पुष्ट करती है।

"प्रत्येक देश के लोग अपना शक किसी स्मरण में रखने लायक बड़ी घटना के उपस्थित होने से ही प्रारंभ करते हैं, जैसे कि मत का बदलना, किसी एक वंश के च्युत् होने पर किसी एक दूसरे का राजगद्दी पर बैठना; किसी बड़े भूकंप अथवा प्रलय का होना।"

३२ चंदकृत महाकाव्य में जो भाटों के संवत् लिखे हैं, उनकी इकाई और दहाई के अंकों में अज्ञात कवियों ने तीन वार के भिन्न-भिन्न शोधन अर्थात् संस्करण समय अशुद्धियें कर दी हैं। अब हम उक्त कोटे वाले कविराजजी के बताये हुवे प्रकार के अनुसार उनका लेखा लगाते हैं।

(क) चंदकृत छन्दों में यह पंक्तियें हैं:—एकादश से पचदह, संवत् इक्क दस पंच अग्ग। इनसे संस्करण करने वाले कवियों ने चंद का अर्थ संवत् १११५ समझा है और संप्रतकाल के कवि भी ऐसा ही अर्थ समझते हैं। इस अशुद्ध अर्थ ने ही तराई को अंतिम लड़ाई का संवत् ११५८ अशुद्ध कर दिया है। क्योंकि मालूम होता है कि तीन वार के संस्करण समय में कवियों ने पृथ्वीराजजी की उमर "चालीस तीन तिन वर्ष साज" के अनुसार ४३ वर्ष की को उनके जन्म संवत् १११५ में जोड़ कर संवत् ११५८ अशुद्ध कर दिया है। परन्तु चंद का वास्तविक अर्थ कुछ भिन्न मालूम होता है। इन एकादश से पंच दह और संवत् इक्क दस पंच अग्ग" से चंद कवि का अभिप्राय संवत् ११०५ का है। यदि हम

पृथ्वीराजजी के इस जन्म संवत् ११०५ में ४३ वर्ष उनकी उमर के जोड़ दें, तो उनकी आखिरी लड़ाई का भटायत विक्रमी संवत् ११४८ ठीक मिल जाता है। अब हमारे इस कहने की सत्यता के विषय में कोई यह शङ्का करे कि "दश" से शून्य का ग्रहण क्यों किया जाता है? तो उसके उत्तर में हम कहते हैं कि यहाँ 'दश' शब्द के यह दोनों अर्थ हो सकते हैं और इन दोनों में से किसी एक अर्थ का प्रयोग करना कवि के अधिकार की बात है। सब गूढ़ सूक्ष्म और संदिग्ध स्थलों में कि जो प्राचीन विद्याओं के शोधक विद्वानों के आगे बड़ी-बड़ी कठिनताओं को उपस्थित करते हैं और जो याथार्थ्य गणित के सूक्ष्म प्रकार से सिद्ध होने योग्य होते हैं, उनको लिखावट और सम्वत् मिती में यदि कोई भूल भी हो, तथापि उनको छोड़ देकर कवि के सम्भव अर्थ के अन्वेषण करने में परिश्रम उठाना और सब बातों की परम बुद्धिमत्ता से विवेचना करना विद्वानों का एक साधारण मार्ग है। यदि सम्वत् ११०५ में ४३ जोड़ने से हमको शुद्ध सम्वत् प्राप्त हो जाता है, अर्थात् भटायत सम्वत् ११०५ + ४३ = ११४८; तो फिर हमको ऐसी गणना करके कि १११५ + ४३ = ११५८ चन्द वरदाई की क्यों भूल काढ़नी चाहिये?

(ख) इसी तरह संशोधन करने वालों ने पृथ्वीराजजी के कन्नौज जाने के संवत् को भी अशुद्ध कर दिया है। जब वे कन्नौज को गये थे, तब उनकी उमर 'वरस तीस छः अग्गरौ' के अनुसार ३६ वर्ष की थी। संशोधन करने वालों ने बिलकुल अशुद्ध गणना की है। जैसे कि १११५+३६=११५१ कि जो शुद्ध संवत् नहीं है, परंतु चंदकवि का अवश्य यह अभिप्राय था कि ११०५+३६=११४१ कि जो एक शुद्ध संवत् है।

(ग) पृथ्वीराजजी की पहली लड़ाई के संवत् ११४० में कुछ भूल नहीं है। संशोधन करने वालों ने उस समय हिन्दुओं के अंतिम बादशाह की उमर की गणना में ही भूल की है। वे कहते हैं कि उस समय पृथ्वीराजजी २५ वर्ष के थे। अर्थात् १११५+२५=११४०, परन्तु वास्तव में उनकी उमर ३५ वर्ष की थी; जैसे कि ११०५+३५=११४० विदित करते हैं।

(घ) संशोधन करने के समय में संशोधकों ने पृथ्वीराजजी की दिल्ली गोद जाने और राजगद्दी पर बैठने के विषय में एक बड़ी गड़बड़ की है। संशोधकों

ने अपनी अज्ञानता से इस समय पृथ्वीराजजी की उमर २३ वर्ष की अनुमान की है और उन्होंने दृढ होकर मूल रासे की पुस्तक में संवत् सुधार दिया है। अर्थात् १११५+२३=११३८। परन्तु हमारे अनुमान के अनुसार कि जिसकी पुष्टि नीचे लिखा दोहा करता है, पृथ्वीराजजी की उमर उस समय ८+६=१४ वर्ष की थी; क्योंकि ११०५ में १४ जोड़ने से १११६ का संवत् कर्नल टोड़ साहब के लिखित संवत् १२२० के लगभग आ मिलता है:—

दोहा

सिद्[1] छ अग्ग सामं सजी, वनि त्रिघोष सुनंद।
सोमेसर नन्दन अटल, दिल्ली सुवस नरिंद॥

२३ अब हम हमारे सिद्धान्त के अनुसार ग्रन्थकर्ता (कविराजजी) के अपने प्रमाण में दिये हुए छन्दों को शोधकर वह पाठ नीचे लिखते हैं कि या तो ये ही अकृत्रिम पाठ चन्द के थे। अथवा इस आशय के पाठ उसने अपने मूल ग्रन्थ में लिखे थे।

एकादश से पंच दह।
सम्वत् इक्क दस पंच अग्ग।
चालीस तीन तिन वर्ष साख।

---

१. पृथ्वीराज रासे की जो पुस्तकें आज मिलती हैं, उन सब में सित शब्द का पाठ मिलता है; परन्तु एक सं० १७७० की लिखित पुस्तक में सिद पाठ मिलता है कि जो मुझको संस्कृत सिद्धि शब्द आठ के वाचक का अपभ्रंश होना मालूम होता है। यदि हम सित पाठ को सत्य होना मानलें तो पृथ्वीराजजी की वय २ + ६=८ अथवा २६ की होती है। परन्तु यह दोनों गणना बहुत ही अयुक्त और असम्भव है।

एकादश संवतह अट्ठ अग्ग हति ईस[1] भनि ।
ग्यारह से अठ ईस[1] भनि ।
ग्यारह से अठ ईसा[1] मानं ।
सम्वत् हर चालीस ।
ग्यारह सै चालीस ।
ग्यारह इकतालीसवें अथवा ग्यारह से चालीस इक

शाक सुविक्रम सत्त शिव, अध्र[2] उन्न[2] पंचास ।
एकादश से सत्त अट्ठ चालीस अधिक तर ॥

३४ मैं इसको निष्कलंकी होना मानता हूँ कि रावल समरसीजी अपने साले दिल्ली और अजमेर के बादशाह चौहान पृथ्वीराजजी के समय में हुए थे । जो प्रशस्तियें ग्रन्थकर्ता (कविराजजी) ने अपने आक्षेप लेख के प्रमाण में प्रवेश किये हैं, उनमें लिखे संवतों की सत्यता मुझको उन्हें सत्य मानने के लिये संतुष्ट नहीं करती है । वरुक वे मेरे इस अनुमान को पुष्ट करती हैं कि कोई स्वार्थी

---

१. सब पुस्तकों में 'तीस' पाठ है; परन्तु मालूम होता है कि संशोधकों ने 'ईस' के स्थान में 'तीस' पाठ भूल से कर दिया है । इस 'ईस' शब्द से चन्द ने 'दिल्लीदान' समय के ३०वें छन्द में ग्यारह का वाचक प्रयोग किया है । जैसा कि नीचे लिखे पदों से स्पष्ट विदित है:—

'संवत् ईस तीसरु अट्ठ । चलि नृप हेम गहि कर कठ्ठ ।'

इस हमारे दिये प्रमाण के पादों में उन संशोधकों ने एक और भूल करी है कि 'ईसरु' के स्थान में 'तीसरु' कर दिया है । अतएव शुद्ध पाठ यह है:—

'संवत् ईस ईसरु अठ्ठ, चलि नृप हेम गहि कर कठ्ठ ।'

२. संशोधन के समयों में अध्र शब्द कि जो संस्कृत 'अधः' शब्द का अपभ्रंश है राजपूताने के लोगों के अशुद्ध उच्चारण और अशुद्ध लिखने से बहुत भ्रष्ट हुआ है । इसका पाठ "अब्द्र" जो लोग शुद्ध लिखने और बोलने से परिज्ञात नहीं है, उनको भ्रमाता है ।

इसके सिवाय 'उन्न' शब्द भूल से अग्ग हो गया है; क्योंकि इस देश के लोग उ तथा ई के स्थान मे 'अ' भी लिख देते हैं ।

पुरुषों ने समरसीजी की मृत्यु के बहुत दिन पीछे उन्हें खुदवा ली हैं। उनमें संवत् मिति या तो विस्मृति से लिखे गये हैं अथवा बूँदी राज्य के एक दूसरे राव राजा समरसीजी के संवत् मिती दोनों एक नाम के होने के कारण भूल से बदल कर लिखे गये हैं। जिस समय की यह प्रशस्तियें ग्रन्थकर्ता ने प्रमाण में प्रवेश की हैं, वह समय इन समरसीजी का है कि जो अपने नामराशी मेवाड़ वालों के ४५ अथवा ४६ वर्ष पीछे हुए हैं। हमारे पाठकों के विचारार्थ में इन बूंदी के राव राजाजी का संक्षिप्त वृत्तान्त वर्णन करुँगा। इन एक नाम के दोनों का होना कोई आश्चर्यदायक बात नहीं है। क्योंकि यह नाम मेवाड़ के सभा और संग्राम में महाशूरवीर समरसीजी के होने के कारण रक्खा गया होगा। बूँदी के श्रीमान राव राजाजी श्री रामसिंहजी बहादुर जी० सी० एस० आई० कि जो एक संस्कृत विद्या में परम व्युत्पन्न, राज्य शासन सम्बन्धी कठिनताओं में पैंसठ वर्ष के समय की दक्षता सम्पन्न; और राजपूताने की प्राचीन ऐतिहासिक ख्यात और शोधों के एक स्वयं कोषरूप हैं— उनका मुझे अपने राज के ऐतिहासिक पुस्तक[1] और ऐतिहासिक सूचना प्रदान करने के कारण मैं बहुत ही आभारी हूँ। हाड़ा–राजाओं की वंशावली से मुझे ज्ञात हुवा है कि सं० १२६३ में देवराजजी के एक समरसीजी नामक कुंवर उत्पन्न हुवे थे। उन समरसीजी के पिता ने उन पर परम प्रेम होने के कारण अपने सब राज्य के दो विभाग करके प्रथम को तो बंबावदा नामक राज्य स्थापन कर आप रक्खा और शेष दूसरे बूंदी नामक को उनको देकर सात वर्ष की उमर में उन्हें सवत् १३०० में राजा कर दिया। सं० १३१० में इन समरसीजी के नापाजी नामक एक महाराज कुमार उत्पन्न हुवे और सं० १३२० में उन्होंने बूंदी नगर को विस्तृत किया। सं० १३२१ में कोटा बसाया और संवत् १३२८[2] में जबकि दिल्ली के बादशाह ने चित्तौड़ पर चढाई करी, तब मेवाड़ का मांडलगढ नामक इलाका छीन लिया। संवत् १३३२[3] में वे अपने बाप देवराजजी के साथ जो दिल्ली के बादशाह को लड़ाई हुई, उसमें मारे गये।

---

१. वंशप्रकाश और वंशभास्कर।

२. किसी ख्यात में सम्वत् १२३८ भी है।

३. किसी ख्यात में १२४२ भी है।

अब यह स्वीकार करना चाहिये कि एक दूसरे समरसीजी का प्रकट हो जाना हमारे ग्रन्थकर्ता की प्रतिज्ञा को उनकी प्रशस्तियों के समय तक के लिये अस्थिर और संशयस्थ कर देता है, क्योंकि उन्होंने प्रायः मेवाड़ के प्राचीन राज्य के कोई-कोई इलाके दबा लिये थे और उनके साथ झगड़े भी किये हैं। इसके सिवाय मेवाड़ राज्य की वंशावलीयें जो ख्यात करके कहातो हैं और मेवाड़ राज्य के हरेक भले आदमियों के घरानों में मिलतो है, उनमें लिखा है कि रावल समरसीजी सं० ११०६ में गद्दी पर बैठे और सं० ११४८ में मारे गये। अब कविराजजी का यह कहना कि पृथ्वीराज रासे ने ही हिन्दुस्थान भर को सब तवारीखों में भूल और वंशावलियों में अशुद्धता डाल दी है, जो हम सत्य करके मानलें तो भी हम ऐसा मान लेने की फिर भी असत्यता देखते हैं कि वर्तमान पृथ्वीराजरासा, जिसमें समरसीजी के मरने का सं० ११५८ लिखा है, वह कैसे सब में अशुद्धता डाल देने का अपराधी हो सकता है। ठीक समय का निर्णय करने के लिये या तो सैंकडे के एक के अंक को भूल से होना; क्योंकि संस्कृत और हिन्दी में एक और दो के अंकों में झट भूल हो जाती है, अथवा सैंकड़े के फरक को भटायत सम्वत् मानना चाहिये।

३५ मैं इस ग्रन्थ को पृथ्वीराज रासे के प्रति कर्नैल टोड साहब ने जो परम आदर के रसोले वचन कहे हैं, उनको नाचे लिखे प्रमाण स्मरण किये बिना बहुत अच्छी तरह से समाप्त नहीं कर सकता हूँ:—

"चन्द का महाकाव्य जिस समय में उसने लिखा था, वह उस समय का एक सर्व सम्बन्धी इतिहास है। उसके ६९ समयों में पृथ्वीराजजी के चरित्रों के एक लक्ष छन्द हैं कि जिनमें से राजस्थानों के प्रत्येक प्रतिष्ठित घराने वाले अपने-अपने पुरुषाओं के कुछ न कुछ इतिहास उपार्जन कर सकते हैं। इसलिये राजपूत नामका कुछ भी अभिमान रखने वाली जो जातियें हैं, उन सब के प्राचीन पुस्तकादि संग्रहों में यह पुस्तक अवश्य कर रक्खी जाती है। जब हिमाचल से हिन्दुस्थान के मैदानों तक युद्ध के बादल झोंका खाते थे, उस समय किर्मान के कठिन मार्गों में युद्ध की तरंगों का पानी पीने वाले जो ऐसे इन राज-पुत्रों के पुरुषा थे, उनके विषय के शोध उनको इस महाकाव्य में से प्राप्त हो सकते हैं। पृथ्वीराजजी के युद्ध उनकी मित्रता उनके आधीन अनेक और बलवान राजा, उनके स्थानक

और वंश चरित्रादि की कथा इस ग्रन्थ में है। इसलिये यह ऐतिहासिक और भूगोल सम्बन्धी विषयों का एक अमूल्य स्मारक संग्रह और ख्यातों रीतभातों और मनुष्य के मन के इतिहासों का कोष-रूप है। इस कवि के काव्य को पढ़ना मान मिलने के मार्ग पर चलना है। मेरा निज गुरु इसमें ऐसा कुशल था कि उसके जाति वाले भी उसको सब में उत्कृष्ट होना कहते थे। जैसे वह बांचता गया वैसे मैंने शीघ्रता से ३०,००० तीस हजार छन्दों का अनुवाद कर लिया। जिस भाषा में यह पुस्तक लिखी है, उसमें मुझको अच्छा परिचय होने से मैंने ऐसा भी मान लिया है कि कितनी ठिकाने उस कवि की छटा मेरे भाषान्तर में आई है। परन्तु जो मैं यह कहूँ कि उसको सब सौंदर्यता में ला सका हूँ अथवा उसके उपलक्ष्यों का गांभीर्य में बहुत समझ सका हूँ तो वह केवल एक मिथ्याभिमान है। परन्तु उसने यह किसके लिये लिखा था, वह मैं जानता हूँ। उसने जिनके पराक्रम का वर्णन किया है उनके संतान मेरे आसपास रहने वाले मनुष्य हैं कि उनके मुख से सदा इस कवि की बड़ी साधारण धारणा और स्फूर्तियां मेरे सुनने में आती थीं। इसी से जिस ठिकाने कविता की विद्या में मेरे से अधिक कौशल्य संपन्न मनुष्यों को उस कवि के मन का भावार्थ समझने में नहीं आता था, उसको समझने को मैं शक्तिमान हुआ और मेरा गद्य-रूप भाषान्तर में कुछ रसयुक्त कर सका।"



मूल गुजराती लेखक—श्री गोवर्द्धन शर्मा

भारतीय विद्याभवन, बम्बई

महाकवि चंद और पृथ्वीराज रासो

अनुवादक—श्री मोहनलाल व्यास शास्त्री

(प्रथम संस्करण—ई० १९४७)

(१)

पूर्व भूमिका

अपने यहाँ महाकवि चंद बरदाई और पृथ्वीराज रासे के सम्बन्ध में अभी अभी कितने ही इतिहासज्ञों ने नवीन ऐतिहासिक शोध के नाम से बहुत ही उटपटाँग और अनैतिहासिक असत्य प्रकट करने वाली असंगत बातें लिख डाली हैं। ये इतिहासकार कवि चंद और रासो ग्रंथ की प्रामाणिकता में संशय प्रकट करते हैं कि "रासो पृथ्वीराज के समकालीन किसी कवि के द्वारा रचित ऐतिहासिक महाकाव्य नहीं है, और कदाचित् इस नाम का कोई कवि हुआ हो तो उसने रासो महाकाव्य वि० सं० १६०० के आसपास लिखा हो। वास्तव में यह एक झूठा महाकाव्य है[१]।"

शताब्दियों से आज भी लोक हृदय में इतना अधिक प्रसिद्ध है कि 'पृथ्वीराज रासो' यह पृथ्वीराज के समय का ऐतिहासिक ग्रंथ है, जिसकी रचना पृथ्वीराज के सम्मानित सामंत निजी मित्र और राजकवि चंद बरदाई ने पृथ्वीराज के यशोगान के लिये की थी। लोकवाणी की इस सिद्ध बात का कितनी ही ऐतिहासिक

---

१. देखिये—"ऐतिहासिक संशोधन" दुर्गाशंकर शास्त्री कृत" नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १०, अंक १–२।

सामग्री और साहित्य भी इसका समर्थन करता है[२]। इसके अतिरिक्त रासो की अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ उसकी प्राचीनता को प्रकट करने वाली प्राप्त हो चुकी हैं। अतिरिक्त इसके वि० सं० १४०३ में लिखी हुई एक पुस्तक से भी पूर्ति होती है। इसके उपरान्त प्राचीनता का उल्लेख पुरातत्व पुस्तकों में अनेक स्थानों पर हुआ है। ऐसा उल्लेख और समर्थन करने वाले विद्वानों में मुख्य-मुख्य मुनि श्री जिनविजयजी, डॉ० दशरथ शर्मा एम० ए०, प्रो० मीनाराम रंगा एम० ए०, प्रो० मूलराज जैन एम० ए०, डा० कुलनर, श्री भँवरलाल नाहटा, प्रो० बनारसीदास चतुर्वेदी, मुनि कान्तिसागरजी, डा० अल्लामा अब्दुल्लाह युसुफअली, सी. बी. इ. एम. ए एल.एल. एम., साहित्याचार्य पं० श्री मथुराप्रसाद दीक्षित, प्रो० रमाकान्त त्रिपाठी एम० ए०, डा० होर्नले, डा० मोतीलाल मेनारिया एम ए०,[३] सरजोन ग्रिअर्सन, आदि भाषा साहित्य और पुरातत्व के प्रसिद्ध विद्वान् हैं। अतः उक्त महाकवि चंद और रासो सम्बन्धी कथन इतिहास के संगीन सत्य के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता, और वह विपरीत कथन है। इतिहास के जिज्ञासुओं को भ्रमात्मक मार्ग में लेजाने वाला अनिष्ट रूप है। क्योंकि इस कथन में देश्य भाषा के ज्ञान का और ऐतिहासिक सत्य दृष्टि का सर्वथा अभाव है।

इसलिये महाकवि चन्द और पृथ्वीराज रासो को प्राचीनता के लिये सत्य लक्षी दृष्टि से रासो की मिल जाने वाली प्राचीन प्रतियों और ऐतिहासिक साधनों का विशद विश्लेषण एवं तटस्थ विचारों से अनुशीलन करना विशेष रूप से आवश्यक है; क्योंकि ऐसे अनुशीलन से जनता के समक्ष इतिहास की वास्तविक सत्यता प्रकट होती है।

इसके पूर्व हम विद्वानों एवं इतिहास प्रेमी जनता का लक्ष्य. एक बात पर विशेष रूप से आकर्षित करना चाहेंगे और वह यह कि आज तक रासो सम्बन्धी जिन २ विद्वानों ने विरोधी विचार प्रदर्शित किये हैं—वे केवल रासो की प्रचलित और नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित प्रति के आधार पर ही हैं। इसका प्रति लिपि काल सम्वत् १७३२ है और उसका कलेवर पीछे से वृद्धिगत

---

२. देखिये—"आल्हा खंड" विलियम वाटर फिल्ड द्वारा सम्पादित ऑक्सफोर्ड आवृत्ति (१९२३)।

किये हुए असंख्य क्षेपकों से भ्रष्ट बना हुआ है, इस प्रति में असली रासो के सत्य या वास्तविक स्वरूपों को समझना या निकालना सर्वथा असंभव है। क्योंकि अन्य प्राप्त होने वाला रासो की प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों में भाषा, भाव, घटना और आकार में नागरी प्रचारिणी सभा की प्रति की अपेक्षा सर्वथा भिन्न प्रतीत होती है। अतः सत्य वस्तु-स्थिति जानने के लिये अन्य हस्तलिखित प्रतियों का अवलोकन करके ही रासो के सम्बन्ध में वास्तविक निर्णय किया जा सकता है और इसके लिये रासो की प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों को देख लेना आवश्यक और अनिवार्य है। ऐसा नहीं होने से ही इसके लिये गड़बड़ खड़ी होने लगी है।

(२)

रासो की प्राचीन हस्तलिखित प्राचीन प्रतियाँ

पृथ्वीराज रासो की प्राचीन प्रतियों की शोध खोज करते अभी तक निम्न-लिखित प्रतियों का पता लग चुका है।

(१) बीकानेर कोर्ट लाइब्रेरी में आठ प्रतियाँ।
(२) बृहद् ज्ञान भण्डार बीकानेर में एक प्रति।
(३) श्री अगरचंद नाहटा की एक प्रति।
(४) पंजाब युनिवरसीटी लाहौर में चार प्रतियाँ
(५) भाण्डारकर ओरियंटल इन्स्टीट्यूट पूना में दो प्रतियाँ
(६) रोयल एशियाटिक सोसाइटी, बंबई शाखा में तीन प्रतियाँ
(७) जोधपुर सुमेर लाइब्रेरी में दो प्रतियाँ
(८) उदयपुर विक्टोरिया मेमोरियल हॉल लाइब्रेरी में एक प्रति
(९) आगरा कॉलेज आगरा में चार भागों से विभाजित एक प्रति
(१०) कलकत्ता निवासी स्व० श्री पूर्णचन्द्र नाहर की एक प्रति
(११) बंगाल एशियाटिक सोसाइटी में कुछ प्रतियाँ
(१२) नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी कुछ प्रतियां
(१३) किशनगढ़ स्टेट लाइब्रेरी की कुछ प्रतियाँ।
(१४) अलवर स्टेट लाइब्रेरी की कुछ प्रतियाँ।
(१५) यूरोप के विभिन्न पुस्तकालयों की प्रतियाँ।

(१६) साहित्याचार्य पं० मथुराप्रसाद दीक्षित की प्रति ।
(१७) मुनि कान्तिसागरजी की मध्य प्रांत वाली एक प्रति ।
(१८) चंद के वंशधर श्री नेनूराम भट्ट की दो प्रतियाँ।
(१९) फार्बस गुजराती सभा, बम्बई की दो प्रतियाँ ।
(२०) बूँदी राज्य पुस्तकालय की एक प्रति ।
(२१) कवि मोहनसिंह राव की देवलियावाली एक प्रति ।

पृथ्वीराज रासो के तीन वाञ्चन

इन प्रतियों का निरीक्षण कर प्रो० मूलराज जैन एम० ए० का मत है कि अभी तक पृथ्वीराज रासो के पाठ अपने यहाँ तीन वाञ्चनाओं में पाये जाते हैं। इनमें से (१) बृहद् वाञ्चन (२) मध्यम वाञ्चन और (३) लघु वाञ्चन है [१]। बृहद् वाञ्चना में ६४ से ६६ तक समय (सर्ग) और १६-१७ हजार पद्य हैं। इसका परिमाण एक लाख श्लोकों का माना जाता है। परन्तु वास्तव में ३५ हजार श्लोक ही हैं। यह वही वाञ्चन है कि जिसे नागरी प्रचारिणी सभा ने सम्पूर्ण और कलकत्ता की रोयल एशियाटिक सोसाइटी बंगाल ने थोड़े भागों के रूप में छापी थी। विद्वानों ने रासो सम्बन्धी ऊहा-पोह केवल मात्र इसी वाञ्चन के आधार पर किया था।

(२) मध्यम वाञ्चना में ४० से ४५ समय (सर्ग), और उसका परिमाण ७ से १० हजार तक श्लोक हैं।

(३) लघु वाञ्चन में १९ समय और दो हजार के लगभग पद्य हैं जिसका परिमाण तीन हजार पाँच सौ श्लोकों का आता है। इस वास्तविकता का परिज्ञान प्रथम डा० टेसीटोरी को १९१३ में हुआ था और उसने इस वाञ्चन के सम्बन्ध में विद्वानों का ध्यान सबसे पहिले आकृष्ट किया था।

---

१. ऐसी वाञ्चना डॉ० टेसीटोरी ने भी की थी।
देखिये—डिस्क्रीप्टिव केटलॉक ऑफ् बार्डिक एन्ड हिस्टोरिकल मैनुस्क्रिप्ट्स्, भाग २

वाञ्चनाओं का विषय-क्रम—

रासो की वाञ्चना में अनेक स्थलों पर लघु वाञ्चना का विषय क्रम मध्यम अथवा वृहद् वाञ्चना की अपेक्षा अधिक समुचित दिखाई देता है। वृहद् तथा मध्यम वाञ्चना में प्रथम समय में मंगलाचरण और पीछे पृथ्वीराज के जन्म का वर्णन है और पीछे दूसरे समय में दशावतार वर्णन है; परन्तु लघु वाञ्चना के प्रथम समय में ही मंगलाचरण और दशावतार वर्णन है और दूसरे समय में पृथ्वीराज के जन्म का वर्णन है—और ऐसा ही होना भी चाहिये। क्योंकि दशावतार वर्णन—यह मंगलाचरण ही का रूपान्तर है और सदा मंगलाचरण ग्रंथारम्भ में ही होता है। लघु वाञ्चना में नायक पृथ्वीराज के जन्म वृत्तान्त के पीछे तीसरे समय में संयोगिता जन्म का वृत्तान्त आता है; परन्तु मध्य और वृहद् वाञ्चना में इन घटनाओं के मध्य में कितने ही समयों का अन्तर रहता है। वृहद् वाञ्चना में कन्नौज खंड के आरम्भ में पृथ्वीराज का संयोगिता के लिये तड़पना और एक वर्ष पर्यन्त प्रत्येक ऋतु में भिन्न २ रानियों द्वारा संयोगिता की प्राप्ति में विघ्न डालना, कवि को षट्ऋतु के वर्णन का अवसर दिलाता है। परन्तु लघु और मध्यम वाञ्चना में यही वर्णन पृथ्वीराज का संयोगिता को दिल्ली लेकर आने पर आता है और यही घटना क्रम सरल और सुसंगत प्रतीत होता है। क्योंकि यदि पृथ्वीराज को संयोगिता की सच्ची लगन लगी हो तो वह एक वर्ष पर्यन्त कदाचित् उसे प्राप्त किये विना नहीं बैठ रहता।

बढ़ती हुई अनैतिहासिकता—

लघु वाञ्चना की अपेक्षा मध्यम में और मध्यम वाञ्चना की अपेक्षा वृहद् में अनैतिहासिक घटनाओं का प्रमाण विशेष रूप से दिखाई देता है जैसे कि लघु वाञ्चना में पृथ्वीराज की शाहबुद्दीन के साथ तीन लड़ाइयों का वर्णन है—जब कि मध्यम में आठ का और वृहद् में बीस का है। वास्तव में देखते हुए तो उसके साथ पृथ्वीराज के केवल मात्र दो ही युद्ध हुए थे। इस प्रकार भीम द्वारा सोमेश्वर वध, जयचंद का मेवाड़ पति समरसी (समतसी) तथा गुजरात के राजा के साथ युद्ध, अग्निकुंड में से चौहान वंश की उत्पत्ति आदि अनेक अनैतिहासिक घटनाओं का वर्णन मध्यम अथवा वृहद् वाञ्चना में आता है, लघु वाञ्चन में नहीं। यह

संभव नहीं कि चंद वरदाई ने स्वयं अपनी रचना में ऐसी अनैतिहासिक घटनाओं का समावेश किया हो। क्योंकि यह पृथ्वीराज का मित्र एवं समकालीन पुरुष था। इससे यह अधिक उचित जान पड़ता है कि कविचंद के पीछे उसके परवर्ती कवियों ने ऐतिहासिक क्रम की ओर बिना ध्यान दिये पृथ्वीराज की महिमा गाने के लिये इन अनैतिहासिक घटनाओं का समावेश किया है।

उपर्युक्त विचार धारा के आधार पर हम इस निश्चय पर पहुँचते हैं कि आरंभ में पृथ्वीराज रासो मूलरूप में बहुत ही छोटा होगा, पर पीछे से कालान्तर में प्रक्षेपों के मिल जाने से उसका कलेवर बढ़ गया है। रासो की आज पर्यंत प्राप्त होने वाली वाञ्चनाओं में लघु वाञ्जना शेष दो की अपेक्षा विशेष प्राचीन और प्रामाणिक है।'[1]

इन प्रतियों में से कुछ प्रतियों का समावेशः

इन प्राचीन प्रतियों में से हमारे परिचय में आई हुई प्रतियां इस प्रकार हैं:-

१—नागरी प्रचारिणी सभा बनारस द्वारा प्रकाशित।

२—फार्बस गुजराती सभा के पुस्तकालय की प्रतियाँ।

३—सोलन निवासी साहित्याचार्य पं० मथुराप्रसाद दीक्षित की प्रति।

४—बीकानेर फोर्ट लाइब्रेरी की रामसिंहजी के समय की प्रति।

५—मुनि श्री कान्तिसागरजी की मध्यप्रान्त वाली प्रति।

(१) नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित पृथ्वीराज रासो की हस्त-लिखित प्रति का लिपि संवत् १७३२ है और आज यह रासो काव्यरूप में प्रसिद्ध है। इस ग्रंथ का सटीक संपादन श्री मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या और बाबू श्यामसुन्दरदास ने किया। इसमें ६९ समय (सर्ग) हैं तथा छंद संख्या लगभग सौलह हजार और तीन सौ है।

(२) फार्बस गुजराती सभा बंबई की इस हस्तलिखित प्रति में उसके लेखक ने न तो रचना संवत् दिया है, और न लिपि संवत्। परन्तु इस प्रति को स्व० श्री

---

१. देखिये—"प्रेमी अभिनन्दन ग्रंथ", प्रो० मूलराज का लेख, पृष्ठ १०३ में।

फार्बस साहब ने साणंद बीजापुर के ब्रह्मभट्टों से उतरवा कर मँगवाई थी, इस प्रकार उसके एक नोट से सूचित होता है। रासो की यह प्रति नागरी लिपी में लिखी हुई है[1]। इसकी अनुकर्मणिका के बाइस समय हैं और प्रथम समय का प्रारम्भ दशावतार के वर्णन से प्रारम्भ होता है। इस प्रति में पृथ्वीराज के जन्म सम्बन्धी वर्णन में निम्न दोहा लिखा हुआ है—

> एकादश सें पंचप (द[१]) ह, विक्रम शक आनंद।
> तिहि रिपु पुर जैं हरन को, हुय प्रथिराज नरिंद॥

(२) यह प्रति सोलन रियासत निवासी साहित्याचार्य श्री पं० मथुरा-प्रसाद जी दीक्षित की है, जिसके एक समय को उन्होंने सटीक छपवा कर प्रकाशित किया है: इसके आमुख में श्री दीक्षित बताते हैं कि रासो की पुरानी प्रतियों की शोध में मुझे यह प्रति मिला है और कवि स्वयं भी छंद संख्या का उल्लेख करता हुआ बताता है कि:

> सत्त सहस रासो सहस, सकल आदि सुभ दिष्ष।
> घटि बढ़ि मतैंय कोई, मोहि दुषन न विसिष्ष॥

इससे इतना तो सिद्ध होता है कि छपे हुए रासो में प्रक्षेप अधिक हैं और प्राचीन पुस्तक के साथ इसे मिलाते हुए जिन २ घटनाओं का उल्लेख कर श्री ओझाजी रासो को भूठा और निर्मूल ग्रंथ कहते हैं, ये सब घटनाएँ प्राचीन हस्तलिखित प्रति में किसी भी स्थल पर देख नहीं पड़ती। इस प्राचीन ग्रंथ के आधार पर ही मैंने इस प्रथम समय का संशोधन एवं संपादन किया है, जिसमें केवल मात्र सात हजार श्लोकों की संख्या है।[2]

इस प्रति में प्रथम समय (सर्ग) मंगलाचरण से प्रारम्भ होता है। इसमें गणेश स्तुति. पीछे कवि अपनी अपूर्व लघुता से उच्छिष्ट कथन कहने की संज्ञा कहता है। इसमें भुजंगी.ब्रह्मा, महाभारतकार भारती भगवान वेद व्यास, शुकदेवजी, श्री हर्ष "नैषध काव्य" के रचयिता, कालीदास सेतुबधन के रचयिता, दंड माली,

---

१. देखिये—फार्बस गुजराती हस्तलिखित पुस्तकों की सूची।

२. देखिये असली पृथ्वीराज रासो

जयदेव आदि कवियों की वन्दना करते हुए लिखता है कि इन महापुरुषों के काव्य के समक्ष कुछ भी बच नहीं रहता, फिर भी मैं कवि चन्द उनकी उक्तियों का पद्य-रूप में वर्णन करता हूँ। इसके पश्चात् कवि कथानक में पृथ्वीराज-जन्म, पृथ्वीराज का संयोगिता-हरण, शाहाबुद्दीन गोरी के साथ तीन युद्धों आदि का मुख्य रूप से वर्णन करता है।

(४) यह प्रति बीकानेर फोर्ट लाइब्रेरी में रामसिंहजी के समय का है। इस प्रति में श्लोक सख्या ४००४ है और १६ खंडों (समयों) में है। प्रथम समय का वर्णन गणेश-स्तुति से आरंभ होता है। इसके पश्चात् इसी समय में सरस्वती की स्तुति, दशावतार-वर्णन आदि आते हैं। दशावतार-वर्णन इस प्रति में कृष्ण-चरित्र, कंस-वध तक ही है। फिर उपर्युक्त तीसरी प्रति के समान इस प्रति में भी नैषध-काव्य रचयिता श्री हर्ष, भरत, कालीदास, दंडमाली, जयदेव आदि कवियों की वन्दना की गई है।

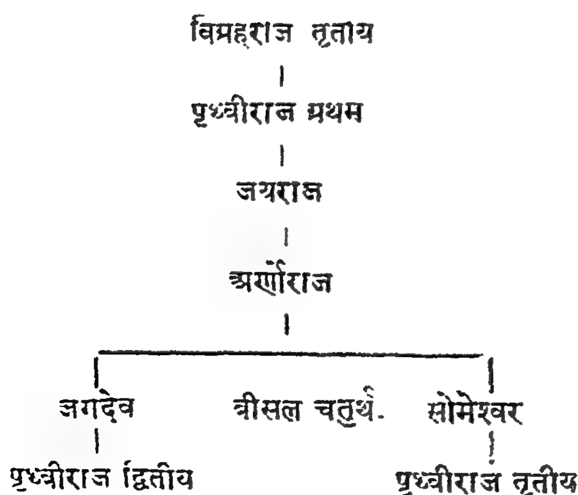
चौहानों की वंशावली

इसके बाद इस प्रति के दूसरे समय में चौहान वंश का वर्णन है, जिसमें ब्रह्मा के यज्ञ से उत्पन्न (क) चौहान माणिकराय (ख) अनेव, (ग) धर्माधिराज, (घ) बीसल, (ङ) आनल्ल, (च) जयसिंह (छ आनंद (ज) सोम, (झ) पृथ्वीराज है।

इस पुस्तक में वशिष्ठ के अग्निकुंड में से चौहानों के उत्पन्न होने की बात नहीं हैं। इसी प्रकार चौहान राजाओं का वर्णन भी अति सूक्ष्म रूप में किया गया है। गलत रीति से इस पुस्तक में राजाओं के नाम नहीं भरे गये हैं और हमें यह भी सन्देह है कि 'अनेव' और 'धर्माधिराज' राजाओं के नाम नहीं हैं, पर संक्षिप्त वर्णन में 'धर्माधिराज' माणिकराय का विशेषण और 'अनेव,' अनेक का पर्यायवाची प्रतीत होता है और पुस्तक के आधार पर चौहानों की वंशावली नीचे लिखे अनुसार होती है—

१ अनेक अनुज सहित धर्माधिराज माणिकराय
|
२— वीसल
|
३— आनल्ल [पृथ्वीराज प्रथम]
|
४— जयसिंह [जयराज]
|
५— आनंद [अर्णोराज–आना]
|
६— सोमेश्वर
|
७— पृथ्वीराज

इस प्रकार वीसल को विग्रहराज तृतीय मानना चाहिये, जो 'प्रबन्ध-कोश' के अंत में दी हुई वंशावली के अनुसार ही होगा। उसे लम्पट बतलाया है। अतः बात दीपक के समान स्पष्ट हो जाती है; क्योंकि शिलालेखों आदि की वंशावली इस प्रकार है—



रासो का कथानक

इस प्रकार इन वंशावलियों की तुलना करते हुए इस प्रति के आनल्ल को

पृथ्वीराज प्रथम माना जाय तो वंशावली बराबर मिल जाती है। आनंद यह अर्णो-राज का भ्रष्ट रूप है।[A][1]

इसके पश्चात् इस प्रति में संयोगिता की उत्पत्ति, जैन अमरसिंह द्वारा कैमास-वशीकरण, चन्द द्वारा दुर्गास्तुति, जयचन्द द्वारा यज्ञारम्भ, संयोगिता की पृथ्वीराज से विवाह करने की प्रतिज्ञा आदि का वर्णन है। इसके बाद कैमास-वध, पृथ्वीराज का संयोगिता के लिये कन्नौज पहुँचना, जयचन्द के यहाँ कविचन्द का जाना, जयचन्द द्वारा कवि चन्द का स्वागत, कर्णाटकी प्रवेश, पृथ्वीराज का परदा करना, पृथ्वीराज-संयोगिता का पारस्परिक दर्शन तथा विवाह आदि घटनाओं का वर्णन आता है। जयचन्द का पृथ्वीराज को पकड़ने का प्रयत्न सात सामन्तों का मारा जाना, भयानक युद्ध, पृथ्वीराज का संयोगिता सहित दिल्ली प्रवेश आदि का ११ वें सर्ग में वर्णन है और यह युद्ध तीन दिन तक चलाथा यह सूचित होता है।

इन घटनाओं के वर्णन के पश्चात् इस प्रति में शेष समयों में जैत खंड का आरोपण,-धीर पुण्डीर द्वारा शाहबुद्दीन का कैद होना, चामुण्डराय का बंध-विमोचन, शाहबुद्दीन गोरी और पृथ्वीराज के बीच घोर युद्ध, शूर-सामन्त पराक्रम-वर्णन, पृथ्वीराज का शत्रु के हाथ में कैद पकड़ा जाना, जालंधरीदेवी के स्थानक में कवि चन्द की वीरभद्र के साथ भेट, कवि चन्द का पृथ्वीराज के लिये गजनी जाना, बाण वेध आदि घटनाओं का मुख्य रूप से वर्णन है।

---

१. देखिये:—'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' नवीन संस्करण अंक ४ वर्ष ४५, डा० दशरथ शर्मा एम्० ए० का लेख।

A स० टि०—आनल्ल को पृथ्वीराज प्रथम मान लेना कल्पना मात्र ही है; क्योंकि ये दोनों भिन्न-भिन्न व्यक्ति हैं और शिलालेख आदि में वीसल (तृतीय) के बाद पृथ्वीराज स्पष्ट नाम है। आनल्ल का आनन्द या अर्णोराज तो नाम हो सकता है, पृथ्वीराज नाम नहीं। जयसिंह को जयराज अथवा अजयराज मान लेने की युक्ति चल सकती है; परन्तु जो कथाएं रासे में जयसिंह के सम्बन्ध में बतलाई हैं, उनका संबंध जयराज या अजयराज से हो सकता है, या नहीं विचारणीय बात होगी। वस्तुतः रासो की प्रतियों के पाठों में इस प्रकार दूषित पाठ हो जाने से ये भ्रान्तियां उत्पन्न हुई हैं।

रासो की यह पुस्तक वि० सं० १६४७ की है और उसका प्रतिपांश एवं भाषा को देखते हुए इतना स्पष्ट हो जाता है कि उस समय पृथ्वीराज रासो लोक में भली प्रकार विख्यात हो जाना चाहिये। कविचन्द के जिन प्राचीन पद्यों का मुनि श्री जिनविजयजी ने 'पुरातन प्रबन्ध-संग्रह' में होने का उल्लेख किया है, वे पद्य इस प्रति में भी हैं। केवल मात्र उसकी भाषा का स्वरूप बदला हुआ है[1] सम्भव है कि प्राचीनतम प्रतियों में ये पद्य उसके असली रूप में ही मिल आवें। जिन-जिन घटनाओं का उल्लेख कर आज रासे को बनावटी कहा जाता है, उन सब घटनाओं का इस पुस्तक में सर्वथा अभाव है।

पृथ्वीराज रासो की सचित्र प्रतिः—

(५) अब अन्तिम प्रति मुनि श्री कान्तिसागरजी की मध्य प्रान्त वाली है, जो आज तक समुपलब्ध पृथ्वीराज रासो की हस्तलिखित प्रतियों में अत्यन्त प्राचीन और प्रामाणिक है। इस पुस्तक की पुष्पिका में उसका लिपि सम्वत् १४०३ कातिक सुदो पंचमी दी गई है।[2][B]

रासो की यह प्रति विशेषकर छप्पय छन्दों में गुम्फित है और उसके विहंगावलोकन से विदित होता है कि भाषा अपभ्रंश प्राकृत है। इस पुस्तक में कई स्थलों पर तो इतना भाषा का कठिन्य प्रतात होता है कि मूल के प्राकृत होने का विभ्रम हो जाता है। कठिन कठिन स्थलों पर किसी अध्येयता ने कहीं कहीं टिप्पणियाँ भी लिख दी हैं, जो भाषा शास्त्र की दृष्टि से बड़ी ही मूल्यवान है।

---

१. देखिये—नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग २० अंक ३, दशरथ शर्मा का लेख।

२. देखिये विशाल भारत, भाग ३८, अंक ५ मुनि कान्तिसागरजी का लेख।

B म० टि० मुनि कान्तिसागरजी द्वारा संग्रहीत प्रति वि० सं० १४०३ कार्तिक सुदी ५ की है। उपर्युक्त हिसाब से सब से प्राचीन प्रति होनी चाहिये यदि वह प्रति इतनी ही पुरानी हो, एवं उसमें लिखा हुआ वर्णन किसी भी दृष्टि से विरोध जनक न हो, तो रासो का महत्त्व सहज में सिद्ध हो सकता है; किन्तु अब तक इस पर विद्वानों द्वारा विषद् रूप से प्रकाश नहीं डाला गया है।

इस प्रति की प्रतिलिपि का प्राचीन होना विश्वसनीय है। क्योंकि यह पड़ा मात्रा में है। इसके अतिरिक्त यह प्रति ४५ तिरंगा चित्रों से विभूपित है. जो रासो की विभिन्न घटनाओं पर प्रकाश डालती है। उसमें एक चित्र का परिचय तीसरे पृष्ठ पर दिया गया है, जो इस प्रकार है - महाराज पृथ्वीराज अपनी राजसभा के विशाल सिंहासन पर विराजमान है। दाहिनी ओर एक खास आसन पर महाकवि चन्द अधिष्ठित है। दोनों ओर विशिष्ट श्रेणी के सरदार श्रीमन्त आदि प्रतिष्ठित सज्जन बैठे हुए हैं, जिनमें पृथ्वीराज का काका कन्हराय भी आँखों पर सुवर्ण पट्टिका बाँधे हुआ स्पष्ट दिखाई देता है। चित्र की पृष्ठ भूमि गुलाबी होने से सजीवता का अनुभव होता है[1]।

शेष चित्रों में खास-खास सभ्यों के नाम भी दिये हुए है,जिनमें 'रामदे' जैसा एक प्रमुख जैन गृहस्थ था। संयोगिता हरण, शाहबुद्दीन गौरी, पृथ्वीराज संयोगिता विलास, पृथ्वीराज की मृगया, युद्ध-क्षेत्र, कवि चन्द आदि के तिरंगे चित्र महत्त्वपूर्ण होने के अतिरिक्त प्राचीन चित्रकला के अद्भुत नमुने है। इन चित्रों को चित्रकला की दृष्टि से देखने पर विदित होता है कि उनकी रचना काँगड़ा परिपाटी के आधार पर की गई हैं। चक्षुओं का विकास, अंग-विन्यास मुख्य कृति की मादकता, शारीरिक सुबद्धता पारदर्शक—वस्त्र, सीमित आभूषणों का विकास-रंगों का विभाजन और रेखाओं की विलक्षणताओं से परिपूर्ण मरोड़-तरोड़ किस कला प्रेमी को आकर्पित नहीं करे? जिन पर मुगल कालीन चित्रकला का सर्वथा प्रभाव ही नहीं पड़ा। प्रति के बाजू पर हाशिये-पर जंगली जानवर और पुष्पलताओं का मनोहर प्रदर्शन सिद्ध-हस्त कला-कौशल्य का स्मरण कराये बिना नहीं रह सकता। इस प्रति के लेखन एवं कला-प्रेमी श्री हेमपाल जैसे गर्भ श्रीमन्त व्यक्ति के लिये ही यह सम्भव और सुलभ था। इस प्रति से इतना अवश्य सिद्ध होता है कि पृथ्वीराज रासो का रचना काल वि० सं० १४०३ के पूर्व होना चाहिये। क्योंकि वि० सं० १४०३ में तो इसकी सर्वसाधारण जनता में प्रसिद्धि हो चुकी थी।

---

१. इस चित्र के लिये मुनि श्री कान्तिसागर जी को, श्री भँवरलाल नाहटा ने इसी प्रकार के अन्य चित्र जैसलमेर के जैन उपाश्रय में होना सूचित किया था।

अन्य कवियों द्वारा रासो में कथित महिमागान

ऊपर की हस्तलिखित प्रतियों के विवरण को देखने पर और पद्य रचना का परिमाण निहारते इतना निर्विवाद रूप से सिद्ध होता है कि असल में रासो महाकाव्य, कवि चन्द ने बहुत ही छोटा बनाया होगा। परंतु पीछे से कालान्तर में उसमें प्रक्षिप्तांश मिलते २ उसका वतमान वृहद् कलेवर बनगया है और इसका मुख्य कारण रासो काव्य की अतिशय लोकप्रियता है। इस लोकप्रियता को देखकर उसमें अनेक कवियों ने अनेक स्थलों पर इस प्रकार उनके वर्णन और अनैतिहासिक घटनाओं को जोड़कर उसके प्राचीन स्वरूप को सर्वथा नष्ट कर डाला है। अतः यह भी संभव है कि उसकी प्रसिद्धि को देखकर कितने ही राज्याश्रित चारणों और भट्ट कवियों ने अपने आश्रय दाताओं के महिमागान इधर-उधर जोड़ भी दिये हों। इस बात का भाषा की दृष्टि से देखने पर संपूर्ण समर्थन मिल जाता है, जो इस प्रकार है—

रासो और पुरातन प्रबन्ध संग्रह

'पुरातन-प्रबन्ध-सग्रह' नाम के पाटन के हस्तलिखित ग्रन्थ भण्डार में से प्राप्त जैन धर्म के प्राकृत भाषा के पुरातन ग्रन्थ की प्रामाणिकता में किसी को सन्देह नहीं हो सकता। इसका सम्पादन विख्यात पुरातत्वविद् और भाषा के विद्वान् मुनि श्री जिनविजयजी ने किया है[1]। इसका रचना-काल वि० सं० १२९० और लिपि सम्वत् १५२८ है। पुरातन प्रबन्ध संग्रह में उसका रचना सम्वत् इस प्रकार उल्लिखित है—

---

१. सिरिपुथुपाल नंदण मंतिसर जयंतसिंह भणणत्थं।
नागिंद गच्छ मंडण उदयप्पह सूरि सिसेणं॥
जिण भद्देण य विक्कम कालाउ नवइ अहि बारसए।
नाणा कहाण पहाणा एस पबंधावली रइआ॥

पृष्ठ १.३६ 'पुरातन प्रबंध संग्रह'
सिन्धी-जैन ग्रन्थमाला ग्रन्थांक २

"नागेन्द्रगच्छ के आचार्य उदयप्रभ सूरि के शिष्य जिनभद्र ने मन्त्रीश्वर वस्तुपाल के पुत्र जयसिंह के अभ्यास के लिये वि० सं० १२६० में इस छोटे से कथानक प्रधान प्रबन्धावली की रचना की।" इस कथन को देखते हुए उसकी प्राचीनता में शंका का कोई स्थान ही नहीं रह जाता है।

इस प्राचीन ग्रन्थ में कविचन्द के द्वारा रचित चार पद्य मिलते हैं, जो अपभ्रंश प्राकृत (देश्य) भाषा में है। जिनमेंसे तीन का रूपान्तर नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित रासो में तथा बीकानेर फोर्ट लाईब्रेरी की प्रति में मिल जाता है। अतः ये पद्य तो कविचन्द के ही बनाये हुए हैं, जो इस प्रकार है—

मूलपाठ (१)

इक्कुबाणु पहु वीसु जु पइँ कइँ बासह मुक्काओ,
उर भिंतरी खडहडिउ धीर कक्खतरि चुक्कउ।
बीअ करि संधीउँ भँमेमइ सुसर नंदण।
एहु गडि दाहिमओ खणइ खुद्दई सइंभरि वणु॥
फुड छंडि न जाइ इहु लुब्भिउ वारइ पलकउ खल गुलह।
न जांणउ चंदबलद्दिउ कि न विछुट्टइ इह फलह॥

पुरातन प्रबन्ध, पृष्ठ ८६, पद्यांक २७५।

रूपान्तर (१)

एक बान पहुमी नरेस कैमासह मुक्यौ।
उर उप्र थरहर्‍यौ वीर कष्षतर चूक्यौ॥
बियोबान सधान हन्यौ सोमेसर नंदन।
गाढौ करि निग्रह्यौ षनिव गडयौ संभरि धन॥
थल छोरि न जाइ अभागरौ गाडयौ गुन ग्रहि आगरौ।
इम जंपै चंद वरद्दिया कहा निघट्टै इय प्रलौ॥

नागरी प्रचारिणी सभा, रासो पृष्ठ १४६६, पद्य २३६।

मूलपाठ (२)

अगहु म गहिदाहिम ओ रिपुराय खयँ करू
कूडु मंत्र ममठ ओ एहु जँबूय(प?)मिली जंग्गरू।

सहनामा सिक्खउं जइ सिक्खविउ बुज्झइं ।
जंपइ चंद बलिद्उ मज्झ परमक्खर सुज्झइं ।
पहु पहु विराम संइभरि धनी सयँभरि सउणइ सभिरिसि ।
कइंवास विआस विसट्ट विग्गु मच्छि बंधि वद्धओ मरिसि ॥
पु० प्र० सं०, प० ८६, पद्यांक २७६ ।

रूपान्तर (२)

अगह मगह दाहिमौ देव रिपुराइ पयंकर
क्रूर मंत जिन करौ मिले जंबू वै जंगर ।
मो सहनामा सुनौ एह परमारथ सुज्झै
अख्यै चंद वियौ कोई एह न बुज्झै ॥
प्रथिराज सुनवि संभरि धनी इह संभलि संभारि रिसि
कैमास वलिष्ठ वसीठ विन म्लच्छ वध वँध्यौ मरिसि ॥
नागरी प्र० सभा, रासो पृष्ठ २१८२, पद्य ४७६ ।

मूलपाठ (३)

त्रिरिग्ह लक्ख तुपार सबल पासरि अइँ जसु हय
चउदसय मयमत्त दंति गज्जंति महामय ॥
बीस लक्ख पायक्क सफर फारक्क धणुद्धर
ल्हूसडु अरु बलुयान संख कु जाणइ तांह पर ॥
छतीस लक्ख नराहिवइ विहि विनिडिओ हो किम भयउ ।
जइ चन्द न जाणउ जल्हू कइ गयउ कि मूउ कि धरि गयउ ॥
पुरातन प्रबन्ध संग्रह, पृष्ठ ८८, पद्यांक २७७ ।

रूपान्तर (३)

असिय लष्प तोषार सजउ पख्खर सायद्दल ।
सहस हस्ति चवसट्ठि गरूअ गज्जंति महाबल ॥
पंच कोटि पाइक्क सुफर पारक्क धनुद्धर ।
जुध जुधान वार बीर तोन बंधन सद्धन भर ॥

छत्तीस सहस रन नाइबौ विही किम्मान ऐसो कियौ ।
जै चन्द राइ कवि चन्द काहि उदधि वुड्डि कै धर लियौ ॥
नागरी प्र० सभा,रासो पृष्ठ २५०२, पद्य २१६ ।

मूलपाठ (४)

जइत चन्दु चक्कवइ दवे तुह दुसह पयाणउ
धरणि धसविउद्धसइ पडइ रायह भंगाणओ ।
सेसुमणिहिं संकियउमुक्कु हयखरि सिरि खंडिओ ।
तुट्टओ सोहर धवलु धूलि जसुचियतणि मंडिओ ॥
उच्छहरिउ रेणु जसॅग्गगय सुकवि व(जं) लहु सच्चउ चवइ ।
वग्ग इन्दु बिन्दु भुयजु अलि सहस नयण किण परि मिलइ ॥
(पुरातन प्रबंध-संग्रह-पृष्ठ ८८-८६, पद्य २७६)

कवि चंद के द्वारा रचित ये चार पद्य और उनका रासो ग्रन्थ में मिल जाना और भाषा की दृष्टि से भ्रष्ट-रूपान्तर यह निर्विवाद रूप से सिद्ध करता है कि मूल रासो-ग्रंथ, कवि चंद द्वारा अपभ्रंश प्राकृत अथवा देशी भाषा में लिखा गया हो, न कि प्रचलित डिंगल भाषा में। अपभ्रंश-प्राकृत संवत् १००० से १४०० तक भारतवर्ष की साहित्यिक लोक-भाषा थी और इससे इतना तो अवश्य सिद्ध होता है कि रासो का रचना काल वि० सं० १६०० के आसपास नहीं है, पर विक्रम की १२ वीं सदी का प्रतीक है C ।

इन प्राचीन पद्यों का उल्लेख करते पुरातन-प्रबंध के प्रास्ताविक वक्तव्य में मुनि श्री जिनविजय जी सूचित करते हैं कि "यहाँ मैं विद्वानों का एक बात पर ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ और वह बात यह है कि इस संग्रह में पृथ्वीराज और जयचंद विषय के प्रबंधो में से मुझे विदित हुआ है कि चंद कवि रचित पृथ्वीराज रासो नामक हिंदी के सुप्रसिद्ध महाकाव्य के कर्त्ता और काल के विषय में जो कितने ही पुरातत्वविद् विद्वानों का मत है कि यह ग्रन्थ समूल ही

C. सं. टि. रासो ग्रन्थ को १२ वीं शताब्दी विक्रमी का प्रतीक कहना ठीक नहीं है। रासो का मुख्य नायक पृथ्वीराज तृतीय है और जब कि इसकी प्रशंसा में यह ग्रन्थ निर्माण हुआ तो रचनाकाल तैरहवीं शताब्दी विक्रमी होगा।

बनावटी है, और १७ वीं सदी के आसपास बना हुआ है।' यह मत सर्वथा सत्य नहीं है। इस संग्रह के ऊपर कहे हुए प्रकरणों में जो तीन चार प्राकृत भाषा के पद्य उद्धृत किए हुए मिल गये हैं, और उनका पता मैंने रासो में लगाया है और इन पद्यों में से अभी तक विकृत रूप में होने पर भी रासो में मिल गये हैं। इससे यह प्रमाणित होता है कि कवि चंद निश्चित रूप से एक ऐतिहासिक पुरुष था और वह दिल्लीश्वर हिन्दु-सम्राट् पृथ्वीराज का समकालीन और सम्मानित राजकवि था। इसीने पृथ्वीराज की कीर्ति-कलाप का वर्णन करने के लिये देश्य अर्थात् प्राकृत भाषा में एक काव्य की रचना की थी, जो पृथ्वीराज रासो के नाम से प्रसिद्ध हुई।

मैंने इस महाकाय रासो ग्रन्थ के कितने ही प्रकरण इस दृष्टि से बहुत ही मनन के साथ पढ़े, तो मुझे कितनी ही प्रकार की भाषा और रचना पद्धति का भास हुआ। भाषा और भाव की दृष्टि से उसमें कितनेक ऐसे पद्य अलग दिखाई दिये—जैसे छाछ में मक्खन दिखाई देता है..........विदित होता है कि चन्द कवि की मूल कृति बहुत ही लोक-प्रिय बन गई और इसीलिए जैसे २ समय बीतता गया, वैसे २ चारण और भट्ट कवि नये-नये पद्य बना कर जोड़ते गये और इस काव्य का कलेवर बढ़ा दिया। दूसरा कण्ठानुकण्ठ उसका प्रचार होते रहने से मूल पद्यों की भाषा में भी बहुत ही परिवर्तन होता गया और परिणाम में आज कवि चन्द की मूल रचना विलुप्त हो गई प्रतीत होता है। परन्तु कोई भाषा विद्, विचक्षण-विद्वान् यथेष्ट साधन सामग्री के साथ पूर्ण परिश्रम करे, तो इस कूड़ेकर्कट में से रत्न के जैसे रासो के असली पद्य शोध कर उसका पाठोद्धार कर सकता है[1]।

इस प्रकार भाषा की दृष्टि से देखते हुए रासो वर्तमान डिंगल भाषा का काव्य ग्रन्थ नहीं है, पर प्राचीन अपभ्रंश-प्राकृत (देश्य) भाषा का ग्रन्थ है। इसके विश्वास के लिये इस समय की भाषा और साहित्य के साथ तुलना करना आवश्यक है।

(३)

पृथ्वीराज रासो की भाषा और बारहवीं शताब्दी का भाषा साहित्य

अपभ्रंश-प्राकृत (देश्य भाषा का समय—

पृथ्वीराज रासो की भाषा की दृष्टि से तुलना करने के पूर्व अपभ्रंश भाषा का ऐतिहासिक दृष्टि से समय देख लेना अत्यावश्यक है, क्योंकि इस बोल-चाल

---

१. देखिये—'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' पृष्ठ ८ से १०।

की लोक भाषा से ही आज की वर्तमान प्रांतीय भाषाओं–गुजराती, हिन्दी, मराठी बंगला आदि–का जन्म हुआ है। भाषातत्वज्ञों का मन्तव्य है कि विक्रम की तीसरी शताब्दी में प्राकृत को, लोक-भाषा के बोलचाल के स्थान से पदच्युत कर, अपभ्रंश ने साहित्यिक-अपभ्रंश का रूप धारण किया[1]। इस प्रकार समय की दृष्टि से साहित्यिक अपभ्रंश का शैशवकाल विक्रम की तीसरी शताब्दी, किशोर-काल विक्रम की चौथी शताब्दी और पाँचवी शताब्दी के पीछे से ही, उसका विकसित यौवनकाल माना जा सकता है।

इस अपभ्रंश के यौवनकाल का प्रबल प्रभाव और प्रचार केवल अकेले राजस्थान में ही नहीं हुआ था, पर समस्त उत्तर भारत में पश्चिम से लेकर पूर्व में मगध तक और गुजरात सौराष्ट्र आदि प्रदेशों में था; जिनका अस्तित्व ठेट विक्रम की चौदहवीं शताब्दी तक रहा है।

अपभ्रंश का आभूषण—

इस प्रकार जब से प्राकृत बोलचाल की भाषा ही नहीं रही, तब से अपभ्रंश का आविर्भाव हुआ[2]। यह भाषा जब तक जन साधारण में बोलचाल में व्यवहृत थी; तबतक यह देश्य भाषा अथवा देशी भाषा कही जाती थी। परन्तु जब से उसका साहित्य में व्यवहार होने लगा, तब से वह अपभ्रंश प्राकृत के रूप में पहचानी जाने लगी, जिसका उपयोग विशेषकर जैन, बुद्ध और सिद्ध शाखाओं के विद्वानों ने किया है और इसका साहित्य भी विपुल है। अन्त में इतना ही कहना है कि इस समय में अपने देश में सर्वत्र एक ही भाषा थी, जो अभी केवल मात्र साहित्य में ही सुरक्षित है। इस प्रकार अपभ्रंश अखंड भाषा है और वह इस समय की राष्ट्रभाषा है[3] जो संस्कृत और प्राकृत की एक तीसरी बहिन है। इन तीनों बहिनों में पारस्परिक सद्भाव और प्रगाढ़ संपर्क होने से एक की शोभा दूसरी और दूसरी की शोभा तीसरी में दिखाई देती है। ऐसा होने से ही ललित विस्तार के प्राञ्जल संस्कृत-प्रवाह में इन अपभ्रंश पद्यों की शोभा ओत-प्रोत हो गई है।

---

१. देखिये–'गुजराती भाषा की उत्क्रान्ति' पृष्ठ १७२, अध्यापक श्री बेचरदास दोसी कृत, बंबई युनिवरसीटी द्वारा प्रकाशित।

२. देखिये–हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कृत ना. प्र. स. द्वारा प्रकाशित।

३. देखिये–गुजराती भाषा की उत्क्रान्ति पृष्ठ १७६।

भाषा के सौष्ठव के लिए ऐसी शोभा का सब कोई आश्रय लें यह जानी हुई बात है। इसका नमूना इस प्रकार है:—

निष्कान्तु शरो यद विदु बोधिसत्वो
नगर विबुद्ध कपिलपुर समग्रम् ॥
मन्यन्ति सर्वे शयनगतो कुमारो
अन्योन्य हृष्टाः प्रमुदित आलभन्ते ॥
ललित विस्तार अभिनिष्क्रमण परिवर्त पृ० २२९-३०

मुक्ताहार विहारसार सुबुवा अब्धा बुधा गोपनी
सेतं चीर सरीर ? गहिरा गौरी गिरा जोगिनी ।
वीना पानी सुबानि जानि दधिजा हंसारसा आसिनी
लंबोजा चिहुरार भार जघना विघ्ना घना नासिनी ॥
असली रासो पद्य २

देश्य भाषा के लक्षण

इस प्रकार संपत्तिशालिनी संस्कृत भगिनी के आभूषण अपभ्रंश नें बड़ी उदारता से अपना लिये, जो लोकव्यापक बने हुए थे, इससे रासो की भाषा में होने वाला संस्कृत भाषा का आभास भाषा-दूषण नहीं, प्रत्युत उसकी शोभा है। यह लोक भाषा जनता में 'देशी' अर्थात् देश्य भाषा के नाम से पहचानी जाने लगी, जिसका 'देसी सद्द संगहो' नामक अपने रचे हुए शब्दकोष में आचार्य हेमचन्द्र सूरि इस प्रकार उल्लेख करते हुए देशी भाषा का लक्षण बताते हैं—

देस विदेस पसिद्धीइ भण्णमाणणा अणंतया हुंति ।
तम्हा अणाइ पाइय पयट्ट भासा विसेसओ देसी ॥

[अर्थात् 'अमुक शब्द अमुक देश में प्रसिद्ध है, अतः वह देशी है' ऐसा विचार कर भिन्न२ देश, प्रसिद्ध शब्दों का संग्रह करें तो यह नहीं हो सकता। क्योंकि ऐसे शब्द अनन्त हैं। इसलिये अनादि काल से चलती आई हुई विशेष प्रकार की प्राकृत भाषा को ही यहाँ देशी के रूप में समझना चाहिए।]

ऊपर लिखे अनुसार बारहवीं शताब्दी में आचार्य हेमचन्द्र सूरि ने देशी भाषा का उल्लेख किया, तदनुसार 'विशेष प्रकार की प्राकृत' यह संकेत स्पष्टतया

अपभ्रंश प्राकृत के लिये ही किया गया है। इससे स्पष्ट विदित होजाता है कि देश्य अर्थात् देशी भाषा यह कोई दूसरी भाषा नहीं, पर अपभ्रंश प्राकृत है, जिसका व्यवहार ठेठ १२ वीं शताब्दी में भी प्रचलित था, जिससे गुजराती हिन्दी आदि प्रान्तीय भाषाओं का जन्म हुआ है।

प्रान्तीय भाषाओं का प्रारम्भिक काल

इस प्रकार इतना तो अनुभव किया जा सकता है कि उस समय केवल संस्कृत और प्राकृत भाषा के विद्वान् ही केवल काव्य-रचना नही किया करते थे- पर जनसाधारण की बोली में गीत, दोहे, आदि साहित्य में प्रचलित थे और ऐसी काव्य-रचना ठेठ राज सभाओं तक भी पहुँच गई थी। उस समय राज सभाओं में दो प्रकार की अलग २ मंडलियाँ बैठती थी। एक संस्कृत पंडितों की और दूसरी भाषा के विद्वानों की।[१] इसलिये इस समय में जनसाधारण की भाषा में काव्य रचना होती थी इसमें शंका का कोई स्थान नहीं है। इस प्रकार राजसभा में में सुनाये जाने वाले श्रृँगार और नीति आदि के पद्य दोहों में बनाये जाते थे और वीर रस छप्पय में। जैनी कवि विशेषकर राज्याश्रत होते थे। ये राज्याश्रित कवि अपने २ राजाओं के शौर्य, प्रताप, और पराक्रम का वर्णन अनोखी उक्तियों के साथ अपभ्रंश प्राकृत में करते थे। अतः ऐसे राज्याश्रित कवियों की कविता सुरक्षित रखने की विशेष सुलभता भी थी और उसकी परंपरा ब्रह्मभट्ट एवं चारण कवियों ने साहित्य में बचा रखी है। इससे इस रक्षण परंपरा की साहित्य-सामग्री अपनी २ प्रान्तीय भाषाओं के प्रारंभिक काल में विपुल रूप से प्राप्त होती रही है।

बारहवीं शताब्दी का साहित्य

भारत के इतिहास का यह वही समय था, जब कि पश्चिमोत्तर दिशा से मुसलमानों के सतत आक्रमण हुआ करते थे, जिसका प्रभाव विशेषकर पश्चिम के राज्यों पर होता था। ऐसे युद्ध-काल की अवस्था में काव्य या साहित्य के भिन्न भिन्न अगों की पूर्ति और समृद्धि का सामूहिक प्रयत्न सर्वथा कठिन बन गया था। उस समय तो मेघों की गर्जना के समान शौर्य रस पूर्ण काव्य तथा वीर गाथाओं की उन्नति संभव थी। फलतः ऐसी शौर्य गाथाओं से साहित्य के इतिहासमें दो स्वरूप

---

१. देखिये—राजशेखर सूरि कृत 'काव्य मीमांसा।'

होगये । एक छूटे मुक्तक के रूप में, दूसरा प्रबंध-काव्य के रूप में । साहित्य की गणना में इन मुक्तकों को फुटकर काव्य-रचना के रूप में जानते हैं, जब कि साहित्यिक प्रबंध-रचना के रूप में जो सबसे प्राचीन ग्रन्थ मिलता है, वह यही पृथ्वीराज रासो है,[१] जिसके मूल-पद्य पूर्व पृष्ठों पर अंकित किये गये हैं । इस प्रकार सामयिक साहित्य की दृष्टि से जो सामान्य मुक्तकों एवं काव्यो में रचना मिलती है, उनकी की दृष्टि से नमूने इस प्रकार हैं—

भल्ला हुआ जु मारिया, बहिणि महारा कन्तु ।
लज्जेजं तु वयंसि अहु, जइ भग्गा घर एन्तु ।।

हे बहन ! अच्छा हुआ कि मेरा कन्त मारा गया । यदि वह भागकर मेरे घर आता तो मुझे सहेलियों में लज्जित होना पड़ता ।

जइ सो न आवइ दुइ घरु काइँ अलोहोमुहु तुज्झु ।
वयणु ज खंडइ, सहि ए, सो पिउ होइ न मुज्झु ।।

······! वे घर नहीं आते तो तेरा मुख ऐसा (उदास) क्यों होता । सखि ! जो वयन (वचन) भंग करता है, वह मेरा पति नहीं । श्लेष में दूसरा अर्थ—इस प्रकार का पति मुख को चुम्बन द्वारा क्षत करता है, वह मेरा प्रिय नहीं ।

जे महु दिएणा दिअहड़ा—दइएँ पवसंतेण ।
ताण गणंतए अंगलिउँ जज्जरियाउ नहेण ।।

प्रियतम ने प्रवास में जाते समय जितने दिन दिये थे (बताए थे) उनको गिनते-गिनते मेरी अंगुलियां जर्जरित होगई (घिस गई) ।

ये दोहे 'हेमचन्द्र शब्दानुशासन' नामक विख्यात जैन आचार्य हेमचन्द्र सूरि के व्याकरण ग्रन्थ के हैं, जिसका रचना काल संवत ११९९ से १२३० के बीच होना चाहिए । इसके अतिरिक्त संवत १२६१ में होने वाले प्रसिद्ध जैनाचार्य मेरुतुंग रचित भोज-प्रबंध' नामक ग्रन्थ में प्रयुक्त अपभ्रंश के नमूने वह इस प्रकार हैं—

झाली तुट्टी किं न मुउ, किं हुएउ छरपुंज ।
हिंदइ दोरी बधीयउ, जिमि मंकड़ तिम मुंज ।।

---

१. देखिये—देश्य भाषा काव्य—हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ २५ से २६

टूट पड़ती आग (बिजली) में क्यों न मरा? (तुझ पर बिजली क्यों न पड़ी?) क्षार-पुञ्ज क्यों नहीं बन गया (तेरी राख की ढेरी क्यों नहीं होगई?) डोरी से बाँधे हुए बंदर के समान ही मुञ्ज तू है।

मुंज भणइ मुणालवइ, जुव्वण गमु न झूरि
जइ सक्कर सय खंड थिय तोइ समीठी चूरि ॥

मुंज कहता है—हे मृणालवति! बीते हुए यौवन के लिये पश्चात्ताप नहीं कर। जैसे शक्कर को तोड़ने पर सौ टुकड़े हो जाते हैं, तो भी उसमें उसकी मिठास तो ज्यों की त्यों रहती है।

जा मति पच्छइ संपजइ, सामति पहली होइ।
मुँज भणइ मणालाइ! विघन न वेढइ कोइ ॥

मुञ्ज कहता है कि हे मृणालिनि! जो मति पीछेसे आती है, वह जो पहले ही सूझती हो तो किसी पर आपत्ति या विघ्न नहीं आ सकते।

इसके पीछे की काव्यरचना आचार्य श्री हेमचन्द्र सूरि रचित 'देसी सद्द संगहो' नामक ग्रन्थ है, जिसमें ग्रन्थकर्त्ता ने संस्कृत काल के पीछे के उस युग के गुजरात में प्रचलित प्राकृत-भाषा के शब्दों का संग्रह किया है। अतः भाषा संबंधी दृष्टि से प्रस्तुत ग्रन्थ ऐतिहासिक महत्त्व का है, जिसकी काव्य रचना इस प्रकार है—

किं रिद्धि पत्ता पिसुणा जे पणइणो वि तावित्ति।
कवय-कलंबूउ वर कमिय-करोडोण दिंति जे छाहिं ॥ १३१ ॥

जो स्नेहियों को भी सन्तप्त करते हैं वे ऋद्धि को प्राप्त पिशुन—हरामखोर किस काम के हैं? इसकी अपेक्षा तो बिल्ली का टोप और नलिका नाम की बेल अच्छी है कि अपने पास में आई हुई कीड़ियों को भी छाया देती हैं।

भक्खंतेण गोमं णत्था रहिअ-वसहेण व समग्गं।
णव्व! तए णोव्वाणं अन्नाण बि भंजिओ मग्गो ॥ २८५ ॥

गाँव के मुखिये? बिना नाथ के साँढ़-बैल के समान सम्पूर्ण गाँव का भक्षण करते हैं वे अन्यान्य का मार्ग भी अवरुद्ध कर देते हैं।

दृच्छतवं केण कयं दंते सहि दरदयम्पि को पडिओ ।
जो दंडिमंडियउरो सदसेर दवसरं तुम रमइ ॥ (३००)

हे सखि ! दाँतों से तीदण तप किसने किया है ? आधे पानो में कौन पड़ा है ? जो कनक सूत्र से (सोने के डोरे से) शोभित हृदयवाला, सोने के डोरे वाली और गद्-गद् स्वरवाली तुझ से रमण करता है ।[1]

इसके बाद तीसरी काव्य रचना का नमूना वि० सं० १२४१ का है, जिसके रचयिता राजगच्छीय वज्रसेन सूरि के शिष्य सूरि श्री शालिभद्र जी हैं । इस काव्य का नाम 'भरतेश्वर बाहुबलि रास' है, जिसकी हस्तलिखित प्रति विजय धर्म सूरि भंडार, बड़ादा सेन्ट्रल लाइब्रेरी में है।

रिसह जिणेसरपय पणमेवी, सरसति सामिणि मनि समरेवी
नमवि निरंतर गुरु चरण ।
भरह नरिंदह तणउ चरित्तो जे जगि वसुहींडो वदोतो ।
वार वरसि बिहुँ बधवहँ ॥ १ ॥
हउ हिव ए भणिसु रासह छंदिहि, तं जहमणहर मण आणं दिहि ।
भावइं भवीयण सांभणउ ।
जंबूदीवि उवारा उर नयरो, धण कण कचणिहिं पक्रो ।
अवर पवर कि हि अमर पुरो ॥ २ ॥

इस प्रकार १२ वीं शताब्दी के अंतिम और १३ वीं शताब्दी की प्रारंभिक काव्य रचना के साथ रासो की प्राचीन काव्यभाषा को तुलना करने पर उसमें कुछ विशेष तुलनात्मक दृष्टि से फेरफार नहीं दिखाता । पर उल्टी स्वाभाविक समानता दिखाई देती है, जो रासो की प्राचीनता को प्रामाणित करती है और मुनि श्री जिनविजयजी के कथन में रहा हुआ सत्य, प्रामाणिकता के रूप में दिखाई देता है कि रासो मूल अपभ्रंश प्राकृत या देश्य भाषा की रचना है, जो उस समय साहित्य एवं बोलचाल की लोकव्यवहारी भाषा थी। इसके अतिरिक्त रासो की प्राचीन प्रतियों में जहाँ कहीं संस्कृताभाव कराने वाले स्तुति पद्यादि खाई देते, हैं जो भाषा या व्याकरण की दृष्टि से कोई विकृति नहीं है ।

---

१. देखिये—'देशी सद्द संग हो' । अध्यापक बेचरदास दोशी द्वारा सम्पादित, फार्बस् गुजराती-सभा द्वारा प्रकाशित ।

परन्तु अपभ्रंश प्राकृत अर्थात् देश्य भाषा की काव्य रचना की एक प्राचीन-विशिष्टता और शोभा है। यह शोभा केवल रासो-ग्रन्थ में ही नहीं है, पर अन्य अपभ्रंश प्राकृत साहित्य के ग्रन्थों में भी है, जिसका उल्लेख 'ललित विस्तार' के प्रमाण के साथ पहले करके बता दिया है।

रासो की भाषा और उसका रचना काल—

इस प्रकार समसामयिक काव्य का अवलोकन कर उसकी भाषा को रासो की भाषा के साथ तुलना करने पर उसमें विशेष अंतर नहीं दिखाई देता और इससे इतना तो निर्विवाद रूप से निश्चित होता है कि पृथ्वीराज रासो की रचना कविचन्द ने वर्तमान समय में प्रचलित डिंगल या पिंगल में से उत्पन्न ब्रजभाषा में नहीं की, पर संवत् १२०० के आसपास जन साधारण में प्रचलित साहित्यिक भाषा-अपभ्रंश प्राकृत अर्थात् देश्य भाषा में होनी चाहिये, जिसका वैज्ञानिक ढंग से डॉ० दशरथ शर्मा एम्. ए. डि. लिट. तथा प्रो० मीनाराम रंगा एम्. ए. ने रासो के पद्यों को अपभ्रंश में परिवर्तित करके समर्थन किया है।[1] उसके प्रमाण में मुनि श्री जिनविजय जी द्वारा संशोधित 'पुरातन प्रबंध संग्रह' के पद्य हैं। रासो की भाषा भ्रष्ट है'-ऐसा कहने वाले—इतिहासकार न तो पुरातन भाषाविद् हैं और न प्राचीन साहित्य के विद्वान् E। अतः इनका भाषा संबंधी कथन सर्वथा निर्मूल और निराधार है इससे उनके कथन को सत्य रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता।

इस संपूर्ण विवरण से स्वयं सिद्ध होता है कि रासो की भाषा अपभ्रंश-प्राकृत अर्थात् देश्य है, जो यह सिद्ध कर देता है कि 'पृथ्वीराज रासो' की रचना कवि-चंद ने शताब्दियों पूर्व, मुगल साम्राज्य की संस्थापना के पूर्व, अन्तिम हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज चौहान के शासन काल में की थी। सम्राट पृथ्वीराज चौहान के शासन-काल में संवत् १२२५ से १२४६ है। अतः रासो की रचना कविचन्द ने

---

१. देखिये-राजस्थान भारती भाग १, अंक १।

E स० टि:—'पुरातन प्रबन्ध' में दिये हुए चार पद्यों का रूप अवश्य ही प्राचीन है और उन्हीं पद्यों का रासो में दिया हुआ रूप भिन्नता लिये हुए हैं। अतएव स्पष्ट ही रासो की भाषा आक्षेप-युक्त बन गई है। ऐसी अवस्था में किसी भी आलोचक को हेय दृष्टि से देखना नीति संगत नहीं कहा जा सकता। प्रायः रासो के सब ही समर्थकों ने भी वर्तमान रासो को प्रक्षिप्तांश से भरा हुआ माना है, जो उसकी वास्तविकता के लिये घातक ही है।

१२४६ के पूर्व की होनी चाहिए, जिसका प्रमाण सं० १२९० में 'पुरातन प्रबंध संग्रह' में लिखे हुए चंद कृत रासो के पद्य हैं।

(४)

रासो और सुर्जन चरित ऐतिहासिक काव्य

सत्य पर डाला हुआ तिमिरावरण—

पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिकता और प्राचीनता का सबसे प्रबल प्रमाण देनेवाला ऐतिहासिक संस्कृत महाकाव्य 'सुर्जन चरित' है, जिसकी रचना बंगाली कवि चन्द्रशेखर ने वि० सं० १६३५ में की है। इस काव्य का विषय-विश्लेषण और सारांश डा० दशरथ शर्मा एम्.ए०. ने नागरी प्रचारिणी पत्रिका में प्रकट किया है।

इस संस्कृत महाकाव्य की ऐतिहासिकता सर्वत्र प्रसिद्ध है और उसकी प्रामाणिकता रासो के विरोधी मतवाले श्री गौरीशंकर जी ओझा ने भी स्वीकार की है।[1] अतः इस सम्बन्ध में शंका के लिये कोई स्थान नहीं है। क्योंकि उसमें दी हुई चौहानों की वंशावली अपनी वंशावली से मिलती आ रही है। इसके लिये वे मौन धारण कर गये हैं। अतः अब 'सुर्जुन चरित' में लिखी हुई रासो संबंधी घटनाओं चन्द कवि का तथा का उसके रचयिता द्वारा किया हुआ उल्लेख देखना चाहिए।

'सुर्जन चरित' में कविचद का स्पष्ट उल्लेख —

सुजन चरित महाकाव्य बीस सर्गों से लिखा गया है। उसका नायक इतिहास प्रसिद्ध श्री हम्मार के वंशज राव सुर्जनहाडा हैं,जो अकबर के समय में रणथभोर का राजा था। इस काव्य में हाड़ा चौहानों की वंशावली दी हुई है। उसका वर्णन सातवें सर्ग से प्रारम्भ होता है, जो पुरोहित के द्वारा किया गया है, जिसमें चाहमान अथवा चौहान की उत्पत्ति ब्रह्मा के यज्ञ कुंड से बताई गई है। इसके पश्चात् दसवें सर्ग में पृथ्वीराज का उल्लेख किया गया है। उसमें उसे विभूति का इच्छुक बताया गया है। इसी सर्ग के ११ वें श्लोक से कान्य कुब्जेश्वर की पुत्री के साथ पृथ्वीराज के प्रेम का वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् पृथ्वीराज अपने वन्दिराज कवि चद को प्रधान बनाकर कन्नौज जाता है। वहाँ उसका गंगातट

---

1. देखिये—'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' भाग १०, अंक १–२।

पर संयोगिता के साथ मिलाप होता है। इसके पीछे पृथ्वीराज संयोगिता अपहरण कर दिल्ली लौट आता है। पीछे२ आते हुए शत्रु-सैन्य को उसके सामन्त रोक रखते हैं और अन्त में वह सुरक्षित दिल्ली में प्रवेश करता है। यह वर्णन १२८ वें श्लोक में पूरा होता है। इसके बाद १२९ वें श्लोक से उसके दिग्विजय के वर्णन का का आरम्भ होता है, जिसमें पृथ्वीराज म्लेच्छराज शहाबुद्दीन को २१ बार हराता है और पकड़ कर छोड़ देता है। अन्त में पृथ्वीराज हारता है और उसे शाहबुद्दीन पकड़ कर गजनी लेजा कर उसकी आँखे फुड़वा कर नेत्र-हीन बना देता है। इस बात को जानकर पृथ्वीराज का बन्दीराज कविचंद गजनी जाता है। वहाँ शब्द भेदी बाण का प्रयोग कर शाहबुद्दीन का पृथ्वीराज द्वारा खून करवाता है। यह वर्णन १६८ वें श्लोक में पूरा होता है। तत्परचात पृथ्वीराज के पुत्र प्रह्लाद का वर्णन आता है। F.

इस प्रकार 'सुर्जन चरित' काव्य में और रासो की बीकानेर कोट लाइब्रेरी की प्रति में कुछ भी विशेष अंतर नहीं पड़ता। उल्टा रासो में उल्लेखित घटनाओं का ऐतिहासिक सत्य को सम्पूर्ण समर्थन मिलता है।...इसके अतिरिक्त 'सुर्जन चरित' और बीकानेर की प्रति में यह बात भी स्पष्टतया स्पष्ट होजाती है कि चौहान वंश की उत्पत्ति ब्रह्मा के यज्ञ-कुंड से होती है और इन दोनों काव्यों में दी हुई चोहानों की वंशावली भी एक समान है अतः यही स्पष्ट कर देता है कि रासो एक सत्य ऐतिहासिक ग्रन्थ है।

रासो के विरोधी मतवाले संयोगिता-हरण और पृथ्वीराज तथा जयचन्द के बीच होनेवाली घटनाओं को अनैतिहासिक बतलाते हैं, जो उपर्युक्त रासो युद्ध की प्रति तथा 'सुर्जन चरित' काव्य ऐतिहासिक सत्य घटनाओं का होना सिद्ध करते हैं। अतः इन घटनाओं में भी शंका का कोई स्थान नहीं रहता, पर ऐतिहासिक सत्य दीपक के समान स्पष्ट दिखाई देता है।

---

१. देखियेः नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ४६ अंक ३।

F सं० टि०—श्री ओझाजी के मत से रासो ग्रन्थ की रचना वि० सं० १६०८ के आस-पास की है एवं सुर्जन चरित वि० सं० १६३५ में निर्मित हुआ। इस बात को देखते हुए 'रासो' सुर्जनचरित के पूर्व की रचना है, एवं उसमें कन्नौज युद्ध, शहाबुद्दीन गोरी के साथ २१ युद्ध करना, अंतिम युद्ध में पराजय प्राप्त करना, शहाबुद्दीन का पृथ्वीराज को बंदी करके

(५)

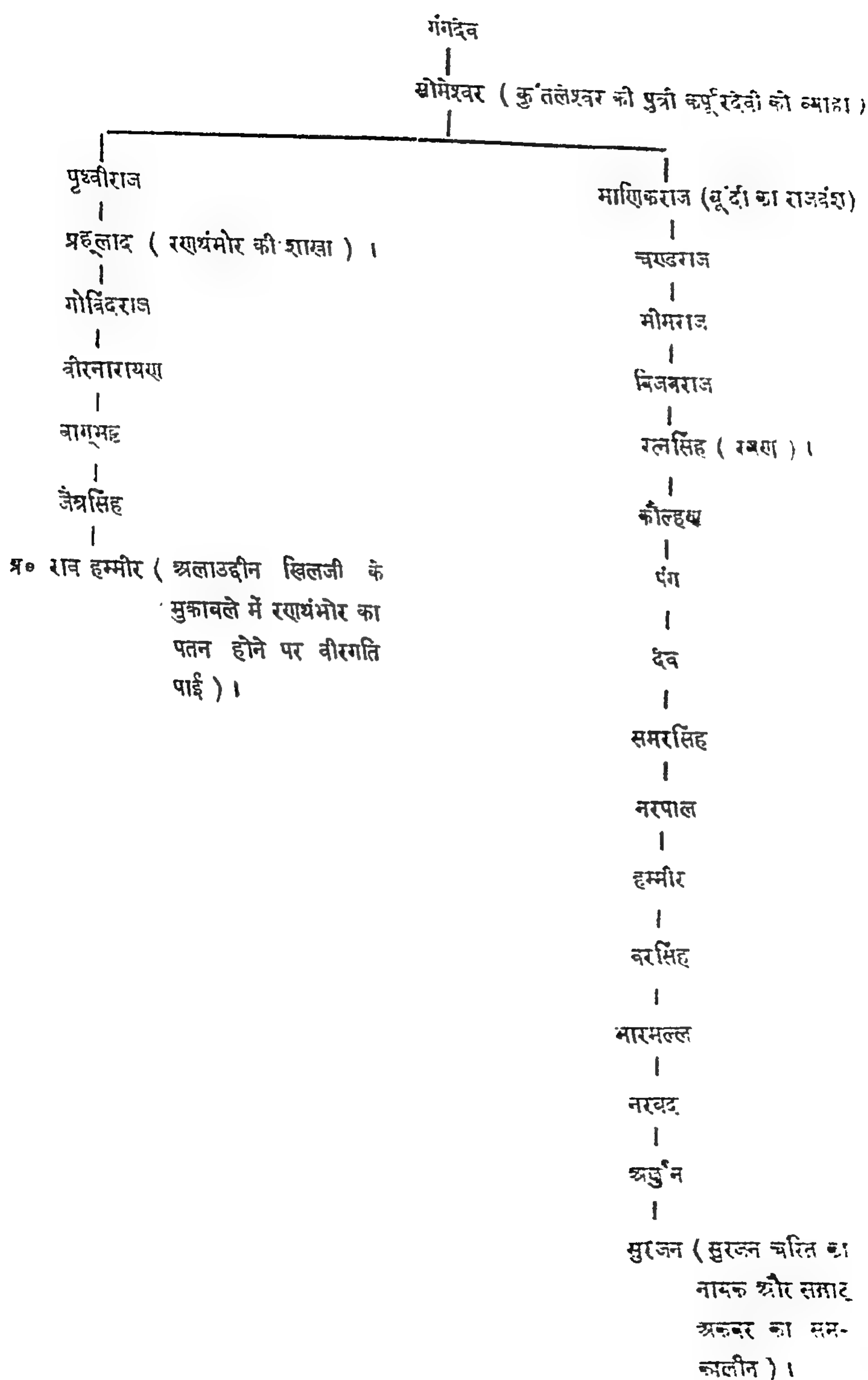
रासो का महोबा समय और लोकवाणी में जीवित आल्हा

पृथ्वीराज रासो के महोबा समय (सर्ग) में आने वाली कथा की प्रामाणिकता और ऐतिहासिकता का प्रबल प्रमाण लोक गीतों में जीवित आल्हाखण्ड है।

गज्जनी लेजाना, वहां नेत्र विहीन होना, चंद का गजनी जाना, बाणवेध का कर्त्तव दिखलाने के बहाने शहाबुद्दीन को मारने तथा चंद और पृथ्वीराज की मृत्यु का उल्लेख रासो की छाया ही होना चाहिये। श्री ओझाजी ने अपने निबंध में सुर्जनचरित को दो स्थानों पर ग्रहण किया है, एक प्राचीन वंशावली के परीक्षण में और दूसरा सोमेश्वर का विवाह कुंतल देश की राजकुमारी से होने के समर्थन में—

> शकुन्तलाभां गुणरूपशीलैः
> सकुन्तलानामधिपस्य पुत्रीम् ।
> कर्पूरधारां जनलोचनानां
> कर्पूरदेवीमुदुवाह विद्वान् ॥ ४ ॥ सर्ग ६ ।

जो प्रसङ्ग वशात ही है। सुर्जनचरित सम्बन्धी प्राचीन इतिहास सारा ही प्रामाणिक हो, कोई भी नहीं कह सकता है। वंशावली के नामों में उन्होंने स्पष्ट रूप से शिलालेखों आदि की वंशावली से केवल सात नाम ही मिलना बतलाया है। डा० दशरथ शर्मा डी० लिट् ने सुर्जन चरित श्री ओझाजी से ही प्राप्त किया और वे उस पर मन्त्र मुग्ध होगये हैं तथा आरंभ में ही उन्होंने सुर्जनचरित की परीक्षा में लिखा है-"महाकाव्य के नायक इतिहास प्रसिद्ध श्री हमीर के वंशज राव सुर्जन हाड़ा हैं"। (ना० प्र० प० बनारस न० सं०, वर्ष ४६, सं० ३ पृ० २०५, कार्तिक सं० १६६८)। यह कथन सुर्जनचरित के कथन से ही बिल्कुल विपरीत है। उपर्युक्त का० प्र० पत्रिका में प्रकाशित डा० शर्मा के लेख से हमने महा० पृथ्वीराज चौहान (तृतीय) की वंशावली का मिलान किया तो प्रकट हुआ कि बूंदी का राव सुर्जन पृथ्वीराज के पुत्र प्रल्हाद का वंशधर न होकर सोमेश्वर के छोटे भाई माणिक्यराज का वंशधर था और सुर्जन तक निम्न पीढ़ियें हुई—


गंगदेव
सोमेश्वर (कुंतलेश्वर की पुत्री कर्पूरदेवी को ब्याहा)
पृथ्वीराज
प्रह्लाद (रणथंभोर की शाखा) ।
गोविंदराज
वीरनारायण
वाग्भट्ट
जैत्रसिंह
प्र० राव हम्मीर (अलाउद्दीन खिलजी के मुकावले में रणथंभोर का पतन होने पर वीरगति पाई) ।
माणिकराज (बूंदी का राजवंश)
चण्डराज
भीमराज
विजयराज
रत्नसिंह (रतन) ।
कोल्हण
पंग
देव
समरसिंह
नरपाल
हम्मीर
वरसिंह
भारमल्ल
नरबद
अर्जुन
सुरजन (सुरजन चरित का नायक और सम्राट् अकबर का समकालीन) ।

बूंदी के प्रसिद्ध महाकवि श्री सूर्यमलजी मिश्रण ने रासो की कथा को अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ वंशभास्कर में ग्रहण करते हुए सबसे प्रथम पृथ्वीराज रासो के रचनाकार महाकवि चन्द के वर्णन-विषय में उल्लेख किया है, जो पठनीय है। उसके पीछे कविराजा मुरारिदान और श्यामलदासजी ने रासो का मनन कर अपना मत प्रकट किया है। मानलें कि चारण कवि और भट्ट कवियों के बीच दीर्घकालीन वैमनस्य रहा हो, इसलिये दुराग्रह वश रासो को जाली ग्रन्थ मान लिया हो। किन्तु प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता कर्नल टॉड को तो कोई दुराग्रह नहीं था, फिर उसने रासो के उल्लिखित सम्वतों के लिए क्यों शंका की? आज से ८५ वर्ष पूर्व अंग्रेज विद्वान् डा० बूलर को काश्मीर से पृथ्वीराजविजय महाकाव्य की भोजपत्र पर लिखित प्राचीन प्रति प्राप्त हुई। उसको पढ़कर तो उपर्युक्त विद्वान् की रासो पर से एक बार ही श्रद्धा मिट गई। इसके बाद विद्वानों में वाद-विवाद प्रत्यक्ष रूप से होने लगे और स्व० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या ने रासो के समर्थन में कलम उठाई। नागरी-प्रचारिणी सभा बनारस से रासो छपना प्रारम्भ हुआ और यह सब की मान्यता होगई कि क्षेपकांश अधिक मिल जाने से रासो का रूप विकृत होगया है। उदयपुर के बाबू रामनारायण दूगड़ (स्वर्गीय) ने भी मनन पूर्वक रासो की कथाओं पर विचार कर अपने 'पृथ्वीराजचरित्र' ग्रन्थ की भूमिका में उस पर प्रकाश डाला है। सन् १९२० तक रासो पर श्री ओझाजी के कोई विचार प्रकट नहीं हुए; क्योंकि यह सम्पूर्ण रूप से मनन का विषय था। उन्होंने रासो के प्रमाण में प्रस्तुत पट्टे-परवानों तथा रासो की कथाओं, भिन्न-भिन्न विद्वानों के कथनोपकथन पर विचार करते हुए 'अनंद विक्रम संवत् की कल्पना' और 'पृथ्वीराज रासो का निर्माण काल' शीर्षक लेखों में इस विषय पर विशद प्रकाश डाला, जिससे रासो के विषय में अधिक खोज की प्रवृत्ति आरम्भ हुई। निःसन्देह यह शुभ चिह्न है और सिद्ध हो गया है कि रासो वर्तमान रूप में न था।

सुर्जन-चरित की सारी कथाएं इतिहास की कसौटी पर ठीक-ठीक बैठती हैं या नहीं; पर उसने पृथ्वीराज की माता कर्पूरदेवी को कुंतलेश्वर की पुत्री बतलाया है, जिसको पृथ्वीराज-विजय महाकाव्य और हंमीरमहाकाव्य भी मानते हैं। यह बात किसी प्राचीन पुस्तक के आधार पर ही होगी, जिसको सुर्जन चरित के रचनाकार ने ग्रहण किया। वंशभास्कर की रचना के समय तक यह ग्रन्थ अन्धकार में ही विलुप्त रहा, इस कारण से वंशभास्कर के रचनाकार स्व० श्री सूर्यमलजी भी बड़वाओं की वंशावलियों पर ही निर्भर रहे और उन्होंने ख्यातों की उल्लिखित वंशावलियों को स्थान दिया। नीचे हम वंश भास्कर से सांभर-अजमेर तथा हाड़ा नरेशों की वंशावली उद्धृत करते हैं, जिससे विद्वान् स्वयं निर्णय करेंगे कि पंड्याजी ने पृथ्वीराज

रासो की संरक्षा में हाडा नरेशों की वंशावलियों आदि पर बल दिया है, वे कितनी उपयोगी हैं और क्या वे इस शोध के युग में इतिहास की कसौटी पर कसी जाने पर मान्य हो सकेंगी ?

सोमेश्वर

१.४६ भरत (सांभर और अजमेर की शाखा)।	(१.४५) १.४६ उग्र
१.४७ युद्धेष्ट	चन्द्रपानी
१.४८ महीसिंह	१.४७ देवकीनन्दन
१.४९ सिंह	१.४८ जसोदानन्दन
१.५० चंद्रगुप्त	१.४९ नन्दनन्दन
१.५१ प्रताप	१.५० केशवराज
१.५२ देवीसिंह	१.५१ मोहन
१.५३ सिंहवर	१.५२ समुद्रराज
१.५४ मोहकुर	१.५३ गोपाल
१.५५ रत्नसिंह	१.५४ सोमचंद्र सुबाहु (आसेन)।
१.५६ सेनराज	१.५५ भानुराज (अनियपाल
१.५७ संप्रतिराज	१.५६ चंडकिरण (इसके ४ नाम थे)
१.५८ नागहस्त	१.५७ सैन्यपाल (लोकपाल)
१.५९ स्थूलानंद	१.५८ इन्दुगलय

१६० लौहधार
|
१६१ धर्मसार
|
१६२ वैरिसिंह
|
१६३ विवुधसिंह
|
१६४ मोगसृग
|
१६५ चंद्रगाज
|
१६६ कृष्णगाज
|
१६७ हरिराज
|
१६८ विल्हनराज
|
१६९ पृथ्वीराज (ढिढ्ढ्र)
|
१७० धर्माधिराज
|
१७१ बीसलदेव
|
१७२ सारंगदेव
|
१७३ अन्नलदेव (विग्रहराज)
|
१७४ जयसिंहदेव
|
१७५ आनन्द
|
१७६ सोमेश्वर
|

१५६ दामोदर
|
१६० नृसिंह
|
१६१ हरिवंश
|
१६२ हरिजस
|
१६३ सदाशिव
|
१६४ रामदास
|
१६५ रामचन्द्र
|
१६६ भागचन्द्र
|
१६७ रूपचन्द्र
|
१६८ मंडन
|
१६९ आत्माराम
— १७० आनन्दराज
— जयराज (सोमेश्वर का आश्रित)

१७० आनन्दराज
— १७१ हंमीर
— गंभीर

गंभीर
|
१७२ रणधबल
|
१७३ सरदार
|
१७४ जोधराज (६ नाम)
|
१७५ रत्नसिंह (रैंनसी)
|

१७७ पृथ्वीराज १
|
१७८ रेणसी (रत्नसिंह)
२ सामंतसिंह (रणथंमोर की शाखा)
|
३ जयमल
|
४ सोमराज
|
५ सूरराज
|
६ जैत्रराज
|
७ राव हम्मीर
|
रत्नसिंह

१७६ कोल्हन
|
१७७ आशुपाल
|
१७८ विजयपाल
|
१७६ बंगदेव
|
१८० देवीसिंह
|
१८१ समरसिंह
|
१८२ नरपाल — हरपाल
|
१८३ हंमीर (हामा)
|
१८४ वरसिंह
|
१८५ वैरिसाल
|
१८६ सुभांडदेव (भारमल) — नरवद
|
१८७ नारायणदास — अर्जुन
|
१८८ सूर्यमल — सुर्जन
|
१८६ सुरताण

इस वंशभास्कर के वंशवृक्ष से तो स्पष्टतः प्रकट है कि रणथंभोर का प्रसिद्ध राव हमीर ही महाराजा पृथ्वीराज तृतीय का वंशधर था, न कि बूंदी का हाड़ा राव सुरजन एवं वंश भास्कर के लेखन-काल तक 'सुरजन चरित' अदृश्य ही था। इसलिये, महाकवि सूर्यमलजी को दस्वों की वंशावली तथा ख्यातों पर ही निर्भर रहना पड़ा। यदि उस समय तक यह ग्रन्थ प्रकाश में आता तो वे उसका आशय अवश्य ग्रहण करते। सुरजन चरित को सादर वर्ग में प्रकाश में लाने का श्रेय श्री ओझाजी को ही समझ कर उनका उपकृत होना चाहिये कि इसने इस गूढ समस्या को सुलझाने में श्री गोवर्द्धन शर्मा ने श्रम किया है।

इस आल्हाखंड का रचयिता कालिंजर का चंदेल राजा परमाल (परमर्दिदेव) का राजकवि जगनायक भट्ट अथवा जगनिक है, जिसमें सम्राट् पृथ्वीराज चौहान और परमाल के बीच में होने वाले युद्ध का, और इस युद्ध में वीर-गति को प्राप्त होने वाले आल्हा-ऊदल नाम के दो राजपूत शूरवीरों की वीर-गाथा है। यह काव्य लोगों में इतना लोकप्रिय बना है कि वह आज भी वहाँ लोक-गीतों के रूप में जीवित है और आल्हा नाम से विख्यात है। ये आल्हागीत आज भी संयुक्त प्रांत में वर्षा ऋतु में वहाँ के लोगों के घर-घर और गली-गली में गाये जाते हैं, जिससे कोई भी संयुक्त प्रांतवासी अज्ञात नहीं। यह कवि जगनायक भट्ट की अपूर्व काव्य-रचना की लोक प्रियता है।

आल्हा गीतों में वर्णित कथा

(१) महोबा (कालिंजर) के राजा परमाल का आल्हा नामक एक सेनापति था। कहा जाता है कि इस आल्हा ने पृथ्वीराज आदि को गौरी के आक्रमण के समय सहायता कर अपनी शूरवीरता का परिचय बाल्यावस्था से ही दे दिया था। आल्हा की स्त्री का नाम माचलदेवी, पुत्र का नाम ईदल, भाई का नाम ऊदल माता का नाम देवलदेवी और पिता का नाम दशरथ था।

इस समय परमाल राजा का मंत्री उसका साला माहिलदेव नामक था। माहिलदेव और परमाल में किसी कारण वश वैमनस्य होगया; परंतु आल्हा के रहते हुए वह परमाल का कुछ भी कर नहीं सकता था। क्योंकि आल्हा परमाल की सहायता के लिये सदा तैयार रहता था, इसलिये आल्हा को दूर करने के लिये माहिलदेव ने एक युक्ति की योजना की और एक समय, जब आल्हा का पुत्र ईदल, परमाल के प्रिय घोड़े पर बैठा, तो उसकी चुगली परमाल को कर आल्हा, ऊदल और ईदल को राज्य सीमा के बाहर निकलवा दिया।

(२) इस समय कन्नौज का राजा जयचंद था। जयचंद के सभी सरदार और सामंत उससे नाराज़ होगये थे और ये लोग अपने प्रान्त का कर जयचंद को नियमानुसार नहीं देते थे। जब आल्हा तथा ऊदल परमार से रुष्ट होकर कन्नौज गये; तब जयचंद ने इन वीरों को अपने सामन्तों को ठिकाने लाने के काम के लिये रोक लिया। ये दोनों भाई वीर तो थे ही और इन्होंने जयचंद के सामंतों को उसके अधिकार में लाकर ही छोड़ा। इससे जयचंद आल्हा-ऊदल पर अत्यंत

ही प्रसन्न हुआ और उन्हें कन्नौज के पास रायकोट नाम का परगना इन भाइयों को बसाने के लिये दिया।

इस प्रकार माहिलदेव ने इन दोनों भाइयों को राज्य-सीमा से बाहर निकलवा दिया और चन्देलों के राज्य को नष्ट करने में प्रवृत्त हुआ उसने चंदेला की सेना को किसी बहाने से दक्षिण में भेज दिया और दिल्लीश्वर सम्राट् पृथ्वीराज को चन्देलों के राज्य पर आक्रमण करने को आमंत्रित किया।

(४) उस समय चौहान पृथ्वीराज साँभर (अजमेर) में था। जब उसने सुना कि चन्देलों की सेना दक्षिण में गई हुई है; तब उसने चन्देलों के राज्य पर आक्रमण करने के अवसर का लाभ उठाया। इस आक्रमण का प्रारम्भ प्रथम उसने सिरसा पर किया। यह स्थल झांसी के पास पहोज नदी के तट पर है, जहाँ चन्देलों का मलखान नामक स्थानिक शासक रहता था। यह मलखान आल्हा का मौसेरा भाई था। जब मलखान ने पृथ्वीराज की विशाल सेना को देखा, तो उसने परमाल राजा को अपनी सहायता के लिये कहलवाया। परन्तु माहिलदेव ने कोई सहायता नहीं दी और सूचित किया कि मलखान स्वयं ही अपने प्रान्त की रक्षा करने में शक्तिशाली और समर्थ है।

(५) परिणाम में मलखान को अपने राजा की ओर से कोई कुमुक (सहायता) नहीं मिली और स्वयं उसने अकेले ही पृथ्वीराज की सेना का सामना किया। पृथ्वीराज और मलखान की सेनाओं में भयंकर युद्ध हुआ और अन्त में मलखान मारा गया। मलखान के पीछे उसकी स्त्री सती हुई।

(६) इसके बाद पृथ्वीराज ने मलखान के भाई सलखान को वहां का स्थानीय शासक नियुक्त कर महोबा की ओर आगे बढ़ आक्रमण किया। इस समय परमाल की सेना महोबा में नहीं थी। बरंच मसराही नामक स्थान पर थी, जो बेतवा नामक नदीG के तट पर आया हुआ है। पृथ्वीराज ने महोबा के पास

सं.टि G, बेतवा—यह उत्तरी भारत की नदियों में एक बड़ी नदी है। भोपाल जिले के कूमरी नामक गाँव से इसका निकास उत्तर पूर्व में होता है। भोपाल प्रान्त में ५० मील तक बहकर फिर भेलसा के पास ग्वालियर प्रान्त में प्रवेश करती है। इसके उत्तर प्रदेश में दक्षिण पश्चिमी कोण पर ललितपुर तहसील (जिला झांसी) के पास बहकर उत्तर पूर्व में झांसी और ग्वालियर की सीमा बनाती है। फिर यह झांसी से उत्तर में ओरछा के प्रदेश में बहती हुई जमुना में मिलती है।

में आकर पड़ाव डाला और इसकी सूचना माहिलदेव ने परमाल को दी। परमाल इस बात को सुन कर सहसा घबरा गया और उसने अपने दोनों पुत्र ब्रह्माजीत और रणजीत को कालिंजर के किले में रक्षा के लिये भेज दिया और स्वयं मनियादेवी की शरण में गया। उस समय उसका द्वारभट्ट जगनायक भट्ट था। उसने उसे आल्हा ऊदल को अपनी रक्षा के लिए बुलवाने को हिरनागर अश्व पर एकदम रवाना किया। इस बात की खबर माहिलदेव ने गुप्त रूप से पृथ्वीराज को दी।

(७) पृथ्वीराज को हिरनागर अश्व अत्यन्त प्रिय था—वह उसे चाहता था। अतः उसने जगनायक भट्ट से उस घोड़े को प्राप्त करने लिए मनुष्य भेजे। पर जगनायक पृथ्वीराज के लोगों को थप्पी देकर आगे निकल गया और कोरहट के राजा का स्वयं महमान बन गया। वहाँ से यह कन्नौज पहुँचा। कन्नौज में जगनायक भट्ट का आल्हाऊदल ने प्रेम से स्वागत किया और जगनायक ने परमाल तथा उनकी रानी का उन्हें संदेश कह सुनाया।

(८) संदेश सुनकर पहले तो आल्हा-ऊदल को क्रोध आया और उन्होंने सहायतार्थ जाने के लिये सवथा इन्कारी करदी; पर जगनायक भट्ट ने उन्हें समझाया और कहने लगा—"आल्हा के पिता दशरथ के बँधवाये सरोवर को पृथ्वीराज ने तोड़ डाला है, जहाँ तुम कसरत करते थे, वहाँ अब स्वयं पृथ्वीराज कसरत कर रहा है।' अन्त में आल्हा की माँ ने भी आल्हा को महोबा जाने को समझाया, अतः पृथ्वीराज के साथ लड़ने का निश्चय किया। आल्हा महोवा जाने के लिये जयचंद के पास आज्ञा लेने को गया, पर पहले जयचन्द ने इन्कार कर दिया, इससे उसने आज्ञा का भंग कर जाने की इच्छा प्रकट की। अतः जयचन्द ने उसे आज्ञा देदी और आल्हा की सहायता में अपनी थोड़ी सी सेना भी भेज दी। इस आल्हा की सेना में जयचन्द ने अपने कुछ बत्तीस सेना-नायकों का भेज दिया, जिसमें राणा लखण आदि मुख्य थे।

(९) जब आल्हा सेना समेत महोबे में आया, तब तक पृथ्वीराज और परमाल राजा के बीच काम चलाऊ सन्धि हो गई थी, जिसका भंग पृथ्वीराज की सेना के कितने ही सरदारों ने आल्हा की विशाल सेना को देखकर किया और वे आल्हा की सेना पर अचानक टूट पड़े। आल्हा की सेना में इस समय भग हो गया, पर आल्हा की माता देवलदेवी ने सेना को उत्साहित किया।

(१०) इसके पश्चात् परमाल और पृथ्वीराज की यह काम चलाऊ सन्धि एक वर्ष तक रही और आखिर में उसका अन्त हुआ। अन्तिम युद्ध निश्चित समय पर उरई के मैदान में हुआ। इस भयंकर युद्ध को देखकर परमाल अपने प्राणों को बचाने के लिये कलिंजर के किल्ले में घुस गया, जब कि उसकी सेना और सामन्त युद्ध-क्षेत्र में काम आये। केवलमात्र आल्हा रहा और कहा जाता है कि वह पृथ्वीराज की सेना को चौमासे के घास के समान काटने लगा। अन्त में मैहर की शारदा देवी ने उसका हाथ पकड़ लिया और उसे संहार करने से रोका। इसके बाद आल्हा का कुछ भी पता नहीं।[1]

आल्हा की कथा को शिलालेखों का समर्थन

यह है-आल्हा गीतों में सुरक्षित वीर गाथा का सारांश। इस कथा में उल्लिखित चंदेल राजा परमाल (परमर्दिदेव) और पृथ्वीराज चौहान के बीच होने वाला युद्ध-यह एक ऐतिहासिक घटना है। क्योंकि वि० सं० १२३९ में परमाल के पास से महोबा पर पृथ्वीराज ने अधिकार जमाया था। यह बात महोबा के पास से मिले हुए परमाल राजा के वि० सं० १२३९ के शिलालेख से भी स्पष्ट हो जाती है कि सम्राट् पृथ्वीराज और परमाल राजा के बीच युद्ध हुआ था। यह एक निःशंक घटना है।

रासो के महोबा-समय की कथा में सम्पूर्ण ऐतिहासिकता

पृथ्वीराज रासो के महोबा समय में भी पृथ्वीराज और चंदेल राजा परमाल के साथ घटित युद्ध का वर्णन है। और इस वर्णन में भी परमाल के वीर सरदार आल्हा के शौर्य की प्रशंसा की गई है। महोबा समय में आने वाले नाम आल्हा, ऊदल, परमाल और उसके राजकवि जगनायक, कन्नौजपति जयचन्द आदि नाम शुद्ध और समकालीन ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। इन सब वास्तविकताओं को देखते हुए रासो आल्हाखंड और शिलालेखों में कुछ भी अन्तर नहीं पड़ता, अपितु केवल एक ही प्रकार की सिलसिलेवार जुड़ी हुई ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख प्रतीत होता है और यही रासो को ऐतिहासिकता, प्राचीनता

---

१ आल्हा खंड विलियम वोटरफिल्ड द्वारा सम्पादित और ओक्सफोर्ड संस्करण (१९२३)।
'बुन्देलखंड का इतिहास' पं० गोरेलाल तिवारी कृत और नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित।

और प्रामाणिकता का स्पष्ट प्रमाण है, जिसे कई जानकार इतिहासकारों ने इसको स्वीकार किया है।[1] अतः महोबा समय की कथा में सम्पूर्ण ऐतिहासिकता है। अनैतिहासिकता तो आज के इतिहासकारों की मानसिक उपज प्रतीत होती है।[2]

(६)

पृथ्वीराज रासो और संस्कृत काव्य 'पृथ्वीराज विजय' की समानताएँ

महाकवि चंद की रचना पृथ्वीराज रासो को अनैतिहासिक बताते हुए आधुनिक इतिहासकार बतलाते हैं कि "पृथ्वीराज विजय" संस्कृत काव्य और "पृथ्वीराज रासो" इन दोनों ग्रन्थों में रासो पृथ्वीराज के समय में नहीं लिखा गया और ऐसा होता, तो इन दोनों ग्रन्थों में इतना बड़ा अन्तर नहीं होता, पर समानता प्रकट होती।[3] यह कथन भी अन्वेषण की दृष्टि से ढाल की एक ही बाजू बतलाती है। 'पृथ्वीराज-विजय' की वर्तमान में केवल एक ही प्रति मिली है, जिसकी दशा सर्वथा खण्डित और अपूर्ण है। अतः वास्तव में उसकी स्थिति भी जानना आवश्यक है।

'पृथ्वीराज विजय' की वर्तमान दशा

'पृथ्वीराज विजय' काव्य की एक अधूरी और खण्डित प्रति डा० बूलर को काश्मीर से संस्कृत पुस्तकों की खोज में मिली थी, जो अभी पूना के डेक्कन कॉलेज के पुस्तकालय में है। इसके अतिरिक्त इस काव्य की अभी तक एक भी दूसरी प्रति नहीं मिली और जो विद्यमान है, यह दुःख का विषय है कि स्थान-स्थान पर खंडित और अपूर्ण है। अतः संपूर्ण ग्रंथ कितना बड़ा था, यह बताना कठिन है। [4]यदि पृथ्वीराज की विजय के उपलक्ष्य में यह काव्य बनाया गया होता तो उसका वर्णन भी इसमें होता। इस ग्रन्थ से उसके रचयिता का भी पता नहीं मिलता। इस ग्रन्थ

---

१. देखिये—मध्यकालीन भारत की सामाजिक व्यवस्था, डा० अल्लामा अब्दुल्लाह युसुफअली सी० बी० ई० एम० ए०, एल० एल० एम०।

२. देखिये—महोबा समय की कथा के लिये—'पृथ्वीराज रासो' फार्बस गुजराती सभा की प्रति, तथा नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित प्रति।

३. देखिये—नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग १० अंक १–२

४. संभव है, यह विजय शहाबुद्दीन के साथ तिरोरी के युद्ध में मिली होगी।

के साथ उसकी एक टीका मिली है. उसके आधार पर टीकाकार का नाम जोनराज और रचयिता का नाम जयानक जान पड़ता है।

अभी जो इस ग्रन्थ की एक प्रति मिली है, उसका क्या हाल है? यह जान लेना आवश्यक है। यह प्रति भोजपत्र पर शारदालिपि में लिखी गई है। प्रारंभ में श्री गणेशाय आदि का पता नहीं है। प्रथम दो पन्ने नहीं ग्रन्थ को देखने पर अपूर्ण और अधूरी टीका के दर्शन होते हैं। एक भी सर्ग या अध्याय, काव्य या काव्य की टीका नहीं, जिसमें काव्य का या टीका के श्लोकों का भाग नष्ट नहीं हुआ हो। पहले तथा दूसरे सर्ग में प्रर्याप्त श्लोक विन्यास है। तीसरे सर्ग में ३८ श्लोक हैं।

इसके अतिरिक्त इसके दो तीन पत्ते एक दम गल गये हैं और उसमें लिखे हुए विवरण मिल नहीं सकते। इसके अतिरिक्त ग्रन्थ के कुछ पत्ते ऐसे हैं कि उनका स्थान ग्रन्थ में कहाँ होगा—यह जानना अशक्य है। उदाहरणार्थ चौथा सर्ग का प्रथम पत्ता। पांचवें सर्ग में श्लोक संख्या विशेष है और ऐतिहासिक दृष्टि से वह महत्त्व का है। छठें सर्ग के अन्तिम ३-४ पत्ते गल गये हैं। सातवें सर्ग का प्रारम्भिक भाग नष्ट हो गया है। आठवें सर्ग से ग्यारहवें सर्ग तक ग्रन्थ की दशा ठीक है. परन्तु बारहवाँ सर्ग जहाँ से पृथ्वीराज के चरित का आलेखन प्रारम्भ होता है, वह एकदम खण्डित है। ग्रन्थ सर्वथा नष्ट और अपूर्ण है। इस परिस्थिति में 'पृथ्वीराज विजय' को सम्पूर्ण ऐतिहासिक काव्य किस प्रकार माना जा सकता है।[1]

"पृथ्वीराज विजय" का संक्षिप्त सारांश

(१) प्रथमसर्ग में संस्कृत पंडितों की परिपाटी के अनुसार अतिशय वर्णनात्मक शैली से इस काव्य के श्रोता पृथ्वीराज और उसके वंशज हैं, ऐसा

---

१. देखिये—नागरी प्रचारिणी पत्रिका—भाग ५ अंक दो।

"It is a great pity that the old Ms. is mutilated and in suct a condition as to make the work of reading it difficlut. The begining is wanting. The leaves which contains canto I—X have broken in the middle by the friction of the thick string used for sewing the volume. Further the lower portions of considerable number of leaves have been lost, and as the lower left-hand side of the Margin, on which

प्रतीत होता है। इसके पश्चात् कवि ने काव्य और विद्या का महत्त्व समझाते हुए कितने ही अभिमानी कुपंडितों की बड़ी निन्दा की है। इस समय जैन, बुद्ध आदि धर्मों के प्रभाव से लोगों में अत्यन्त ही निरुत्साह और अकर्मण्यता व्याप्त हो रही थी, ऐसा विदित होता है। ऐसे समय में ब्रह्मा के यज्ञ-कुण्ड में से सूर्यवंशी चाहमान (चौहान) वीर की उत्पत्ति बताई गई है। (श्लोक संख्या ७१)

(२) दूसरे सर्ग में कवि पहले के समान ही बड़ी २ उपमाओं और अलंकारों से वर्णन करता हुआ चाहमान के वंश में वासुदेव राजा का वर्णनकर वहाँ से चौहानों की वंशावली का यथावत् प्रारम्भ करता है। (श्लोक संख्या ८२)

(३) तीसरे सर्ग में कवि वासुदेव राजा की कीर्ति का अपार वर्णन कर उसकी धर्म-प्रियता प्रकट करता है। पीछे इस सर्ग के पन्ने गल गये हैं-खण्डित हैं। (श्लोक संख्या ३८)

(४) चौथे सर्ग में वासुदेव राजा की मृगया खेलने की कथा कह कर जंगल में उसके विद्याधर नाम के विद्वान् ब्राह्मण के साथ मिलाप और उसके वंशज 'शाकम्भरीश्वर' कैसे कहलाये, उसका सविस्तार उल्लेख करता है। (श्लोक संख्या ७६)।

(५) पाँचवें सर्ग में कवि वासुदेव के पीछे के अन्य राजाओं की नामावली देकर अजयराज के राज्य-काल का वर्णन करता है, जिसने अपने नाम से अजमेर नगर बसाया था तथा उसकी सोमलदेवी नाम की एक रानी थी। अजमेर बसाने के बाद यह राजा अपने पुत्र अर्णोराज को गद्दी पर बैठाकर स्वर्ग सिधारता है। (श्लोक संख्या १६३)।

(६) इस छठे सर्ग का प्रारभ का भाग नहीं मिलता। जो प्रथम श्लोक मिलता है, उससे विदित होता है कि इस राजा के समय में प्रथम बार यवनों ने अजमेर पर

---

stood the figures numbering the leaves, has also been broken off, it is impossible to determine the connection of upper and lower halves by any other means than by the sense."

—डा० जी० बूलर कृत डिटेइल रिपोर्ट ऑफ ए टूर इन् सर्च ऑफ संस्कृत मेन्युस्क्रीपट्स इन् काश्मीर, राजपूताना और मध्य हिन्द।

आक्रमण किया था। बाद में इस राजा ने गुजरात के राजा जयसिंह की पुत्री काञ्चनदेवी और मारवाड़ की कन्या सुधवा के साथ लग्न किया था। सुधवा से तीन पुत्र और काञ्चनदेवी से एक पुत्र हुआ, जिसका नाम सोमेश्वर रखा गया था। यहाँ गुजरात के राजा जयसिंह को अपनी पुत्री कंचनदेवी के पुत्र होने का अत्यंत आनंद और उत्साह होना कवि प्रकट करता है और वह ज्योतिषियों के मुख से सोमेश्वर के यहाँ राम जन्म लेगा, यह बात सुनकर कंचनदेवी को सोमेश्वर के साथ अपने यहाँ बुला लेता है (श्लोक संख्या ११२)।

(७) इस सर्ग में भी प्रारंभ के कई श्लोक नहीं है। बाद में सोमेश्वर का बालपन गुजरात के राजा कुमारपाल के यहाँ बिताता है तथा वह कुमारपाल के साथ दक्षिण में मल्लिकार्जुन के साथ होनेवाले युद्ध में जाता है और उसकी तलवार छीन कर वध करता है—आदि उल्लेख हैं। बाद में वहाँ त्रिपुरी के राजा तेजल की पुत्री कर्पूर देवी के साथ लग्न करता है (श्लोक सं० ५१)।

(८) यहाँ आठवें सर्ग में कवि पूर्ववत् वर्णन कर सोमेश्वर के यहाँ दो पुत्र पृथ्वीराज और हरिराज का जन्म होना बताता है। बाद में अजमेर के सामंत आदि आकर सोमेश्वर को पुत्र सहित अजमेर की गद्दी पर आरूढ़ होने के लिये लेजाते हैं। जब तक सोमेश्वर गुजरात में होता है, तब तक अजमेर की गद्दी उसके सौताले भाइयों की संतान के अधिकार में होने का कवि उल्लेख करता है। फिर अजमेर या सपादलक्ष जाने के पीछे सोमेश्वर की मृत्यु होती है (श्लोक संख्या ११८)।

(९) नवम सर्ग में सोमेश्वर की मृत्यु के पीछे राजकाज उसकी विधवा रानी कर्पूरदेवी के हाथ में आता है, जिसे मंत्री कदम्बवास (कैमास) की सहायता से चलाने का उल्लेख है।

(१०) दसवें सर्ग में कवि कथा-नायक पृथ्वीराज के वर्णन पर आता है और उसके यौवनकाल का वर्णन करता है, जिसमें पृथ्वीराज के लोकोत्तर यौवन को सुनकर अनेक राज-कन्याएँ उसमें अनुराग अनुभव करती हैं. (जिसका श्लेषार्थ अनेक लग्नों से है)। अनेक प्रकार के युद्धों का वर्णन है। बाद में पश्चिमोत्तर दिशा से गजनी के म्लेच्छों का आक्रमण सुनकर उनके नाश करने की पृथ्वीराज प्रतिज्ञा करता है और नाडोल पर असुरों का आक्रमण सुनकर पृथ्वीराज प्रज्वलित होजाता है। यहीं पर यह सर्ग समाप्त होजाता है (श्लोक संख्या ५१)।

(११) इस ग्यारहवें सर्ग में पृथ्वीराज की सभा में गुजरात के दूत का आगमन तथा उसके राजकवि पृथ्वीभट्ट का उल्लेख है और वह पृथ्वीराज को सूचित करता है कि "राजन्! आपके पास कदम्बवास जैसा कार्यसाधक मंत्री है, यह आपका अहोभाग्य है और यही बताता है कि तिलोत्तमा जैसी यह पृथ्वी अर्थात् राजलक्ष्मी आप में अनुरागिणी है।" यह सुनकर पृथ्वीराज पूछता है कि "तिलोत्तमा कौन है?" कवि के शब्दों के अनुसार पुनरावृत्तज्ञान में व्यास जैसा विद्वान् पृथ्वीभट्ट तिलोत्तमा का वर्णन करता है। यह अपूर्व वर्णन सुनकर पृथ्वीराज के हृदय में उसके लिये कामना उत्पन्न होती है (श्लोक संख्या १०५)।

(१२) बारहवें सर्ग में पृथ्वीराज की तिलोत्तमा में आसक्ति और उसकी विह्वलता का वर्णन है, जिसमें वह अपनी सुध-बुध भी गुमा देता है। इससे पृथ्वीभट्ट उसकी ऐसी दशा देख कर अत्यन्त ही पश्चात्ताप करता है और उसकी सुध-बुध के लिये उपाय सोचता हुआ अपने घर जाता है। वहाँ उसे इस काव्य के रचयिता कवि जयानक का विग्रहराज के मंत्री पद्मनाभ द्वारा एक श्लोक सुन कर परिचय होता है। यहाँ पृथ्वीभट्ट कवि को अपना देश छोड़ कर वहाँ आने का कारण पूछता है। बस यहीं से यह काव्य अपूर्ण है। न जाने आगे कवि ने क्या वर्णन किया होगा? (श्लोक संख्या ७८)।

दोनों ग्रन्थों की तुलना में विचार का अभाव

इस काव्य के बारह उपलब्ध सर्गों के पाठ को देखते हुए इतना तो स्पष्ट विदित होता है कि अभी तक काव्य का विस्तार आगे और होगा। 'पृथ्वीराज विजय' का जितना भाग अभी तक मिला है, वह तो केवल "पृथ्वीराज विजय" की भूमिका है। बारहवें सर्ग में जहाँ कवि काव्य के नायक पृथ्वीराज के चरित का प्रारम्भ करता है, वहीं से काव्य समूल अधूरा और अपूर्ण है और उसमें पृथ्वीराज की एक भी महत्त्वपूर्ण घटना का उल्लेख हुआ हो—नहीं दिखाई देता। उसका जीवन सम्बन्धी समस्त इतिहास अन्धकार में ही रहता है। इससे वस्तुतः विचारा जाय, तो 'पृथ्वीराज विजय' में पृथ्वीराज के जीवन चरित का विद्यमान प्रति में सर्वथा अभाव है—उसके इतिहास का अभाव है—यह भी कहें, तो अनुचित नहीं होगा। फिर 'पृथ्वीराज रासो' और 'पृथ्वीराज विजय'—इन दोनों ग्रन्थों में परस्पर भिन्नता देखी जाय, तो इसमें आश्चर्य क्या है?

वास्तव में देखें, तो यह भिन्नता, उपर्युक्त दोनों काव्यों में देखी जाती है वह अनैतिहासिक नहीं। परन्तु यह पुरातत्त्व की दृष्टि से सर्वथा सुसंगत और स्वाभाविक बात है। क्योंकि एक ग्रन्थ (पृथ्वीराज रासो) में सम्पूर्णतया कथा-नायक के चरित का सुन्दर वर्णन आलेखित है, तो दूसरे ग्रन्थ (पृथ्वीराज विजय) में उसका सर्वथा अभाव है और इस अभाव का दोष ग्रन्थकार का नहीं, पर समय और संयोगों का है; जिसका विचार अपने आधुनिक इतिहासकार इन दोनों ग्रन्थों की तुलना करते सर्वथा ही भूल गये हैं, या किसी कारण वश उन्होंने किया ही नहीं। इसीलिये उनकी दृष्टि में यह भिन्नता भयंकर लगती है और रासो को वे अनैतिहासिक कहकर व्याकुलता के भाव व्यक्त करने लगे हैं।

'पृथ्वीराज विजय' और 'रासो' की समानताएँ

फिर भी उपर्युक्त काव्य 'पृथ्वीराज विजय', 'रासो' के समर्थन में इतनी समानताएँ बताता है, जो इस प्रकार हैं—

(१) रासो में दी हुई संयोगिता की कथा, तथा पृथ्वीराज विजय के त्रुटित सर्ग में मिलने वाली तिलोत्तमा की कथा।

(क) संयोगिता अप्सरा रम्भा का अवतार थी और 'पृथ्वीराज-विजय' की राजकुमारी तिलोत्तमा का अवतार।

(ख) पृथ्वीराज इन दोनों में बिना देखे ही अनुरक्त हुआ था।

(ग) इस अनुराग के पहिले 'रासो' और 'विजय' पृथ्वीराज के अन्य कितने ही विवाहों का उल्लेख करता है।

(घ) दोनों ही काव्यों की नायिकाओं का सम्भवतः गंगा के तट पर आये हुए किसी स्थान के साथ सम्बन्ध था।

(ङ) दोनों लग्न किसी अनभिमत पुरुष के साथ निश्चित हुए थे।

यह देखते प्रतीत होता है कि 'रासो' की संयोगिता ही 'विजय' की राजकुमारी तिलोत्तमा है, जिसकी रसमयी कला का ज्ञान अबुलफ़ज़ल को भी था, जिसका चाहमान वंशाश्रित इतिहासकार कवि चन्द्रशेखर ने 'सुर्जन चरित' में भी सुन्दर वर्णन किया है[१]।

---

१ देखिये—'राजस्थान भारती' भाग १, अंक २-३, डॉक्टर दशरथ शर्मा, एम०ए०डि०लिट् का संयोगिता नामक लेख।

(२) महम्मद गोरी के साथ का संघर्ष[१]।

(३) ब्रह्मा के कुण्ड में से सूर्य वंश की उत्पत्ति[२]।

(४) पृथ्वीराज चौहान की राजसभा के ऐतिहासिक व्यक्तियों का उल्लेख।

(क) 'रासो' में पृथ्वीराज के मन्त्री का नाम कैमास है। 'विजय' में कदम्बवास[३]।

(ख) रासो में पृथ्वीराज की राजकवि बन्दीराज का नाम वरदाई चन्द भट्ट है—'विजय' में बन्दीराज पृथ्वीभट्ट[४]

इन घटनाओं के समानता ही वता देती है कि रासो एक ऐतिहासिक महाकाव्य है। समानता में अन्तर इतना ही है कि दोनों काव्य-कर्त्ताओं ने अपने काव्य की भाषा के अनुकूल उनके नामों का उल्लेख किया है। संस्कृत काव्य में संस्कृत नाम, देश्य भाषा के काव्य में देशी नाम (बोलचाल के नाम) का प्रयोग किया है। मंत्री कदम्बवास के बोलचाल का नाम कैमास है, जिसे 'विजय' में संस्कृत बना कर 'कदम्बवास' लिखा है। जब कि राजकवि पृथ्वीभट्ट के बोलचाल का नाम वरदाई चन्दभट्ट है, जिसे संस्कृत बना कर बन्दीराज पृथ्वीभट्ट लिखा है, जिससे स्पष्ट विदित होता है कि पृथ्वीराज की सभा में मंत्री कैमास और मागध, बन्दीराज या राजकवि (Court poet) पृथ्वीभट्ट था। इस राजकवि पृथ्वीभट्ट का परिचय 'विजय' के रचयिता कवि जयानक ने विग्रहराज के मंत्रीश्वर पद्मनाभ को करवाया था। यह भी सम्भव है कि वह (जयानक ?) पृथ्वीराज की सभा में पृथ्वीभट्ट की सहायता से पहुँचा हो; क्योंकि बारहवें सर्ग के अन्तिम श्लोक में पृथ्वीभट्ट और जयानक का परस्पर वार्तालाप दिया गया है; उसमें से पृथ्वीभट्ट जयानक को काश्मीर से दिल्ली आने का प्रयोजन पूछता है।

---

१. देखिये—'पृथ्वीराज विजय' सर्ग १०।

२. देखिये—'पृथ्वीराज विजय' सर्ग १ तथा 'पृथ्वीराज रासो' समय १ (पृष्ठ ५१)।

३ ततः कदम्बवासेन धैर्यावासेन मंत्रिणा।
विनयस्सत्यदासेन सभाव्यासेन पार्थिवः ॥ पृथ्वीराज वि० सर्ग ११, श्लोक २।

४ कृतमांगलिकादिकाह्निकः प्रतिमुच्य क्षितिपं शनैः शनैः।
तरणेस्तरुणिम्नि तेजसा, शिथिले बन्दिपतिर्विनिर्ययौ ॥
पृ० वि० सर्ग १२ श्लोक ४६

संस्कृत कवि जयानक के द्वारा वर्णित पृथ्वीभट्ट का व्यक्तित्व

इसके अतिरिक्त भी 'पृथ्वीराज विजय' में उसका रचयिता कवि जयानक, पृथ्वीभट्ट का परिचय देता हुआ, उसके व्यक्तित्व का वर्णन करता है कि- 'वन्दीराज पृथ्वीभट्ट पुनरावृत्तज्ञान में व्यास के समान प्रतिभाशाली विद्वान् था और दूसरों के गुणों को प्रकट करने में सूर्य जैसा तेजस्वी तथा दोषों को ढाँकने में महान् अंधकार।"[1] यह वास्तवकता ही बता देती है कि वन्दीराज पृथ्वीभट्ट पृथ्वीराज चौहान की सभा में कोई सामान्य व्यक्ति नहीं था, पर असाधारण व्यक्तित्ववाला विद्वान् और सम्मानित, पदासीन राजकवि था।

इस प्रकार पृथ्वीराज के राजकवि का इस काव्य में वर्णन देख कर स्वाभाविक प्रश्न होता है कि यह राजकवि वन्दीराज कौन है? जिसका चौहान पृथ्वीराज के समय के किसी भी इतिहास या प्रबन्धों में उल्लेख नहीं। पृथ्वीराज के इतिहास में और उसके समय की अन्य ऐतिहासिक सामग्री में उसके राजकवि वन्दीराज का उल्लेख मिलता है। पर उसका नाम तो चन्दभट्ट है; जबकि 'विजय' में पृथ्वीभट्ट। इस प्रकार इन नामों में रही हुई भिन्नता ने इतिहासकारों को सूक्ष्म विचार के अभाव में भ्रम में डाल रक्खा है। वे दो भिन्न-भिन्न व्यक्ति होने का अनुमान करते हैं, जो युक्ति संगत नहीं है, पर यह केवल हेत्वाभास है। क्योंकि इस समय में एक राजा के यहाँ एक ही वन्दीराज (राजकवि) रहता था, दो नहीं, जो जाति से भट्ट-ब्राह्मण था और वह इतिहास तथा पुनरावृत्त ज्ञान रखता था।

---

१. इतिहासशताभ्यासव्यासः द्मावास (सन्निधैः)
इतिहासशुचिं वन्दी भूयोप्युदहरद्गिरम्॥
पृथ्वीराज विजय सर्ग ११ श्लोक १७।

पृथिवीभटमुक्तवन्तमित्यवदन्मानधरो महत्तमः।
मिहिरो [न्यगुणप्रकाशने] पर दोषावरणे महत्तमः॥
पृथ्वीराज विजय सर्ग १२ श्लोक ६२।

'पृथ्वीराज विजय' का 'पृथ्वीभट्ट' ही वरदाई चंदभट्ट है।

इस प्रकार चौहान पृथ्वीराज के वन्दीराज (राजकवि) के नाम में दिखाई देने वाली भिन्नता, यह कोई खास दो व्यक्तियों की भिन्नता नहीं, पर उस पर सूक्ष्मता से विचार करने पर उसकी एकता को प्रकट करता है, जिसका ऐतिहासिक अनुसंधान और निराकरण 'पृथ्वीराज विजय' में दिये हुए बन्दीराज पृथ्वीभट्ट के व्यक्तित्व के वर्णन से ही होता है। वैसा ही समानता दर्शक वर्णन''पृथ्वीराज रासो' में है, 'सुर्जन चरित' काव्य और जैन प्रबंधों में भी है और इन प्रबन्धों में रही हुई एक सी समानता ही वरदाई चंद भट्ट के व्यक्तित्व को प्रकट करती है। अतः यहाँ ऐतिहासिक दृष्टि से सिद्ध होता है कि 'पृथ्वीराज विजय' बन्दीराज पृथ्वीभट्ट ही रासो का वरदाई चंदभट्ट है। क्योंकि 'वरदाई' यह संस्कृत का अपभ्रंश शब्द है, जिसे संस्कृत पंडित ने संस्कृत रूप देकर 'बन्दीराज' लिखा है और 'पृथ्वी' तो रासो के रचयिता कवि का मूल (असली) नाम है, जिसका उल्लेख 'विजय' के कर्त्ता संस्कृत पंडित ने एक वचन द्वारा किया है। इसके समर्थन में नीचे की युक्ति और भी सुसंगत और विश्वसनीय प्रतीत होती है।

रासो के रचयिता कवि चंद की वंशावली देखने से उसके अनेकानेक वंशजों के नाम के अंत में 'चन्द' शब्द (जो आगे वंशावली में देखेंगे) आता है तथा उसके पिता का नाम भी राव वेणीचंद (वेनो चंद्र) है, जिससे इस महावंश परम्परा में 'चंद' शब्द अति प्रचलित है, यह सिद्ध होता है। इससे इसी वंश के रासो के रचयिता कवि का मूल नाम केवल 'चंद' होना सर्वथा असंभव जान पड़ता है। अतः अवश्य ही उसका मूल (असली) नाम अन्य होना चाहिये, जिसका स्पष्ट उल्लेख 'पृथ्वीराज विजय' संस्कृत काव्य में कवि जयानक ने किया है-और वह नाम है-पृथ्वीभट्ट। इससे ऐसा मानने का यह सम्पूर्ण कारण रहता है कि रासोकार कवि का मौलिक पूरा नाम वरदाई चंद भट्ट नहीं, परन्तु बन्दीराज पृथ्वीचंद्र भट्ट होना चाहिये।

वरदाई 'चंद भट्ट' यह मुहावरे का नाम है।

जिसका उल्लेख 'पृथ्वीराज रासे' में स्वयं कवि ने केवल बरदाई चंद भट्ट किया है और लोक-प्रसिद्ध नाम भी यही है। रासो के रचयिता कवि को ऐसा करने का एक कारण यह भी संभावित होता है कि अपना और राजा का नाम

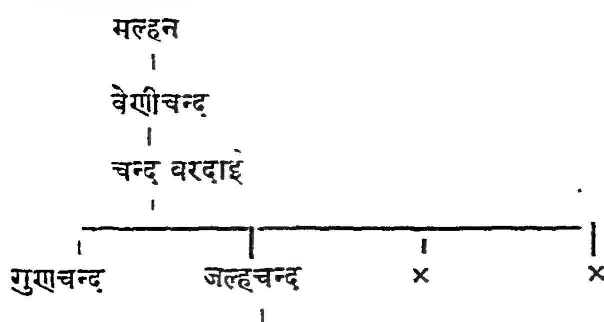
'पृथ्वी' होने से परस्पर के व्यक्तित्व में गड़बड़ होने के भय से स्वयं कवि ने अपना मूल नाम पृथ्वीचन्द्र में से 'पृथ्वी' शब्द का त्याग कर केवल 'चन्द्र' इतने छोटे मुहावरे के नाम से परिचित होना योग्य माना हो। क्योंकि 'रासो' यह लोकभाषा का काव्यग्रन्थ है। अतः उसके रचयिता ने बोलचाल के नाम का ही केवल उल्लेख किया है, जब कि 'पृथ्वीराज विजय' संस्कृत भाषा का काव्यग्रन्थ है। अतः उसमें उसके कर्त्ता ने संस्कृत नाम का उल्लेख किया है।

इस संपूर्ण विवरण से यह सिद्ध होता है कि रासोकार वरदाई चंद्रभट्ट का मूल पूरा नाम वन्दीराज पृथ्वीचंद्र भट्ट है, जिसका प्रकट उल्लेख संस्कृत काव्य 'पृथ्वीराज विजय' में किया गया है, जब कि उसका लोकप्रसिद्ध बोलचाल का नाम वरदाई चंद भट्ट है।[1]

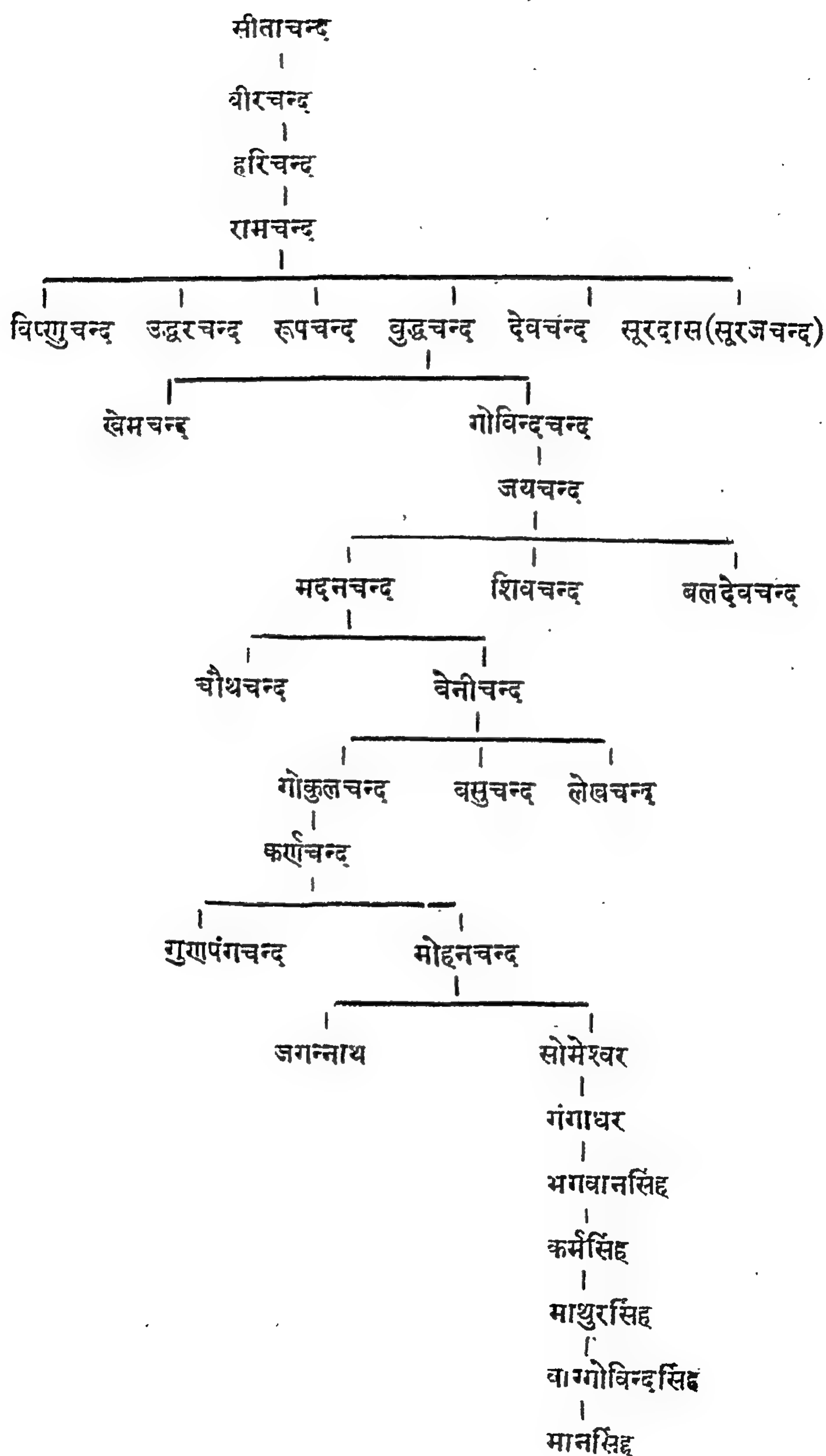
(८)

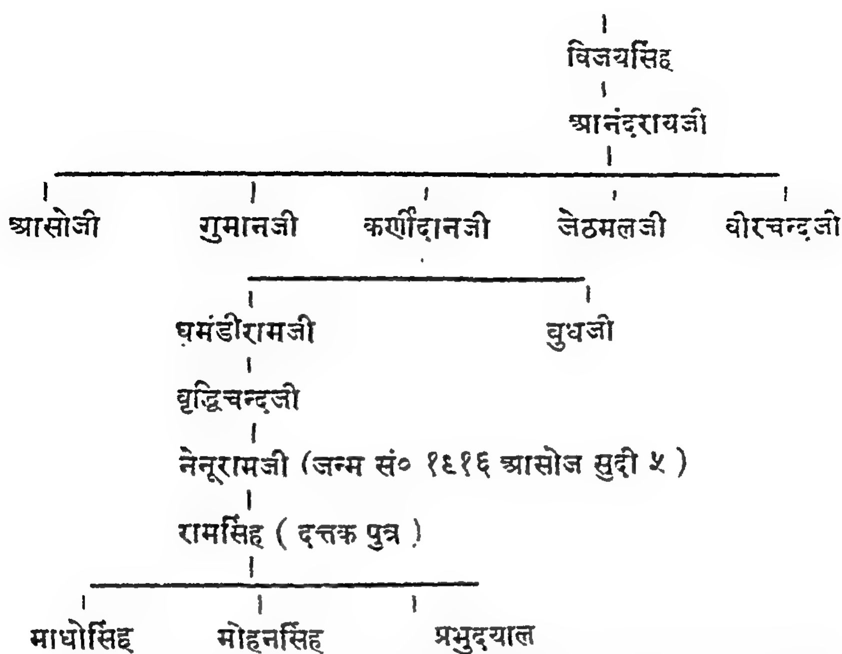
महाकवि चन्द की वंशावली और 'भविष्य पुराण'—

रासोकार महाकवि चन्द की प्राचीनता को प्रमाणित करने वाला एक विशेष समर्थन उसकी वंशावली है, जिसे उनकी सत्ताईसवीं पीढ़ी में होनेवाले वंशधर नागोर निवासी श्री नेनूराम ब्रह्मभट्ट ने प्रसिद्ध पुरातत्वज्ञ महामहोपाध्याय पं० श्री हरप्रसाद शास्त्री एम० ए० को दी थी और उन्होंने उसे बंगाल रोयल एशियाटिक सोसाइटी के जनरल में प्रकट की है।



१. आज भी अपने यहाँ पुरुषोत्तमदास, धर्मदास आदि नाम होते हैं, जिसे बोलचाल में केवल 'दास' कह कर बुलाते हैं। इसके अतिरिक्त पंजाबियों में भी महेरचंद, गोकुलचंद आदि नाम देखे जाते हैं। जब कि चंद भी पंजाब का निवासी था। अतः संभव है कि उसका नाम 'पृथ्वीचंद्र' होना चाहिये।


सीताचन्द
वीरचन्द
हरिचन्द
रामचन्द
विष्णुचन्द
उद्धरचन्द
रूपचन्द
वुद्धचन्द
देवचन्द
सूरदास(सूरजचन्द)
खेमचन्द
गोविन्दचन्द
जयचन्द
मदनचन्द
शिवचन्द
बलदेवचन्द
चौथचन्द
वेनीचन्द
गोकुलचन्द
वसुचन्द
लेखचन्द
कर्णचन्द
गुणपंगचन्द
मोहनचन्द
जगन्नाथ
सोमेश्वर
गंगाधर
भगवानसिंह
कर्मसिंह
माथुरसिंह
वा।गोविन्दसिंह
मानसिंह



इस वंशावली का ऐतिहासिक दृष्टि से अनुशीलन करने पर महाकवि चंद की समकालीनता और प्राचीनता के लिये यह एक ठोस प्रमाण सिद्ध होता है। क्योंकि कवि चंद का अवसानकाल ही पृथ्वीराज का अवसानकाल है शिलालेखों के अनुसार सिद्ध पृथ्वीराज का मृत्यु संवत् १२४६ है। अतः कविचंद का मृत्यु समय भी १२४६ ही मान लेवें, तो उसमें कुछ भी आपत्ति-जनक नहीं है। इस प्रकार विचार करते चंद के सत्ताईसवें वंशज श्री नेनुराम ब्रह्म भट्ट का जन्म संवत् १६१६ में से चन्द के मृत्यु संवत् १२४६ को घटा लेने से २६ पीढ़ियों के लिये ६६७ वर्ष का अंतर आता है। जिसे (६६७÷२६=२५ वर्ष ७ मास २५ दिन) छब्बीस से भाग देने पर प्रत्येक पीढ़ी के लिये लगभग २५ वर्ष ७ मास और २५ दिन आते हैं, जो एक पीढ़ी के आयुष्य के लिये पर्याप्त समय माना जा सकता है। अतः इस वंशावली के अनुसार भी महाकवि चंद, पृथ्वीराज चौहान का समकालीन ऐतिहासिक पुरुष सिद्ध होता है। इसके अतिरिक्त इस वंशावली में से एक अन्य प्रमाण भी उपलब्ध होता है और वह है, सत्तरहवीं शताब्दी में होने वाले सुप्रसिद्ध भक्त-कवि सूरदासजी, जिनका समर्थन उस समय में लिखा हुआ धार्मिक साहित्य, पुराण और साहित्य लहरी भी करती है।

१. देखिये—Preliminary Report on the operation in search of Mss. of Bardic Chronicles (1913)

'भविष्य पुराण' में महाकवि चन्द भट्ट का उल्लेख—

ऊपर की वंशावली में बताए अनुसार प्रसिद्ध भक्तकवि सूरदासजी महाकवि चन्द के वंशज हैं, जिनका प्रामाणिक समर्थन 'भविष्यपुराण' करता है, जो इस प्रकार है—

सूरदास इति ज्ञेयः कृष्ण-लीला-करः कविः ।
शम्भुर्वै चन्द्र भट्टस्य कुले जातो हरिप्रियः[१] ॥

महाकवि चन्द और उनके सातवें वंशज भक्त सूरदासजी

इसके अतिरिक्त स्वयं सूरदासजी ने 'साहित्य लहरी' नामक अपने ग्रन्थ में अपना परिचय इस प्रकार दिया है—

प्रथम ही पृथु. यज्ञ ते भे प्रकट अद्भुत रूप ।
ब्रह्मराव विचारी ब्रह्मा राखु नाम अनूप ॥
पान पय देवी दियो सिव आदि सुर सुख पाय ।
कह्यो दुर्गा पुत्र तेरो भयो अति अधिकाय ॥
परि पायँन सुरन के सुर सहित अस्तुति कीन ।
तासु वंश प्रसंस में भौ चन्द चारु नवीन ॥
भूप पृथ्वीराज दीन्हों तिन्हें ज्वाला देश ।
तनय ताके चार कीनो प्रथम आप नरेश ॥
दूसरे गुन चन्द ता सुत सीलचन्द सरूप ।
वीर चन्द प्रताप पूरन भयो अद्भुत रूप ॥
रंथंभौर हमीर भूपति संगत खेलत जाय ।
तासु वंश अनोप भो हरिचन्द अति विख्याय ॥
आगरे रहि गोपचल में रह्यो ता सुत वीर ।
पुत्र जनमे सात जाके महाभट गंभीर ॥
कृष्णचन्द उदारचन्द जु रूपचन्द सुभाई ।
बुद्धिचन्द प्रकाश चौथे चंद भे सुखदाई ॥
देवचन्द प्रबोध संसृतचन्द ताको नाम ।
भयो सप्तमो नाम सूरजचन्द मंद निकाम ॥

---

१. देखिये—भविष्य पुराण, प्रति सर्ग पर्व, अध्याय २२ श्लोक ३० वाँ ।

इस पद्य में सूरदासजी के द्वारा बताये हुए अपने परिचय पद्यों में वे महाकवि चन्द के सातवें वंशज हैं। पद्य की वंशावली और आगे बताई हुई वंशावली में कोई विशेष फेरफार नहीं पड़ता। केवल मात्र सूरदासजी जा वंश गुणचन्द का बताते हैं, उस वंश वृक्ष में जल्ह का वंश है। इसके अतिरिक्त वंशावली बराबर मिलती आ रही है और इसका ऐतिहासिक अनुशीलन करते वह भी कवि चन्द और पृथ्वीराज की समकालीनता प्रकट करता है।

भक्त कवि सूरदासजी का जन्म सम्वत १५४० और मृत्यु संवत् १६२० है। है। इन सम्वतों को निहारते हुए कवि सूरदासजी की आयु ८० वर्ष की होती है। शिलालेखोंअनुसारसिद्ध हुआ है कि पृथ्वीराज का मृत्यु सम्वत् १२४६ है। इस सम्वत् को भक्त कवि सूरदासजी के जन्म सम्वत् में से (१५४०-१२४६ = २६१) घटाने से ६ पीढ़ियों के लिये २६१ वर्ष का अन्तर आता है। इस अन्तर के २६१ वर्ष को ६ से भाग देने पर (२६१ ÷ ६ = ४८ वर्ष, ६ मास) ४८ वर्ष ६ मास आते हैं, जो एक पीढ़ी की आयु के लिये बराबर सप्रमाण आयुष्य माना जा सकता है और यही बात कवि चन्द की प्राचीनता तथा पृथ्वीराज की समकालीनता सिद्ध करती है, यद्यपि लोकवाणी में प्रवहित प्रचार नहीं, पर इतिहास और पुरातत्व का संगीन प्रमाण है।

(८)

पृथ्वीराज रासो और अनंद सम्वत्

पृथ्वीराज रासो की प्रकाशित प्रति में निर्दिष्ट सम्वतों के सम्बन्ध में आज के इतिहासकार शंका किया करते हैं, जो वास्तव में रासो की भाषा और काव्य के गूढ़ार्थ को समझने की उनकी अशक्ति और अज्ञान प्रदर्शित करता है। रासो के इन संवतों का, उसके टीकाकार श्री विष्णुलाल पंड्या तथा श्री बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए० 'अनंद सम्वत्' नाम से परिचय देते हैं, जो वास्तव में भाषा और काव्य में रहे हुए दृष्टि कूट को देखते इतिहास का एक प्रत्यक्ष सत्य है, जिसे काव्य-रचना की परिपाटी पर कस कर देखते हुए प्रामाणिक एवं सत्य सिद्ध होता है। रासो में सम्राट् पृथ्वीराज चौहान का जन्म सम्वत् इस प्रकार है—

एकादस सै पंच दह विक्रम साक अनंद।
तिहि रिपु जय पुर हरन को, भय प्रिथिराज नरिंद॥

जिसका अर्थ ग्यारहसो पंद्रह विक्रम के अनंद शाक में शत्रु पर विजय पाने और देशदेशांतरों को जीतने के लिये पृथ्वीराज नरेश ने जन्म लिया। यहाँ 'विक्रम साक अनंद' में 'अनंद' शब्द विक्रम शाक का संज्ञा शब्द है और इस संज्ञावाचक 'अनंद' में रहा हुआ गूढ़ार्थ चन्द कवि की काव्यरचना का लाघव प्रदर्शित करता है। 'अनंद' शब्द इस प्रकार बना हुआ है—अ+नंद=अनंद। अ=रहित, नंद=नव (जिस प्रकार संस्कृत में ऋषि शब्द का अर्थ सात होता है उसी प्रकार) अब सौ में से ९ को घटाने पर बाकी ९१ रहते हैं, जिन्हें कवि ने नवनंदों का राज्यकाल मान कर प्रचलित विक्रम संवत् में से घटाये हैं। क्योंकि नंद संकर जाति के अकुलीन थे और इसीसे कवि ने विक्रम संवत् की इस प्रकार गणना कर, उसका 'अनंद शाक'—नाम से परिचय करवाया है।[१] ऐसा करने का कवि का मुख्य हेतु था, जिसे वह स्वयं दूसरे पद्य में लिखता है—

एकादस से पंच दह, विक्रम जिम ध्रमसुत्त।
त्रतिय साक प्रथिराज कौ लिष्यौ विप्र गुनगुप्त॥

जिसका अर्थ इस प्रकार होता है—जैसे विक्रम और युधिष्ठिर शाक है, उसी प्रकार ग्यारहसो पन्द्रह पृथ्वीराज के तीसरे शाके का, जो ब्राह्मण के गुप्त गुण से से प्रेरित होकर लिखा है।

इस प्रकार रासो की पंक्तियों को देखते हुए महाकवि चंद ने स्वयं अपने यजमान और मित्र का इस पार्थिव सृष्टि में गौरव बढ़ाने के साथ उसकी स्मृति को सुरक्षित रखने के लिये प्रचलित विक्रम संवत् में से ९१ वर्ष कम करने की पद्धति स्वीकार की है। ऐसा करने का उसका हेतु भी उसने स्पष्ट कर दिया है। अतः संवतों में शंका करने का कोई स्थान ही नहीं है, पर इस प्रकार उसने विक्रम संवत् और शाक संवत् से भिन्न एक तीसरा नवीन संवत्सर का प्रारंभ किया है, जिसका रासो के टीकाकारों ने 'अनंद संवत्' के रूप में स्पष्ट परिचय दिया है। H.

---

१. देखिये—'पृथ्वीराज रासो' नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित।

H.स.टि. 'अनंद सम्वत्' का रासो के अतिरिक्त अन्यत्र बहुत कम प्रयोग होना पाया जाता है। औरङ्गजेब के समय के दर्बारी कवि जैत्रसिंह (ब्रह्मभट्ट) ने निम्नलिखित छप्पय में 'अनंद-सम्वत्' का उल्लेख किया है, जिससे प्रकट होता है कि वि० सं० और 'अनंद-सम्वत्' के बीच १०० वर्ष का अन्तर है—

इसके अतिरिक्त अनंद संवत् सम्बन्धी एक विशेष मत [1] पृथ्वीराज रासो के व्याख्याता उदयपुर निवासी कविराव मोहनसिंह का है, जो इस प्रकार है—

"अनंद संवत् पृथ्वीराज के पूर्वज, जिसका नाम अनंदराज होना चाहिये. उसके पुत्र धर्मसुत आदि ने उस अनंदराज के नाम पर शाके के उपलक्ष्य में चलाया

सोरहसय वाईस हतेउ संवत् अनंद तब ।
माघ मास वदि तिथि व मण्ड त्रोदसी सोम जब ॥
दिएउ पुत्र सिर छत्रु साहिजहान तजेउ वपु ।
चढ़ि विमान सुरलोक गए मिस्ती निवास तपु ॥
छिति रहेउ छाइ कीरति प्रबल, जगत विदित मानहु किरमि ।
जिमी उडि कपूर वासनाहि तजि वास रहिय वासनाहिं बसि ॥

आर्य भाषा पुस्तकालय, ना० प्र० सभा० हस्तलेख सं० ६२

उपर्युक्त छप्पय में शाहजहां के निधन का सम्वत् १६२२ दिया है, जो इतिहास सम्मत नहीं; परन्तु उसके आगे 'अनंद सम्वत्' दिया है, जिसको 'अनंद—संवत् मानना चाहिये, जो विक्रम सम्वत् से एक दूसरा भिन्न सम्वत् है। शाहजहाँ की मृत्यु वि० स० १७२२ में होना सिद्ध है। इस अवस्था में यह पूरे १०० वर्ष का अन्तर, विक्रम संवत् और अनंद संवत् के बीच का अन्तर ही प्रकट करता है। इस छप्पय का रचयिता दर्बारी कवि था और वंश परंपरा से उसका शाहीदर्बार से सम्बन्ध था। उसने शाहजहाँ का दर्बार भी देखा था, ऐसी अवस्था में वह शाहजहाँ का निधन जान—बूझ कर अशुद्ध लिखे, ऐसा कोई नहीं कहेगा। अस्तु, यह अनंद संवत की प्रामाणिकता का पुष्ट प्रमाण है। परन्तु यहाँ पर यह गड़बड़ी बनी ही रहेगी कि अनंद संवत् और विक्रम सम्वत् के बीच जो ९०—९१ वर्ष का अन्तर विद्वान् बतलाते हैं, वह उपर्युक्त छप्पय को देखते माननीय है अथवा नहीं। इस पर विचार होकर निर्णय होना आवश्यक है; किन्तु विद्वानों का इस ओर ध्यान आकर्षित नहीं हुआ है ।

---

१ आधुनिक युग में रासो के जानकारों में मुख्य उदयपुर निवासी कविराव मोहनसिंह हैं। ३५ वर्षों के कठिन परिश्रम पूर्वक अध्ययन के पश्चात् उन्होंने रासो का मार्मिक तथा आन्तरिक अध्ययन किया है, ऐसा अन्य किसी विद्वान् ने नहीं किया। अभी इन्होंने रासो का नये सिरे से सटीक संपादन किया हैं।

इसी प्रकार इनके अनुयायी प्रो० मीनाराम रंगा हैं और वे नागरी प्रचारिणी सभा के लिए रासो का संशोधित सम्पादन कर रहे हैं।

हो, यह रासो से सिद्ध होता है। 'अनंद विक्रम संवत्'-यह केवल पंड्याजी की उपज है। यह 'अनंद-संवत्' दिल्ली संवत् भी कहाता हो-ऐसा अनंगपाल के कुतुबुद्दीन की मस्जिद के प्रांगण में रहे हुए लोह-स्तंभ से भी यही सिद्ध होता है। प्रचलित विक्रमी संवत् में से ६१ वर्ष की भूल रासो में दिये हुए सभी संवतों में है। इसी प्रकार लोह-स्तंभ के लेख के संवत् में भी है। अतः यह भूल संवत् की संख्या में जोड़ने से बराबर मिल जाती है।

यह संवत् कुछ समय तक 'अनंद संवत्' और 'दिल्ली संवत्' के नाम से चला हो-यह प्रतीत होता है। अनंद का विकृत रूप अनाल, आनाल, अरणोदराज लेखों और कई प्रतियों में भी मिल जाता है। इससे हमारा अनुमान है कि चौहान वंश के मूल पुरुष का नाम आनल, अनंद आदि रासो में है। I. अतः संभव है कि चौहान जाति के उद्भव होने का संकेत पृथ्वीराज के जन्म संवत् पर महाकवि चंद बरदाई ने इस समय के ज्योतिषियों द्वारा तलाश करवा कर ही किया हो और चंद की लेखनी इस बात को स्पष्ट रूप से कह रही है कि विक्रमी और शक संवत् से यह संवत् सर्वथा भिन्न तीसरा संवत् है। क्योंकि कवि ने स्वयं तीसरा संवत् लिखा है। यदि हम तीसरे संवत् को नहीं समझ सकते, तो यह अपनी बुद्धि-मन्दता है-कविकी नहीं।"

इतिहास में उपलब्ध अनेक संवत्

इस प्रकार नया संवत् प्रारम्भ करने की प्रथा भारतवर्ष के इतिहास में कोई आश्चर्य प्रकट करने वाली नवीन घटना नहीं है, पर सर्वथा सामान्य घटना है। इतिहास के भूतकालीन पृष्ठों का अवलोकन करने से ऐसे कितने ही राजाओं के संवत् दिखाई देते हैं, जिनको इन्होंने किसी विजय के उपलक्ष्य में अथवा अपने राज्या-

---

I. मं. वि.-अनंदराज के नाम से 'अनंद विक्रम सम्वत्' कल्पना निरर्थक नहीं है; परन्तु रासो में जो चौहानों की प्राचीन वंशावली दी है, उसमें आनंदराज नाम के व्यक्ति का आदि पुरुष रूप में होना प्रकट नहीं होता। कविराव मोहनसिंहजी ने तो अपने सम्पादित रासो में प्राचीन वंशावली को स्थान ही नहीं दिया है और उसको क्षेपकांश समझ कर निकाल दिया है। वंशभास्कर में जो विस्तृत वंशावली चौहान वंश की दी है, उसमें भी आदि पुरुष या संवत् प्रवर्तक के नाम से आनंदराज का कहीं नाम नहीं मिलता। इस अवस्था में पंड्याजी की भांति यह भी एक क्लिष्ट कल्पना ही है।

रोहण के समय अपने शासनकाल में प्रारम्भ किये हुए हैं; जो दीर्घकाल तक व्यवहार में प्रचलित नहीं रहे, पर उनके शासनकाल पर्यन्त चलते रहे और पीछे प्रचार का अन्त हो गया। ऐसे संवतों में (१) गुप्त संवत (२) हर्ष सम्वत और गुजरात का सिंह संवत विशेष उल्लेखनीय है।

इतिहास के पृष्ठों में दिखाई देनेवाले इन संवतों में सिंह सम्वत्' का प्रारम्भ गुजरात के सोलंकी वंश के राजाओं में सिद्धराज जयसिंह ने किया था।[1] J जबकि

---

१ देखिये–"The glory that was gurjaradesa" By st. K. M. Munshi.

J.सं.टि.–प्राचीन इतिहास के अनुसंधान में विक्रम सम्वत् के अतिरिक्त भारत में अन्य कितने ही संवत्सरों के प्रचलित होने का पता चला है। जिस विक्रम संवत् का आज भी भारत के अधिकांश भाग में प्रचलन है और वह सार्वदेशिक माना जाता है, उसका प्रवर्तक कौन था? यह विषय विवादग्रस्त है और अब तक उसके प्रवर्तक का ठीक–ठीक निश्चय नहीं हुआ है एवं यह भी सही रूप से नहीं बतलाया जासका है कि वह किस वंश का नायक था। इस वि. संवत् को पहले के लेखों में और मध्य कालीन युग के लेखों ने 'मालवा-सम्वत्' नाम से सम्बोधित किया है, जिसको विद्वानों ने भी स्वीकार किया है। गुप्त सम्वत् की वल्लभी सम्वत् में भी परिगणना हुई है। इनके अतिरिक्त गांगेय संवत्, कलचुरि संवत्, हर्ष संवत्, चालुक्य वि०सं०, भाट्टिक संवत आदि भी हैं। सिंह संवत् का प्रवर्तक गुजरात का चौलुक्य (सोलंकी) नरेश सिद्धराज जयसिंह होना गुजराती विद्वान मानते हैं, जिनमें डा० भगवानलाल इन्द्रजी, डा० देवकृष्ण रामकृष्ण भाण्डारकर और श्री के० एम०, मुन्शी प्रमुख हैं। इन विद्वानों की मान्यता के अनुसार मानलें कि 'सिंह संवत्' का प्रवर्तक सिद्धराज जयसिंह (गुजरात का चौलुक्य नरेश) हो; परन्तु जयसिंह के उत्तराधिकारी एवं क्रमानुयायी कुमारपाल तथा भीमदेव के कुछ लेख तथा दानपत्र मेवाड़ तथा वागड़ में हमारे भी देखने में आये हैं, जिनमें 'सिंह संवत्' नहीं दिया है और केवल वि० सं० ही उल्लिखित है।

हर्ष संवत् का प्रारम्भ विक्रम की सातवीं शताब्दी के प्रारम्भ में सम्राट् हर्षवर्द्धन ने किया था,[1] जो उनके शासनकाल में प्रचलित रहा और अब काल कवलित होगया है। इसी प्रकार रासो के 'अनंद संवत्' की भी दशा हुई है, जो पृथ्वीराज के अवसान के पीछे व्यवहार में नहीं रहा।

इतिहास में अनंद संवत् की उपयोगिता—

भारतीय इतिहासज्ञों में कई विद्वानों ने रासो के इस 'अनंद' संवत् को स्वीकार किया है और उसकी ऐतिहासिक उपयोगिता को प्रकट किया है, जिससे उनको अन्य राजाओं और उनके समय की घटनाओं के काल-निर्णय करने में सरलता मिली, जिसकी सचाई नीचे के एक ही प्रमाण से प्रकट होती है—

आमेर के कच्छवाहों और राव पज्जून तथा राव किल्हण के समय का निर्धारण करते श्री हरिशरणसिंह चौहान सूचित करते हैं कि—"इस प्रकार 'अनंद संवत्' का समर्थन करना उचित लगता है।[2]"

जब रासो के संवत् को स्वीकार नहीं करने में श्री ओझाजी अकेले हैं और वे उसका कारण 'अनंद संवत्' और शास्त्रीय संवत् के बीच ९१ वर्ष का अन्तर बताते हैं, जो उनकी एक सच्चे इतिहासकार या पुरातत्वविद् के रूप में तटस्थता नहीं, पर केवल व्यर्थ हठाग्रह ही है। क्योंकि जिस विक्रम संवत् और ईस्वी सन् के बीच ५६-५७ वर्ष का अन्तर तथा शक संवत् और विक्रम संवत् के बीच १३५ वर्ष के अन्तर को बिना किसी प्रत्यक्ष प्रमाण के स्वीकार करते हैं, तो फिर 'अनंद संवत्'

इस स्थिति में 'सिंह संवत्', कोई सार्वदेशिक संवत् रहा हो, ऐसा कोई नहीं मान सकता। आश्चर्य नहीं कि रासो में पृथ्वीराज तृतीय के संबंध के जितने भी संवत् दिये हैं, वे पृथ्वीराज प्रथम के संवत् हों, जो वि. सं० ११६२ तक तो निश्चित रूप से विद्यमान था। संभव है कि मूल रासो में (जो अब तक अप्राप्य है) संवत् क्रम न हो और क्षेपक रूप से पिछले संस्करणों में उनके कर्ताओं ने पृथ्वीराज एक ही व्यक्ति मान कर दिये हों।

१.— देखिये—'हर्षवर्धन'; प्रो० गिरिजाशंकर चैटरजी ए० एम० कृत।

२. देखिये— नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १०, अंक १-२, श्री हरिशरणसिंह चौहान का लेख—'आमेर के कछवाहा राव पज्जून और किल्हण।

के अन्तर को स्वीकार करने में क्या हानि हो सकती है ? जिसके लिये रासा में स्पष्ट प्रमाण दे दिया गया है।

फिर भी श्री ओझाजी की विद्वत्ता को ध्यान में रखते हुए उनके मत के साथ सहमत होवें; परन्तु ऐसा करने पर उनका 'बीकानेर का इतिहास' नामक ग्रन्थ निषेध करता है। इस ग्रन्थ में श्री ओझाजी ने एक सच्चे इतिहासकार के धर्म के विरुद्ध जाकर बीकानेर राज्य की कितनी सत्य ऐतिहासिक घटनाओं पर पटाक्षेप कर दिया है। ऐसी घटनाओं में मुख्य बीकानेर की राज्य कन्याएँ इस्लामी बादशाहों के साथ विवाह करने की है।K [1]जिसका प्रकट उल्लेख बीकानेर राज्य के अपने गजट में भी किया गया है। जबकि इतिहासकार ओझाजी ने उसे अपने लिखे 'बीकानेर के इतिहास' में सर्वथा अनुल्लेखनीय रक्खा है। इस वास्तविक बात को देखते श्री ओझाजी के मत में शंका करने का शत प्रतिशत स्थान रहता है। अतः केवल उनके अकेले मत को विश्वसनीय नहीं माना जा सकता। क्योंकि इनके ऐतिहासिक

K स०टि० इतिहास में अनंद संवत को कहीं मान्यता नहीं दी गई है। केवल वे ही विद्वान जो रासो को प्रामाणिक मानते हैं, एवं ख्यातों की वंशावलियों को विश्वस्त समझते हैं, वे उसकी इतिहास से जोड़–तोड़ बिठलाने की चेष्टा करते हैं। बूंदी के श्री हरिचरणसिंहजी चौहान इस प्रकार के ही विद्वान् हैं, जिन्होंने अपनी विलक्षण युक्तियों से यहाँ संगति बिठलाने का यत्न किया है; पर उसके पीछे कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है, जो सर्व मान्य हो। श्री चौहान के तर्क के अनुसार कछवाहा राजा वज्रदामा (वि० सं० १,०३४) के १२ वें वंशधर पज्जून का समय १६ वर्ष के औसत से महाराजा पृथ्वीराज चौहान (तृतीय) के राज्यकाल आदि से मिल जाता है। श्री ओझाजी २० वर्ष के औसत से पज्जून का समय लगभग वि० सं० १,२६४ मानते हैं; किन्तु सब ही स्थानों पर बीस वर्ष का औसत काम नहीं देता। इस बात को ध्यान में रखते हुए पज्जून को पृथ्वीराज तृतीय का समकालीन मान लेने में इतिहास की कोई हानि नहीं होती; क्योंकि अब तक पज्जून के कोई शिलालेख आदि साधन उपलब्ध नहीं हुए हैं एवं शोध से कोई ऐसा साधन उपलब्ध न हो, तब तक प्रचलित विचारधारा की उपेक्षा करना हमारे दृष्टिकोण से भी उचित नहीं है। जब पज्जून के समय का कोई लेख आदि मिल जायगा, स्वतः यह समस्या सुलझ जायगी।

१ देखिए– 'श्री ओझाजी का लिपि पोता अर्थात् 'बीकानेर का इतिहास' श्री पं० [illegible] कल्ला, बी०ए० कृत।

विधान शोध के नाम से सर्वथा पक्षपात पूर्ण और निजी स्वार्थ के राहु से घिराये हुए हैं। L.

L. सं० वि० 'अनंद संवत्' या 'अनंद वि० सं०' को थोड़े ही वर्षों से रासो के समर्थकों ने अपनी नवीन सूझ-बूझ से इतिहास के क्षेत्र में लाकर खड़ा किया है। पहले उन्होंने उसके और वि० सं० के बीच में १०० वर्ष का अन्तर होना बतलाया। किन्तु इतिहास से जब उसकी सर्वत्र सङ्गति नहीं बैठी, तब अपना विचार बदल दिया और ९०-९१ वर्ष का अन्तर होना प्रकट कर रासो की घटनाओं की संगति बिठलाने का यत्न किया। इससे आक्षेपकों को मौन हो जाना पड़ा। वर्तमान समय के हिन्दी भाषा के बहुत कुछ विद्वान् अब 'अनंद संवत्' का अस्तित्व मानने के लिए सहमत होगये हैं; परन्तु कहना पड़ेगा कि ज्योतिष आदि अन्य दृष्टि बिंदुओं से इस पर विचार नहीं हुआ है। अस्तु, समस्या ज्यों की त्यों बनी हुई है।

इस निबन्ध के लेखक श्री गोवर्द्धन शर्मा अपनी युक्ति और तर्क से रासो की कथाएं सर्वथा सत्य होने पर बल देते हैं और मान्यवर ओझाजी पर बीकानेर के इतिहास में मुगल कालीन विवाहों की घटनाओं पर लीपा पोती करने का आक्षेप करते हुए, उनके 'अनंद संवत्' विषयक कथन को सन्देह जनक मानकर स्वीकार नहीं करते। इसमें हमें कोई आग्रह नहीं, पर यह तो अनादिकाल से चला आता है कि विद्वान् लेखक सर्वत्र एकसा नहीं लिखते और उनमें मौलिक रूप से मतभेद हुआ ही करता है। वर्तमान समय में भी यह परिपाटी बनी हुई है और घटनाओं को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत की जाती हैं, इसके सैंकड़ों उदाहरण विद्यमान हैं। विद्वानों की विचार-धारा को मनन करते हुए हम यह निःसंकोच कह सकते हैं, कि रासो के समर्थकों ने भी रासो में अधिकांश भाग क्षेपकांश होना स्वीकार किया है और मुनि श्री जिनविजयजी के दिये हुए पद्यों के नमूनों से तो उसका वास्तविक रूप दूसरा ही ज्ञात होता है। जब मूलरूप बिगाड़ कर उसका भ्रष्टरूप प्रस्तुत किया जाय तो निर्णायक उसको किसी भी प्रकार से सही होना नहीं मानते। यह न्याय परिपाटी है, जिसको न्यायालय भी मानता है। श्री गोवर्द्धन शर्मा, अपने इस निबन्ध में स्पष्टतः रासे को मूल रूप में होना नहीं मानते हैं, तथा पृथाकुंवरी का विवाह समरसिंह से न होकर सामन्तसिंह से होना मानते हैं, जो श्री दूगड़ और ओझाजी की विचारधारा के अनुसार है। जब एक स्थान पर वे श्री ओझाजी की विचारधारा और प्रमाणों पर चलते हैं तो दूसरी तरफ हे उनको लाञ्छित करते हुए नहीं चूकते। हमारी दृष्टि से यह श्री शर्मा की अन्तर्वेदना है, जो रासो के कर्ता के प्रति

शिलालेखों में उपलब्ध अनंद संवत्: —

इसके अतिरिक्त रासो के संवत् का उल्लेख शिलालेखों में भी मिल जाता है। दिल्ली के तंवर शासक अनंगपाल का नाम दिल्ली के कितने ही स्तंभों पर उपलब्ध होता है, परन्तु उनमें भी संवत् नहीं है। केवल कुतुबुद्दीन ऐबक की मस्जिद के प्रांगण में, जो लोह स्तंभ पड़ा है, उसके ऊपर उसके विषय में संवत् का उल्लेख इस प्रकार है—"संवत् दिल्ली ११०९ अनंगपाल वही।" जिसका अर्थ आज तक विद्वानों ने यह किया है कि वि० सं० ११०९ में अनंगपाल ने दिल्ली को को बसाया। पर यह अर्थ ठीक नहीं। क्योंकि संवत् संख्या के पीछे संवत् के अंक नहीं आये हैं। 'संवत् दिल्ली' लिखने के पीछे संवत् के अंक आये हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि "दिल्ली संवत् ११०९ में इसे (दिल्ली को नये ढंग पर जीर्णोद्धार के रूप में) बसाया। उसमें बसाये हुए स्थान का उल्लेख नहीं आया है, पर जहाँ यह लेख है, वही अपने बसने का स्वयं समर्थन करता है। यही दिल्ली वाला संवत् रासो का 'अनंद सम्वत्' है, जिसमें स्व० विष्णुलाल मोहनलाल पंड्या के मत के अनुसार ९१ वर्ष का अंतर जोड़ने पर वि० सं १२०० में अनंगपाल का दिल्ली संवत् होना सिद्ध होता है।[१]

अगाध श्रद्धा को प्रकट करती है, पर उनको यह ध्यान में रखना चाहिये कि अनंद सम्वत् के विषय में अभी तक मतभेद समाप्त नहीं हुआ है और रासो के समर्थक भी भिन्न २ मत रखते हैं, जैसा कि ऊपर श्री कविराव मोहनसिंहजी ने बतलाया है—"अनंद संवत् केवल पंड्या जी की उपज है"। इस अवस्था में सर्व मान्य सिद्धान्त रूप से इसको कोई स्वीकार नहीं करेगा कि वि० सं० या शक संवत् की भांति अनंद संवत् कोई सार्वदेशिक संवत् रहा हो। केवल रासो तथा उस ही के सदृश ख्यातों से उसका अस्तित्व मान लेने से ही वह सर्वमान्य और सार्वदेशिक संवतों में नहीं गिना जा सकता। यथार्थ में यह विषय शोध का है और इसका अन्त नहीं है। अतएव शोधक बुद्धि विद्वानों को किसी प्रकार का दुराग्रह न रखते हुए शोध की प्रवृत्ति रख निजी मत प्रकट करना चाहिये।

···सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते।
मूढःपरःप्रत्ययनेय बुद्धिः ॥

१ देखिये—राजस्थानी भारती भाग १, अंक २, श्री कवि मोहनसिंह राव का लेख और 'पृथ्वीराज चरित' श्री रामनारायण दूगड़ कृत।

[illegible] 'मनंद गोरान्' [illegible] लिख [illegible] में इसने [illegible] किया था. जो रासो, दोनों [illegible] है, जिसे [illegible] के सिवाय अन्य इतिहासकारों [illegible] किया है। इसलिये 'मनंद गोरान्' का [illegible] ऐतिहासिक सत्य है। इतिहास का यह सत्य समझ में [illegible] के लिखने वाले का कोई दोष नहीं, पर ऐसे इतिहास- [illegible] के अभाव का ही होता है।

(६)

[illegible] रासो की कुछ घटनाएँ

[illegible] और काशी नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित रासो में [illegible] घटनाओं को कुछ इतिहासकार ऐतिहासिक दृष्टि से असत्य [illegible] आये हैं, वे इस प्रकार हैं—

(१) चौहान वंश की उत्पत्ति की कथा।

(२) [illegible] का आना [illegible] और दिल्ली अनंगपाल के यहाँ पृथ्वीराज [illegible] जाना।

(३) गुजरात [illegible] भीमदेव द्वितीय और पृथ्वीराज चौहान के संघर्ष की कथा।

(४) [illegible] और जयचंद के साथ युद्ध।

(५) मेवाड़ के रावल समरसी (सामंतसिंह) के साथ पृथाबाई के विवाह की कथा।

इन घटनाओं को असत्य मानकर जिन २ इतिहासकारों ने रासो को [illegible] है, उनके कथन में [illegible] इतिहास का एकदम असत्य और रासो [illegible] और ज्ञान का सर्वथा अभाव प्रतीत होता है। क्योंकि ऐतिहासिक दृष्टि से इन घटनाओं की जाँच करने पर उनमें संपूर्ण सत्य होना प्रतीत होता है, जिसका [illegible] यहाँ विवेचन किया जाता है।

रासो की घटनाओं में निहित वास्तविक सत्य

(१) [illegible] रासो में चौहान वंश की उत्पत्ति-कथा में उसे अग्नि वंशी [illegible] है, क्योंकि रासो की अन्य हस्तलिखित प्राचीन प्रतियों में [illegible] नहीं गया है। इसके अतिरिक्त चौहान वंश सम्बन्धी अन्य

प्राचीन ग्रंथों और शिलालेखों के अनुसार भी चौहान वंश 'सूर्य वंशी' है। यह समानता ही बतला देती है कि रासो की प्रचलित प्रति की "अग्निवंशी" कथा पीछे से जोड़ी हुई-क्षेपक भाग है, जिसका विस्तार ही उसकी सार शून्यता को प्रकट कर देता है। इस विस्तृत वर्णन का सूक्ष्मता से निरीक्षण करने पर तुरन्त ही उसमें रहे हुए रासो के चन्द-कृत असली पद्य और ऐतिहासिक तथ्य प्रकट होता है, जिसमें चन्द ने स्पष्टतया चौहान वंश की उत्पत्ति, ब्रह्माजी के यज्ञ कुण्ड में से 'सूर्य वंशी' होना बताया है, जो इस प्रकार है—

रासो में वर्णित चौहान वंश की उत्पत्तिः—

"ब्रह्मा ने यज्ञ के लिये जब मण्डप की रचना की, तब असुरों ने निःसंकोच इस स्थान को भ्रष्ट करने की इच्छा की। यह देख कर ब्रह्मा ने मन में ही निश्चय किया कि स्वयं सूर्य को ही इन लोगों के नाश के लिये रण-संचालक योद्धा के रूप में प्रकट करना चाहिये। इससे ब्रह्मा ने यज्ञ कुण्ड को अग्नि से सुसज्जित कर आसन बिछा यज्ञ का आरम्भ किया और वे तत्वयुक्त मंत्रों से स्तुति का उच्चारण करने लगे। पीछे कमण्डल में से हाथ में जल लेकर उसे छिड़कते हुए बोले— "आओ-आओ—इन दुष्टों को भगादो।"—उनका ऐसा कहना था कि चौहान आकर उपस्थित होगया। यज्ञ के समय इस स्थान पर अवतरित हो, उसने बाण-वर्षा से असुर समूह को नष्ट किया और ब्रह्मा के यज्ञ को निर्विघ्न समाप्त किया।"[1]

इससे सिद्ध होता है कि मूल रासोकार कवि चन्द ने चौहान वंश का प्रादुर्भाव ब्रह्म-यज्ञ के समय सूर्य से होना माना है और वह चौहान वंश को 'सूर्य वंशी होना मानता था, जिसके प्रकट करनेवाले उल्लेख रासो ग्रन्थ में स्थान-स्थान पर

---

१ जब चतुरानन जग्य कजि, सजि मंडप सुस्थान।
तब आसुर असंकि सह, किय उच्छिष्ट उत्थान॥
चतुरानन मन-च्यंति, असुर वध अवनि विचारिय।
जग्य जिष्ट उच्छिष्ट करे कातर-क्रत-हारिद॥
सुरणि अंश संग्रहे हव्य नहं हव्य हवे नह हव।
सो उपाइ संचिये जेई संवरे असुर सह॥
निम्मो सु 'सूर-संग्रान भर अरि अलंग खंडै खलह।
सम धरे जग्य कारण सु कलि निमल बुद्धि हुम्मई सकल॥

मिल जाते हैं।[१] इससे रासो में वर्णित मूल घटना ऐतिहासिक सत्य है और उस पर प्रक्षेपों के ढँके हुए आवरण के कारण रासो की भाषा से सर्वथा अज्ञात, आज के इतिहासकारों को उसमें रहा हुआ सत्य क्यों कर दिखाई दे ? ऐसा करने के लिये तो अभ्यास और सतत परिश्रम की आवश्यकता है।

इसके अतिरिक्त बीकानेर फोर्ट लाइब्रेरी की हस्तलिखित रासो की प्रति में तथा राव मोहनसिंहजी की देवलिया की प्रति में केवल चौहान वंश को सूर्य वंशी और ब्रह्मा के यज्ञ कुण्ड से उत्पन्न होने का उल्लेख है, जिसे पहले देख चुके हैं, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण रासो की प्राप्त हस्तलिखित प्रतियाँ हैं, जो सिद्ध करती हैं कि रासो में वर्णित घटनाएँ सर्वथा सत्य हैं। उपर्युक्त भ्रम फैलानी वाली घटनाओं का दोष तो उसमें पीछे से जोड़े गये क्षेपकों व के कारण है, न कि कवि चंद का, जिसका दर्शन रासो की भाषा और पाठ के ज्ञान से सर्वथा अज्ञात श्री ओझाजी और शास्त्रीजी जैसे इतिहासकारों को कहाँ से हो ? अन्त में इतना ही कहना है कि रासो में मूल कवि चंद द्वारा वर्णित चौहान वंश की घटना सर्वतोभावेन ऐतिहासिक सत्य है, जिसका समर्थन चौहानों के शिलालेख करते हैं। अतः आज के इतिहासकारों की मान्यता सर्वथा निर्मूल है।

[२] रासो में वर्णित संशयात्मक घटनाओं में दूसरी घटना पृथ्वीराज का दिल्ली गोद जाना है और उसकी माता का नाम कमला है। इस घटना के सबंध में इतिहासकार श्री ओझाजी का कहना है कि—"इस समय दिल्ली पर अनंगपाल नाम का कोई शासक ही नहीं था। क्योंकि चौहान विग्रहराज (वीसलदेव) पहले

रासो, देवलियावाली प्रति, राव मोहनसिंहजी की।

इसके अतिरिक्त देखिये—

रासो प्रकाशित समय १, पृष्ठ ५१, छन्द २२५

" " " " ५५ छन्द २८०

तथा इस प्रति के इस पृष्ठ के ऊपर छन्द २८२ की प्रथम पंक्ति

—"ब्रह्मान जग्य उत्पन्न सुर, चहुवान अनल अरि मूलन सूर।"

१ "उपज्यौ ब्रह्म कुण्ड अनूप" देखिये-प्रकाशित रासो पृष्ठ ३४६ समय ७ वाँ।

से ही दिल्ली राज्य को अपने राज्य में मिला चुका था। इसी प्रकार पृथ्वीराज की माता का नाम कर्पूरदेवी है; जो त्रिपुरी के राजा तेजल की पुत्री थी, तोमर अनंगपाल की पुत्री नहीं।" इतिहासकार और रासो के विरोधी विद्वानों के इस कथन में भी ऐतिहासिक सत्य का समूल अभाव है। क्योंकि ऐतिहासिक दृष्टि से अन्वेषण करने पर रासो का कथन सत्य प्रतीत होता है, जो इस प्रकार है—

इस समय दिल्ली चौहानों के शासन में नहीं, पर साम्राज्य में था

रासो में वर्णित मूल पद्यों को देखने पर विदित होता है कि निःसन्देह विग्रहराज चतुर्थ ने दिल्ली पर आक्रमण किया था, और उसके तँवर शासकों का अपने अधीन कर जागीरदार बना लिये थे, जिसका प्रमाण वि०सं०१२२०का विग्रहराज का मिला हुआ शिलालेख है[1], जिसमें विजयी राजाओं का 'करद' अथवा जागीरदार बनाने का उल्लेख है। रासो और शिलालेखों की यह समानता ही प्रकट कर देती है कि दिल्ली पर चौहानों का प्रभाव था, शासन नहीं और यदि शासन होता तो अवश्य विग्रहराज, सोमेश्वर आदि पृथ्वीराज के पूर्ववर्ती राजाओं का अपने शाकम्भरीश्वर के साथ दिल्लीश्वर के रूप में अवश्य ही उनका परिचय दिया होता। परन्तु उनके प्राप्त शिलालेखों के अनुसार उन्होंने ऐसा नहीं किया। यही बता देता है कि दिल्ली पर उनका कोई करद अन्य शासक होना चाहिये।

इन सब बातों से सिद्ध होता है कि दिल्ली का सिंहासन श्री ओझाजी के कथनानुसार चौहानों के सीधे शासन में नहीं था, पर उनके साम्राज्य के अंतर्गत था; जिसका अंत पृथ्वीराज के समय में हुआ। अर्थात् पृथ्वीराज को वि०सं० १२२६ में वह सपूर्ण रूप से दिल्ली प्राप्त होगई।

अब हमें देखना है कि वि० सं० १२१३ से लेकर वि० सं० १२२६ तक दिल्ली पर कोई अनंगपाल नामक शासक था या नहीं?

अनंगपाल का नाम दिल्ली के कई स्तंभों पर मिल जाता है, पर उनमें एक के भी साथ संवत् नहीं है। केवल कुतुबुद्दीन ऐबक की मस्जिद के प्रांगण में एक लोह स्तंभ पड़ा हुआ है, उस पर उसके विषय में संवत् का उल्लेख है, जो 'दिल्ली संवत' ११०६ है। यही 'दिल्ली संवत्' उस रासो में उल्लेखित अनंद संवत प्रतीत होता है,

---

1 देखिये—'पृथ्वीराज चरित' श्री रामनारायण दूगड़ पृ० ४४–४५.

जिसमें अन्तर के ६१ वर्ष जोड़ देने से वि०सं० १२०० में दिल्ली पर अनंगपाल का होना सिद्ध होता है।[1]

इसके अतिरिक्त दूसरा प्रमाण जिनपाल कृत 'खरतर गच्छ-पट्टावली' है, जिसमें इस समय दिल्ली के राजा का नाम मदनपाल दिया गया है। मदनपाल यह अनंगपाल का पर्यायवाची नाम है और उसके साथ तुलना करते चौहान विग्रहराज, सोमेश्वर और पृथ्वीराज का समय बराबर मिल जाता है[2] कि वि० सं० १२२६ के पूर्व दिल्ली पर तँवर अनंगपाल नाम का राजा था और कोई नहीं, जिसने अपनी पुत्री कमला का चौहान सोमेश्वर के साथ विवाह किया था और उसके गर्भ से उत्पन्न कुमार पृथ्वीराज को अपनी दिल्ली की गद्दी वारसे में दी थी, इसमें शंका करने का कोई स्थान नहीं है। क्योंकि उस समय वहु विवाह की प्रथा थी और संभव है कर्पूरदेवी के साथ सोमेश्वर ने विवाह किया हो। इससे अन्यान्य ग्रन्थों में कर्पूरदेवी के उल्लेख से विदित होता है कि विमाता होने के कारण ही भ्रम में पड़ कर उनके लेखकों ने माता का उल्लेख किया है, जो ऐतिहासिक दृष्टि से ठीक नहीं है।

वस्तुतः पृथ्वीराज का जन्म तो कमला से हुआ था, कर्पूरदेवी से नहीं, जिसका प्रमाण इस प्रकार है—

पृथ्वीराज की माता

पृथ्वीराज विषयक पुस्तकादि साधनों में वर्णित वृत्तान्तों से विदित होता है कि रासो में दिये गये प्रमाण के अनुसार पृथ्वीराज का जन्म वि०सं० १२०५–६ है[3]। परन्तु इतिहासकार तो 'विजय' के अनुसार कर्पूरदेवी के साथ सोमेश्वर का विवाह वि०सं०१२१८ में मानते हैं। अतः ऐसा मानने में संपूर्ण कारण है; पर पृथ्वीराज का जन्म कर्पूरदेवी से नहीं, पर कमलादेवी से हुआ था; क्योंकि उसका जन्म तो उसकी अपर माता के लग्न के पहले ही हो चुका था और इससे सिद्ध होता है कि पृथ्वीराज की माता कर्पूरदेवी नहीं, पर कमला है, जो दिल्ली के राजा तँवर अनंगपाल की पुत्री थी।

---

१. देखिये– 'राजस्थान भारती' भाग १, अंक २, ३ पृ० ४१।

२ देखिये– वीणा वर्ष १६, अंक ६, डॉ० दशरथ शर्मा की प्रवेशिका।

३. देखिये– 'राजस्थान भारती' भाग १ अंक २–३।

(३) रासो की सन्देहात्मक घटनाओं में गुर्जरपति भीमदेव द्वितीय और पृथ्वीराज के बीच संघर्ष की घटना है। इस घटना के मिथ्या होने के इतिहासकारों के कथन में भी ऐतिहासिक सत्य का सर्वथा अभाव है। क्योंकि इस घटना को रासो के अतिरिक्त अन्य ऐतिहासिक प्राचीन सामग्री के साथ तुलना करने पर वह सत्य सिद्ध होती है, जो संक्षेप में इस प्रकार है—

प्रह्लादन कृत 'पार्थ पराक्रम व्यायोग' नामक नाटक मिल जाने से विद्वानों को इस बात का विश्वास हो गया है कि पृथ्वीराज चौहान और भीमदेव द्वितीय का परस्पर युद्ध हुआ था, जिसका कारण आबू का परमार राजा धारावर्ष था; जो पृथ्वीराज का विरोधी था। इसके अतिरिक्त गुर्जरपति भीमदेव द्वितीय का माण्डलिक था। इस बात का उल्लेख जिनपाल कृत 'खरतर गच्छ पट्टावली' भी करती है कि वि०सं०१२४४ के पहले चालुक्य और चौहान के बीच संघर्ष की समाप्ति हो गई थी[1]। जिसका प्रकट प्रमाण काठियावाड़ के वेरावल में से मिल गया है। भीमदेव द्वितीय का अपूर्ण शिलालेख और बीकानेर स्टेट के चरलू नामक गाम से मिल जानेवाले वि०सं० १२४१ का शिलालेख हैं।

चरलू के शिलालेख में उल्लिखित चौहान–चालुक्य संघर्ष

इन चरलू शिलालेखों में से एक शिलालेख वि०सं० १२०० का है, दूसरा सं० १२३४ का है और तीसरा वि० सं० १२४१ का है। ये लेख ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े महत्त्व के हैं और इन लेखों में के तीसरे लेख द्वारा यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि चौहान और भीमदेव द्वितीय के बीच युद्ध हुआ था, जिसका प्राङ्गण नागौर था और इस युद्ध में मोहिल (चौहान) सरदार वीर गति को प्राप्त हुए थे[2], जिनकी स्मृति में ये लेख लिखे गये हैं। 'मोहिलवटी' स्थान इस समय पृथ्वीराज चौहान के राज्य के अंतर्गत था और संभव है कि ये वीर चालुक्य भीमदेव द्वितीय के साथ

---

१. देखिये—'पृथ्वीराज रासो संबंधी कुछ विचार' डॉ० दशरथ शर्मा एम० ए० डि० लि० और प्रो० मीनाराम रंगा कृत।

२. देखिये—'राजस्थान भारती' अंक १, भाग १, डॉ० दशरथ शर्मा एम० ए० डी० लिट० का लेख।

के युद्ध में मारे गये हों, जिनका वर्णन पृथ्वीराज रासो में विस्तार पूर्वक किया गया है, जो रासोकार कवि की कोरी कल्पना नहीं, पर संगीन ऐतिहासिक सत्य है।

[४] रासो की कथित अनैतिहासिक घटनाओं में मुख्य घटना संयोगिता स्वयंवर और जयचन्द के साथ पृथ्वीराज का संग्राम है; जिसका आधुनिक इतिहासकार "हम्मीर महाकाव्य" और "रम्भा मंजरी" नामक ग्रन्थों में उल्लेख नहीं होने से ऐतिहासिक सत्य रूप में अस्वीकार करते हैं और उसे केवल रासोकार कवि की कल्पना मानते हैं।

'इतिहासकारों की अयुक्त युक्ति'

इतिहासकारों की इस मान्यता का आधार केवल एक अयुक्त युक्ति है। क्योंकि अमुक ऐतिहासिक घटना के लिये अमुक ग्रन्थ मौन है। अतः यह असत्य है; यह मानना उचित नहीं है। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त सम-सामयिक ग्रन्थ उसका उल्लेख करते हैं, जिनका पहले 'पृथ्वीराज विजय' काव्य' के प्रकरण में विवरण कर दिया गया है। अतः इस कथा में अवश्य ऐतिहासिक सत्य है, जिसका वर्णन रासोकार कवि चन्द ने सम्पूर्णतया अपने ग्रन्थ में किया है।

इसके अतिरिक्त अब एक ही बात रही—पृथ्वीराज और जयचन्द के बीच होने वाले युद्ध की। इसका प्रमाण जयचन्द और पृथ्वीराज के सम्बन्ध में सं० १२९० में लिखे गये जैन-साहित्य के प्रबन्ध हैं[१]। अतः इससे सिद्ध होता है कि जयचन्द और पृथ्वीराज में युद्ध हुआ था और युद्ध का कारण संयोगिता का अपहरण था, जो माना जा सकता है। इससे रासो में वर्णित यह घटना भी एक ऐतिहासिक सत्य है। असत्य तो इतिहासकारों की अयुक्त युक्ति है।

रावल सामन्तसिंह और पृथ्वीराज की समकालीनता

[५] रासो की संशयात्मक घटनाओं में अन्तिम घटना रावल समरसी अर्थात् सामन्तसिंह के साथ पृथ्वीराज की बहिन पृथाबाई के विवाह की बात है, जिसके प्रतिकार में इतिहासकार बताते हैं कि 'सामन्तसिंह रावल नाम का कोई राजा ही नहीं हुआ'—इतिहासकारों का यह कथन भी सर्वथा निर्मूल है। यह उनके ऐतिहासिक अज्ञान को प्रकट करता है। क्योंकि

---

१. इस सम्बन्ध में देखिये—'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' मुनि श्री जिनविजयजी द्वारा सम्पादित।

इस सामंतसिंह के वंशज आज भी राजपुताना में डूँगरपुर रियासत पर विराजमान हैं। इसके अतिरिक्त रावल सामन्तसिंह के समय के शिलालेख भी मिल गये हैं, जो वि०सं० १२२८ और १२३८ के हैं। सं० १२३१ के लगभग इस राजा ने गुजरात के सोलकी राजा मूलराज के साथ युद्ध कर उसे परास्त किया था। इसके अतिरिक्त कुम्हलगढ़ से मिलने वाले सं० १५८७ के शिलालेख से विदित होता है कि सामन्तसिंह नाम का राजा हुआ था, जिसने मेवाड़ की गद्दी को खो देने पर वर्तमान डूँगरपुर राज्य की स्थापना की थी और मेवाड़ की गद्दी उसके छोटे भाई कुमारसिंह ने पुनः प्राप्त की थी, जिसके वंशज आज भी उसका उपभोग करते हैं।

और इन सब तथ्यों से सिद्ध होता है कि मेवाड़ की गद्दी पर सामंतसिंह नामक राजा हुआ था।

पृथाबाई के विवाह का ख्यातों में उल्लेख

अब पृथ्वीराज की बहिन पृथाबाई के साथ सामंतसिंह के विवाह की बात रही, जिसका प्रकट प्रमाण ख्यातों में है। इन ख्यातों में सामंतसिंह का समरसी लिखा गया है और उनमें समरसी का विवाह संभरी नरेश चौहान के यहाँ होना बताया गया है। यही बात पृथाबाई के विवाह का सर्व विदित प्रमाण है। क्योंकि सामंतसिंह और समरसी नामों में विशेष अन्तर नहीं है। रासो में भी इस सामंतसिंह को समरसी लिखा गया है। यह सामंतसिंह अवश्य ही सोमेश्वर और पृथ्वीराज तृतीय का समकालीन राजा था, यह शिलालेखों से भी सिद्ध होता है और यही बता देता है कि सामंतसिंह का विवाह पृथाबाई के साथ हुआ था,[1] जिसका विस्तार पूर्वक वर्णन पृथ्वीराज के राजकवि चन्द बरदाई ने पृथ्वीराज रासो में किया है, जो सम्पूर्णतया ऐतिहासिक सत्य है। असत्य तो इतिहासकारों का असंगत विधान है।

उपसंहार

इस प्रकार इन सब घटनाओं की ऐतिहासिक जाँच पड़ताल और समीक्षा से ये सब सत्य सिद्ध होते हैं और यह विदित होता है कि रासो एक सम्पूर्ण ऐतिहासिक महाकाव्य है, जिसकी रचना कथा-नायक के राजकवि चन्द बरदाई ने की थी और

१ देखिये 'राजपुताने का इतिहास' श्री जगदीशसिंह गहलोत कृत।

इसीलिये अन्य ग्रंथों से उसमें विशेष वर्णन और वास्तविकता के दर्शन होते हैं, जिन्हें यह असत्य और अनैतिहासिक लगता है, वह तो केवल रासो के द्वेषी इतिहासकारों की निरी कल्पना है, जो भारत के इतिहास और साहित्य के लिये एक भयंकर अनिष्ट है।

(१०)

कवि चंद और रासो का प्राचीन उल्लेख—

पृथ्वीराज रासो की प्राचीनता को प्रकट करने वाले कई प्रकीर्ण उल्लेख भी मिल जाते हैं, जिनमें मुख्य ये हैं—

(१) मेवाड़ के रावल समरसी (सामन्तसिंह) के पट्टे परवाने, जिनमें महाकवि चंद और उसके पुत्र जल्हन का स्पष्टतया उल्लेख किया गया है। रावल समरसी (सामन्तसिंह) का शासन काल, उसके प्राप्त शिलालेखों के अनुसार सं० १२२८ से १२३६ तक माने गये हैं, जिसके साथ पृथ्वीराज चौहान की बहिन पृथाबाई का विवाह किया गया था तथा उसका गुजरात के सोलंकी राजा अजयपाल द्वारा पराभव हुआ था।[1] इसके पश्चात् उसने वागड़ में डूँगरपुर राज्य की स्थापना की और उसके वंशज आज भी उसका उपभोग करते हैं। मेवाड़ की गद्दी उसके छोटे भाई कुमारसिंह ने राव कीतू को हरा कर प्राप्त की थी।

'चंद छंद वर्णन की महिमा'

(२) मुगल सम्राट् अकबर के समय में रचित 'चंद छंद वर्णन की महिमा' नामक ग्रन्थ में भी रासो का स्पष्ट उल्लेख है। इस पुस्तक का रचनाकाल वि० सं० १६२७ है, जिसमें अकबर ने अपने दरबारी कवि गंगभट्ट से पृथ्वीराज रासो सुना था। इससे सिद्ध होता है कि रासो अकबर के समय में शीघ्र ही लोक-प्रिय बन चुका हो।[2]

राजसमुद्र की सं० १७२२ की प्रशस्ति

(३) उदयपुर के राजसमुद्र की संवत् १७२२ की महाराणा राजसिंह

---

1. the glory that, was Gurjardesa part III by K. M. Munshi.
   'राजपुताने का इतिहास', श्री जगदीशचन्द्र गहलोत कृत।
२. देखिये—हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का विवरण, भाग १, नागरी प्र० सभा द्वारा प्रकाशित।

(राजसिंह के) समय की संस्कृत प्रशस्ति में पृथ्वीराज रासो का उल्लेख किया गया है, जो इस प्रकार है—

तत: समरसिंहाख्य: पृथ्वीराजस्य भूपते: ।
पृथाख्याया भगिन्यास्तु पतिरित्यतिहार्दत: ॥२४॥
गोरी शाहबुद्दीनेन गज्जनीशेन संगरम् ।
कुर्वतोऽ खर्वगर्वस्य महासामंतशोभिन: ॥ २५ ॥
दिल्लीश्वरस्य चौहाननाथस्यास्य महायकृत् ।
स द्वादशसहस्रै: स्ववीराणां सहितो रणे ॥ २६ ॥

अर्थात्—समरसिंह ने जो भूपति पृथ्वीराज की बहन पृथा का पति होने (साले बहनोई) के कारण बड़े प्रेम से अपने १२ हजार सैनिकों के साथ चौहान-नाथ पृथ्वीराज दिल्लीश्वर को जो बड़े-बड़े सामन्तों से शोभित था,-गजनी के बादशाह शाहबुद्दीन गोरी के संग्राम में सहायता दी।

अजमेर के केसरगंज की चाँदा बावड़ी

(४) रासो की ऐतिहासिकता का प्रत्यक्ष प्रमाण रासो है, इसी प्रकार चन्द की प्राचीनता का प्रत्यक्ष प्रमाण अजमेर के केसरगंज की चांदा (चन्द) बावड़ी हैं, जो अजमेर के ब्रह्मभट्टों के अधिकार से टोंक के नवाब के अधिकार में रही थी। बाद में वह एक मोची को दे दीगई थी, जो अभी वहाँ के म्युनिसिपल के अधिकार में है और उसने उसके चारों ओर की दीवारों का जीर्णोद्धार करवाया है। बावड़ी के आसपास पहले एक बगीचा था; पर अब वहाँ बस्ती बस गई है। इस बावड़ी में नीचे उतरते हुए बाईं ओर एक शिलालेख का स्थान है, जिसका शिलालेख कर्नल टॉड साहब ले गये—यह बात वहाँ के वृद्ध बताया करते हैं। इस बावड़ी के मुख्य द्वार पर दो कमल के पुष्प उत्कीर्ण हैं: जो शिल्पशास्त्र की दृष्टि से उसकी प्राचीनता प्रकट करते हैं और यह महाकवि चंद की असली प्राचीनता है।[१]

(११)

उपसंहार और निष्कर्ष:—

इस प्रकार 'महाकवि चंद और पृथ्वीराज रासो' संबंधी विस्तृत विवरण, इसके लिये समुपलब्ध प्राचीन अनुसंधान, और इसमें भी विशेष कर 'पुरातन

---

१. देखिये—'पृथ्वीराज रासो'—भाग १
नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित।

प्रबंध संग्रह' में उद्धृत किये गये महाकवि चंद के द्वारा रचित पद्य, जो प्रस्तुत ग्रंथ में संवत् १२९० में लिखे गये हैं, रासो की हस्तलिखित प्रतियों में, फोर्ट बीकानेर लाइब्रेरी की प्रति, तथा रासो की अन्य विद्वानों से की गई तीन वाञ्चनाओं में से अन्तिम लघु वाञ्चना, 'सुर्जन चरित' तथा 'पृथ्वीराज विजय' आदि संस्कृत काव्य, बारहवीं शताब्दी का भाषा साहित्य, परमर्दिदेव के शिलालेख, कवि चंद के वर्तमान वंशधरों के द्वारा प्रकाशित वंशावली, जन-श्रुति में सतत सजीव बना हुआ आल्हाखंड आदि साधन प्रामाणिक रूप से सिद्ध करते हैं कि महाकवि चंद अंतिम हिंदु सम्राट् पृथ्वीराज चौहान की राजसभा में उनका सम्मानित सामन्त,सखा,और राजकवि था, जिसने सम्राट् पृथ्वीराज के कीर्ति-कलापों का वर्णन करने के लिये इस समय की लोक-भाषा (देश्य; अपभ्रंश प्राकृत) में एक महाकाव्य की रचना की थी,जो पृथ्वीराज रासो के नाम से लोक में प्रसिद्ध हुई। इससे अब महाकवि चंद की समकालीनता और रासो की प्रामाणिकता के लिये शंका का कोई स्थान ही नहीं रहता।

फिर भी अपने रासो के विरोधी विद्वानों के मत को घड़ी भर सत्य रूप में स्वीकार कर लेवें कि रासो संवत् १६०० के आसपास बना हुआ अनैतिहासिक और झूठा ग्रंथ है, तो यहाँ स्वाभाविक इतने प्रश्न उपस्थित होते हैं—

(१) गुजरात के इतिहास में प्रसिद्ध मंत्रीश्वर वस्तुपाल के पुत्र जयन्तसिंह के अभ्यास के लिये संवत् १२९० में रासो के चंद कृत पद्य कहाँ से आये ?

(२) बीकानेर फोर्ट लाइब्रेरी की रासो की प्रति में दी हुई चौहानों की वंशावली और अन्य सिद्ध और प्रामाणिक मानी जानेवाली वंशावली में भिन्नता के बदले समानता कहाँ से आई ? इस समानता में रहा हुआ मूलभूत तथ्य क्या प्रकट करता है ? रासो की प्राचीनता या अर्वाचीनता ?

(३) चंद के वर्तमान वंशधरों के द्वारा प्रकाशित वंशावली और सम्राट् अकबर के समय में विद्यमान भक्त कवि सूरदासजी को 'साहित्य लहरी' में दी हुई वंशावली तथा भविष्य पुराण में उसका स्वीकृत कथन क्या प्रकट करता है ?

(४) यदि रासो गलत है तो 'प्राचीन प्रबन्ध' और 'सुर्जन चरित' जैसे संस्कृत काव्य में और रासो में वर्णित घटनाएँ कहाँ से आई ?

(५) 'पृथ्वीराज-विजय' जैसे प्रामाणिक ऐतिहासिक काव्य में पृथ्वीराज के वन्दीराज पृथ्वीभट्ट का विस्तृत उल्लेख है जो वह 'पुनरावृत्तज्ञान में व्यास जैसा विद्वान् था–'यह उल्लेख सम्राट् पृथ्वीराज की राजसभा में कोई राजकवि ही नहीं था, तो कहाँ से आया ?

(६) रासो की प्रति जैसी प्राचीन है, वैसी ही घटनाक्रम में इतिहास की दृष्टि से प्रामाणिक और विश्वसनीय है तथा जैसी अर्वाचीन है, वैसी ही असंगतता से पूर्ण और भ्रष्ट है ? इस भिन्नता का कारण क्या है ? क्षेपक या अन्य कुछ ?

(७) यदि चन्द हुआ ही नहीं तो अजमेर की केसरगंज की पुरानी चन्दा बावड़ी के नाम से वह कैसे प्रसिद्ध हो गई ? इस प्रकार विचार करते अनेक प्रश्न उपस्थित होते हैं ।

जिनका उत्तर रासे को अर्वाचीन और झूठा ग्रन्थ कहनेवाले आधुनिक इतिहासकार ही दे सकते हैं, जो इतिहास में संशोधन के नाम से और निजी स्वार्थ से ऐतिहासिक असत्यों को ही प्रस्तुत किया करते हैं। इसके अतिरिक्त उपर्युक्त प्रश्नों का संतोपजनक समाधान नही हो सकता।

अन्त में इन सब आधारों और प्रमाणों से इतना तो निश्चित रूप से सिद्ध हो जाता है कि रासो के कितने ही मानेजाने वाले इतिहासकारों द्वारा आरम्भिक ऊहापोह सर्वथा निर्मूल और निराधार है और रासो सम्बन्धी उनका ज्ञान, निरंतर अज्ञान ही प्रकट करता है; जो भारतीय इतिहास के उज्ज्वल पटल पर एक कलंक की कालिमा है और वह इतिहास का सत्य नहीं, पर प्रकट असत्य है ।

इसी से हम विद्वानों का इस वास्तविकता पर लक्ष्य आकर्षित करना चाहते हैं कि अवश्य महाकवि चन्द एक ऐतिहासिक पुरुष था, जो दिल्लीश्वर अन्तिम हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराज चौहान की राजसभा का सम्मानित सामन्त, सखा और राजकवि के गौरवपूर्ण पद पर सुशोभित था, और इसी ने पृथ्वीराज के यश को गाने के लिये 'पृथ्वीराज रासो' नामक महाकाव्य की उस समय की लोकभाषा अपभ्रंश प्राकृत (देश्य भाषा) में रचना की थी। उसमें वर्णित घटनाएँ सच्चे घटित इतिहास की सत्य घटनाएँ हैं, पर कालान्तर में अन्य चारण भट्ट आदि राज्याश्रित कवियों ने अपने २ आश्रय दाताओं के महिमागान के क्षेपकों को जोड़ देने

से उसका वर्तमान कलेवर एकदम सर्वथा भ्रष्ट बन गया है, फिर भी उसकी बुनियाद तो असली है।

वास्तव में यह भ्रष्टता इस महाकवि चंद की इतिहास सम्बन्धिनी अपरिचितता नहीं है; परन्तु उसमें पीछे से पद्यों को जोड़ने वाले उनके परवर्ती कवियों का ही अज्ञान है, जिनका स्पष्ट और प्रत्यक्ष-दर्शन रासो के पाठ का मनन करने से होता है। बाकी रासो निःशंक एक ऐतिहासिक ग्रंन्थ है और उसमें वर्णित कथानक अपने मध्यकालीन इतिहास का उज्ज्वल सत्य है, जिसे इस समय के किसी भी ऐतिहासिक ग्रन्थ की अपेक्षा रासो ने ही भली प्रकार सुरक्षित रख छोड़ा है।

जिस सच्चे इतिहास का उल्लेख इस्लामी इतिहासकारों ने भी नहीं किया प्रामाणिक समझे जानेवाले 'पृथ्वीराज विजय' महाकाव्य में भी नहीं किया गया, इससे संबंधित सम्पूर्ण वास्तविकता अन्धकार ही में है, उन पर केवल पृथ्वीराज रासो ग्रन्थ ही एक मात्र प्रकाश डालता है और यही उसकी विशेषता है। अतः रासो अवश्य ही अपने मध्यकालीन इतिहास के लिये अत्यंत ही महत्त्व का ऐतिहासिक ग्रन्थ है और इस सत्य को आज के नवीन इतिहास के अभ्येताओं को भूल नहीं जाना चाहिये।

इतिहास अपने सांस्कृतिक जीवन का एक अत्युत्तम वारसा है। उसमें ऐसे इतिहासकारों के कलुषित मानस के दर्शन करानेवाले अनिष्ट नहीं होना चाहिये और इसीलिये इस वास्तविकता के प्रति भारतीय संघ के शिक्षा विभाग को ध्यान देना आवश्यक है, जिससे स्वतन्त्र भारत की भावी सन्तान अपने सांस्कृतिक वारसे से विमुख नहीं बनें, पर उसकी वास्तविकता को पहिचान कर अपने आदर्शों का निर्माण करें और इसीलिये इतिहास में से ऐसी विकृतियों को दूर करना अत्यंत आवश्यक है।



महाकवि चंद बरदाई

[जीवन और काव्य]

द्वितीय भाग

(१)

कवि का प्राथमिक परिचय

जगत् के किसी भी कवि की कविता जानने से तो अवश्य लाभ होता है, पर उससे भी अधिक लाभ उस कवि को जानने से होता है। कविता कवि को कीर्ति है—इसके सद्गुणों की मधुर स्मृति और सम्पत्ति है, जो सदैव अपने पास बनी रहती है, इसमें कोई सन्देह नहीं। अतः जितना कविता का परिचय आवश्यक है; उतना ही सच्चे साहित्य-जिज्ञासु के लिये उसकी कविता का परिचय आवश्यक है। क्योंकि इससे किन २ गुणों के द्वारा इसने कीर्ति सम्पादित की है, यह समझा जा सकता है और इसीलिये काव्य की अपेक्षा विशेष रूप से कवि के जीवन को जानना जिज्ञासु जनता के लिये आवश्यक है।

कवि और कविता

जिस देश में अमर काव्य-सम्पत्ति की अगाध सुवास को छोड़ कर जानेवाले सुकवियों ने जन्म लिया है; यह देश का सौभाग्य है। क्योंकि कवि तो चल बसा है; परन्तु उसकी अक्षय कीर्ति रूपी कविता की सुवास आज भी इस देश के लोगों की रसवृत्ति को प्रफुल्लित बनाती रहती है। उनके जीवन में किसी अपूर्व चेतन का सिञ्चन करती है। ऐसे अमर रसनिधियों में से एक है—'पृथ्वीराज रासो'; जिसे आज सैंकडों वर्ष व्यतीत हो गये, फिर भी संसार याद करता है, जिसका नाम सुनते ही महाकवि चंद वरदाई और भारत का अन्तिम हिन्दुसम्राट् पृथ्वीराज चौहान स्मृति में विराजमान हो जाते हैं और इस स्मृति के साथ भारत का भूतकाल

हमारी दृष्टि के समक्ष उसकी अस्मिता के साथ तरंगित हो उठता है, जिसमें अपने मध्यकालीन संस्कार और शौर्य, साहस और औदार्य अनेक रूपों में चमकने लगते हैं। यह है – महाकवि की कविता ! इसमें सन्निहित प्रबल शक्ति ! और कवि की अमर कीर्ति ! यह कीर्ति उसने किन किन गुणों से प्राप्त की ? इसे प्राप्त करने में कौनसी-कौनसी मानव-सुलभ ऊर्मियों की आहुति दी गई ? यह तो केवल कवि का जीवन ही बता सकता है। इसीलिये कवि का जीवन प्रेरणादायी है।

कवि और कवि का जीवन

कवि का जीवन प्रेरणादायी है। अतः यह मानव–जीवन से भिन्न जीवन नहीं। इसका जीवन भी अपने समान सांसारिक बन्धनों से बँधा हुआ होता है। इसे भी अपने समान सुख–दुःख होते हैं और इन सबके बीच रह कर यह अपनी कल्पना के अनुकूल हृदय के अन्तरस्थल में से समुत्थित ऊर्मियों को रूप देकर किसी अपूर्व जीवन का निर्माण करता है। यही इसकी विशिष्टता है। यह विशिष्टता केवलमात्र कल्पना ही नहीं होती, पर उसमें रही हुई वास्तविकता और अनुभव की ज्ञानशक्ति भी होती है, जो इसे अपनी अपेक्षा इतनी उच्च महानता पर पहुँचा देती है। यही कवि के जीवन की वास्तविक महत्ता है और ऐसी अनेक महत्ताओं को अपने जीवन में सुसाध्य किया हुआ होता है।

कोमल होने पर भी कठोर कवि हृदय

यह साधना भी कितनी विकट और विराट् होती है, जिसमें यह सत्य की आराधना करता है और असत्य का उच्छेदन करता है। यह शान्ति को चाहता है और अशान्ति का उन्मूलन करता है। परमार्थ को आराधना करता है और स्वार्थ की आहुति देता है। कवि किसी अदृश्य चेतन का उपासना करता है और सादृश्य रूप को मूर्त करता है। कवि का गीत अदृष्ट होता है, फिर भी इसमें रही हुई वेदना और व्याकुलता सुपुप्तों को जाग्रत करती है और विराट् की जाग्रति ही कवि की कविता की वास्तविक विजय है।

यदि सच पूछा जाय, तो कवि के सहृदय कोमल जीव के जीवन की मंजिल कठोर होती है। यह पग-पग पर ठोकरें खाता है और ठोकरें खाकर इसका हृदय कठोर बन जाता है, जो मनुष्य की कल्पनाओं को कुचल डालता है– भावनाओं को मचड डालता है, फिर भी कोई प्राकृतिक आर्द्रता इसके हृदय को भीतर से

कोमल बनाये रखती है। कवि अपनी इस यात्रा में एकाकी होता है। केवल सत्य ही इसका साथी होता है, श्रद्धा इसकी सवारी होती है, भावना इसका वेग होता है और कल्याण इसकी मंजिल होती है। इस मंजिल पर पहुँचने के लिये कवि को क्या करना पड़ता है और क्या नहीं करना पड़ता? और इसीलिये कवि का जीवन अपने जीवन से कुछ भिन्न ही होता है। रोमांचक होना चाहिये, रंगीन होना चाहिये, सुन्दर होना चाहिये, सुरूप और करुण भी होना चाहिये। फिर भी यह निर्विवाद है कि कवि का जीवन मनुष्य के जीवन की अपेक्षा कुछ भिन्न होना ही चाहिये और होता है और इसीसे यह कवि है—महाकवि है!

भारतवर्ष की भूमि पर ऐसे अनेक महाकवियों ने जन्म लिया है, जिनमें अनमोल रत्न सा एक महाकवि चन्द है, जिसे आज कौन नहीं जानता? जिसके नाम को भारत जानता है, पाश्चात्य विद्वान् इतिहासकार जानते हैं और इतिहास इस कवि की अप्रतिम कार्य-दक्षता से उज्ज्वल बना है। फिर भी आज ऐसे समुज्ज्वल कमनीय कीर्ति वाले महापुरुष के जीवन की संगीन घटनाओं का अपने साहित्य में अभाव है।

और इस अभाव को पूर्ण करने वाला यदि कोई आधारभूत साधन हो सकता है, तो वह केवल 'पृथ्वीराज रासो' है। रासो में कवि ने अपने कथानायक के चरित के साथ यथावकाशानुकूल बनकर अपने जीवन के कितने ही प्रसंगों और अनुभवों को पूर्णतया गूँथ ही डाला है. जिसमें न तो आत्मदर्शन का अतिरेक है या अयुक्त आत्म प्रशंसा। केवलमात्र है. तो काव्य के कथानक को बहलाने वाली, स्वयं कवि के द्वारा देखी हुई और अनुभवित सत्य घटनाएँ, जो इस समय के राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन के साक्षात् चित्र को हमारी आँखों के समक्ष समुपस्थित कर देती हैं।

(२)

कविचंद का जीवन और काव्य

कुछ लोगों का कहना है कि कविचंद राजस्थानी था, जब अपने यहाँ परम्परा से जनश्रुति चली आरही है कि चन्द पंजाब का निवासी था। इन दोनों में से जनश्रुति की बात को रासो समर्थन करता है और उसमें कवि स्वयं सूचित करता है कि—"चंद उपजै लाहोरह"—अतः अवश्य सिद्ध होता है कि कवि की जन्म भूमि पंजाब की हरी भरी भूमि ही है। इसका जन्म किस संवत् में हुआ, यह निश्चित रूप

से नहीं कहा जा सकता। फिर भी कवि चंद स्वयं रासो में बताता है कि वह स्वयं और उसका आश्रयदाता और मित्र पृथ्वीराज चौहान दोनों एक ही दिन जन्मे थे।[1] अतः कवि के इस कथन से पृथ्वीराज का जन्म सम्वत् वही महाकवि चन्द का जन्म सम्वत् है। 'रासो' में पृथ्वीराज का जन्म सम्वत्, अनन्द सं० ११९५ वैशाख वदि २ दिया हुआ है, जिसमें ९१ वर्ष जोड़ देने से वि० सं० १२०६ आता है। वि० सं० १२०६ इतिहासकारों से मान्य किया हुआ पृथ्वीराज का जन्म सम्वत् है। इससे सिद्ध होता है कि कवि चन्द ने वि० सं० १२०६ के वैशाख वदि २ के दिन जन्म लिया था। कवि जन्म से पंजाबी था, पर निवासी राजस्थान का था। क्योंकि अजमेर के चौहानों के यहाँ इसकी यजमान-वृत्ति थी।

चन्द कवि का मूल नाम

इस महाकवि का लोक-प्रसिद्ध नाम कवि चन्द बरदाई है, परन्तु मूल नाम पहले बताये गये प्रमाणों के अनुसार पृथ्वीचन्द्र है। कवि के पिता का नाम राव वेणीचन्द्र है और विद्यागुरु का नाम गुरुप्रसाद है; जिसके पास उसने षट् भाषा, काव्य, व्याकरण, ज्योतिष, मन्त्रशास्त्र, पुराण आदि अनेक विद्याओं का अभ्यास किया था और इसीलिये कवि का बनाया हुआ ग्रन्थ 'रासो' विविध रस और ज्ञान का अद्भुत परिचय कराता है।

चौहान वंश का परम्परागत सम्बन्ध

चौहान वंश के साथ चन्द कवि का परम्परागत सम्बन्ध होने से बाल्यावस्था में ही पृथ्वीराज के साथ उसकी घनिष्टता हो गई थी। युवावस्था को प्राप्त होने पर वह पृथ्वीराज का राजकवि, सम्मानित सामन्त, अभिन्न हृदय सखा और प्रधान मन्त्री बन गया। पृथ्वीराज के समान कवि चन्द भी महावीर एवं समरपटु था। अश्वारोहण में, शब्द वेधी बाण चलाने में तथा असि संचालन में उस समय चन्द कवि एक महान् सिद्धहस्त माना जाता था। इसके अतिरिक्त रणदुन्दुभि बजने पर वीर-रस से पूरित हो, उत्साह प्रेरिका ओजस्विनी कविताओं के द्वारा अपने आश्रयदाता और उसके सैनिकों में बिजली संचारित कर देने की इसमें अपूर्व शक्ति थी और समय आने पर शत्रु के साथ संग्राम में अपनी रण-दक्षता भी कवि चन्द पूर्ण रूप

---

१. इक्क दीह ऊपन्न इक्क दीह समाय क्रम, 'पृथ्वीराज रासो'

से प्रकट करता था। इसके अतिरिक्त वह एक कुशल राजनीतिज्ञ, स्वदेश-प्रेमी, समाज-प्रेमी, धर्मानुरागी और विचारक था। अन्त में वह एक कवि था एवं कैलाश सा दुर्द्धर्ष योद्धा भी था।

कवि चन्द का परिवार

परिवार में कवि चन्द की वाटिका लहलहाती हरी भरी थी। सन्तान में दस पुत्र और एक पुत्री थी। चन्द कवि ने अपने जीवन में दो बार विवाह किये थे। इसकी प्रथम पत्नी का नाम कमला और उपनाम मेवा था;—तो दूसरी पत्नी का नाम गौरी उपनाम राजोरा था। इन दोनों पत्नियों से इनको ग्यारह सन्तान की प्राप्ति हुई थी, जिसका उल्लेख रासो काव्य में कवि ने स्पष्ट रूप से किया है; जो इस प्रकार है[1]—सूरचन्द, सुन्दरचन्द, जल्हचन्द, वल्हचन्द, वलिभद्र, केहरीचन्द, वीरचन्द, अवधूत अर्थात् योगराज, गुणचन्द और पुत्री का नाम राजबाई था। इन सब में कवि की प्रीति उसके चौथे पुत्र जल्ह पर विशेष हो, यह स्पष्ट प्रतीत होता है। क्योंकि यह विशेष योग्य, प्रतिभाशाली और गुणाढ्य था।

कवि चन्द का दाम्पत्य जीवन

आज पाश्चात्य और पौर्वात्य संस्कृति के संक्रांति-काल में कविचंद का दाम्पत्य-जीवन एक आदर्श उदाहरण उपस्थित करता है। सैंकड़ों हजारों वर्ष पूर्व भी भारत में स्त्री शिक्षण कितना विकसित था—अपने यहाँ स्त्रियाँ कितनी सुशिक्षिता और सुसंस्कृता होती थीं, उसकी एक साक्षात् सम्मूर्ति कवि चन्द की पत्नी गौरी है। क्योंकि गौरी ही कवि चन्द के रासो काव्य की श्रोता है और यही कवि के काव्य में सबसे विशेष रस लेने वाली हो,—यह कवि के 'रासो' के प्रारंभिक कथन से विदित होता है। रासो के कथानायक के संबंध में गौरी प्रश्न करती है और उसके

---

१ दहत्ति पुत्र कवि चन्द कै, सूर सुन्दर सुज्जानं।
जल्ह, वल्ह, वलिभद्र, कविय केहरी वषानं॥
वीरचन्द अवधूत, दसम नंदन गुनराजं।
अप्प अप्प क्रम जोग बुद्धि भिन भिन करि काजं॥
जल्हन जिहाज गुन साज कवि चंद छंद सायर तिरन।
अप्यौ सुहत्ति रासौ सरस, चल्यौ अप्प राजन सरन॥

उत्तर में कवि समय समय पर लिखे हुए अपने पद्यों को उसे सुनाता है। कवि की पत्नी काव्य में शंका करती है और कवि शांति पूर्वक उसका समाधान करता जाता है। यह वास्तविकता ही बता देती है कि कवि चंद का दाम्पत्य-जीवन कितना रसिक, शान्तिमय और सख्यतापूर्ण होगा ?

आज हमारे यहाँ स्त्री शिक्षा की इति, केवल अक्षर ज्ञान से ही हो जाती है। तब इस मध्य कालीन युग में चन्द कवि की विदुषी पत्नी गौरी रासो जैसे महाकाव्य में रस लेती थी- विद्वान् पति की विद्वत्तापूर्ण काव्य-रचना की आलोचना-समालोचना करने में आनन्द का अनुभव करती थी। पेक्षित या अपेक्षित रूप में पति के विकास और प्रगति को वेग प्रदान करती थी। यही बात प्रकट कर देती है कि इस विदुषी सन्नारी का शिक्षण और बौद्धिक विकास कितना उच्च कक्षा का होगा ! जिसका अनुमान लगाना अभी कठिन है। फिर भी उसकी साधारण झांकी इस इस विदुषी सन्नारी के निम्न लिखित प्रश्न ही करा देते हैं —

• एक दिन रासो काव्य सुनने में तल्लीन बनी हुई चंद की पत्नी गौरी सहसा कवि से प्रश्न करती है कि—

संसार में कौन ऐसा दानव, मानव और नरेन्द्र है कि जिसकी कीर्ति, कविता में गाने योग्य है ?

चन्द—संसार में केवल परमात्मा और उसकी कीर्ति ही काव्य में गाने योग्य है। क्योंकि उसकी भक्ति के बिना मुक्ति नहीं।

गौरी—तो फिर देव ! आप हरि के गुण क्यों न गावें, चौहान के गुण गाने से यह भव पार नहीं किया जा सकता।

चंद—यह बात सच है सखि ! पर मैं तो इस प्रकार चौहान के मुझ पर चढ़े हुए ऋण को उतारता हूँ।

गौरी—इस प्रकार आप अपने आश्रयदाता राजा के ऋण को उतारते हैं, तो फिर आपको उत्पन्न करने वाले—जगत् पिता का ऋण क्यों नहीं उतारते ?

चन्द—सखि ! मैं तो केवल कमलासन को देख कर ही व्याकुल बना हुआ हूँ. उसमें केवल भक्ति का ही विलम्ब है। संसार में जो कुछ सर्वव्यापी है- वह केवल कमलासन ! और मैं उसकी उपमा देकर ही पृथ्वीराज के गुण गाता हूँ।

गौरी—भूलते हैं देव ! ब्रह्म को ब्रह्म में ही देखें। जो इसे देखता है, उसे ही यह देखता है। नर की कीर्ति गाने का अपेक्षा आप नारायण की गायें, जिससे इस भव को तो सार्थक बना सकें।

चन्द—यह सत्य है सखि ! पर जिसके अंग अंग में हरि रूप रस व्याप्त है, जिसका रोम रोम हरि को पुकारता है. उसे फिर बाह्य स्मरण की क्या आवश्यकत है ?

गौरी—देव ! यह बात तो सच है, पर इस कलिकाल में यह तत्व की बात कैसे मानी जा सकती है ? और ऐसा ही है. तो फिर इस दासी को इस अंग प्रत्यंग में व्याप्त हरिरस के दर्शन का लाभ करा देवें तो क्या बुरा है ?

इसके प्रत्युत्तर[1] में रस विभोर चन्द कवि ने अपनी रसिका पत्नी के मन की जिज्ञासा तृप्ति के लिये, हरि रस से इसके हृदय को रंजित करने के लिये आत्मा ही परमात्मा है, उसकी पूर्ति के रूप में ईश्वर के दशावतारों का अपूर्व ढंग से दार्शनिक वर्णन कर सुनाता है। इस दशावतार की कथा को सुन कर इस विदुषी सन्नारी की सुसंस्कृत आत्मा को संतोष होता है, इसके मन का समाधान होता है।

आज अपने यहाँ अपने समाज में दशावतार की कथा के मर्म को समझने वाली कितनी गृहिणियां हैं ? क्या इनकी ऐसी मानसिक अवस्था भी है ? और स्त्री जीवन के ऐसे मानसिक विकास के लिये आज कितना ध्यान रक्खा जाता है ?

कवि चन्द के जीवन में गौरी जैसी गृहिणी थी- प्रेयसी थी- प्रियतमा थी, उसी प्रकार मन्त्रिणी भी थी और इसीलिये कवि चंद अपनी अल्प आयु में इतनी अधिक उज्ज्वल और अबाधित कीर्ति प्राप्त कर सका था। चन्द कवि था,तो गौरी उसकी कविता थी और इस कविता ने ही उसे महाकवि बनाया था कवि चन्द के जीवन और व्यक्तित्व में जितना स्थान कविता का है, इससे विशेष और अति उच्चतम स्थान उसकी सुसंस्कृता पत्नी गौरी का है। चन्द के जीवन में यदि गौरी जैसी गृहिणी नहीं हुई होती तो अपने साहित्याकाश में चन्द के समान तेजस्वी महाकवि का प्रकाश नहीं होता, जिसका उदाहरण अपने आधुनिक समाज को ग्रहण करना चाहिये। किंनर में से नारायण को उत्पन्न कर सके, वही सच्ची नारी है।'

---

१ देखिये- 'पृथ्वीराज रासो' रूपक ७८१।

कवि चन्द का सच्चा व्यक्तित्व

इतिहास में कवि चन्द का व्यक्तित्व विक्रमशील विविधरंगी और भव्य है, जिसकी वास्तविक झाँकी रासो कराता है। कवि चन्द जन्म ही से कवि था। क्योंकि यह कवि-कुल में ही उत्पन्न हुआ था। जैसा वह वीर था, वैसा ही साहसी भी था। इसके अतिरिक्त पट्-भाषा, व्याकरण, साहित्य, छन्दशास्त्र, ज्योतिष, वैद्यक, संगीत और पुराण तथा कुरान में पारंगत था। हमारे आधुनिक विद्वान् कुरान के ज्ञान के लिये शंका करते हैं; पर वे यह बात भुला देते हैं कि कवि की जन्म-भूमि लाहोर थी उनके जन्म के १०० वर्ष से इस्लामी शासन के कारण इस्लामी संस्कृति से प्रभावित बन चुकी थी। अतः संभव है कि कवि जैसे विचारक ने जिज्ञासा में उसका अभ्यास किया हो।

इन सब गुणों के कारण जहाँ जाते, वहाँ उस पर सम्मान की वर्षा होती थी। यह सम्राट् पृथ्वीराज की सभा का भूषण था, शूर वीरों का शिरोमणि था और कवियों का मुकुटमणि था। यह कोई साधारण व्यक्ति नहीं था, पर असाधारण व्यक्तित्व रखने वाला उस युग का एक महान् पुरुष था।

चन्द कवि संग्राम में जैसा समरपटु था, वैसा ही शासन में सर्वोत्तम राजनीतिज्ञ था और साहित्य में वैसा ही कलम का धनी था, जिसका प्रकट पूरक रासो ग्रंथ है, जिसे उसने समय समय पर अपने बनाये हुए रासो के पद्यों को केवल ६० दिन में ही पुस्तक वद्ध कर जालंधारी देवी के मन्दिर में शाहबुदीन के साथ होने वाले पृथ्वीराज के अंतिम युद्ध के समय बना दिया था, इसके पश्चात् तो यह पृथ्वीराज के बन्दी हो जाने के समाचार को सुन कर गजनी जाने को चल पड़ा था।

कवि के पुत्र और रासो की समाप्ति

पहले बता चुके हैं कि कवि के दस पुत्रों में सबसे विशेष योग्य और प्रतिभाशाली उनका चौथा पुत्र जल्ह था, जिसकी योग्यता को देखकर सम्राट् पृथ्वीराज ने अपनी बहिन पृथावाई को उसके लग्न के समय दहेज़ में गुरु के रूप में दे दिया था। इसका स्पष्टीकरण रावल सामन्तसिंह (समरसिंह) के खत पत्रों में भी मिल आता है। उस समय राजा लोग अपनी कन्याओं को हीरे और जवाहरात के समान अपने राज्य के उत्तम और गुणी व्यक्तियों को

ही दे दिया करते थे; जिसका उल्लेख रासो में कवि ने भी पृथाबाई-विवाह के समय (सर्ग) में किया है। जल्ह पर कवि की प्रीति भी विशेष प्रतीत होती है। क्योंकि कवि उसके लिये स्वयं कहता है—

दहति पुत्र कवि चन्द कै, सुन्दर सुन्दर रूप सुजान।
इक्क जल्ह गुन बावरौ, गुन समंद ससि भान॥

अतः निःस्सन्देह यह भी पिता के समान प्रतिभा-शाली होना चाहिये, जब कि दूसरे पुत्रों की योग्यता के संबंध में कवि ने कुछ भी विशेष नहीं कहा है, यही प्रकट करता है कि जल्ह उसका सबसे विशेष प्रीतिपात्र और उसकी प्रतिष्ठा को निभानेवाला पुत्र था।

इसके अतिरिक्त अपने यहाँ कादम्बरी के संबंध में यह कहा जाता है कि बाण भट्ट के अवसान के पश्चात् अपूर्ण रही हुई कादम्बरी की कथा को कवि बाण भट्ट के पुत्र ने पूर्ण की थी। उसी प्रकार वास्तव में 'पृथ्वीराज रासो' के लिये भी हुआ है। शहाबुद्दीन गोरी ने सम्राट् पृथ्वीराज पर अंतिम आक्रमण किया; तब कवि चंद काँगरा के राजा हम्मीर की सहायता प्राप्त करने के लिये काँगरा गया हुआ था। वहाँ अंतिम युद्ध के दिनों में कांगरा की जालंधरी देवी के मंदिर में उसे बंदी की अवस्था में रहना पड़ा— और पहले के उल्लेख के अनुसार वहीं उसने रासो ग्रन्थ के पद्यों को पुस्तक का रूपक बना दिया था।

वहाँ से कवि चंद के मुक्त होने पर और सम्राट् पृथ्वीराज के बंदी होने के समाचार सुनते ही उसने रासो ग्रन्थ अपने पुत्र जल्ह को सौंप दिया था, जिसने ग्रन्थ के अपूर्ण रहे हुए कथानक को स्वयं रचकर संपूर्ण कर दिया था। इसकी वास्तविकता के सम्बन्ध में स्वयं कवि चंद इस प्रकार कहता है—

आदि अन्त लगि वृत्त मन, वृन्नि गुनी गुनराज।
पुस्तक जल्हन हथ्थ दे, चलि गज्जन नृप काज॥
रघुनाथ चरित हनुमन्त कृत, भूप भोज उद्धरीय जिम।
प्रथिराज सुजस कवि चंद कृत, चंद नंद उद्धरीय इम॥

इससे प्रतीत होता है कि पिता के द्वारा आरंभिक अपूर्ण रचना कार्य को उसके सुयोग्य पुत्र जल्ह ने पूर्ण किया था, एवं उसने रासो काव्य के अंतिम भाग की रचना कर ग्रन्थ के कथानक को संपूर्ण और सुवाच्य बना दिया था। जल्ह की यह

काव्य-रचना कविचन्द की काव्य रचना के साथ दूध में शक्कर के समान घुल-मिल गई है और यह वास्तविकता सिद्ध कर देती है कि जल्ह भी कविचंद के समान एक प्रखर विद्वान् और उस समय की लोक-भाषा का उत्तम कवि था। जल्ह की यह योग्यता और विद्वत्ता देखकर ही पृथ्वीराज चौहान की बहिन पृथावाई उसे अपने साथ चित्तौड़ दहेज में लेगई, जहाँ जल्हन का स्थान कवि के अतिरिक्त सम्मानित राजगुरु का था[१]।

कविचंद के इस सुपुत्र जल्ह के वंशज आज भी राजस्थान में बसते हैं, जिनके पास उसकी लिखी हुई रासो की एक हस्तलिखित प्रति भी है।

कवि का धार्मिक अवलम्बन—

अपने यहाँ कितने ही लोगों का मानना है कि कवि चन्द शक्ति पंथ का अनुयायी और उपासक था, पर उनकी इस मान्यता में अधिक सत्य नहीं है। क्योंकि रासो ग्रन्थ के आरम्भ में ही वह ब्रह्मा को नमस्कार करता है।

साटक (शार्दूलविक्रीडित)

ओं—आदि देव प्रनम्य नम्य गुरयं, वानीय वंदे पयं।
शिस्ट धारन धारयं वसुमती, लच्छीस चर्नाश्रयं॥
तं गु तिष्ठति ईस दुष्ट दहनं, सुरनाथ सिद्धिश्रयं।
थिचेर्जंगम जीव चन्द नमयं, सर्वेस वर्दामयं॥
रूपक १

इसके अतिरिक्त रासो में अनेक हिन्दु-धर्म के प्रसिद्ध देव, देवियों और अवतारों की कवि ने स्तुति की है। यह बात ही प्रकट कर देती है कि कवि चन्द शुद्ध सनातन आर्य-धर्म का अवलम्बी था। किसी एक पंथ में श्रद्धा रखने वाला अन्ध श्रद्धालु नहीं था। उसकी धार्मिक सहिष्णुता सब धर्मों में एक समान थी।

कवि का उपास्य देव और उसका वरदान—

इसके अतिरिक्त इतना तो अवश्य है कि वह भगवान शंकर का उपासक था। इसका प्रमाण कवि चन्द के प्राचीन चित्रों में उसके भव्य भाल पर शोभित

---

१. देखो रावल समरसिंह के पट्टे परवाने।

त्रिपुण्ड्र तिलक और रासो ग्रन्थ में किये गये उल्लेख हैं। कवि चन्द को उनके उपास्य देव शंकर का वरदान मिला था और उनकी सेना में वीरभद्र नामक शंकर का एक गण सदा उपस्थित रहता था। इसी से कवि चन्द वरदायी अर्थात् लोक में वरदाई कहे जाने लगे[१]।

रासो की भाषा से अपरिचित कितने ही लोग बारहठ आदि शब्दों को वरदाई, वरदायी के पर्यायवाची मानते हैं, यह उनका सर्वथा भ्रम है।

बारहठ और वरदाई तो, बारहठ और विरुद के पर्यायवाची शब्द हैं; जब कि वरदायी का अर्थ वर पाया हुआ होता है और उसका वास्तविक सच्चा अर्थ यही है। क्योंकि चन्द को भी देव का वरदान मिला था और इसीलिये वे वरदायी कहे जाने लगे और रासो में भी उनके रचित मूलपद्यों में 'भट्ट चन्द वलद्दिउ' अर्थात् भट्ट चन्द वरदाई उल्लेख देखा जाता है और यही इस बात के मूल में रहा हुआ असली वास्तविक सत्य है।

देव के इस वरदान के ही कारण लोग कविचन्द को कोई अलौकिक शक्ति—सम्पन्न महासिद्ध पुरुष मानते थे। इस शक्ति का उपयोग उसने अपने कल्याण के लिये ही किया था, जिसका एक प्रसंग इस प्रकार है—

चालुक्य चौहान संघर्ष और कवि चंद—

गुजरात के चालुक्य राजा (सोलंकी) के साथ चौहान पृथ्वीराज का संघर्ष-युद्ध हुआ था। यह शिलालेखों से सिद्ध बात है। अतः इस संबंध में शंका का कोई प्रश्न उपस्थित नहीं होता। इस युद्ध में चौहान सेनापति और पृथ्वीराज के अमात्य कैमास पर, चालुक्यों के जैनतांत्रिक अमरसिंह सेवरा ने वशीकरण किया था—उसकी विवेक बुद्धि और विचारों को अपने वश में कर लिया था। इससे इस युद्ध में चौहानों के पराभव होने का पूर्ण संभव था। इसकी सूचना कवि चंद को मिलते ही वह अपनी वरदायी शक्ति और सात्विक मन्त्र-शक्ति के द्वारा सेवरा के मैले कलुषित वशीकरण का विनाश किया—कैमास को उसके

---

१. कथियय वर कैमसं। देव वरदायं चन्दं भट्टायं।
असतिन चवै असेसं। सत्यं रूप सत्य अवतारं॥
रूपक ६१ रासो

वास्तविक भान में लाया—जाग्रत अवस्था में लाया और स्वयं युद्ध संचालन अपने हाथ में लेकर इस युद्ध में चौहानों को विजय दिलवाई ।

इस विजय के उपलक्ष्य में कवि चंद ने अनहिलपुर-पाटन, सोमनाथ-पाटन, और द्वारिका की यात्रा की थी और वहाँ ब्राह्मण आदि याचकों को विपुल स्वर्ण और रजत का दान दिया था।

इसके अतिरिक्त चालुक्य चौहान संघर्ष के संबंध में लोगों में एक दूसरी भी दन्तकथा प्रचलित है, जिसमें चन्द कवि ने पाटन जाकर वहाँ के राजा भोला भीम को चौहानों से युद्ध करने या उनको पराधीन करने को कहा था। जब चन्द कवि पाटन गया, तब भोला भीम ने उसके द्वार भट्ट को सामने भेज कर उसका सम्मान किया था। इस समय कवि चंद के पास खड्ग के अतिरिक्त कुदाली निसरणी, जाल और दीपक आदि थे--जिनको देखकर चालुक्य के मंत्री ने कवि चंद को पूछा—'कविराज! तुम भट्ट हो, इसलिये खड्ग आदि शस्त्र अपने साथ रखते हो, पर यह कुदाली और जाल आदि को क्यों रखते हो?" इसका उत्तर चन्द ने दिया—"सभरीपति और दिल्लीश्वर तुम्हारे सामने आया है, इससे कदाचत् भयभीत हो तुम आकाश में चढ़ जाओ, तो इस निसरणी के द्वारा तुमको पकड़ कर लायें। यदि पानी में प्रविष्ट हो जाओ, तो जाल को मछलियों के समान खींचलाने, धरती में उतर जाओ तो कुदाली से खोदकर निकालने और किसी गुफा में छिप जाओ तो दीपक से ढूँढकर निकालने को रख छोड़े हैं।"

कवि चंद का यह उत्तर उसकी अपूर्व स्पष्टवादिता एवं अद्भुत निर्भीकता को प्रदर्शित करता है। यही--नहीं इसके अतिरिक्त उसकी तीव्र तार्किक शक्ति और अनुपम कल्पना-शक्ति को प्रकट करता है।

(३)

कवि चन्द के जीवन के उल्लेखनीय प्रसंग

मध्यकालीन युग के एक राजद्वारी महापुरुष के रूप में कविचन्द के जीवन में छोटी-मोटी अनेक घटनाएँ घटित हो गई हैं, जो चन्द कवि के ज्ञान, स्वभाव और चारित्र्य को विक्रमशीलता का विविध प्रकार से परिचय कराती हैं। इन सब के ऐतिहासिक मूल्यांकन करने का अवकाश नहीं है, फिर भी इन सब में विशेष महत्त्वपूर्ण और उल्लेखनीय प्रसंग इस प्रकार हैं—

(१) कैमास वध और उसकी स्त्री का सती होना।

(२) पृथ्वीराज की वहिन पृथाबाई का रावल समरसिंह (सामन्तसिंह) के साथ विवाह होना।

(३) कन्नौजपति जयचन्द राठोड़ का राजसूय यज्ञ और संयोगिता हरण।

(४) शहाबुद्दीन के साथ पृथ्वीराज का अन्तिम युद्ध और बाण वेध आदि प्रसंग हैं, जो कवि चन्द के हृदय की कोमलता, स्वभाव की सत्यता और वीरोचित पराक्रमों का परिचय कराते हैं।

मन्त्री कैमास का शव और कवि चन्द

(१) कवि चन्द के जीवन में निजी मित्रों में सम्राट पृथ्वीराज के बाद दूसरा स्थान मन्त्री कैमास दाहिमा का था, जो चौहान-साम्राज्य का एक दृढ़ स्तम्भ रूप था। पृथ्वीराज की विद्यमानता या अविद्यमानता में राज्य का शासन-भार यही सम्भालता था, जिसका चातुर्य, मध्यकालीन-युग में बेजोड़ है। यह शूरवीर और चतुर मन्त्री था। चालुक्य का पराभव करने के पीछे वहीं से कुसंग का रंग लगने लगा और स्वयं राजा के हाथ से यह चौहानों का प्रबल-स्तम्भ काट डाला गया, उसके वध का वृत्तान्त इस प्रकार है—

गुजरात के इतिहास से इतना तो प्रसिद्ध है कि बहुत समय से दक्षिण में कर्णाटक के साथ सोलंकियों का संबंध था। इस समय चालुक्यों के राज्य में कर्णाटकी नाम की एक अति सुन्दर गणिका थी। इस गणिका को पृथ्वीराज सोलंकियों पर विजय प्राप्त करने के पीछे अपने साथ ले आया था, जिसने अपना प्रभाव चौहान पृथ्वीराज और उसके राज्य पर अतिशय जमा दिया था। पृथ्वीराज अपने समय का अधिक काल उसके पास ही बिताता था। पृथ्वीराज पर कर्णाटकी का प्राबल्य परिणीता की अपेक्षा भी विशेष बढ़ गया था यहाँ तक कि पृथ्वीराज की अविद्यमानता में भी वह उसकी सत्ता का उपभोग करती थी। चौहान राज्य को यह अनिष्टरूपा उसके सामन्तों के और रानियों के हृदय में खटकती थी, किन्तु सत्ता के आगे उनका सयानापन भी क्या करे?

इस परिस्थिति में कमास को कर्णाटकी के संपर्क में आना पड़ता था। इस सम्पर्क ने ही इस चतुर पुरुष का वध करवा दिया। कर्णाटकी चंचल स्वभाव की

विषयासक्त गणिका थी। उसकी आँख में कैमास का कसा हुआ पौरुषेय बस गया। वह इस पर मोहित हुई और इस संयमी पुरुष को अपने इन्द्रजाल में फँसा ही लिया। इस बात की सूचना पृथ्वीराज की परमार रानी इच्छिनीकुमारी को हुई और उसने इस अनिष्ट के उच्छेदन के लिये षड्यंत्र रच लिया। शिकार खेल कर अचानक लौट कर आये हुए पृथ्वीराज के आँखों देखा कर्णाटकी कैमास का सम्बन्ध बताया। यह देख कर पृथ्वीराज के हृदय में आग-आग लग गई और इस अग्नि की ज्वाला में पृथ्वीराज ने कन्धे से कमान उतार कर, एक बाण संधान कर ऐसे जोर से मारा कि जो कैमास की छाती को आर पार वेध कर निकल गया। पृथ्वीराज दूसरा बाण चढ़ाता ही था कि उसकी राणी ने हाथ में से धनुष कमान छीन लिया और कहने लगी— "नीच पर आपका यह निशाना शोभा नहीं देता—" कह कर उसे दूसरे खंड में ले चली गई। कर्णाटकी इस प्रसंग को समझ कर रातोरात वहाँ से भग गई।

आखिर यह घटना नगर में फैल गई। राज्य के एक प्रबल स्तंभ के चल बसने से लोग और स्वयं पृथ्वीराज शोक में मग्न होगये। सामन्तों में पृथ्वीराज के इस कृत्य से असंतोष उत्पन्न हुआ। प्रातः काल कैमास की स्त्री कवि चंद के पास गई और अपने पति का, उसके मित्र कवि के पास जाकर कैमास के मस्तक को दिला देने की प्रार्थना की। कैमास और कवि में स्नेह था। अतः इन्कार नहीं कर सका। पर पृथ्वीराज के पास जाकर कैमास के मस्तक को माँगने की प्रार्थना करना उसे विचित्र और भयप्रद लगने लगा।

फिर भी कविचंद मित्र स्नेह के कारण इस दिन की राज-सभा में गया और वहाँ पृथ्वीराज से कैमास के मस्तक की स्वयं माँग कर कहने लगा—"बीती ताहि बिसारदे" कैमास की स्त्री एक सती है, उसे सत चढ़ा है। अतः सती को उसके स्वामी का शव सौंप दीजिये और उसकी सन्तानों को शरण दीजिये।

कवि चंद मंत्री कैमास के शव को कंधे पर रख कर स्मशान में गया और बड़े धूमधाम से यमुना नदी के तट पर चन्दन की चिता बना कर कैमास के शव को उस सती स्त्री की गोद में रख दिया। सती ने वरदायी चंद कवि को आशीर्वाद दिया और 'जय अम्बे' की ध्वनि के साथ अपने दाहिने अंगूठे से अग्नि जलाई। जयघोष, ढोल और सहणाई के स्वरों के बीच अग्निदेव के आधीन होगई— जल गई।

इस प्रकार कवि चंद ने अपने राजद्रोही मित्र का यथायोग्य सम्मान किया और उसके शव की अंतिम संस्कार—विधि सम्पन्न करवाई।

चौहान परिवार के साथ चन्द कवि का व्यक्तिगत सम्बन्ध–

(२) सांभर के चौहान परिवार-राजकुटुम्ब के साथ चन्द कवि का कैसा सम्बन्ध था, उसको बताने वाला प्रसंग रावल सामन्तसिंह और पृथाबाई का विवाह है। पृथ्वीराज की बहिन पृथाबाई के लिये योग्य वर खोज कर सम्बन्ध करवाने का काम कवि चन्द को सौंपा गया था। कवि चन्द ने इस समय में विख्यात क्षत्रियवंश बापा रावल के वंशज रावल सामन्तसिंह को पसन्द कर उसके साथ पृथा की सगाई की थी। यह बात ही कवि चन्द और चौहान के साथ अन्तरंग सम्बन्ध के महत्त्व और विशिष्टता को बता देती है कि कवि चन्द चौहान परिवार का एक आश्रित राजकवि ही नहीं, पर सभ्य भी था।

इस विवाह में ही पृथाबाई ने कवि चन्द के सुयोग्य पुत्र जल्ह को अपने साथ दहेज में ले जाने की इच्छा प्रकट की थी और अपने यहाँ अर्थात् सामन्तसिंह के यहाँ जल्ह का स्थान दिल्ली में पृथ्वीराज के यहाँ जो कवि चन्द का था, वही था। इस रावल सामन्तसिंह ने गुजरात के चालुक्यों के संग्राम में शिकस्त प्राप्त करने के पश्चात् चित्तौड़ का अधिकार खो दिया था, जिसे उसके छोटे भाई कुमारसिंह ने पुनः प्राप्त किया था, जब कि रावल सामन्तसिंह ने पृथ्वीराज का सहायता से वागड़ में अर्थात् विद्यमान डूँगरपुर राज्य की स्थापना की थी; जहाँ अभी भी उसके वंशज राज्य करते हैं। M

कहा जाता है कि गुजरात को यात्राओं से पीछे फिरते हुए कवि चन्द चित्तौड़ में रावल सामंतसिंह के वहाँ महमान बने थे। उस समय पृथाबाई ने सगे भाई के

Mसं.टि.–पृथ्वीराज की सहायता से सामन्तसिंह ने डूँगरपुर राज्य की स्थापना की थी–इसका इतिहास में कोई प्रमाण नहीं मिलता। दूसरी बात यदि यह भी मानलें तो पृथाबाई के दहेज में दिये जाने वाले आश्रितों के अर्थात् ऋषिकेश आदि के वंशज डूँगरपुर में अवश्य होते और उनकी जागीर भी डूँगरपुर में ही होती न कि मेवाड़ में। आज भी ऋषिकेश के वंशज पीपली गाँव (मेवाड़) में विद्यमान हैं। यदि वस्तुतः सामन्तसिंह ने पृथ्वीराज चौहान की सहायता से डूँगरपुर राज्य की स्थापना की होती तो, रासो में उल्लेख होता, जो नहीं है, इससे श्री गोवर्धन शर्मा की यह मान्यता स्वीकार नहीं हो सकती।

नमान कवि चंद का स्वागत किया था। पृथावाई स्वयं ही भोजन वना कर परोसती थी। इनका सामाजिक सम्मान भी पृथावाई पृथ्वीराज के समान ही रखती थी। ये सब बातें कवि चन्द के संयम, शील और चारित्र्य-वल के अद्भुत प्रमाण हैं। कवि चंद की यह अपूर्व नैतिक सिद्धि ही इसके उन्नत कल्याण गामी मार्ग का सबसे सुदृढ़ सोपान था। आज कितने कवियों के पास नैतिक मनोवल और संयम की सिद्धि है ?

रणक्षेत्र का केसरीसिंह और रसमन्दिर का रस योगी

कवि चंद जिस प्रकार रणक्षेत्र में उछल कर कूद लगाने वाला केसरीसिंह था, उसी प्रकार रसमन्दिर का रसेन्द्र-रसयोगी भी था। यह संग्राम में घूमता उसी प्रकार सौन्दर्यशालिनी राज-रमणियों के रण-वास में भी जाता। इनका सान्निध्य प्राप्त करता। फिर भी यह सान्निध्य कवि के चित्त में शिथिलता को उत्पन्न नहीं कर सकता था। कवि जाज्वल्यमान रूप-यौवन के अगाढ़ संपर्क में रहता, पर इसके शील पर रूप-यौवन का विप नहीं चढ़ सकता था। इसके विपरीत यह नवयौवना राजपूत रमणियों को ज्वलन्त जौहर पर चढ़ाता। अन्त में कहा जाय तो मदमत्त यौवन का आकर्षक विप कवि के वज्र कच्छ-ब्रह्मचर्य से सैकड़ों कोस दूर रहता था, यही कवि के विक्रमशील व्यक्तित्व की सच्ची विजय को, सच्चे कवि की— रसयोगी की रस-समाधि थी।

कवि अर्थात् प्रजा की प्रेरणा! यह प्रेरणा अर्थात् कविता! जैसे कनक काटा नहीं जा सकता, वैसे सच्ची कविता भी काटी नहीं जासकती—यह सनातन, शाश्वत और चिरञ्जीव है।

आज के कवि और गत काल के कवियों में आकाश पाताल का अंतर है। गत काल का कवि रस योगी था, जब कि आज का कवि रसभोगी है। योगी की दृष्टि—कविता ऊर्ध्वगामिनी होती है, जब कि भोगी की अधोगामिनी और इस भिन्नता को देखते हुए विदित होता है कि आज की प्रजा में शिथिलता हो—सयम का अभाव हो, तो इसमें आश्चर्य ?

इससे प्रतीत होता है कि गत-काल का कवि प्रजा के जीवन-निर्माण का महान् विधायक होता था और इसीलिये इसका स्थान लोकहृदय में उन्नत और पूजनीय होता था, जबकि आज का कवि और उसकी कविता को कलुपितता का जंग लगा हुआ होता है। फिर लोगों में शील और संयम कहां से हो ?

सेवक और स्वामी—

इसके पश्चात् कवि चद के जीवन की विशेष उल्लेखनीय और ऐतिहासिक महत्त्व की घटना संयोगिता-हरण और जयचंद का राजसूय यज्ञ है। यह बात इतिहास प्रसिद्ध है कि इस समय की दो प्रबल शक्ति-चौहान और राठौड़ राजवंशों में वैमनस्य चल रहा था। पृथ्वीराज चौहान और जयचन्द राठौड़ दोनों ही राजा, विभूति के इच्छुक थे। पहले बता चुके हैं, उसके अनुसार कैमास का वध होज ने के पश्चात् गणिका कर्णाटका-दिल्ली से भगकर कन्नौज जयचंद के आश्रय में चली गई थी और जयचंद ने उसे अपनी एक मात्र अति रूपवती सुशील कन्या संयोगिता को संगीत-नृत्य का शिक्षा दिलाने के लिये रोक ली थी। इस गणिका कर्णाटकी ने यहाँ भी अपने भाव को व्यक्त किया। उसने अप्रत्यक्षरूप में पृथ्वीराज के रूप, गुण और पराक्रम की प्रशसा कर संयोगिता के हृदय में पृथ्वीराज से ही विवाह करने का मनोरथ जगाया। एवं पृथ्वीराज ने परोक्षरूप में संयोगिता के हृदय-सिंहासन पर अचल स्थान प्राप्त कर लिया।

संयोगिता पृथ्वीराज के अनुराग में विह्वल बन गई और उसके हृदय में चौहान से ही विवाह करने की अभिलाषा है—यह बात एक द्राविडी ब्राह्मण ने कर्नाटकी की सूचना से दिल्ली आकर एकान्त में पृथ्वीराज से कही और उसके हृदय में भी जयचंद जैसे अपने प्रतिस्पर्धी की पुत्री के साथ विवाह कर उसके गर्व को खण्ड-खण्ड कर देने की अभिलाषा उत्पन्न हुई। जयचंद ने राजसूय यज्ञ के अवसर पर ही संयोगिता के स्वयंवर की योजना की थी और उसमें प्रत्येक देश के राजा को आमंत्रित किया था, पर पृथ्वीराज ने तो उसका स्पष्ट रूप से अनादर कर जयचंद की विजयी सेना को मार भगाई था। अतः वह स्वयंवर में जा सकने की स्थिति में नहीं था।

इन सब संयोगों में पृथ्वीराज ने कवि चन्द को, जयचन्द की कन्या का किसी भी प्रकार हरण करने की अपनी आंतरिक इच्छा और आग्रह व्यक्त किया। कवि चन्द ने पृथ्वीराज को अनुमति देते हुए सूचित किया कि ऐसे कार्य के लिये मेरे अकेले की अनुमति से काम नहीं चल सकता। अतः आप अपने सब सामन्तों और सुभटों की अनुमति लेलेवें और सामन्तों के अभिप्राय के लिये कविचन्द ने उनकी सभा बुलाई।

इस सभा में सामन्तों के सन्मुख कविचन्द ने पृथ्वीराज चौहान की इच्छा प्रकट की और उनकी अनुमति चाही। सामन्तों ने निश्चय किया कि जयचंद जैसे प्रबल राजा की कन्या का अपहरण सरलता से नहीं होगा। इसके लिये कुटिलता का भी आश्रय लेना पड़ेगा। अतः राजा ने पूछा कि हमें किस प्रकार कन्नौज जाना चाहिये ? तब सामंतों ने बताया कि स्वयंवर के अवसर पर अनेक द्वार-भट्ट कन्नौज जाते हैं, अतः अपने कविचंद को भी बड़े सैनिक रसाले के साथ कन्नौज जाना चाहिये और रसाले के लोगों में हम सबको और चौहान को साथ जाना चाहिये। यह योजना सबको अच्छी लगी और चन्द कवि को कन्नौज जाने के लिये तय्यार किया।

कन्नौज जाते समय कवि चंद के साथ रसाले में गुप्तरीति से ११००० हजार चौहान राजपूत थे, स्वयं पृथ्वीराज चौहान कविचन्द का जलधारी (पानेरी) बना हुआ था।

कवि चन्द के कन्नौज जाते ही जयचन्द ने अपने द्वार भट्ट को सामने भेज कर उसका सम्मान किया और कवि को मिलने के लिये अपने एक खास तम्बू में बुलाया। चन्द ने वहाँ जाकर उसे आशीर्वाद दिया। इसके पश्चात् बातें करते-करते पृथ्वीराज की बात निकल पड़ी और वहाँ चन्द ने पृथ्वीराज की प्रशंसा की। इससे जयचन्द को कवि चन्द के लिये भ्रम हुआ। "इसो राज प्रथीराज" शब्दों को सुनकर उसे पृथ्वीराज के वहीं होने का सन्देह हुआ और इतने में पृथ्वीराज की पासवान रही हुई गणिका कर्णाटकी वहाँ आ गई। उसने पानेरी के वेश में पृथ्वीराज को देखते ही मुख पर घूँघट निकाल लिया। चन्द कवि ने सहसा उसकी ओर देखा वह चतुर स्त्री एकदम प्रसग को ताड़ गई, उसने मस्तक से घूँघट हटा दिया। इससे जयचन्द की शंका और भी बढ़ गई और उसने कर्णाटकी को पूछा कि "तू सिर पर कभी ओढ़ती नहीं और आज कैसे ओढ़ लिया, और फिर क्यों हटा दिया इसमें अवश्य कुछ भेद है ?" विचित्र छटा से अपने बुद्धि-चातुर्य को प्रकट करती हुई कर्णाटकी ने उत्तर दिया कि 'अन्नदाता ! क्षमा करें ! मैं संसार में एक ही पुरुष का आदर करती हूँ और वह पृथ्वीराज का ! और आपके पास पृथ्वीराज का राज-कवि बैठा है और वह उसके एक अंग के समान है। अतः मैंने इसके सम्मान में आधी लाज की है।" कर्णाटकी के इस उत्तर को सुनकर कवि चन्द प्रसन्न हुआ; पर जयचन्द का मन घबरा गया और

उसके हृदय की शंका प्रबल बन गई, तथा उसने चन्द कवि के आस पास-अपने हिरते-फिरते जासूस छोड़ दिये।

अन्त में जयचंद की शंका ठीक निकली। चंद कवि और कर्णाटकी की चतुराई ने इस गंभीर प्रसंग को जैसे-तैसे बिताया। पर अन्त में यह निश्चिन् रहा— कि चंद का जलधारी पृथ्वीराज चौहान ही था। जो चंद के पहरेदारों के बीच रह कर भी कर्णाटकी के प्रयत्न से पृथ्वीराज संयोगिता से मिला और उसके साथ स्नेह संपर्क बढ़ाया। यही-नहीं, उसकी वरण करने की अभिलाषा को जान लिया। संयोगिता जो उससे, लग्न करना चाहती है—यह बात भी पृथ्वीराज ने कवि चंद को कही। अतः इस वर-कन्या के अभिमत विवाह को सफल बनाने के लिये चन्द कवि ने भी इस प्रसंग के योग्य ऐसी ही योजना की। इस योजना के अनुसार छिपे हुए चौहान सैनिक कन्नौज के किले में और बाहर जम गये। पृथ्वीराज कविचंद के संकेत मिलते ही स्वयंवर में से संयोगिता को अपने अश्व पर उठाकर दिल्ली की ओर रवाना होगया।

इस प्रकार संयोगिता को चौहान द्वारा उड़ा लेजाने का – उसके हरण करने का समाचार भी कवि ने राठौड़ राजा जयचंद को दे दिया, जिसे सुनकर जयचंद सहसा प्रकुपित हो उठा और पृथ्वीराज को पकड़ने के लिये अपनी समस्त सेना और सरदारों के साथ उसके पीछे पड़ा। चंद कवि और उसके साथ के चौहान सैनिकों ने पृथ्वीराज के सुरक्षित रीति से दिल्ली पहुँच जाने तक, राठोड़ सेना को मार्ग में आगे बढ़ने से रोक रक्खा।

यह है—चंद कवि की एक राजनीतिज्ञ के रूप में कुशलता और रण दक्षता, जिसके कारण इसने अपने स्वामी के सम्मान और गर्व का अपूर्व प्रकार से संरक्षण किया था—जयचंद जैसे प्रबल और पराक्रमी राजा को उन के घर में ही लोहेके चने चबवा कर परास्त किया था। यह प्रसंग पृथ्वीराज चौहान की शासन-सत्ता में सब से श्रेष्ठ और अंतिम विजय थी। इस प्रसंग पर यदि चन्द कवि ने अपनी कुशलता और प्रसंग को समझ लेने की क्षमता प्रदर्शित नहीं की होती तो प्राप्त की हुई विजय पराजय में परिवर्तित हो जाती। इस अवसर पर स्वामी सेवक बना था, पर अन्त में सेवक ने स्वामी और उसके सन्मान की रक्षा कर अपना कौशल भी बता दिया। यह है—कवि चंद के प्रति चौहान की श्रद्धा और विश्वास की सार्थकता!

अन्तिम युद्ध के समय चौहान साम्राज्य की परिस्थिति—

(४) कवि चन्द के जीवन में उसकी कठोर परीक्षा का और भारत के मध्यकालीन इतिहास का विशेष उल्लेखनीय प्रसंग, शहाबुद्दीन गोरी के साथका अतिम संग्राम है। इसे अन्तिम संग्राम—इसलिये कहा है कि पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन के अनेक युद्ध हुए थे, जिनमें पृथ्वीराज ने विजय ही प्राप्त की थी; जिनकी स्वीकृति उस समय के शत्रु-प्रचारक, इस्लामी इतिहासकार भी दे चुके हैं। इस संग्राम ने भारत की उज्ज्वल अस्मिता और स्वतन्त्रता को पराधीनता और अन्धकार में परिवर्तित कर दिया था। इसके मुख्य कारणों में एक तो पृथ्वीराज का विजयोन्माद, विषयासक्ति और उस समय के राजपूत राजाओं का आपसी ईर्ष्या-द्वेष, अदूरदर्शिता एवं मिथ्याभिमान था।

इसके परिणाम स्वरूप चौहान पृथ्वीराज स्वयं अपनी सुदृढ़ बनी हुई साम्राज्य की नांव को ही खोदने का प्रयत्न करने लगा—सैनिकों और सामन्तों की एकता को अघटित कार्यों के द्वारा छिन्न भिन्न करने लगा। एक ओर उसका शहाबुद्दीन गोरी जैसा प्रबल शत्रु आँख जमा कर बैठा था, तब उसने संयोगिता का अपहरण कर जयचन्द जैसे प्रबल शत्रु की द्वेषाग्नि को प्रज्वलित कर दिया। यही नहीं इसने अपनी पश्चिमोत्तर सीमा के संरक्षक हाहूली हम्मीरराय को भी अपमानित कर प्रकुपित बना दिया।

पृथ्वीराज का गृह-कलह—

इसके अतिरिक्त पृथ्वीराज ने अपने यहां गृह-कलह का प्रारम्भ तो कभी से कर दिया था। उसने अपने मंत्री कैमास का वध कर सामंतों एवं सैनिकों को रुष्ट कर दिया और घोर असंतोष का भाजन पहले से ही बन गया। ऐसी स्थिति में उसने अपने साम्राज्य के सेनापति और सामन्त चामुंडराय को एक क्षुद्र अपराध के लिये बेड़ियाँ डालकर कारावास में डाल दिया। पृथ्वीराज के इन दुष्कृत्यों से उसकी सामंत-मंडली और संपूर्ण साम्राज्य सहसा कम्पित हो उठा। उसके साम्राज्य में धीरे-धीरे यह अग्नि एकदम भड़क उठी, जिसका भान उसके विषयासक्त और मदोन्मत्त स्वभाव को नहीं हुआ और वह स्वयं साम्राज्य की देख-रेख और प्रत्येक विषय को एक ओर रख, नवविवाहिता रानी संयोगिता के सतत सहचार विषय-वासना और भोग-विलास में लीन रहने लगा। अन्त में पृथ्वीराज की यह

विलास-लीला इतनी पराकाष्ठा को पहुँच गई कि उसने अपने अभिन्न मित्र कवि चन्द और गुरुप्रसाद से मिलना भी छोड़ दिया। सच कहा जाय तो पृथ्वीराज संयोगिता के अंतःपुर में उसके एक पालित तोते के समान बन कर रहने लगा था, और प्रजा के दुःख-दर्द की पुकार को सुनने वाला राजधानी में कोई नहीं रहा।

इस अंधेर परिस्थिति को दूर करने के लिये नगर के कितने ही धनी-मानी, सेठ-साहूकार और प्रजाजनों ने एक साथ मिल कर कवि चंद और हाहूलीराय हम्मीर को अपना प्रतिनिधि बनाया और इन्होंने चौहान को नगर की सच्ची परिस्थिति से अवगत कराने के लिये संयोगिता के विलासभवन को भेजा।

प्रजा के प्रतिनिधियों का अपमान—

प्रजा के प्रतिनिधि के रूप में कवि चन्द और हाहूलीराय हम्मीर दोनों ही संयोगिता-भवन को गये, पर उनको संयोगिता की आज्ञा से उसकी सेविकाओं ने अन्दर नहीं जाने दिया। अतः कवि ने एक कागज पर निम्नलिखित पद-पंक्ति लिखकर परिचारिका द्वारा अन्दर भेजी। 'तुं गोरी पर रत्तियं, अरु ता घर गोरी तक्कीयं'—

इन शब्दों को पढ़कर संयोगिता ने पत्र को फाड़कर पृथ्वीराज को बतलाया तथा चंद कवि और हाहूलीराय को अपमानजनक शब्द कहकर वहां से निकलवा दिया। इससे कवि चंद और हाहूलीराय सहसा क्षुभित बन गये। कवि चन्द अपने अपमान को विषघूंट के समान पीगया, पर हाहूलीराय तो क्रोध से भड़क उठा और अपने अपमान का बदला लेने के लिये गज़नी की ओर चल पड़ा।

हाहूलीराय को कवि चन्द और गुरुराम ने ऐसा करने से रोका और समझाया, पर वह नहीं मानकर सीधा अपने परिवार एवं परिजनों के साथ रवाना हो गया।

कवि को आत्म-विलोपन के लिये तैयारी और गोरी का आत्मबोध—

कवि चन्द ने अपने मित्र और राजा के दुष्कृत्यों से क्षुभित एवं खिन्न हो अपने आत्मविलोपन का निश्चय कर ही लिया। क्योंकि अपमान से खिन्न बना हुआ उसका हृदय कहीं मित्र के सामने विद्रोही नहीं बन जाय। अतः उसने इस उद्विग्नता में ही अपने आप पर विद्रोह करने का निश्चय किया। घर पर आकर

वह अपने आराध्य देव भगवान् शंकर को अपना मस्तक अर्पण कर कमलपूजा की तैयारी करने लगा [1]

कवि को कमलपूजा का अनुष्ठान करते देख कर उसकी पत्नी गौरी भी क्षण भर के लिये दिग्मूढ़ सी बन गई; पर अन्त में स्वस्थता प्राप्त कर वह पति को शास्त्र के प्रमाण बतला कर आत्महत्या करने से रोक कर कहने लगी—"देव ! तुम्हारे आत्म-विलोपन से चाहान की विपदाओं के मेघ छिन्न-भिन्न नहीं किये जा सकते। विलास में शून्य बनी हुई उसकी विवेक बुद्धि पुनः आजाय—इसके लिये यदि आपको अपने हत बुद्धि बने हुए उन्मत्त स्वामी और मित्र को जगाना हो तो आत्म-विलोपन की अपेक्षा कुछ वास्तविक मार्ग ढूँढ़ना चाहिये। निष्क्रिय बने रहने की अपेक्षा कुछ सक्रिय प्रवृत्ति को स्वीकार करें, जिससे मस्तक पर मँडराया हुआ संकट दूर हो।" इस उपदेश से कवि ने आत्महत्या का विचार छोड़ दिया, पर इससे उसके हृदय का भार दूर नहीं हुआ। वह सतत चिन्ताग्रस्त अवस्था में रहने लगा।

कवि का चित्तौड़ गमन

इतनेमें इस बात की सूचना पुरोहित गुरुराम को मिली। गुरुराम और गौरी ने कवि को हतोत्साही नहीं होने के लिये समझाया और पृथ्वीराज की अवदशा से रावल सामन्तसिंह (समरसिंह) को परिचित करने और उन्हें बुला लाने के लिये उनके पास भेजा।

ऐसी हीन परिस्थिति की प्रतीक्षा ही में, पृथ्वीराज का सबसे प्रबल शत्रु शहाबुद्दीन गोरी आक्रमण करने की तैयारी में भारत को सीमा पर अपने असंख्य सैनिकदल के साथ पड़ाव डाल कर बैठा था। वहीं पर अपने अपमान की अग्नि

---

१. कवि के आराध्य देव भगवान् शंकर थे और उसके ही ये वरदायी थे, जिसका उल्लेख 'रासो' में इस प्रकार है—

बोली चन्द संकर वरदाइय ।
ग्रहै रहै ज्यौं मनसा धारय ॥
छंद ३६८ रासो ।

में प्रज्वलित और प्रकुपित बने हुए हाहूलीराय ने पृथ्वीराज की अवदशा के समाचार कह सुनाये और उसे आक्रमण करने को प्रोत्साहित किया।

राजपूतों की इस निर्बलता का लाभ उठाने के लिये आतुर शहाबुद्दीन ने अपने सबल सैन्य के साथ भारत की सीमा को पार किया। इस समय सीमा-रक्षक हाहूलीराय ने शहाबुद्दीन का सामना करने के बदले उसका ही साथ दिया।

सामन्तसिंह का आगमन—

शहाबुद्दीन के आक्रमण के समाचार सुनते ही रावल सामन्तसिंह दिल्ली आये। दिल्ली के कोट के बाहर उन्होंने तीन दिन तक पड़ाव डाल कर पृथ्वीराज की प्रतीक्षा की, पर पृथ्वीराज मिलने को नहीं आया। अतः चन्द कवि और गुरुराम पुरोहित की अनुमति से सामन्तसिंह ने एक पत्र लिख कर और तीर पर चढ़ा कर संयोगिता के महल में तीर फैंक दिया। तीर के आते ही कामोन्मत्त पृथ्वीराज चमका और पत्र उठा कर पढ़ने लगा। पत्र में पृथ्वीराज को सामंतसिंह ने अनेक उपालंभ दिये थे। अतः पृथ्वीराज अत्यंत ही लज्जित बन गया और युद्ध के वस्त्रों से सुसज्जित हो महल के बाहर आकर सामन्तसिंह से मिला। सामन्तसिंह ने भला बुरा कहा और पृथ्वीराज विनय के साथ सुनता रहा। अन्त में दोनों शत्रुओं के द्वारा किये गये आक्रमण का सामना करने की तैयारी में लग गये।

चामुण्डराय की वन्दीगृह से मुक्ति—

पृथ्वीराज ने सामन्तसिंह के रणाधिपत्य में चौहान सैन्य की तैयारी का प्रारम्भ किया और सामन्तसिंह के कहने से चामुण्डराय को बन्धन से मुक्त करने के लिये कवि चन्द को भेजा। कवि चन्द और गुरुराम चामुण्डराय के पास गये। चामुण्डराय ने चन्द को सूचित किया कि—"कवि! अब मेरे बन्धन विमोचन से क्या लाभ? ऐसे उद्धत स्वामी के लिये मैंने लोहशस्त्र पकड़ने के शपथ खाये हैं।" अतः कवि ने चामुण्डराय को समझाया और कहा कि—"स्वामी अपने बन्ध का विमोचन करता है, तो तुम्हें अपने शपथ का विमोचन करना चाहिये; क्योंकि अभी तक अपने को उसके ऋण का विमोचन करना शेष रह गया है।"

"तो कवि जाओ. मैं इस ऋण विमोचन करने को संग्राम में एक ही बार शस्त्र चलाऊँगा, दूसरी बार नहीं" कहते हुए चामुण्डराय पृथ्वीराज के पास जाने को तैयार हुआ। पृथ्वीराज अपनी की हुई भूल के लिये पश्चात्ताप करने लगा।

दूसरी ओर शहाबुद्दीन के चिनाव नदी को पार करने के समाचार भी पुण्डीर ले आया। अतः चौहान सैन्य ने शत्रु का सामना करने के लिये पानीपत के मैदान में पड़ाव डाला और पृथ्वीराज ने अपमान से रुष्ट बने हुए हाहूलीराय-हम्मीर को मनाने के लिये कवि को काँगरा गढ़ भेज दिया।

काँगरा में कवि का कैद होना—

पृथ्वीराज चौहान के विरुद्ध हाहूलीराय का प्रकट विद्रोह होने पर भी कवि चन्द उसे समझाने के लिये उसके पास काँगरा गया। हम्मीर को अनेक प्रकार से समझाया, पर अपमान की अग्नि से प्रज्वलित हम्मीर तनिक भी नहीं माना और उलटी पृथ्वीराज का शक्ति को कम करने के लिये कवि चन्द को जालंधरी माता के मन्दिर में ले जाकर कैद कर लिया, जिससे संग्राम के समय कवि चन्द पृथ्वीराज की सहायता नहीं कर सका और हम्मीर स्वयं पृथ्वीराज के सामने लड़ने को शहाबुद्दीन की सेना में जा मिला। इस प्रकार अकस्मात् द्रोह से जालंधरी देवी के मन्दिर में बन्दी बने हुए कवि चन्द को क्या करना चाहिये ? कुछ भी सूझ नहीं पड़ा और बड़ी भारी दुविधा और दुःख में निरुपाय बन कर कवि इस कारावास में 'रासो' के कण्ठस्थ पद्यों को पुस्तक रूप बनाने में प्रवृत्त हो गया।

जब पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन की सेना को सहसा अपने समीप आती हुई देखी, तब अपने समस्त सैन्य के साथ काँगरा नदी तक सामने गया और वहाँ आमने-सामने दोनों सेनाओं का संघर्ष होने लगा। दोनों के बीच तुमुल युद्ध हुआ। इस युद्ध में पृथ्वीराज के पास उसके ६४ सामन्तों में से केवल मात्र तीन ही शेष रह गये थे। । एक चामुण्डराय, चन्द कवि और सामन्तसिंह। इनमें से चन्द कवि ता काँगरा गढ़ में पहले से ही कैदी बन गया था। चामुण्डराय ने लोह–शस्त्र पकड़ने के शपथ लिये थे और केवल मात्र सामन्तसिंह अकेला ही शत्रु सैन्य का अद्‌भुत वीरता से सामना कर रहा था। अतः प्रथम दिन ही पृथ्वीराज को आधी सेना के सैनिक मार डाले गये।

दूसरे दिन युद्ध में शत्र के लिये महाकाल स्वरूप सामंतसिंह भी हरोल के भंग हो जाने से मारा गया और सैन्य में निराशा तथा शोक के बादल छागये। तीसरे दिन चामुंडराय ने एक बार लोहशस्त्र के उपयोग करने का निश्चय किया। उसने अपने एक ही अचूक शर–सन्धान के द्वारा शहाबुद्दीन के प्राणों को लेलेने की

तयारी की, पर अदूरदर्शी पृथ्वीराज ने उसे ऐसा करने से रोका और इन बाण को शत्रु पक्ष की ओर से लड़ने वाले देशद्रोही हाहुलीराय को छोड़ने का कहा। ऐसा करने से पहले चामुण्डराय ने पृथ्वीराज का समझाया कि "महाराज! रहने दीजिये, हम्मीर से पहले अपने शत्रु शहाबुद्दीन को मारने दें।" फिर भी दुराग्रही पृथ्वीराज माना नहीं। 'विनाशकाले विपरीतबुद्धिः' के अनुसार चामुण्डराय के एक ही तीर से हम्मीर रण में धाराशायी हुआ और दूसरे ही क्षण शहाबुद्दीन के तीर से चामुण्डराय के प्राण निकल गये।

पृथ्वीराज का पराभव

इस युद्ध में पृथ्वीराज चौहान के साथ कवि चन्द का एक पराक्रमी पुत्र भी जो उसके साथ रह कर शत्रु का संहार और पृथ्वीराज को रणोत्साहित करता रहता था। इतने में शहाबुद्दीन गौरी पृथ्वीराज के सामने आकर लड़ने लगा। शत्रु को सामने देख कर उसका संहार करने के लिये क्रोध से ज्योंही पृथ्वीराज ने शर-सन्धान किया, वहीं उसका धनुष सहसा टूट गया और पास में खड़े हुए कविचन्द के पुत्र के मुख से ये शब्द निकल पड़े—

"दिन पलट्यो पलटी घड़ी, पलटी हथ्थ कमान।
पीथल एही पारखू दिन पलट्यो चौहान॥

इतने में तो शहाबुद्दीन के सैनिकों ने पृथ्वीराज को पास आकर घेर लिया। पृथ्वीराज की सेना में भगदड़ मच गई। चन्द का अकेला पुत्र जो रण में जूझता था, घायल बन कर रण में गिर पड़ा और पृथ्वीराज निःशस्त्र अवस्था में अकेला अद्भुत पराक्रम से जूझने लगा। पर अन्त में शहाबुद्दीन के सैनिकों के हाथ में आगया। चौहान को तुर्क सैनिकों ने पकड़ कर कैद किया।

पृथ्वीराज के पकड़े जाते ही उसके रहे सहे मनुष्यों का उत्साह भी क्षीण हो गया और वे रणभूमि को छोड़ कर भागने लगे। युद्ध में गोरी शाह विजयी हुआ और पराजित पृथ्वीराज को कैद कर अपने साथ गजनी ले गया, जहाँ शहाबुद्दीन ने क्रूरता से, पृथ्वीराज की आँखें नष्ट करवादीं।

इसकी सूचना कवि चंद को पूरे ६० दिनों के बाद कारावास में से छूटते ही मिली। अतः वह सीधा अपने घर आकर अपूर्ण रहे हुए ग्रन्थ को अपने पुत्र

जल्ह को सौंप दिया और स्वयं पृथ्वीराज की दुर्दशा सुनकर उसकी मुक्ति के लिये गौरी (चंद की स्त्री) की अंतिम आज्ञा लेकर घोड़े पर सवार हो तीव्र गति से गज़नी की ओर रवाना हुआ।

चन्द का गजनी प्रयाण

कवि चंद रात-दिन सतत यात्रा करता हुआ गजनी पहुँचा और वहाँ शहाबुद्दीन के यहाँ कारावास में पड़े हुए अपने मित्र और स्वामी पृथ्वीराज से मिलने को युक्तिपूर्वक प्रार्थना की। वह पृथ्वीराज से भी मिला। कारावास में स्थित पृथ्वीराज, चन्द की आवाज को सुनकर उस पर अत्यंत ही प्रकुपित हुआ और कहने लगा—"क्या मेरी दुर्दशा को देखने यहाँ आया है?" और तब चन्द ने उत्तर दिया 'नहीं, इसका अंत लाने के लिये! यदि भविष्य का विचार होता तो काँगरा ही क्यों जाता?[1]" फिर कवि ने संकेत द्वारा अपने स्वामी पृथ्वीराज को शत्रु गोरी शाह के समूल विनाश की योजना कह सुनाई, जो पृथ्वीराज को भी अच्छी लगी।

बाण वेध और शत्रु संहार का अंतिम दाव

यह योजना—बाणवेध—तीरंदाजी थी। कवि चंद ने पृथ्वीराज चौहान की तीरन्दाजी को देखने के लिये शहाबुद्दीन गोरी को तैयार किया और कहा—"पृथ्वीराज आँखों की ज्योति से विहीन कुरूप (अन्धा) है। फिर भी तीर चलाने में उतना ही अचूक है। वह आवाज को पहिचान कर निशाने को गिरा सकता है।" शहाबुद्दीन को कवि के शब्दों में केवल मात्र व्यर्थ अभिमान ही मालूम दिया और इस प्रतिस्पर्धा में उसे आनन्दाश्चर्य होने लगा। अतः उसने लोहे के सात तवे बनवाकर, सातवें तवे की आड़ में स्वयं बैठकर स्वयं आवाज करे और इस आवाज पर पृथ्वीराज का तीर किस प्रकार काम आता है—इसे देखने की इच्छा व्यक्त की इसकी इस इच्छा के विरुद्ध उसके कुछ सामन्तों ने कवि का जाल बता कर विरोध किया। इससे शहाबुद्दीन गोरी का भी कविचंद जैसे पराक्रमी कवि

---

१. भवति न सुझयौ मोही पै, हों क्यों काँगर जाँउ।
हम तुम छंड़ो इह भयौ, भावी देवह थाँउ॥

के इस कार्य में शंका हुई और स्वयं सचेत होगया और वाण वेध के समय अपने स्थान पर बादशाही पोशाक पहनाकर अपनी लोह की मूर्ति रखदी।[१]

वाण वेध का निश्चित समय आया। कवि ने पृथ्वीराज को समय नहीं चूकने का संकेत कर शाहबुद्दीन को आवाज देने के लिये कहा और उसने लोह मूर्ति के पीछे से हुँकार किया। इस हुँकार की ध्वनि पर पृथ्वीराज ने शर सन्धान किया और उसका तीर जहाँ से आवाज आई थी, उस लोह मूर्ति पर कडिंग करता हुआ लगा। लोह मूर्ति धड़ाम से नीचे गिर पड़ी और गौरा सुल्तान के मनुष्यों में हाहाकार होने लगा N

अन्तिम दाव में निष्फलता और दोनों मित्रों का आपघात

लोह मूर्ति के नीचे गिरते ही कविचंद को शत्रु को संहार करने की योजना एकदम सबको जान पड़ी। कवि ने अपने स्वामी के सम्मान की रक्षा के लिये और शत्रु का विनाश करने के लिये इस अन्तिम दाव की परीक्षा की थी, वह भी निष्फल गया। इससे निराश बने हुए कवि ने शत्रु के हाथ से मरने की अपेक्षा, अर्थात् आत्म समर्पण करने से आत्म-हत्या करना ही उचित समझा और एकदम अपनी कटार निकालकर पहले स्वयं और पीछे पृथ्वीराज—इस प्रकार दोनों मित्र परस्पर कटार खाकर वहीं धराशायी हो गये।

जिस प्रकार पृथ्वीराज और कविचंद एक साथ उत्पन्न हुए थे, जीवित रहे थे, उसी प्रकार उनका अन्तकाल भी एक साथ आया। एक मित्र के में रूप ऐसा संयोग किसी विरले को ही प्राप्त हो सके।

---

१ पुरातन प्रबन्ध संग्रह पृ० ८७ देखिये।

N. सं.टि.—रासो में महाराजा पृथ्वीराज चौहन द्वारा वाण वेध के समय शहाबुद्दीन गोरी का मारा जाना लिखा है। अस्तु, शहाबुद्दीन गोरी की लोह की मूर्ति बना कर पृथ्वीराज का शर संधान करने का कथन विचित्र सा ही जान पड़ेगा। परन्तु श्री गोवर्द्धन शर्मा, इस कथन के पीछे पुरातन प्रबन्ध की साक्षी देते हैं जो मान्य है और श्री शर्मा के इस कथन से स्पष्ट है कि वाण वेध से शहाबुद्दीन नहीं मारा गया। इन दोनों कथनों में कौन सा सत्य है, इसका निराकरण करने के लिए एक न एक कथन को अमान्य करना होगा। यदि पुरातन प्रबन्ध की बात ठीक होना सभी विद्वान् मानलें तो स्वतः रासो की कथा प्रक्षिप्त हो जायगी और यह समस्या सुलझ जायगी।

मध्यकालीन इतिहास में कविचंद की स्वामी-भक्ति, जिस प्रकार अपूर्व है, उसी प्रकार इसका स्व-गौरव और स्वाभिमान भी अद्वितीय है। जिसकी रक्षा के लिये उसने किसी भी प्रकार त्रुटि नहीं की। यह तो केवल अपने उदात्त ध्येय की ओर ही लक्ष्य देकर आगे बढ़ता रहा और इसीलिये वह आज मर जाने पर भी अमर है! जीवित है।

कविचंद की अवसान-तिथि रासो के अनुसार पृथ्वीराज की अवसान-तिथि है: जो अनंद संवत् ११५८ है, जबकि इतिहासकार पृथ्वीराज की अवसान-तिथि वि० सं० १२४६ मानते हैं। रासो के अनुसार अनंद सम्वत् में ६१ वर्ष का अन्तर जोड़ देने से वह बराबर वि० सं० १२४६ होता है। इससे सिद्ध होता है कि वि० सं० १२४६ में ४३ वर्ष की युवावस्था ही में परलोक सिधार गया था।

(४)

कवि चन्द की काव्य-रचना

महाकवि चन्द की काव्य-रचना विख्यात महाकाव्य पृथ्वीराज रासो', जो भारत के अंतिम हिन्दू-सम्राट् पृथ्वीराज चौहान का जीवन-चरित और मध्यकालीन भारत की सामाजिक, आर्थिक और राजकीय व्यवस्था का सजीव आलेखन करता है। इस महाकाव्य को भाषा का प्रथम काव्य और हिन्दी भाषा का आदि-काव्य माना जाता है। 'रासो' काव्य की मूल रचना कवि चन्द ने उस समय की लोक-भाषा, अपभ्रंश-प्राकृत (देश्य) में की थी, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण कवि की निम्नलिखित पंक्ति है।

पय सक्करो सुभत्तौ। एकत्तौ कनकराय भायसी ॥
कर कंसो गुज्जरीयं। रब्बरियं नैव जीवंति ॥

अर्थात् जिस प्रकार राज-भोज्य दूध शक्कर की मिठाई है और जिसे श्रीमान् लोग सुवर्ण के पात्रों में लेकर खाते हैं, उसी प्रकार गरीब लोग (उस समय की एक जाति-गूजर) लोगों के लिये रबड़ी (रावड़ी) है, जिसे कांसे के पात्र में लेकर खाते हैं। इस प्रकार मेरे पूर्व कवियों की कविता राज श्री के समान संस्कृत में है। जब कि मेरी कविता रावड़ी के समान लोक-भोज्य श्री है—जन-समुदाय की अपनी अपनी बोली में है।

लोक-दृष्टिधारी प्रथम युगद्रष्टा कवि —

इससे सिद्ध होता है कि कवि चंद मध्यकालीन युग का लोक दृष्टि धारक प्रथम क्रांतिकारी युगद्रष्टा कवि था, जिसने संस्कृत जैसी पुस्तकीय भाषा का परित्याग कर जनता के व्यवहार की भाषा में अपने काव्य की रचना की थी। कवि का यह प्रथम चरण उस समय की दृष्टि से अवश्य प्रगतिशील और इसमें रही हुई एक युग द्रष्टा की उदात्त भावना का सुन्दर प्रति बिंब है।

कवि चंद रचित रासो की श्लोक संख्या—

आज रासो महाकाव्य प्रक्षेपों और क्षेपकों से परिपूर्ण बन कर एक महाकाय बन गया है, जिससे कवि रचित श्लोक संख्या का अनुमान लगाना भी कठिन होगया है और कितने ही लोग रासो में एक लाख श्लोक संख्या होना मानते हैं। इसके अतिरिक्त कितने ही विद्वान् कवि के बनाये हुए तीन चार हजार पद्यों का होना उनके पास की प्रतियों के आधार पर सूचित करते हैं; परन्तु इन सब में वास्तविक सत्य का सर्वथा अभाव है। क्योंकि अब तक प्राप्त रासो की सर्व प्राचीन प्रतियों में, प्रतिप्रांश के लिये नीचे लिखा कवि का यह उल्लेख मिल जाता है।

सत्त सहस नष सिस सरस,
सकल आदि शुभ दिप्य।
घटि वढ़ि मत्तैह कोई पढ़ै,
मोहो दुसन न वसिप्य॥

अर्थात् रासो की श्लोक संख्या सात हजार है, न्यूनाधिक नहीं, कदाचित् कोई अधिक या न्यून प्रमाण में पढ़े तो इसमें मुझे दोष नहीं देवें और यही वास्तविकता बतला देती है कि रासो की पद्य संख्या सात हजार होनी चाहिये। प्रचलित और प्रकाशित रासो में श्लोक संख्या १६००२ है और इससे विदित होता है कि इसमें से पीछे से अन्यन्य कवियों के द्वारा बढ़ाया गया क्षेपक भाग विशेष है। जिस-जिस पद्य में 'कविराज' शब्द का प्रयोग आता है, वह कवि चंद द्वारा रचित नहीं है, पर. पीछे से बढ़ाया हुआ भाग है।

रासो काव्य का प्रधान कथितव्य—

रासो काव्य में कवि चन्द ने विशेष कर उसके कथितव्य में इस प्रकार कहा है—

उक्ति धर्म विशालस्य राजनीति नवं रसं ।
षट्भाषा पुराणंच कुरानं कथितं मया ॥

अर्थात् उक्ति, धर्म, राजनीति, नवरस, षट्भाषा पुराण और कुरान के तत्व को मैंने इसमें बतलाया है।

अन्त में कहना होगा कि निःसन्देह कविचन्द एक महान कवि था। उसकी कविता बहुत ही सबल, भाषा अतीव प्रोढ़ और रचना-पद्धति, शैली सर्वथा स्वाभाविक है। कवि के रासो काव्य में वीर रस प्रधान हैं और अन्य रस गौण हैं। फिर भी उनमें एक उच्च कोटि के महाकाव्य के सर्व गुण, पूर्ण रूप से दृष्टिगोचर होते हैं। कविचन्द की कल्पना शक्ति अपूर्ण और अद्भुत् थी। इससे उसने कविता में जिस विषय को स्पर्श किया है; उसका ऐसा विस्मृत सजीव और भव्य वर्णन किया है कि वह अपनी आँखों के समक्ष मूर्तिमान बनकर नर्तन करने लगता है। काव्य कला की दृष्टि से रासो के सर्वोत्तम स्थल यह है- जहाँ महाकवि चन्द-रूप-वर्णन, सैन्य वर्णन और युद्ध वर्णन करता है। इनमें से कुछ स्तुति पद्यों के उदाहरण हम नीचे देते हैं, जो वर्तमान समय में लोगों में 'चन्द-छन्द' के नाम से पहचाने जाते हैं।

चंद की पत्नि गौरी के प्रश्नोत्तर में कवि द्वारा (दशावतार)

ब्रह्म स्तुति—

भुजंगी○

न रूपं न रेपं न सेपं न सापा,
न चद्रं न तारा, न भानं न भापा ।

○ सं०टि०—कविवर राव मोहनसिंहजी ने पृथ्वीराज रासो का पूर्ण रूप से अध्ययन कर यह सिद्ध किया है कि महा कवि चंद ने अपने ग्रन्थ को दोहा, गाहा, साटक कवित्त (छप्पय) और दोहों में रचना की थी, जिसके लिए रासो में उल्लेख है—

छन्द प्रबंध कवित्त मति, साटक गाह दुहत्थ ।
लघु गुरु मंडित खंडि यह, पिंगल अगर भरत्थ ॥ प्रथम समय ।

इससे सिद्ध हुआ कि भुजंगी आदि छन्द मूल छन्द की रचना के नहीं है और प्रक्षिप्त रूप में है। क्योंकि 'पुरातत्व प्रबंध संग्रह' में दिये हुए पद्यों की भाषा से भी इनका मिलान नहीं होता है, जिसके उदाहरण 'रासो और पुरातन प्रबन्ध संग्रह' शीर्षक में दिये गये है।

अविद्या न विद्या, न सिद्धं न सादी,
तुही ओ तुही ओ तुहो ओक आदी ॥
न अंभं न रंभं, न रद्धा, न पाया,
न सेतं, न नीलं न पीतं न गाया ।
न काया न माया न पाया छाया,
तुही देव सद्देव सिद्धे न पाया ॥
तु ही सर्व माया दिषाया न माया,
तु ही सव माया तुही धाम छाया ।
न बंभा न रंभा न रुद्रे न देहं,
न मद्रे न माया, न राया न गेहं ॥
न सैलं न गैल न तापं न छाया,
न गाहा न गीतं न श्रोता न ताया ।
न पृथ्वी न पालं म्रजादं न मादं,
न तारी न वारी न हारी न नाद ।
नवे सेप रेपंन भूरी न भारी,
न वे ध्यान भानं न लग्गे न तारी ।
न लोकं न सोकं न मोहं न मादं,
तु ही ओ तु ही ओ तु ही ओक आदं ॥
तहां पै न तारं न वारं न वीरं,
नयं दद्व मद्वं न ध्यान न धीरं ।
नहं जोति हस्तं न वस्तं सरप्पं,
तहां तू लंतहां तू तह ां तू गुरप्पे ॥
प्रकृतं प्रथमं त्रये तत्त जोई,
तहां नम्भ तेता सरोजं न सोई ।
न माया न काया न हाया न होई,
तुहो देव सादेव साधा न सोई ॥
तुही अंबुजा अंबुका मिन्निकायं,
तुही तत्त कै तत्त रामं न रामं ।
तुही दीप सूरं सिरं नम्भ तेरै,

भूजा इन्द्र तुही नभं नाम फेरै ॥
सुयं सायरं पेट सा मुप्प अग्गी,
तुही तेज ब्रह्मांड सासीस लग्गी ।
तुही बाल वृद्धं तुही अेक आदी,
तुही तंत्र मत्रं कवि चंद वादी ॥
तुही राग जंत्रं जगत्रं बजावै,
तुही सार, पंचै सु पंचै चलावै ।
भगव्वांन जंत्री सु वज्जति लोई,
सुर राग वंधै, अंध्यौ आप सोई ॥
प्रलै अंभ अंवं तु ही अन्य बोधै,
तहां मोहि अग्या सु सिष्टं समोधै ॥

साटक

कि सन्मान ससेव देव रजयं, दुष्टान उस्सासयं,
कि सुप्पानि दुपानि सेवन फलं, आयस भूमि मयं
किं ईसं सुरेश सेस सनकं, ब्रह्मा जान लहं
कि रंनं छितया छितं सुकल वंदे सदा विप्पयं ॥

भूजंगी

वपू वीर वीरं धृतं धृत्त सारं, दीठं दुष्ट दाने कलं कोल कारं ।
वरं तुंड तुंगं विसालंत नैंनं छिनं छीन लोकं, जुरे दूत सेनं ।
रुधि फट्टि वध्जंग वज्जे वितूरं, गनं आंन कंतं बजं पंच पूरं ।
श्रवं सोर भारं भिरे भूर भारी, तिनं मेक मानी-अकाली असारी ।
घटे घोप छीनी वलं छीन नूरं, धरे मुद्ध उध्वं दिनं सम जूरं ।
धरे दंत धारा वरं सेप ओपं, मयं कंक लंकं क्रियं कंठ लोपं ।
त्यं जोगधारो महापान पानं हयं ग्रीव नंपे तिनं तोरि तानं ।
करे तुंड तुंडं, वितारंत तारं, तियं लोक सोकं, विलोकन्न पारं ।
मुरे सूर कंतं जयं जो करालं, समं गुछ्छ अछ्छं करंजूल जालं ।
चवै चद चंडी नमो वेद चारं, नमो देव कोलं, वरं रूप सारं ।
वही तत्त त्रैलोक संसार सारं, वही तारनं सत्त भौ सिंध पारं ।
जगन्तं, अवारं, नीराधार वोही, वही अव्वदा, संपदा, नित्य सोही ।

वही भेद मंत्रं, गजानंत लोयं, ब्रही पूरनं ब्रह्म संसार भोयं ।
नवं भक्ति कौ संव ही छत्र धारी, भम्यौ ब्रह्म ब्रुन्यो, वही सिद्ध तारी ।
जगत्तं सुरत्तं, वहीं हैं निनारं, वही वासना वासुदेवं प्रकारं ।
वही मत्त हथ्थं, नच्यौं कप्पिमानं, वहीयै वहीयै वहीयै निधानं ।
इकं एक आचज्ज कीनें गुसांई, चवै चन्द जा रंग गोव्यंद पाई ।
वही की उपम्मा करै किंत्ति भासौं, वही सब्ब संसार मभ्भै प्रकासौं ।
वही अंतरंगी, सुरंगी. निनारं, वहे राज राजीव लोचन्न सारं ।
धरें गेन सीसं, चले वेद रीसं, गदा मुद्गरं, दंत पारंत चीसं ।
पगं पिट्ठ नट्ठं कमट्ठं डरानं, थके वेद ब्रह्मा कमट्ठं भजानं ।
भगे जोग जोगं, छुटे थांन थानं, छुटे विश्व लोकं महालोक जानं ।
फटे कन्नरानं, प्रथोलोक जानं, चितं रक्त लोकं, ध्रमं लोक मानं ।
पुले पित्र लोकं ब्रहं लोक देवं, × × × × ×
सिवं कूट थानं हरं थान लाकं जहू रश्त लाकं परे सत्य सोकं ।
परे दिव्य लोकं सुरंगं, सु पालं ब्रहं रापिसं लोक भग्गेस कालं ।
परे निट्ठ तट्ठं, कमट्ठं रहानं, चले दैत संपं जुटे, वेद रानं ।
हम्मा भजानं, नजानं कि जानं, घरंजा फटानं ग्रहं निट्ठ भानं ।
परे लोक सोकं, करे देव कूक्कं, डकं डक्क वज्जी करें ईस डक्कं ।
ग्रहे ब्रहम लिद्धं, धरै वेद मुष्पं, गजे जोग सट्ठी हुवं दैत दुप्पं ।
करे सच्छ रूपं, धरैं धार धूपं, छिले सत्तयं सायरं अंधकूपं ।
परे छोनि छक्कं विछक्कं वरानं. करे कुंभ नद्यं विहद्यं सुनानं ।
तहां संपनं, पानि संपा सुरानं, नहीं पात्र संपं प्रलयं वरानं ।
धजा धूमरं अंमरं, अंव दम्मी, तिनं मम्फ पोडप्कला अप्प सूम्मी ।
धरे गेन पानं, लरे आवधानं मनों आसुरं वासुरं सत्त पानं ।
करक्कंत मच्छि कटि, कट्टि मच्छं, मनों आवधं वज्जि जों वज्र वच्छं ।
धपे पानि लद्धं फटे पारि छेदं, कढे पेट मभ्भं सुरं वेद वेदं ।
धरे अप्पं पानं चले ब्रह्म थानं, किये जैत वज्जं पुरानं सुरानं ।
करी विष्टि कूलं सुरंसिद्ध देवं, सुअं ब्रह्म जप्यं किय अप्प सेवं ।
सुषं वेद विद्धं न लै पानि ब्रह्मं, जलै पोलि पानं, धजै भ्रांति भ्रमं ।
दियं चारनं भट्ट वेदं सु पानि, रहे ब्रह्म ग्यानं हरी सिध्धि रानी ।

अपं इंद्र आपं भगं कोरि कोरं, किऐ सच्छ रूपं छुटे वेद रोरं।
कहूँ अम्व विद्रुम्म सीतल्ल छाया, कहूँ वृष्ष वदं निहट्टं सिलाया।
कहूँ कीर कोकील्ल नादं सुलीनं, कहूँ कलि कप्पोत से वोल भीनं।
कहूँ वीय विज्जौर पीयूप भारं, जुटी भूमि लुट्टि मनों हेम तारं।
कहूँ दाडिमीचूर्वं चिचन चंपी, मनों लाल मानिक्क पीरोज थप्पी।
कहूँ सेवं देवं करंनं कल्लापं, कहूँ पंप पारेव सारो अलापं।
कहूँ नीव नाली अकल्ली पजूरी पूलें काम भंडे सुहल्लै हजूरी।
कहूँ ताल तुंगे सुचंगे सुचारं, कहू काम लप्पे सुदप्पे विहारं।
कहूँ चंप चंपो सु कंपीय वातं, कहूँ जवु जंभीर गंभीर गातं।
कहूँ नागवेली निवेली निवेसं, कहूँ मालची घेरी भौंरं सुवेसं।
कहूँ पांडरी डार पाछै विहारं, कहूँ सेव तीसेव जेनी सुभारं।
कहूँ अष्यरोटे निहट्टे तिवेली, कहूं वील विद्दाम कादंब केली।
कहूं केतकी फूल दल्ली विगस्से, कहूँ वंस विश्राम गंठी निकस्से।
कहूँ वेर वद्रीव पंपी पुकारं, कहूँ मीर टेरी सुभेरी विहारं।
कहूं सार संसारि सारन्न सोरं, मनों पावसी वुट्टि दादुल्ल रोरं।
कहूं सेंसिपंडो सुपंडान फूल्ली, कहूं लुब्भि लोंगी रही वेली कूल्ली।
कहूं अष्प आसोक तैं सोक हीन, दिपे आसपं रूप तासं प्रवीनं।
कहूं दाडिमी पिंड पजूर भुल्ली, कहूँ मालची मल्ल भर भार भल्ला।
हसे श्याम वलभद्र अक्रूर कुल्ली, जहां कूवरी रूप पेषंत भुल्ली।
दई मालिया आनि सौदाम दानं, भयं रंजकं सव्व सुं हाल कानं।
रची मंडली गोप व्रजलोक वासी, गए जग्गसाला तहां धनुष त्रासी।

— वेली भूजग —

अहो देव देवेस देवाधि देवं, तुही अलख् अप्पार पावै न भेवं।
अभेदं अछेवं तुहीं सर्व वेदं, तुहीं सर्व विद्या, विनोदं, सुभेदं।
तुहीं ज्ञान विज्ञान सोज्ञान कर्ता, तुहीं वुद्धि कर्ता तुहीं वुद्धि हर्ता।
तुहीं धरनि आकास है पौंन पानी, तुहीं सर्व में एक अन्नेक वानी।
तुहीं जोति संसार सारं सरूपं, तुहीं अध्धकालं, अकालं अरूपं।
तुहीं कोटि सूरज्जमें तेज साजै, तुहीं चन्द्रमा कोटि सातं विराजै।
तुहीं कोटि ब्रह्मा महादेव जेते, तुहीं कोटि कंदर्प, लावण्य ते ते।

तुहीं हेत संतोष आनंद कारी, तुहीं शोक संताप सर्वं प्रहारी।
तुही जोग जोगेश जोगी सु भोगी, तुही भेद अभभेद संदेश सेभी।
तुही मानव देव दानव सिथानं, तुही कोटी ब्रह्मादि अंतर-समानं।
जिती थावरं जंगमं, पांन च्यारौ, तिनी आपरी आप तें भेद धारौं।
करे जे गुसांई अगे रूप ते ते, कहँ अग्नि को देव रिपू नाग जेते।
कियो मच्छ औतार पैले अनुपं, गयौ वेद लै दैत्य सागर अलूप।
हते स्वामि संपासूरं वेद लीने, सुतै आनि तत्काल ब्रह्मादि दीने।
महा पिष्ठ के धार धारी धरत्तो, करी ब्रंमलं कश्यप रूप कत्ति।
बली वामनं पावनं कित्ति राजै, पगं नष अंग्रं सु गंगा बिराजै।
सवै पंडि पित्री सुतो विप्र तामं, महापुण्य समकूर सकै फर्सरामं।
श्रियं राम रघ्वीर लीनौ-वतारं, कियौ रावनं कुंभकर्नं संहारं।
वसुदेव ग्रेहं गह्यो कृष्ण वासं, हते दुष्ट सवे कियौ कंस नासं।
करे जग्य लीयं धरा ध्रमं सुद्धं, प्रगटयौ कलिकाल अवतार बुद्धं।
जुगं अंत सो सत्ति ह्वै हैं कलंकी, इ है वात सांची सदा देव अंकी।
जितें सैल सुरुहेत सुरपति कीने, तिते सेस गन्नेस जाएँ न चीने।
सवै दुष्ट भंजे सु सेवक उगारे, करे काम निज धाम नरहर पधारें।

कवि चंद द्वारा भगवान शंकर की स्तुति—

—भुजंगी—

नमो आदि नाथं स्वयंभू सनाथं, नहीं मात तातं न को भगिनातं।
जटा जुठयं सेषरं चंद्र भालं, उरं हार उध्धारयं रुंड मालं।
अनीलं असन्नं उपव्वीत राजं, कलं काल कूटं करं सूल साजं।
वरं अंग ओधूत विभ्भूत आपं, प्रलै कौटि उग्रंसि कालं अनोपं।
करी चर्म कंधं हरि परिधानं, वृषं वाहनं वास कैलास थानं।
उमा अंग वामं सुकाल पुरप्पं, सिरं गंग नेत्रं त्रयं पंच सुप्पं।
नमः संभवायं सरव्वाय पायं, नमो रुद्रायं वरद्धाय सायं।
पसुपत्तए नित्तए मुग्गयाए, कपर्दी महादेव भीमं भवाए।
सषव्नाय ईसानए त्रंवकाए नमो ध्रम्मए घातए अध्धकाए।
कुमारो गुरव्वे नमो नील ग्रीवे, नमो व्याघ्रए वावए दिव्वजीवे।

नमो लोहिते नील सिप्पं डएतं, नमो शूलिने चक्षुपे दिव्यएतं ।
वज़ूरेतवे सव्वदेवस्तुतेयं, नमो पिंग जाट्टिल्लए देव देवं ।
नमो तप्प मानाय अप्पं धुआए नमो ब्रह्मचारी त्रयं ब्रह्मकाए ।
सियं चातमे चातगे स्वर्गघाए, नमो विश्वमावित्तए विश्वराए ।
नमस्ते नमस्ते नमोसीततताए, नमो सर्ववल्कायने शंकराए ।
नमो ब्रह्मवल्काय भूतं पिताए, नमो वाचपे विश्वपे भूपताए ।
नमो सीस साहस्त्रए नीतएसं, सहस्त्रंभुजा नैन साहस्त्र तेसं ।
नमो पाद साहस्त्र आसवकर्नें, तमो वन्हि होरन्य हीरन्यवर्नें ।
नमो भक्ति आकंपनं संभुदेवं, चिरं रिद्धि दाता मनं वच सेवं ।
प्रसन्नो भओ इस तव्वै न कव्वै, तनं ताप विन्नासए चित्त तव्वै ।

साटक

त्रै नैनं त्रिजटेव सीस त्रितयं, त्रेरूप त्रीसूलमं
त्रदेव त्रिदिसा त्रिभु त्रिभुनयं, त्रिसंधि वेदत्रयं
त्रैरग्नि त्रयलच्छि काल त्रितयं, ग्रामंत्रय त्रैवयं
गंगा त्रे त्रिपुरारि भासित तनु सोयं नमः संभवे ॥

भुजंगी

नमो वाय भूताय थानं भयानं, जटा मांहि गंगा जलक कै प्रमानं ।
त्रयं नेत्र ज्वाला जलं चंद्र भाल, विपं कंठ माला रुलै रुंड माल ।
महा आदि मुद्रा नपं सिंगि नादं सिधं देव देवं कथं साथ साधं ।
धरा धूरि धूसं विभूतं धसंते, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ।
गजं चर्म आछादितं भ्रमं वासं, रहै वीर भैरों गनं आस पासं ।
पद्म्मासनं पुष्टि नंदी प्रचंडी, चवं वेद आमोद चौसट्ठि चंडी ।
बजै डक्क डौंरू डमंकं तड़क्कै, धकै भेरू धुजै हके गेंन हक्के ।
धनूक्कं पिनाकं धरै वाम हस्ते, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ।
सिधं साथ आराधयं शूलपानी, सिवा ध्रंम सावेति के साथ जानीं ।
नरं किन्नरं गंधर्व नग्ग जप्पं, सुरं आसुर अच्छरी हूर रप्पं ।
सनक्कादिकं सप्तर्पी वाल काल, प्रथीवायुगेनाय तेजंस लालं ।
नमो भान चंद्रं नवं ग्रह समस्ते, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ।

भिट्टे संकटं वाट घाटं विघट्टं, रटै नाम तो कोटि काटै कसट्टं ।
परं पेचरं भूचरं जत्र मंत्रं, जपै व्याधि आसाधि भाजै अनंतं ।
महादीं पुरुषं महिमा मुरारी, नवं कौनं तो सौ निपातिक परारी ।
गिरा गौरी अर्धं कैलास वस्ते, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ।

—:❋:—

चंद द्वारा भगवती गंदाका आह्वाहन—

भुजंगी

नमो देवि गंगे जयो मात गंगे द्रवै रूपका मंडलं ब्रह्म संगे ।
त्रयं पथ्थ त्रेयं गुन ते निवासं, वरं वृंद वृंदारका सेय जासं ।
हिमं सैल भेदे सु भेदे धरायं, सजै रूप-कायं सुरायं नरायं ।
मधू छेदनं पाय प्रावेस कारी, संतं मुप्प सामुप्प सामुद्र धारी ।
हली सेत जल्ली जलध्धी समुद्दं, अवै सेप पीरं सु मानै समुद्दं ।
धराचल्लि भागीरथी विश्व भागं, मिटै अध्ध ओधं तनं दुप्प दागं ।
सुभं उच्च अंदोल वीचं विराजं, मनो-स्तुग्ग आरोह सोपान साजं ।
नरं नीच नीरं तटं श्रोन प्रभ्भं, तव्वै अग्ग देवं गुनं अव्व अम्मं ।
परै मज्ज, कल्लेवरं धंषी छुट्टि, भषी कावलं गिद्धि गोमाय लुट्टि ।
तटं श्रोन जल्लै थलं वारि हल्लै, पिनं भज्जि अदोल वीचं वहल्लै ।
विनं आतमं देह आनूप धारै, वरं उर्वसी चामरं वंज नारै ।
धर ध्यान भावं तिनं दुख्ख दव्वै मिटै मज्जन अध्ध साजंम सव्वै ।
जलक्कंत गंगा तनं तेज साहै, मनो दाहनं दाह दाहन्न जो है ।
सुयं गंग गंगे सु गंगा अकारं, हरै नाम गंगा जमं कि करारं ।
त्रिपथ्थी त्रिमागी विराजंत गंगा, महास्त्राग लोकं नरं नारि अंगा ।
रहट्टं घैरी जयौं फिरै तीन लोकं, महा दिव्य धुन्नी तत्रं निग्म लोकं ।
कलाली गुहीरं गुभ्का भ्कारि नागं, प्रगट्टोय मातगि मानुष्य भागं ।
रही नप्प अप्पी सुयं ताप भजै, महा वद्दराजं दिव दुर्ग रंजै ।
भयं भीपमं मात वहु पाप पंडै, जमं ज्वाल ज्वालं तम तेज चंडै ।
रहं रोह रंगी हरं सीस गंगे, महा मोहनी मात दुग्गा उतंगे ।
वरं काल काला जलं खेत रूपं, तहां उपन्नी मात आभंग नूपं ।

भई नाम सद्द सु हामुद्द मेतं, डरयौ नाम गंगा उत्तंगा विहेनं।
हरद्वार द्वारं कला तूं प्रगट्टी, करो मुक्ति गग्गं महा पापमट्टी।
तिनं नाम लिनै किधं तोय पीजै, कियं संभ्रनं दैव सज्यान कीजै।
कियौं गाहि तें पंथ उग्गाहि साजं, तुंही तापिनी तेज तूं तेज राजं।
तुंही मध्य वारानसी गोद्द दैनी, कली काल दुप्पं कटन्न कुपैनी।

दूहा—जब लगि रज तन मातकी, रहै अंग सो लाइ।
तब लगि काल न संपजै, कुम्भ पाप सब जाइ॥

—:०:—

सरस्वती स्तुति—

—भुजंगी—

नमो तुं नमो तुं नमो तुं कुमारी, नमो तुं नमो तुं संसार सारी।
नमो तुं अभप्पी नमो बीज कप्पी, नमो रिप्प पूजंत सज्जंत सप्पी।
नमो तुं रटै राज राजं रजाई, नमो तुंज संसार तें सिद्ध पाई।
नमो तंत जालं विकालंत राई, नमो विश्वथानं गिरजा गिराई।
नमो सस्सिपालं अकालं अभप्पी, नमो काल जन्मं न कालं न सप्पी।
नमो एक भग्गी भरत्तार पंचं, नमो कोरिकारं करत्तार सचं।
नमो सिद्ध तुं रिद्ध तुं वृद्धि पानी, नमो काल तुं भाल तुं सात रानी।
नमो किति तुं मंत्र तुं गीत गानी, नमो आदि तुं अंत तुं जोग जानी।
नमो विश्व तुं भिम्त तुं भार भारो, नमो जोग तुं जीव तुं जुग्ग चारी।
नमो भूमि तुं धूम तुं अब पानी, नमो तप्प तुं ताप तुं अट्ठरानी।
नमो वाल तुं वृद्ध तुं हाल चाली, नमो भान तुं मान तुं मुक्ति माली।
नमो व्याघ्र तुं सार तुं वाग वद्द, नमो भुंड भुंडं तुहीं पारिसद्द।
नमो पत्र तुं छत्र तुं छित्ति धारी, नमो वृद्ध तुं वृत्त तुं अघहारी।
नमो रूप तुं रंग तुं राग रत्ती, नमो भील तुं भाव तुं सील सत्ती।
नमो भत्त तु वृत्त तुं चारू वानी, नमो चंद चंडी सदा चारू मानी।

—:०:—

पुस्तक की संपूर्णता के लिये कवि चंद की प्रारंभ की हुई और उसके पुत्र कवि जल्ह द्वारा पूर्ण की हुई देवी स्तुति।

— भुजंगी —

उंकार नमौ कल्यानी सु कमला, कला रूपिनी काम दाई सु विमला।
कुमारी करुन्ना कमंडा कराली, जया विज्जया भद्र-काली कंकाली।
शिवा शंकरी विष्णु विमोहनीयं, वराही चमंडा दुर्ग्गा जोगिनीयं।
महा लच्छमी मंगला रत्र अंषी, महमाई पारवती ज्वालमुषी।
तुहीं गंग गोदावरी गोमतीयं, तुहीं नर्मदा जमना सरस्वतीयं।
तुही द्वारिका मथुरा म्नप काशी, तुहीं तीरथं श्रब्ब मध्ये निवासी।
तुहीं कोटि सूरिज्ज लीई प्रकासा, तुहीं चंद कोटेक आनन्न भासा।
तुहीं कोटि सामुद्र हीयै गंभीरा, तुहीं कोटि प्राकुम्म लीयै समीरा।
तुहीं कोटि आकास विस्तार धारा, तुहीं कोटिक सुम्मेर छाया अपारा।
तुहीं कोटि दावानलं ज्वाल माला, तुहीं कोटि भैभोत जम कराला।
तुहीं कोटि सिंगार लावन्य कारी, तुहीं राधिका रूप रीजे मुरारी।
तुहीं विश्वकर्ता तुहीं विश्वहर्ता, तुही थावरं जंगमं मैं प्रवर्ता।
तुहीं पातिक नासिको नारसिंघी, तुहीं जग्गमाता अनेकं सुरंगी।
तुहीं साकिनी डाकिनी रूप धारे, तुहीं आप लग्गे तुहीं यै उबारे।
तुहीं तौहि जाने सुतेरे किरत्तं, कहां लग्गि चंदं लपे ता चरित्तं।
अज्जमेर थानं सिकारं भुलायौ, तहां विर बावन्न सिद्धं मिलायौ।
पहिल्ले उमा कामती भट्ट किन्नौं, वलं सैवरा मंत्र छंडाय दिन्नौ।
वदे बाद आयौ सुदुग्गा केदारं, तहां अंबिका अंब रप्पौ अपारं।
बिना षून पछैं किए एह बालं, गयौ रुक्कि सात्रोह मज्जे दिवालं।
पठायो नृप कंगुरानो पुकारं, उठी आहरं ठाहरं भेरी धारं।
सकत्ती हरी तैं सकत्ती सुभट्टं, ग्रहो मेच्छ साईन पुल्लें कपाटं।
गयौ गज्जनै पाति की पत्ति लीयैं, कउन्ना न आई पल दुष्ट हीयैं।
असं पत्ति कढ्ढो कुपे पिथ्थ अंपी, पर्यौ पंजरै जानि बहाल पंषी।
दई गत्ती राजं गती कौन जानै, कहा लेप लेष्यौ अजू चाहुआनं।
जिनै हथ्थलं सिंध हस्ती निपातै, तिनैं घेरि मारैं कुरंगी सुलातै।
जिनै बाज सिक्कार पिल्ली लवा की, तिनैं चप्प लावें दिपावैं दवा की।
ईसी गत्ति तेरी अलष्षं कहानी, कहां लों गिनाओं कहों बागवानी।
करौ राव तैं रंक रकं सुरावं, कहा हाथ आवै किए ए सुभावं।

परा‍क्रम्म छन्ने अछन्ते भग कयों. दिलीपत्ति से वंधि के मा दए कयों ।
हुए अन्ज वैरीन की जित्ति दिष्यौ, किना चाहियै सेवकं कीन पिष्यौ ।
पूरे पुष्प वारें लुंगूरें सुहानै, सुरं सारिपे सूर सामंत भानै ।
करं जोरि जंपौ सुनौ श्री भवानी. भली किन्न साहाय संसार जानी ।
करों पुत्तकं पूरनं अव्व जी लौं, विघन्नं हरौ संभरी राव तौलौं ।
निराधार विद्या देवी देहि चंदं, रपौ तुंज तूंहीज तूंही प्रबंधं ।
कहां साहि गोरी असंमान सूरं, कहां भट्ट इक्कीर लोटंत धूरं ।
कहां राज अंधान बंधं विछायं, कहां कोस कम्मान आवैन दायं ।
जंही बान आतम्म मातग भारी, तुहीं वीर रूपी विराजी करारी ।
तुंही सत्य सत्यं वदै वेद मंत्रं, तुंही भेद अभ्भेद जायासि तंत्रं ।
तुंही तेज सूरज्जि सो वेलि चंदं, तुही आसमानं तुही भीमनंदं ।
तुंही प्रकृति पारं अपार सुरप्पं, तुंही अंजै अरधंग अजयादि सिष्पं ।
करामति कंधं करत्तार काया, तुंही कासनी काम संसार जाया ।
कली काल चालंत चामंड माली, तुंहा वाल जोवन वृद्धंति काली ।
रटं नाट रागं विराजी विराली, हरै मोह रंगं वजै वज्जि ताली ।
हरै सत्रु वुद्धि कमित्रं जयंती, जपै तोग सायं प्रली लागि यंती ।
वध्यौ तप्प तेजं जपौ अध्ध मंडं अजै वा विजै वा सही देह छंडं ।
धरी पंचली देविको निग्ग दिष्यौ, सती साहसी सिद्ध तुंही विसेष्यौ ।
धरौ ध्यान देपी वही वीर रूपं, चढ़ी जोति देपी विमानं अनूपं ।
जमी अत सोहत जालंधरानी सरै सव्व काजं वरदाय वानी ।
उमा मो विसासी परत्तीत पाई, जहां अश्वि सासी तहां देवि नाई ।
निय देह देपै विरूपं रिसानं, तजै मोह माया गई आसमानं ।
निसा पग रगी अरंगी सुजायं, सुभं सुभ्भ जावै लियै हथ्थ हायं ।
सुकुन्ने जनंने मरन्ने विहाने, वजै दुदुंभी देवि भूमी निसाने ।
नमोहं नमोहं सुचंडी, सुथानं त्रिसंचं सभू पंच मंडी ।
निकारं अकारं सकारं सरूप, महा तत्त सौ तत्त चोवीस नूपं ।
त्रयं मंत्र त्रेयं गुनं त्रेय थानं, त्रयं पाय वानंन त्रेय किसानं ।
कला पोडष रुप पोडस्म राया, दुअं त्रीस रूपं हलंछं पराया ।
रुचं पंच वानं दहंसं समीरं, दह नारि दुंधारा वाहं समीरं ।
ऊंकार सार श्रींकार सज्जै, ह्रींकार हूँकारि सारूप रज्जै ।

किलंकार धूंकार कुंकार कारो, जीकार जूकार श्रींकार सारी।
श्रीं कार छूंकार सामात्र भाई; नमस्ते नमस्ते नमो जग्ग जाई।
जहां संगटं दुघ्घटं निज्ज सेवं, नहीं मात तातं नहीं बंध देवं।
नहीं को सहायं जहां कोन आयं, तहां तौ अरप्पै निज सेव सायं।
हरो मुञ्ज चिंता तनं तप्पि भारी, चिंतता संध सायंकुमारी।
नमो देव देवंस वीराधि वीरं, स्वयं जापिनोकं स्वयं न कमीरं।
अयं काल रूअं त्रिगुन्नं त्रिधामं, दुअं कारनं कित अन्नैक नामं।
रूअं लघ्घु, चुलं सु आयास तूलं, वरं अग्र काली स्वरं सद्धिमूलं।
सदा भैरवं रूप वीरं विराजं, वरं अग्र काही सुधारी सुकाजं।
जहां संकटं सेव मानै अपारं, तहां आप आयं नियं काम सारं।
नमै वीर लोकं त्रिलोकं त्रिसूलं, गदाचक्र वाहं हथं धंनु जूहं।
मदग्गं त्रिसूलं, परीधं, सुपासं, ग्रहै वह्य संक्रीति संगी दुरासं।
कनै कुत कत्ती पुरस्सो कुठारं, धरै सव्वलं शेल गाली कनारं।
हन मूसलं भिंडि पाली फरीक्का, मयं दड्ढ निड्ढं परस्सं छुरिक्का।
धरै आवधं ऐक अन्नेक नामं, जहां संक सेवं तहां आय कामं।
अह सकटं आग लज्यौ अनूपं, करौ आज काजं अम्हं आय जूपं।
करौ आज माया प्रगट्टं सरूपं, महा मोहनं आसूरं शव्व नूपं।
सुने आईयं वीर अस्तुत्ति चंदं, भई आसुरानं सबै बुद्धि मंदं।



कविराव मोहनसिंह, उदयपुर

पृथ्वीराज रासौ पर की गई शंकाओं का समाधान

[यह लेख 'शोध पत्रिका' त्रैमासिक भाग २ अंक ३ तथा ४ (प्रकाशन सन् १९५१) से अविकल रूप में लिया गया है । इनके सम्पादन कार्यकाल में कुछ और संशोधित विचार ज्ञात हुये हैं, जिनका उल्लेख आगे कर रहे हैं ।

—सम्पादक]

पृथ्वीराज-रासौ अपने समर्थकों और महत्त्वरक्षकों का तो अनुगृहीत है ही; किन्तु अपने विरोधियों और आक्षेप-कर्त्ताओं का भी इसलिए ऋणि है कि यदि वे शंकाऐं नहीं करते तो प्रक्षिप्त अंश के मिलजाने के कारण इसमें जो भ्रान्तिकारी दोष आगया है, वह प्रकाश में नहीं आता। उनकी शंकाओं के फलस्वरूप ही साहित्य-संसार अरसेसे इसके गुणों और दोषों की आलोचना कर रहा है। यद्यपि एक पक्ष ने इसे कूड़े-करकट में डालने जैसा कहकर इससे पूर्ण मनो-मालिन्य कर लिया है, फिर भी दूसरा पक्ष इसके मंडन पर तुला हुआ है। यह पक्ष अब तक विचार करके इसी परिणाम पर पहुँचा है कि रासौ की यह दशा उसमें प्रक्षिप्त अंश मिलने के कारण ही हुई है।

हमें बहुत समय से रासौ का आलोचनात्मक अध्ययन करने का अवसर मिला है। अपने दीर्घकालीन अध्ययन से हमें ज्ञात हुआ कि रासौ के प्रक्षिप्त और मूल अंशों का पार्थक्य कर देने वाली कुंजियाँ रासौ के भीतर ही विद्यमान हैं। उन्हें ढूंढ लेने पर हम सहज ही इस महान् साहित्यिक कोश में प्रवेश पा सकते हैं, और यदि अपनी परखने वाली शक्ति का समुचित उपयोग कर सकें तो इस रत्न-

राशि में मिश्रित झूठे-सच्चे-पद्य-रत्नों का सुगमता से विभाजन कर इस अमूल्य थाती को पुनः मूल रूप दे सकते हैं।

अपने दीर्घ-कालीन गंभीर अध्ययन के फल स्वरूप इसके रहस्य को खोलने वाली जो कुंजियां हम खोज पाये हैं, वे सब पूर्ण रूप से तो तभी प्रकट हो पावेंगी, जब समस्त ग्रन्थ का संपादन हो चुकेगा और तभी विद्वान् बता सकेंगे कि हमारा श्रम सार्थक हुआ या नहीं, तब तक रासौ पर लिखित अपने विस्तृत निबंध का यह संक्षिप्त रूप हम साहित्य-मर्मज्ञों के समक्ष उपस्थित करते हैं जिससे भी हमारी खोजी हुई कई एक कुंजियां स्पष्ट हो सकेंगी। यदि वे रासौ के क्षेपक और मूल अंश का विभाजन समझने में विद्वानों को कुछ भी लाभप्रद हुईं तो हम अपना श्रम सफल समझेंगे।

निबंध के इस प्रारम्भिक भाग में रासौ के सम्बन्ध में कीगई शंकाओं पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। इसमें हमने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि रासो के जो चंद-कृत मूल पद्य हैं, वे कहीं इतिहास के प्रतिकूल नहीं जाते।

शंकाएँ और उनके उत्तर

शंका १—रासो में चहुआन वंश को अग्निवंशी लिखा गया है। यह ठीक नहीं। चहुआन वंश से सम्बन्ध रखने वाली प्राचीन पुस्तकों और लेखों के अनुसार यह वंश ब्रह्मयज्ञ के समय सूर्यमंडल से अवतरित (उतरे हुए) दिव्य पुरुष का सन्तान और सूर्यवंशी है।

उत्तर—हमने रासौ की जिन हस्तलिखित प्रतियों को देखा, उन सभी में वे पद्य उपस्थित हैं, जिनमें ब्रह्मा द्वारा यज्ञ होने का उल्लेख है। वशिष्ठ द्वारा यज्ञ होने वाली कथा और उससे सम्बन्ध रखने वाली अन्य कथाएं, बाद में क्षेपक लिखने वालों ने जब २ रासौ में मिलाई, तब वे ब्रह्मयज्ञ वाले पद्य कुछ यथा-स्थान रह गये और कुछ आगे पीछे होगये। फिर भी वे पद्य रासौ में ज्यों-के त्यों बने रहे। यद्यपि संग्रहकर्त्ताओं ने असावधानी से या जान-बूझ कर वशिष्ठ द्वारा यज्ञ होने वाली कथा में उन पद्यों को मिला दिया है। फिर भी वे ब्रह्मयज्ञ वाले पद्य क्षेपक कथा में पूरी तरह नहीं मिल पाते। विचारने पर वे अपना सम्बन्ध ब्रह्मयज्ञ विषयक वर्णन से ही बतलाते हैं। अस्तु, ब्रह्मा द्वारा यज्ञ किये जाने का और उस समय चाहुवान के प्रकट होने का वर्णन रासौ में जिन पद्यों द्वारा किया गया है, उनका आशय इस प्रकार है—

ब्रह्मा ने यज्ञ के लिये जब मण्डप की रचना की तब असुरों ने आकर निस्संकोच उस स्थान को भ्रष्ट करना चाहा[1]। यह देख कर ब्रह्मा ने मन ही मन निश्चय किया कि इनके नाश के लिए स्वयं सूर्य को रण-संचालक योद्धा के रूप में प्रकट करना चाहिए[2]। अतएव ब्रह्मा ने अग्निकुण्ड को अग्नि से सुसज्जित (या अग्निदेव को स्थापित) करके आसन बिछा यज्ञ आरम्भ किया और तत्वयुक्त मन्त्रों के साथ स्तुति का उच्चारण करने लगे। पश्चात् कमण्डलु से हाथ में जल लेकर छोड़ते हुए बोले आ! आ! इन दुष्टों को भगा दे। उनका ऐसा करना था कि "अनल चाहुआन" आ उपस्थित हुआ[3]।

---

१. जब चतुरानन जग्य कजि, सजि मण्डप सु स्थान।
तब आसुर अनसंकि सह, किय उचिष्ट उत्थान॥

२. चतुरानन मन च्यंति, असुर वध अवनि विचारिय।
जग्य जिष्ट उचिष्ट करे कातर-क्रत-हारिय॥
सुरणि अंश संग्रहे हव्य नहँ हव्य हुवे वह।
सो उपाइ संचिये जोइ संघरे असुर सह॥
निम्मो सु "सूर-संग्राम भर" अरि अलग खंडे खलह।
सम धरे जग्य कारण सु कलि विमल सीष्टि सुम्भइ सकल॥

रासो, हस्तलिखित प्रति, देवलिया से प्राप्त समय १, पृष्ठ ७-८।

३. "अनल कुण्ड किय अनलसज्जि" उपगार सार सुर।
कमलासन आसन-मंडि जग्योपवित्त जुर॥
चतुरानन स्तुति सद मंत उच्चार सार किय।
सु करि कमंडल वारि जुजित आह्वान थान दिय॥
जाजन्नि पानि श्रव अहुति जजि भजि सु दुष्ट आह्वान करि।
उपज्यो अनल चहुवान तब चव सु बाहु असि बांह धरि॥

(समय १ पृ० ५१)

यज्ञ समय उस स्थल पर अवतरित होकर उसने बाण वर्षा से असुर समूह को नष्ट कर ब्रह्मा के यज्ञ को निर्विघ्न समाप्त किया [1]

नामावली वाले छन्द के प्रारम्भ में भी लिखा है कि शत्रु समूह के नाश के लिये अनल "चाहुआन" साक्षात् सूर्य ही था, जिसकी उत्पत्ति का मूल ब्रह्मयज्ञ है [2]। तदुपरान्त रासो में स्पष्ट रूप से चाहुआनों को सूर्यवंशी लिखा है : 'ससि व्रतासमय' में चाहुवान और कमधज (राठौड़) वीर के वर्णन में कवि लिखता है—

घण्ट निनाद होते ही नक्कारे निशान बजने लगे। दोनों सेनाएँ शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर दिशाओं को दबाती हुई रणस्थल की ओर बढ़ी। उस युद्ध-वारिधि में शशिव्रता मोहिनी-स्वरूप थी। दोनों सूर्यवंशी क्षत्रिय (चौहान और कमधज) देव-दानववत् रण-सिंधु को मन्थन करने लगे। इस रण का हेतु एक गुप्त छद्म पत्र (शशिव्रता-लिखित) था। अन्ततः वह छद्म गुप्त न रह सका। क्रोध-रूपी वाड़वा-नल को लपटें उठने लगीं। दोनों (कमधज और चौहान) के बीच में यादव कुमारी (शशिव्रता थी और दोनों सिंहों की शस्त्र द्वारा झपट (भिडंत) थी [3]

---

१ अनल कुण्ड आभंम, उपजि "चहुवान-अनिल" थल।
सुकर संठि करिवार, धनुष संग्रह्यो वान-वल॥
तिन रक्खिस-परिवार, धार मुख धरनि निघट्टिय।
खल जु खित्त संमुहे, तिनह सिर सरअन तुट्टिय॥
बंभान जग्य निर्विघ्न किय, पुहप वृष्टि सुर सीस रजि।
रक्खी सुधरनि खग भुज्ज वर, रिष्ट निवारिय इष्ट भजि॥

(स० १, पृ० ५५)

२ वम्भान जग्य उत्पन्न सूर।
"चहुवान-अनल" अरि मलनसूर॥

(स० १, पृ० ५५)

३ सुनि वज्जी घरियार लाग निस्सानन वज्जिय।
इक दिन दोऊ सेन: चंपि चावद्दिसि सज्जिय॥
महन-रंभ सा जग्य मध्य मोहन-ससिव्रत्त।
असुर स सुर मिलि मथहिं "सूरवंशी" रजपूतं॥

समय ६१ में कन्ह चौहान के अन्तिम युद्ध का वर्णन करते हुए लिखा है—

पहर पर पहर बीत गयीं, सिरत्राण पर तलवार बजती रही। बख्तरपाखर शस्त्रों के प्रहार से टूट गये। सिद्ध-किन्नरों ने आविद्ध शरीर को ग्रहण किया। उनने ध्वस्त-व्यस्त होते हुए भी, हे वज्री कपाट (वज्र से वक्षःस्थल वाले) तूने दधीचि से बाजी मार ली। हे हरि-वंश-हंस (सूर्यवंश के सूर्य नरनाह कन्ह)! तूने स्वर्ग प्राप्त कर देवाङ्गनाओं से भेंट की। किन्नरों और कमंधों की तंत्रा (वाद्य और बोल) बंद कर दी। उस (कन्ह चौहान) का ऐसा अपूर्व शौर्य देख कर हर्ष से जयचन्द प्रफुल्लित होगया अर्थात् खिल पड़ा।[1]

इससे स्पष्ट है कि मूल रासो-कार (चंद) चाहुवान का प्रादुर्भाव ब्रह्म यज्ञ के समय सूर्य द्वारा होना और चाहुवान वंश को सूर्य-वंशी होना ही मानता था।

आरम्भ पत्र मंड्यो कपट, कपट मुक्कि कढ्ढिय लपट।
दई बीच जहाँ कुँवरि, उमयसिंह सारह झपट॥

(स० २५ पृ० ८२४)

१. पहर एक पर पहर, टोप असि वर वर वज्जिय।
बखर पखर जिन सार, पार बट्टन तुटि तज्जिय।
रोम रोम वर विद्ध, सिद्ध किन्नर विन्निय वर।
अस्त वस्त वज्री कपाट, दद्धीच हार हर॥
रुद्धि मंस "हंस—हरि—वंश नर" दिव दिवंग आ मिल्लत।
किन्नर कमंध थटि तंति तिन, सुवर पंग दिक्खिय खिलत॥

(स० ६१ पृ० १६१८—१६)

रासो में चालुक्य और प्रतिहार वंश को अग्नि वंशी जिन पद्यों में लिखा है, वे पद्य भी वशिष्ठ द्वारा यज्ञ किये जाने वाली क्षेपक कथा से ही सम्बन्ध रखते हैं, क्योंकि रासो के अनेक खण्डों में चालुक्यों को ब्रह्म—चालुक्य (ब्रह्मा के चुल्लू से उत्पन्न) बताया है—

"तहं नवि ब्रह्म सु चालुक राव।
ब्रह्म चालुक्क ब्रह्मचार, ब्रह्म क्रिया वर रक्खिय।"

शंका २— रासौ में लिखी चाहुवानवंश की नामावली वि० सं० १०३० से १६३५ तक के चाहुवानों के लेखों और पुस्तकों से नहीं मिलती। उसके नाम कुछ नामों को छोड़ कर कृत्रिम हैं।

उत्तर—रासौ-कार चन्द अपने ग्रन्थ (रासौ) के प्रत्येक विषय को स्पष्ट करने के लिए स्व-रचित छंदों की जाति, भाषा, शैली और परिमाणादि का इस तरह उल्लेख कर गया है। वह लिखता है– मेरे रचे प्रबन्ध काव्य (रासौ) के खंडों में संस्कृत पद्यों के अतिरिक्त जितने पद्य हैं– उनकी जाति कवित्त (षटपदी) शाटक (शार्दूलविक्रीड़ित) गाहा (गाथा) और दोहे हैं। उनका मात्रादि नियम पिंगल (छंद शास्त्र के-आचार्य) के अनुसार, और अमरवाणी (सस्कृत) के पद्यों का भरत के मतानुकूल है [१]। मेरा काव्य न अधिक गहन, और न अधिक स्पष्ट है। उसे आप शैवाल से आच्छादित जल के समान समझिये। सुवर्ण सुशोभित गले का हार भी आप इसे कह सकते हैं। इसमें अमरवाणी (संस्कृत) और श्रेष्ठ बोल—चाल की (शुद्ध रूप से निकट) भाषा है। श्रोताओं के मनोविनोदार्थ इसमें वाग्विलास

इसी प्रकार प्रतिहारों को रघुवंशी लिखा है।

"कडढेति लोह परियार ते, सुनहु सूर सूरन व्रनन"।

"उभै बंध हम्मीर-खेत बंधे रघुवंशी"

चालुक्यों का ब्रह्मा के चुल्लू से होना (ब्रह्मा द्वारा इस वंश का प्रादुर्भाव होना) चालुक्य राजा "राज-राज" के दानपत्र से और कश्मीर के प्रसिद्ध पण्डित बिल्हण रचित "विक्रमांक-देव चरित" नामक पुस्तक से जो चालुक्य राजा विक्रम (राजराज) के ही समय में लिखी गई थी, स्पष्ट है और प्रतिहारों को रघुवंशी लिखा जाना भी इतिहास के अनुकूल ही है।

प्रतिहारों को रघुवंशी लिखने के प्रमाण में जो ऊपर पद्य उद्धृत किये हैं, वे हाहुली-हम्मीर के वर्णन में लिखे गये हैं; (हम्मीर को) प्रतिहार क्षत्री माना है। उसके दोनों भाइयों को भी रण-स्थल में प्रवेश होने के वर्णन में, रघुवंशी लिखा है।

१ छंद प्रबंध कवित्त जति [१] साटक गाह दुहत्थ।
लहु गुरू मंडित खंडि यहि पिंगल अमर [२]-भरत्त॥
(स० १, पृ० २२)

---

(१) जितने या विश्राम। (२) अमर वाणी।

भी मिलेगा। पर मुझ अल्पज्ञ की उक्ति आप प्रायः अयुक्ति संगत ही देखेंगे, युक्ति संगत नहीं। सयुक्ति अयुक्ति चाहे कुछ भी हो मैंने वयन (बोल चाल की) भाषा में प्रयुक्त छंदों का ही इस ग्रन्थ में प्रयोग किया है। मात्राएं सब नियमानुसार हैं, न्यूनाधिक नहीं। यदि पाठक इसे विचार पूर्वक न पढ़ेंगे तो इसका दोषी मैं (चंद) नहीं[1]। इसमें वर्णित छंद अर्थ-हीन, वर्ण-हीन और वृत्त-हीन नहीं है[2]।

मैंने इस ग्रन्थ में सूक्तियें उच्च धर्म, राजनीति नवरस, छै भाषाओं में पुराण शैली को सामने रख कर लिखा है। साथ ही विषयोचित यावनी (कुरान की) भाषा का भी प्रयोग किया है[3]। इसमें मुनि (कोई मुनि या-चंद के गुरु) के गुरु मंत्र (उपदेश) से संनियमित-सरस कुल छंद (या श्लोक परिमाण ७००० हैं) नौसिखियों (या नये शिष्यों) को चाहिए कि मुझे दूषित करने को पढ़ते समय इसमें कमी बेशी न करें।[4]

---

१. अति ढंक्यो न उघार सलिल जिमि सिक्खि सिलावह।
वरन वरन सोभंत हार चतुरंग विशालह॥
त्रिमल अमल १ वानी विशाल बयन वानी वर अन्नन।
उक्ति न वयन विनोद मोद श्रोतन मन हनेन॥
युत अयुत जुक्ति विचार विधि, वयन छंद छुट्यौ न कह।
घटि वढ्ढि मत्ति कोई पढई चन्द दोष दीज्यो न वह॥
(स० ६८, पृ० २६)

२. अर्थ हीन अन हीन छन्द हीनो नन गावय।
(स० ६८, पृ० २५०६)

३. उक्ति धर्म विशालस्य राज नीति नवं रसाः।
षड् भाषा पुराणंच कुरानं कथितं मया॥
(स० १ पृ० २३)

४ सत्त सहस नख सिख सरस, सकल आदि मुनि २ दिक्ख।
घट वढ़ मत ३ को पढो मुहि दूषण नव सिक्ख॥
(स० १ पृ० २५)

---

(१) अमरवाणी। (२) मुनि के गुप्तमन्त्र से। (३) नहीं, राजस्थान-आदि में ही प्रयोग होता है।

इससे निश्चय है कि संस्कृत पद्यों के अतिरिक्त प्राचीन कवियों द्वारा प्रयोग होने वाले छंदों में से उपरोक्त ४ जाति के छंद ही चंद-रचित हैं[1]। मूल (चंद-रचित) पद्यों की भाषा संस्कृत के अतिरिक्त श्रेष्ठ बोल चाल की भाषा है। अर्थात् वह (भाषा) शुद्ध रूप के निकट, सरलता और स्वाभाविकता को लिए हुए है और बनावटीपन तथा क्लिष्टता से दूर है. जिसमें षड् भाषाओं का पुट होते हुए भी इन से वही शब्द इसमें ग्रहण किये गये हैं, जो प्रचलित थे। विषयोचित मुसलमानी भाषा को भी इसमें स्थान दिया है। रचना में आर्थिक, वर्णिक और छन्द विषयक दोष नहीं है। इस ग्रन्थ का मुख्य विषय सम्राट् पृथ्वीराज का चरित्र है, किन्तु साथ ही इसमें वाग्विलास, सूक्तियें, मनुष्योचित उच्चधर्म राजनीति और नवरसों का भी संचार हुआ है। शैली इसकी प्राचीन (या पुराण ग्रन्थ सी) है।

अस्तु, उपरोक्त बातें रासो का अध्ययन करने वालों को लाभ-प्रद होने से यहाँ बतलाई गई हैं। अब हमको देखना है कि वंशावली सम्बन्धी शंका कहां तक ठीक है। जब कि चन्द रचित छंदों (पट्पदी, शार्दूलविक्रीडित, गाथा और दोहों) की जाति से वंशावली वाला छंद भिन्न (पद्धरी) है। उसे चन्द की रचना कैसे कहा जा सकता है ? और जब यह अंश चंद-रचित नहीं; किन्तु प्रक्षिप्त है, तब इसके लिए चंद दोषी किस प्रकार ठहराया जा सकता है[2]।

---

[1]ज्ञात रहे प्राचीन काव्य-ग्रन्थों में कथानक रूप से वर्णित चौपाई और अरिल्ल छन्द भी देखे गये हैं तथा एक आध कवि ने पद्धरि (पाधड़ी) भी लिखा है, लेकिन चन्द ने स्व-रचित छन्दों की जाति नाम देकर स्पष्ट रूप से बतला दी है। इसलिए मूल रासो में हम अन्य छन्दों को स्थान नहीं दे सकते। रासो में चन्द पुत्र गुनचन्द आदि की रचना होने का भी पता हमें रासो ही में मिला है, लेकिन अभी तक उनके पद्यों का जांच द्वारा निश्चय करना बाकी है। तदुपरान्त यह निश्चय है कि रासो में प्रक्षिप्त अंश है तो हमें चंद के संकेतों से और इतिहास से जांच करके, यदि प्रक्षिप्त प्रतीत हुए तो रासो से निकाल देना पड़ेगा। क्योंकि क्षेपक लिखने वालों ने भी मूल छन्दों के समान रूप देने की कोशिश की है।

[2]यद्यपि नामावली वाला छन्द (पद्धरी) हम चंद रचित नहीं मानते फिर भी

शंका—रासो में पृथ्वीराज की माता का नाम कमला लिखा और उसे दिल्ली के अनंगपाल को तँवर की पुत्री बतलाया सो गलत है; क्योंकि पृथ्वीराज विजय, हम्मीर काव्य और सर्जुन चरित्र में पृथ्वीराज की माता का नाम कर्पूरदेवी लिखा है, और वह त्रिपुरी के हैहय वंशी राजा तेजल की पुत्री थी। तदुपरान्त उस समय दिल्ली पर अनंगपाल नाम का या अन्य कोई तँवर शासक ही नहीं था, दिल्ली तो चाहुवान विग्रहराज (चतुर्थ) के पहले से ही अजमेर के अधीन कर ली थी।

उत्तर—रासो में वर्णित (दिल्ली किल्ली कथा वाले) मूल पद्यों से ज्ञात

हमने नामावली की जांच की तो शंकाकर्त्ताओं के कथनानुसार उस (रासौ) में ४६ नाम नहीं, (अर्थात् १६ नाम जो उन्होंने माने वे नाम नहीं, विशेषण हैं) ३० ही नाम हैं, जो संख्या की दृष्टि में अन्य लेखकों की नामावली से मिल जाते हैं। उपाधि सूचक नामों का खयाल रखने से उनमें ६ नाम यथाक्रम मिलते हैं। २ नाम ऊपर नीचे हैं। इस तरह रासौ में वर्णित नामावलियों से विशेष भिन्न नहीं, अतः यह नामावली भी विचारणीय है।

देखा गया है कि प्राचीन समय में मुख्य नरेश को स्वामी मानते हुए भी राजवंश का प्रत्येक व्यक्ति राजा, महाराजा, रावल, राणा आदि उपाधियां अपने नाम के साथ भी लगाता था, बल्कि जनता उनको भी अपना स्वामी ही मानती थी। आज भी शेखावाटी (जयपुर) में मोटे और छोटे राजा हैं। मेवाड़ में भी बड़े छोटे रावलुऊ (ठाकुर) कहलाते हैं। वे अपने पट्टे परवानों में राजा, महाराजाधिराज आदि लिखते हैं। इसलिए पूर्वकालीन शैलियों का विचार रख कर प्रमुख वंश और छोटे वंश की जांच न हो पावे तब तक जिस किसी की प्रशस्ति मिली और उसे वहां का प्रमुख राजा मान कर नामावली संग्रह करना तथा कोई इस प्रकार की नामावली देखने में आई हो, उसे विश्वस्त मान लेना, ठीक नहीं। इससे धोखे की सम्भावना है। एक सज्जन द्वारा ज्ञात हुआ है कि हाल में एक लेख ऐसा मिला जिससे विद्वानों द्वारा

होता है कि विक्रम की १२ वीं सदी में दिल्ली पर अनंगपाल तँवर शासक था। उसने तँवर वंश के स्थायित्व के लिये ज्योतिषी द्वारा गाड़ी हुई कीली को उखेड़ दिया। तिस पर ज्योतिषी ने उसे (अनगपाल को) भविष्य कह सुनाया-तूने बेसमझी से कीली को उखेड़ दिया, यह बुरा किया। इस दुर्घटना के कारण से चाहुआन (विग्रह चतुर्थ) अड़ेगा और तुरष्कों का विच्छेद होगा, किन्तु फिर भी तुम (तँवर) जोश में आकर गृह (दिल्ली) को मंडित (बनाये रक्षित) रक्खोगे। इसके १६ वर्ष पश्चात बलि-विक्रम के समान मेवात का पति (अजमेर राज्य जहाँ मेव या मेर अधिक रहते हैं, वहाँ का स्वामी) दिल्ली पर एकच्छत्र राज्य करेगा[1]। हे अनंगपाल! तू भविष्य बूझता है तो सुन (चाहुवानों के पहले हमले में तुम दिल्ली को बचा लोगे तो क्या हुआ)। अन्त में चाहुवानों का (दिल्ली पर) राज होगा, यह स्पष्ट दीख रहा है। सब तँवर अपने बने रहने के लिए लड़ेंगे, लेकिन लोह की धार (शस्त्र प्रहार) से धरा नष्ट हो जायगी और वे (तँवर) सांसारिक बधन से छूट कर मुक्ति को प्राप्त करेंगे। मेरे निषेध करने पर भी यह दुर्घना घटी, इसमें किसका दोष है। भविष्य नहीं मिटता और होता वही है, जो विधि ने निर्माण कर दिया है[2]। (उपरोक्त प्रथम आक्रमण के) १६ वर्ष बाद

निश्चत की हुई मेवाड़ राजबंश की नामावली में संशोधन करना आवश्यक हो गया है।

अस्तु, चहुवान वंश की नामावली पर हम इस दृष्टि से विचार नहीं कर पाये हैं; क्योंकि अब तक हम उसे क्षेपक मानते हैं और आगे को किसी कारण से इसे रासौ में स्थान देना आवश्यक समझेंगे, तो हम फिर से इस पर विचार करेंगे।

१ अनंगपाल चक्कवे बुद्धि जो इसी उकिल्लिय।
भयो तुँवर मति हीन, करी किल्लिय ते ढिल्लिय॥
कहे व्यास जग ज्योति, अगम आगम हो जानो।
तोंअर ते चहुवान, अन्त व्है है तुरकानो॥
तुँवर सु अवट्टि मंडव धरह, इक्कराय बलि विक्कवै।
नव सत्तअन्त मेवात पति, इक्क छत्त महि चक्कवै॥

(स० ३, पृ० २६१)

२सुनि अनगेश नरेश, मोहि इह आगम बुज्झै। अंत राज चहुवान, मोहि इह आगम सुज्झै।
सब तूँवर खग मग्ग, भिरिग मंडव आहुट्टै। सार धारधर धूमि, मुगति पै बंधन छुट्टै॥

फिर (चाहुवान ही) दिल्लीश्वर होगा. वह मुसलमानों की तलवार छीनेगा (पराजित करेगा) और दिल्ली की धरा पर तपेगा। वह मेवात (अजमेर) की मही का स्वामी- द्वीपों-द्वीपों पर सैन्य सजेगा। कितने ही उसके चरणों की शरण ग्रहण करेंगे। कितने ही उसके खड्ग द्वारा नष्ट होंगे। इस प्रकार पृथ्वीराज इस (दिल्ली की) भूमि को प्राप्त करेगा। यह मैंने कहा सो प्रमाण युक्त है[1]।

फिर ज्योतिषी पृथ्वीराज के भविष्य को भी कहता है। इस (पृथ्वीराज) के लिए भी यही बात (शासन का नाश होना) निश्चित् है। मैंने उसके पतन का भविष्य देखा वह संक्षिप्त से कहता हूँ, उसे भी सुनो। म्लेच्छों के वर (सौभाग्य) से उस (पृथ्वीराज) का सत और निकटवर्तियों का धर्म कम होगा और वह पृथ्वीराज रस (विलास) में रत (लीन) हो जायगा। यह बात उसके दिल्ली पाने के १६ वर्ष बाद होगी। ध्रुव, रवि, मर्यादा और यश टल जाय, किन्तु मेरे वचन टलने के नहीं। ये सब अयान सत्ता (शासन की अदृश्य बातें) मेरे विचारने पर और तेरे इस कीली के निकालने से दृष्टिगोचर हुई है। अतः अब तू प्रभु के चरण की शरण ग्रहण कर[2]।

इह दोर राज दिढ्ढै नहीं, मैं बहु बार वरज्जियो।
भवतव्य बात मिट्टै नहीं, होय सु ब्रह्म सज्जियो॥

(स० ३, पृ० २६४)

१. नव सत्त वर अन्त (वरसंत), बहुरी दिल्ली पति होई।
खग्ग खोद (खोस) खुरसान, पहुमि चक्कवे सु जोई॥
महि मेवात महीप, दीप दीपनी दल मंडे।
किक्क ग्रहे पय आय, किक्क खल खंडनी खंडे॥
मंडे सु पुहुमि पृथ्वीराज जिमि, सत्त वत्त जोतिक जपिय।
मैंनो सु मत्ति करि सवनि, इह व्यास वचन व्यासह थपिह॥
२. तिहि जय वत्त प्रमान, सुनहि दिठ तुच्छ सु अन्तं।
वर म्लेच्छनि सत घटहि, धुम्म पारस रस रत्तं॥
हुव नव सत्त प्रमान, ध्रूव टरई रवि टरई।
टरै न व्यास वचन्न, मान जस ते अनु (जु) टरई॥
ये सब अजान सत्ता हुई, परी इच्छ मच्छी मुई।
परि पै प्रसन्न परतीनि (ति) करि, तव काढ़त आवई जुही॥

(स० ३, पृ० २६४-२६५)

इससे स्पष्ट है कि चाहुवान विग्रहराज (चतुर्थ) के दिल्ली पर हमला करने का वर्णन रासो में विद्यमान है। भविष्य कथन के अनुसार पृथ्वीराज का दिल्ली से शासन वि० सं० १२४६ में नष्ट हुआ। उसके पूर्व संयोगिता का वरण करने पर वि० सं० १२४५ के आसपास से ही वह (पृथ्वीराज) विलासी हो गया, जिसके कारण उसका सर्वनाश हुआ। उसके (वि० सं० १२४५ के निकट) विलासी होने के १६ वर्ष पूर्व वि० सं० १२२९ में उसे (पृथ्वीराज को अनंगपाल द्वारा) दिल्ली का राज्य मिला। इसके १६ वर्ष पूर्व अर्थात् वि० सं० १२१३ के निकट विग्रहराज चतुर्थ के समय (चतुर्थ विग्रह का समय वि० सं० १२०७ से १२२० तक निश्चित है)। चाहुवानों (स्वयं विग्रह) का प्रथम हमला दिल्ली पर हुआ और म्लेच्छों का विच्छेद होकर दिल्ली विजय हुई। लेकिन फिर भी दिल्ली किसी तरह तँवरों के ही अधीन रही।

चाहुवान विग्रहराज (चतुर्थ) का वि० सं० १२२० वाला लेख भी यही बतलाता है[1] कि उस (विग्रह) ने म्लेच्छों का विच्छेद किया और विजीत देशों को करद (कर देने वाले) किया। सम्भव है विग्रहराज

---

१ "ॐ सं० १२२० वैशाख शुति (दि) १५ शाकंबरी भूपति श्रीमदान्नलदेवात्मज श्रीमद्वीसल-देवस्य"।

अविंध्यादाहिमाद्रेर्विरचितविजयस्तीर्थयात्राप्रसंगा—

दुद्ग्रीवेषु प्रहर्ता नृपतिषु विनमत-कंधरेषु प्रसन्नः

आर्यावर्तं यथार्थं पुनरपि कृतवान् म्लेच्छ-विच्छेदनाभि—

र्देवः शाकम्भरींद्रो जगति विजयते वीसलः क्षोणिपालः ॥

ब्रूते सम्प्रति चाहमान तिलकः शाकंमरी भूपतिः

श्रीमद्विग्रहराज एष विजयी सन्तानजानात्मजः

अस्माभिः करदं व्यधापि हिमवद्विन्ध्यान्तरालं भुवः।

शेष-स्वीकरणायमस्तु भवतामुद्योग शून्यं मनः ॥ २ ॥

संवत् श्री विक्रमादित्ये १२२० वैशाख शुति (दि) १५ गुरौ लिखितमिदं राजादेशात्

ज्योतिषिक श्रीतिलक राजप्रत्यक्षं गौडान्वयः कायस्थ माहव पुत्र-श्रीपतिना अत्र

समये महा मंत्री राजपुत्र श्री सल्लक्षणपालः।

(देखो पृथ्वीराज चरित्र, पृ० ४४–४५ लेखक रामनारायणजी दूगड़)

चतुर्थ की चढ़ाई के समय दिल्लीपति के (तंवर शासक) ने भी कर (प्रति वर्ष या एक मुश्त) देकर अपने मुख्य स्थान (दिल्ली) को बचा लिया हो। चाहुवान सोमेश्वर (पृथ्वीराज के पिता) के समय का वि० सं० १२२६ वाले बिजोलियाँ के लेख में विग्रहराज (चतुर्थ) द्वारा दिल्ली और हांसी को विजय करने का जो उल्लेख हुआ है, इसका भी तात्पर्य यही समझना चाहिये कि विग्रहराज ने दिल्ली और हाँसी के युद्ध में विजय प्राप्त की और वहां के स्वामी को करद किया। क्योंकि स्वयं विग्रहराज चतुर्थ को, उपरोक्त लेख विजित देशों को करद करना ही बतलाता है।

इस तरह यह तो सिद्ध हुआ कि दिल्ली-राज्य वि० सं० १२१३ के निकट चाहुवानों (चतुर्थ विग्रहराज) द्वारा करद किया गया और वि० सं० १२२६ में वह (दिल्ली का राज्य) सम्पूर्ण रूप से पृथ्वीराज को प्राप्त हो गया।

अब यह देखना है कि वि० सं० १२१२ से लेकर १२२६ तक दिल्ली पर अनंगपाल नामक तँवर शासक था कि नहीं? अनंगपाल के नाम दिल्ली के कई स्तम्भों पर उपलब्ध हैं, लेकिन उनमें संवत् नहीं है। केवल कुतुबुद्दीन ऐबक की मसजिद के अहाते में जो लोहस्तंभ पड़ा हुआ है, उसी पर उसके विषय में संवत् का उल्लेख इस प्रकार है "संवत् दिल्ली ११०६ अनंगपाल बही", जिसका आशय अब तक विद्वानों ने यह निकाला है कि वि० सि० ११०६ में अनंगपाल ने दिल्ली का बसाया, किन्तु यह आशय ठीक नहीं जचता, क्योंकि संवत् लिखने के पश्चात् ही संवत् के अंक नहीं आ गये हैं, "संवत् दिल्ली" लिखने के पश्चात् अंक लिखे हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि "दिल्ली के संवत् ११०६ में इसे (दिल्ली को नये सिरे से या जीर्णोद्धार के रूप में) बसाया"। उसमें बसाने के स्थान का नाम नहीं आया, परन्तु जहां यह लेख लगा है, वह स्थान ही अपने बसने की पुष्टि स्वयं कर देता है। यह दिल्ली वाला संवत् कौनसा था, इस पर विचार किये जाने से निश्चित है—वही दिल्ली वाला रासो में लिखा अनंद संवत् ही है। जिसमें स्वर्गीय पंड्या मोहनलालजी के मतानुसार ९१ वर्ष विक्रमी संवत् से जो कमी हैं वे, जोड़ देने से वि० सं० १२०० में अनंगपाल का दिल्ली पर होना सिद्ध होता है।

---

१. (देखो पृथ्वीराज चरित्र, पृ० ५० लेखक रामनारायणजी दूगड़)

जिनपाल रचित खरतरगच्छ-पट्टावली का अनुसरण करते हुए श्रीयुत् अगरचन्द नाहटा, डाक्टर दशरथ शर्मा आदि विद्वान् भी वि० सं० १२२३ के लग-भग मदनपाल नामक राजा का नाम दिल्ली के शासन रूप में होना लिखते हैं[1]। मदनपाल, अनंगपाल का पर्यायवाची है। अस्तु इससे भी अनंगपाल का समय चाहुवान विग्रह (चतुर्थ) सोमेश्वर और पृथ्वीराज से आ मिलता है।

प्रातः स्मरणीय महाराणा प्रताप के उत्तराधिकारी अमर ने अपने मित्र रहीम को जो पद्य लिखे[2] उनसे भी निश्चय है कि तँवर और राठौर

---

१ देखो— (१) मणिधारी जिनचंद्रसूरि (लेखक—अगरचंद नाहटा, भँवरलाल नाहटा), पृ० १५ तथा उसी की डॉक्टर दशरथ शर्मा लिखित प्रवेशिका, पृ० ४–५ (२) वीणा) (मध्य–भारत हिन्दी साहित्य समिति इन्दौर), जुलाई, सन् १९४३ ई०, वर्ष १६, अंक ९, पृ० ६२४।

२ अमर ने कहलाया—

तँवरां सूं दिल्ली गयी, राठोड़ां कनवज्ज।
कहिजो खाना खान नै, ऊ दन दीखे-अज्ज॥
गौड़ कछावा राठवड़, गोखां जोख करंत।
कहिज्यो खानाखान नै (म्हें) वनचर हुआ फिरंत॥

रहीम ने उत्तर दिया—

धर रहसी, रहसी धरम खप जासी खुरसाण।
अमर विसंभर ऊपरै, राखौ नहचौ राण॥

अमर और रहीम के इन पद्यों का भावार्थ स्पष्ट ही है, लेकिन हमने इनके गूढ़ार्थों पर विचार किया तो "अमर" के प्रारंभिक पद्य के तीन अर्थ होते हैं, जिन सब से सिद्ध होता है कि चाहुआनों से पूर्व दिल्ली पर तँवरों का ही शासन था और तँवर वंश से कन्नौज एक ही समय (२२ वर्ष के अन्तर्गत ही) छूट गये थे और यदि इन पद्यों के गूढ़ार्थों पर विचार किया जावे तो "अमर" पर विचलित होने का जो दोष लगाया जाता है वह भी दूर हो जाता है; किन्तु स्थानाभाव से उन गूढ़ार्थों का स्पष्टीकरण यहाँ नहीं किया गया है।

वंश के मुख्य स्थान दिल्ली और कन्नौज का एक ही समय (२२ वर्ष के अन्तर्गत-ही) में नाश हुआ ।

अस्तु, चाहुवानों से पूर्व दिल्ली का शासक तँवर ही था और वह था अनंग-पाल तँवर ही ।

जबकि उपरोक्त प्रमाणों से और लोक-प्रसिद्धि से अनंगपाल तँवर का उस समय होना सिद्ध है. तो उसकी पुत्री कमला से पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर का विवाह होने में कोई शंका नहीं होना चाहिये और बहुविवाह की प्रथा होने से कर्पूरदेवी भी सोमेश्वर की रानी रही हो और विमाता होने से उसको भी पृथ्वी-राज की, माता लिखा गया हो यह सम्भव है । रासा में भी पृथ्वीराज के नाना के रूप में अनंगपाल के अतिरिक्त तेज (तेजल) का उल्लेख हुआ है[1]; किन्तु पृथ्वीराज का जन्म कमला से हुआ. कर्पूरदेवी से नहीं, इस विषय में भी प्रमाण देने की आवश्यकता है ।

पृथ्वीराज विषयक अन्य पुस्तकादि में लिखे गये उसके जीवन वृत्तान्त पर खूब सोचने से पृथ्वीराज का जन्म रासौ में लिखे अनुसार वि० १२०५-६ में होना ही मानना पड़ता है[2] । परन्तु विद्वानों ने सोमेश्वर का

---

[1]—"आनन्द तेज राजा अनंग" (तेजल राजा और अनंग राजा को प्रसन्नता हुई) देखो नाहर राय समय पृ० ३३५ छंद २६ ।

[2]पृथ्वीराज के जन्म समय पर हम विचार विस्तारपूर्वक आगे प्रकट करेंगे । यहां केवल दो प्रमाण देकर इतना ही बतलाते हैं कि सोमेश्वर की मृत्यु वि० स० १२३६ के आसपास हुई । तब पृथ्वीराज बालक नहीं था । इसलिए पृथ्वीराज का जन्म कमला से ही माना जा सकता है ।

(१) 'पृथ्वीराज-विजय' के लेखानुसार सोमेश्वर की मृत्यु पर व्यावहारिक रूप में पृथ्वीराज को बालक लिखा जाकर, नवमें सर्ग में लिखा है कि राज्याभिषेक के बाद पृथ्वीराज ने इतनी उत्तमता से राज्य संचालन किया, जिससे प्रजा ऐसा मानने लगी, मानो राम-राज्य फिर लौट आया हो ।

(२) तदुपरान्त उसमें यह भी उल्लेख हुआ है कि गुजरातियों से गौरी का पराभव हुआ, उस समय (वि० सं० १२३२ से १२३५) पृथ्वीराज युवा हो चुका था और कई राजकुमारियों से शादी भी कर चुका था ।

विवाह कर्पूरदेवी के साथ वि० सं० १२१८ के बाद होना माना है[1] अतः पृथ्वीराज का कर्पूरदेवी के गर्भ से उत्पन्न होना संभव नहीं।

पृथ्वीराज का जन्म कमला से होना मानने का एक और कारण है। वह है रासौ का तत्कालीन वर्णन। पृथ्वीराज की जीवनी के लिये अन्य पुस्तकें और लेखादि इतनी सामग्री नहीं रखते जितनी रासौ रखता है। रासौ का वर्णन प्रतिदिन के विवरण के रूप को लिये हुए है। उसमें चरित्रनायक के चरित्र के सिवाय उसके सामन्त, मन्त्रिमंडल, कर्मचारियों तथा उसके विपक्षी समुदाय का उल्लेख पूर्ण-रूप से हुआ है। युद्ध-हेतु और युद्ध का अन्तिम परिणाम भी जैसा कुछ हुआ वैसा भली-भांति से बतलाया गया है। अन्य पुस्तकों और लेखादिकों में केवल माता-पिता आदि के नामों का वास्तविक या कल्पित जैसे भी हों बहुत संक्षेप में उल्लेख भर किया हुआ मिलता है; लेकिन रासौ में पृथ्वीराज के सामन्तादिकों का वर्णन उनसे कई गुणा विस्तार युक्त है, जिसकी पुष्टि सहृदय विद्वानों ने कई मुसलमानी और हिन्दू ग्रन्थों से खोज करके की है[2] ऐसी हालत में रासौ का लेख ग्रहण करने योग्य है[3]।

---

(२) हम्मीर—महाकाव्य के लेखानुसार सोमेश्वर की अन्तिम आयु के समय पृथ्वीराज सर्व शस्त्र-शास्त्र-विद्या में कुशल और राज्यकार्य में निपुण हो चुका था। मुलतान पर शहाबुद्दीन का अधिकार हुआ, उस समय पृथ्वीराज न्यायपूर्वक प्रजा पालन करने और शत्रु को भयभीत रखने योग्य था। उसी समय उसने शाह को कैद किया और बाद में भी कई मर्तबा बन्दी बनाया।

(देखो पृथ्वीराज-चरित्र, रामनारायण दूगड़ लिखित)

१ देखो नागरी प्रचारिणी सभा (काशी) द्वारा प्रकाशित कोषोत्सव स्मारक ग्रन्थ ओझाजी का "रासौ का निर्माणकाल नामक" लेख।

२ स्वर्गीय पंड्या मोहनलालजी ने रासौ की संरक्षा में लिखा है कि तबकाते नासिरी में भी, रासौ की भांति ही, मुसलमान सैनिकों के नाम हिन्दूखां, वजीरोखां, शाहजादा महमूद ततारखां, अब्बासखां, खिजरतीखां, हुस्सेनखां इत्यादि दिये हैं। रासौ के अनुसार, हुस्सेनखां के स्त्री-लंपट होने का भी उल्लेख हुआ है।

३ जैन-साहित्य और रासौ-साहित्य के सुप्रसिद्ध अन्वेषक श्रीयुत् अगरचंद नाहटा के अनुसार भी पृथ्वीराज का जन्म सं० १२२० के काफी पहले होना चाहिए।

शंका ४—पृथ्वीराज रासौ में मेवाड़ का राजा समरसिंह जो तेजसिंह का पुत्र और रत्नसिंह का पिता था, उसकी शादी पृथ्वीराज चौहान की वहिन पृथा कुंवरी से होना और पृथ्वीराज की अंतिम लड़ाई जो वि० संवत् १२४६ में गोरी शाह के साथ हुई थी, उसमें उस (रावल समरसिंह) का मारा जाना लिखा हुआ है. ये दोनों वृत्तान्त कल्पित है, क्योंकि रावल (समरसिंह) के लेख वि० सं० १३३० से १३५८ तक के प्राप्त हैं, कहे जा सकते हैं।

उत्तर—रासो में जिस चित्तोड़ पति रावल समर का वर्णन है, उसके नाम के स्थान पर उपनाम या उपाधि सूचक नाम-विक्रम-रावल-पराक्रम-रावल, पराक्रम राज केशरी-नारेन्द्र और समर-साहस, (समर विक्रम) लिखे हुए मिलते हैं। रासोकार (चंद) अपने काव्य का चरित्र नायक पृथ्वीराज को मानता है; किन्तु साथ में चितौड़ पति रावल समर-विक्रम के प्रति भी वही भाव प्रकट करते हुए प्रारम्भ में ही वह लिखता है।

जैसे—विक्रम (रावल समर-विक्रम) और राज (राजा पृथ्वीराज) दोनों समान ही वीर हैं, और मुझ कवि चंद में भी वैसी ही वर्णन शक्ति (ईश्वर दत्त) है। अतः इन्होंने अब तक जो कार्य किये तथा जो कर रहे हैं और करेंगे, उनका वर्णन मैं अपूर्व ढंग से करता हूँ।[1]

धनकथा नामक समय में एक स्थान पर वर्णन करते हुए आया है कि पराक्रम रावल (समर विक्रम) के वहुत से अच्छे अच्छे योद्धा थे जो कूर्म और नृसिंहावतार के सदृश जाग उठे (क्रोधकर उठे) और इस प्रकार वे रघुवंशी अपनी अत्यधिक ख्याति कलियुग में फैलाने लगे।[2]

भीम-वँध समय में एक स्थान पर मुक्तक रूप से लिखा है कि विक्रम

---

१. विक्रम राज सरीस भो, वुद्धि वृंनन कविचंद ।
भूत भविष्य, वृत्तमन, कहत अनूपम छंद ॥

पहिला समय पृ० १४७ छन्द ७०३

२ अति "प्राक्रम-रावर-सुमर", कूरमनरसिंह जग्गी ।
रघुवंशी अति क्रम्मगुर, कत्थ करन कलि लग्गी ॥

समय २४ पृ० ७०६ छन्द १६७

विक्रम (समर विक्रम) और पृथ्वीराज दूसरों के भूभाग पर सिक्का जमाने वाले हैं, और इस कुसमय (जब कि हिन्दू साम्राज्य की अवस्था डांवाडोल है) में हिम्मत करने वाले ये ही व्यक्ति हैं और इन दोनों के कन्धे पर ही आज हिन्दुओं का राज्य है।[1]

समय ६६ में रावल समर-विक्रम के दर्शनों की प्रशंसा करता हुआ कवि लिखता है, " रावल समर-विक्रम ", " कलंक कप्पन " (कलंक नाशक) "जीह किल" निश्चयात्मक भाषण करने वाले), कित्तिय लग्गा (किर्ती से लगे हुए, कीर्तिरत), "आहुट्टा मभ्भामि (आहड़ों का माझी, मुखिया), छत्त-छत्ती-पर मानम (क्षत्रियों के छत्र स्वरूप), हिन्दवान तुरकान सस्सि (सरसि) उग्गे जिमि भानम (हिन्दुओं और तुरकों पर समान रूप से सूर्य तुल्य तपने वाले), औधूत राय (राजर्षि), माया अडरु (माया से निडर, माया रहित), गोरक्ख-रा गौरक्ख जिम (गौओं की रक्षा करने वाले-गोपाल स्वरूप), वर-तित्थ-तित्थ (तीर्थों में श्रेष्ठ तीर्थ स्वरूप) माररूप भंजन (कामदेव के रूप को भंजन करने वाले-शिव स्वरूप), विक्रम (विक्रम उपाधि या नामधारी)।[2]

समय ५६ में लिखा है-जयचंद से भिड़ते हुए रावल को उसके द्वादश सामन्तों ने (ये योद्धा राजवंशी थे, इसलिये इन्हें भी रावल लिखा है) घायल अवस्था में झूमते हुए और दबे हुए-देखा, तब उन्होंने उसे रणस्थल से बड़ी कठिनाई से निकाला, किन्तु ऐसी अवस्था में भी वह वहाँ जम कर शत्रु समूह को तलवार से काटने लगा। उस समय दो पहर तक वीर रस उसके सामने नट के

---

[1] विक्रम अरु चहुवान पर धरती शक बन्ध।
असम समय साहस करन, हिन्दु राज दुव कन्ध॥
समय ४८, पृ० ११०२, छं० २८,

[2] आज हनन्दे पाप, दर्शि रावर वर भग्गा।
कप्पन–विरद–कलंक, जीह किल, कित्तिय लग्गा॥
आहुट्ठा–मभ्भामि, चत्त चत्ती परमानम्।
हिन्दवान–तुरकान सस्सि, उग्गे जिम भानम्॥
औधूतराय, माया अडरु, गोरक्ख रा गोरक्ख जिम।
वर तित्थ तित्थ रावर समर, मार रूप भंजन विक्रम॥
स० ६६ पृष्ठ २१६६ छं० ४००

समान नृत्य करता रहा और अभग दल में डट कर उसने शत्रुओं का संहार किया, उस 'आक्रम'' (विक्रम रावल) को देख कर देवता भी चकित हो गये और जटा को धारण करने वाले (शंभु) उसके सिर के लिये घूमने लगे।[१]

हाँसी के युद्ध में लिखा मिलता है कि (इस युद्ध में दिल्ली से पृथ्वीराज आया उससे पूर्व ही) इधर से रावल समर-विक्रम यथा समय पहुँच गये और विजय प्राप्त कर ली, जिसकी प्रशंसा में लिखा है। युद्ध में खवास खाँ पड़ा, इधर हाँसी का रक्षक गौर, सागर पति प्रताप, एक वीर चंदेला राजा नवभान, महनसी मोरी और कछवाहे वीर के पास ही प्रमार वीर एक प्रहर तक तलवार चला कर खेत पड़ गये और केशरी नरिंद (रावल समर विक्रम केशरी) के केशरी के समान "आक्रम" के कारण कीर्ति की लहर उसकी तलवार को चिन्तते (इच्छने) लग गई।[२]

देवगिरी समय में लिखा है कि समर (युद्ध) की सूचना का पत्र पढ़ कर "समर साहस" (समर विक्रम) रावल ने आये हुए दूत द्वारा वापस कहलवाया, हे श्रेष्ठ नृपति! तुम्हारे मन्त्रीगण, मन्त्रणा (विचार विमर्ष) नहीं करना जानते।

---

[१] सवर सूर रजपूत पत्ति, देख्यो घूमत घट।
समर समर विच चपत, नीठ कढ्ढियो द्वादस भट॥
वीच घत्त सों मढ्ढि, खग्ग खल रुक्कि भंजियट।
वीर रंग निप्पहर सरस, संमुह सुभग्यो नट॥
अनभंग घंग दल भग किय, अठिल ठाट ढिल्लिय सुभट।
"आक्रम्म" पिक्खि भम्मेव सुर, सीस कन्ज भ्रमि धार जट॥
समय ५६ पृष्ठ १४६२ छंद १००

[२] परिग खान खावास, गोर हांसीपुर धारी।
परि प्रताप सागर नरेन्द्र, रसूणर विभारी॥
परयो कहे चन्देल, परयो राजा नव भानम्।
परि मोरी–महनंग, जंग जीते जुग जानम॥
पावार परिग कूरम्म पह, पहत एक भारत्थ करि।
केशर–नरेन्द्र केशर वलह, तेग चिन्ति कीरति लहरि॥
समय ५२ पृष्ठ १३६६ छं० १६५

हमारी नेक सलाह तो यह है कि आप दिल्ली को मत छोड़िये. और गोरीशाह से जा भिड़िये। उसके बाद अनंगपाल को फिर राजा बनाइये और आप अपने कुछ सामन्त हमारे साथ कर दीजिये, ताकि युवराज रणसिंह (रावल विक्रम केशरी का कुँवर कन्नौज पति को युद्ध में रोकें। इसी नेक सलाह में गृह कुशल है[1]।

सामंत पंग प्रस्ताव में लिखा है कि—मन्त्री जयचन्द से कहने लगा कि तुम्हारी इस यज्ञ रूपी वेलि को चारों ओर से चौहान रूपी हाथी ने दबा लिया है उसे बचाने के लिये आहड़ों (गुहिलातों) के मुखिया समर-साहस (समर विक्रम), (चित्रंगी चित्तौड़पति) को, जो बंधित को बंधन रहित करने वाला, चिन्तन शील (दूरदर्शी), सुन्दर स्वामी, तलवार में लीन, मोह रहित, राजर्षि, अमोघ रस के तत्व को जानने वाला, सुवप धारी और अच्छी गात का साधक है उसे अपनी ओर करलो[2]। (मिलालो)

पृथा विवाह समय में भी लिखा गया है कि—किसी से नष्ट नहीं होने वाला,

---

१ बंचिय कग्गद समर, "समर–साहस" उच्चारिय ।
तव सुमन्त वर नृपति, मंत जाने न विचारिय ॥
हम सुमन्त जो करें, राज दिल्ली मति छंडो ।
इह (गहि) गोरी सुलतान, अनंग पालह फिर मंडो ॥
सामंत देहु हम संग वर, 'रन' रूँधे पहु पंग नर ।
आरंभ महन रंभह मतो, इह सुमंत कुशलंत घर ।

समय ६६ पृष्ठ ८७४ छं० ५५

२ आहुट्टा भभ्भाम, "समर–साहस" चित्रंगी ।
निर्विह बंध बंधे अवंध, साध्रम्म सुअंगी ॥
चिंतानी कलपत्त, रूक–रत मोह अरत्ता ।
सिद्धानी मोघ रस, भेव सम सद्ध सुगत्ता ॥
चहुवान चंपि चवदिसि करिय, जग्गि–वेलि जिमि उद्धरे ।
चित्रंग राव रावर समर, मिल जीवन जिहिं उच्चरे ।

समय ५५ पृष्ठ १४२२ छं० २०

आहड़ों का मुखिया रावल समर-साहस (समर-विक्रम)[१]

इसी तरह इतर छंदों में भी यथा स्थान लिखा हुआ है कि—समर-साहस (समर-विक्रम) नरेन्द्र को सामन्तों ने अपने बीच में इस तरह किया जिस तरह तारागण चन्द्र को, देवता इन्द्र को और गिरि-श्रेणी सुमेरु पर्वत को बीच में करते हैं[२] ।

उपरोक्त प्रमाणों से रासौ में वर्णित रावल-समर वही हो सकता है, जिसके उप या उपाधि सूचक नाम, विक्रम, पराक्रम, केशरी और समर-साहस (समर–विक्रम,) हों ।

इसके अनुसार जब हम इतिहास पर भी दृष्टि डालते हैं तो रासो वाला वीर केशरी समर-विक्रम, शिला लेखों में लिखा विक्रम-केशरी ही सिद्ध होता है ।

इसी तरह हम मेवाड़ राजवंश को नामावली को, जो एक ओर राज-प्रशन्ति में तथा दूसरी ओर इतिहासज्ञों द्वारा निश्चित की हुई है, सामने रख कर प्रसिद्ध वीर बापा से क्रमशः संख्या मिलाते हैं तो रासो वाले समर–विक्रम की संख्यां के स्थान पर विक्रम-केशरी ही आता है। रासो वाले समर-विक्रम के वर्णन में राजप्रशस्ति वाला उसके पुत्र का नाम कर्ण (रणसिंह) बतलाता है। इससे भी (कर्णसिंह) के पिता ही रासो में वर्णित रावल सवर-विक्रम निश्चित होते हैं। नामों के पर्यायवाची, उप या उपाधि सूचक और विकृत रूपों का खयाल रखने से भी विक्रम ही रासो के समर-विक्रम हैं। हमारे रासो वाले समर-विक्रम के पिता का नाम भी तेजसिंह ही था, जिसे पर्याय रूप में शिला लेखकोंने चंड्या चौंड (तेज का पर्याय रूप चंड या चौंड) सिंह तथा उसके पुत्र रत्न को भाषा के विकृत रूप में रणसिंह (रत्न का विकृत रूप रण. रयण, रैण होता है) लिखा है[३] ।

---

१ वर आहुठ्ठ नरेश समर–साहस अनभंगं ।

समय २१ पृष्ट ६४३ छं० ४

२ भरं विंटियं, समर–साहस नरिन्दं,,

मनो विंटियं उडगनं अभ्भ चंदं ।

किधों इद्र पासं सब्बै देव राजे, किधों मेरु तरं सु पब्बै विराजे ।

समय २४ पृष्ट ६४६ छं० २८

३ नामावली की संख्या का मिलान—

इस तरह नामों के विकृत रूप कर देना प्रायः प्राचीन शैली कही जा सकती है।

राज़-प्रशस्ति में वर्णित	गौरीशंकर ओझा द्वारा संग्रहीत
१ बापा *	कालभोज (बापा)
२ खुम्माण *	खुमाण
३ गोविंद	मत्तट
४ महेन्द्र	भर्तृ भट्ट
५ आलू	सिंह
६ सिंहवर्मा	खुमाण (द्वितीय)
७ शक्तिकुमार	महायक
८ शालिवाहन	खुम्माण (तृतीय)
९ नरवाहन	भर्तृ भट्ट (द्वितीय)
१० अंबाप्रसाद	अल्लर, अल्लट
११ कीर्तिवर्मा	नरवाहन
१२ नरवर्मा	शालिवाहन
१३ नरपति	शक्तिकुमार
१४ उत्तम	अंबाप्रसाद
१५ भैरव	शुचिवर्मा
१६ पुंजराज	नरवर्मा
१७ कर्णादित्य	कीर्तिवर्मा
१८ भावसिंह	योगराज
१९ गात्रसिंह	वैरट
२० हंसराज *	हंसपाल (वंशपाल)
२१ योगराज	वैरीसिंह
२२ वेरड़	विजयसिंह
२३ वैरीसिंह *	अरिसिंह
२४ तेजसिंह *	चौंड (चण्ड) सिंह (पर्यायरूप)
२५ समरसिंह (रासो वाला)	विक्रम केसरी विक्रमसिंह पर्याय, (उपाधि रूप में)
२६ रतनसिंह (रासो वाला रत्न)*	रणसिंह (कर्ण-विकृत रूप)

नामावली के मिलान में उपनाम या उपाधि सूचक नामों के कारण मूल नामों के रूप भले ही बदले हों, परन्तु संख्या में कमी वेशी नहीं हुई है। मुख्य-मुख्य राजाओं के नाम उसी क्रम पर मिल जाते हैं, जिन्हें समझने के लिये नामावली के सामने हमने पुष्पाकार*चिन्ह कर दिये हैं। दोनों नामावलियों पर विचार करने से कुछ नाम उप और उपाधि सूचक भी प्रतीत होते हैं। यहाँ हमारा ध्येय केवल यही है कि बापा से २४ वीं संख्या पर रासो वाले समर-विक्रम के

रासोकार भी रावल समर-विक्रम के राजघराने के योद्धाओं का जहां वर्णन करता है उसमें महणसिंह आदि के उल्लेख के साथ रणसिंह का उल्लेख भी है, वही रणसिंह युवराज रत्न हैं[२]। रासो वाले समर-विक्रम के पिता और पुत्र के नामों को पर्याय और विकृत रूप देने का शिला-लेखकों का मुख्य हेतु यह है कि वे रासो वाले समर-विक्रम (विक्रम-केसरी) के वंशधर (जो आठ पीढ़ियां बाद हुए), आहड़-नागदा की रावल शाखा वाले द्वितीय-समरसिंह का वर्णन अपने लेखों में करते, जिसके पिता-पुत्र का नाम भी क्रमशः तेजसिंह और रत्नसिंह ही था। अतः वे अपने समय के नरेश के वर्णन में संदिग्धता नहीं आने देना चाहते थे, इसलिये पूर्ववर्ती समर-विक्रम को उपाधि रूप में विक्रम और उसके पिता तेज को 'चड' और पुत्र रत्न को 'रणसिंह' लिखा। तदुपरान्त एक प्राचीन ख्याति से दुग्गड़ रामनारायणजी को भी इस बात का पता चल गया था कि रणसिंह पृथा कुँवरी का पुत्र और चौहान पृथ्वीराज का

पिता तेज (चण्ड) सिंह है। २५ वीं संख्या पर स्वयं विक्रम और केसरी उपाधि-धारी रासो में वर्णित रावल समर-विक्रम है। २६ वें स्थान पर रासो वाले समर-विक्रम का पुत्र रण (रत्न) सिंह है। रणसिंह को पीछे से एकलिंग माहात्म्य और राज-प्रशस्ति में भ्रम से कर्ण लिख दिया, किन्तु उससे पूर्व के लेख रणसिंह लिखते हैं। यह ठीक रत्न का ही विकृत रूप है। रणसिंह से पहले मेवाड़ का राजवंश रावल कहलाता था। रणसिंह से ही राणावत (राणावत) कहलाने लगे हों। रत्न का 'रयण', 'रण' और 'रैण' प्राचीन भाषाओं में होता आया है।

१ एक पुष्प दंत नामक जैनी-लेखक की पदवी "काव्य रत्नाकर" थी, उसे विकृत रूप में "कव्व रयण रयणायर" लिखी गई। (देखो जैन साहित्य और इतिहास ले० नाथूरामजी प्रेमी, पृष्ठ २०७)।

रत्नसिंह सूरी को जैन ग्रन्थों में, "सिरी रयणसिंह सूरी" के रूप में लिखा गया (देखो—नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ४६ वां, अंक ३। कार्तिक सन् १९२८, विषय वीरगाथा-काल, जैन भाषा साहित्य—ले० श्री अगरचन्दजी नाहटा।

वंश भास्कर में श्री सूर्यमलजी मिश्रण भी लिखते हैं—

"ऐन देन चाहो, पर रैन (रत्न) देन चाहो ना"

२ रासोक०। राजघराने के योद्धाओं में रणसिंह का उल्लेख करता है—

"रूपराम, रत्नसिंह, देव दुज्जन दावानल"।

स० ५६, पृ० १४६३, छं० १०७

भानजा था[1]।

अस्तु, रणसिंह के पिता विक्रमसिंह ही रासो के समर-विक्रम हैं, जिन समरसिंह के वि० सं० १३३० से १३५८ तक शिलालेख उपलब्ध हैं, वे समरसिंह उनसे भिन्न हैं और इन शिलालेखों से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है।

शंका ५-रासो के वर्णन में गुर्जरेश्वर भीम (द्वितीय) द्वारा पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर का और पृथ्वीराज द्वारा भीम का मारा जाना लिखा हुआ है, वह ठीक नहीं;—क्योंकि सोमेश्वर की मृत्यु वि० सं० १२३६ में हुई थी, तब भीम बालक था और पृथ्वीराज द्वारा भीम का मारा जाना भी इसलिये नहीं माना जा सकता कि वि० सं० १२४६ में पृथ्वीराज की मृत्यु हो चुकी थी और भीम वि० सं० १२६६ तक जीवित था, जैसा कि उस (भीम) के लेखों से विदित होता है।

उत्तर—रासो में भीम के द्वारा पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर का मारा जाना नहीं, बल्कि उसके सामन्तों द्वारा मारा जाना कतिपय रासो के पद्यों से सिद्ध होता है। पृथ्वीराज द्वारा भीम का मारा जाना भी हमारे मत के अनुसार पद्यों में नहीं लिखा गया है। उनमें लिखा है—

"पिता (सोमेश्वर) की मृत्यु पर पृथ्वी को धारण (छत्र-धारण) करने से पहले पृथ्वीराज ने ८००० गायें, शृंगों और खुरों का स्वर्ण से मंडित करके ब्राह्मणों को प्रदान की, और नाना-विधि से षोड़श प्रकार का दान किया। पश्चात् पिता की मृत्यु का बदला लेने का निश्चय किया और प्रतिज्ञा पूरी न हो, जहाँ तक घृत नहीं खाऊँगा, तथा पगड़ी नहीं बाँधूँगा और उसने यह भी कहा कि जिस दिन भीम के सामन्तों को नष्ट कर भीम को बन्धन में लूंगा, उसी दिन मैं अपने आपको पिता के ऋण से मुक्त समझूँगा[2]।"

---

१ देखो—रामनारायणजी दुगड़ "राजस्थान रत्नाकर" पृ० ६०, ६२ (इस बात का पता हमें उदयपुर निवासी पुरोहितजी श्री देवनाथजी द्वारा मिला)।

२ अट्ठ सहस दिय धेनु, तब्ब पृथ्वी विवि धारिय।
हेम शृंग खुर हेम, तोल द्वादस हिम सारिय॥
जुगति जुगति विधनान, दान षोड़श विस्तारं।
तात वैर संग्रहन, लेन पृथिराज विचारं॥
घृत मुक्कि पाग बंधन तजिय, इ पन वीर लीनो त्रिदम।

इस प्रतिज्ञा को सुन कर उसके सामन्तों ने एकत्रित होकर कहा कि–ज्योतिषी को बुलाकर मुहूर्त साधा जाय और उस पर चढ़ाई की जाय, ताकि विजय हो।

व्यास ने आकर लग्न देखा और मुहूर्त का निश्चय करके कहा, इस समय चढ़ाई की जाय तो अवश्य विजय होगी[1]।

हे नृपति (पृथ्वीराज)! मेरा कथन प्रमाण युक्त है, गुर्जरेश्वर की गुर्जरी सेना ने सोमेश्वर से वैर किया, परन्तु यह मुहूर्त ऐसा है कि यदि एक लक्ष शत्रु भी सामना करें तो भी वे तलवार से रोक दिये जायेंगे और गुर्जरेश्वर कर बद्ध हो जायगा—इस तरह गुजरात पर विजय हो सकती है। इन बातों में से यदि एक भी सिद्ध न हो तो मैं हाथ में पत्रा लेना छोड़ दूँ[2]।

चालुक्य-भीम-भर गंजि कै, कढ़ौं तात उदरह सुखम ॥

समय ३९, पृ० ११४८, छं० १२४

'उनिदु-भीम-संग्रहौं, सोम उग्रहौं तदिन रन (रिन)।'

स० ४४, पृ० १२००, छं० ६

१ करि प्रनाम सामंत सबं, बोलिय जोतिग राइ।
सद्धि महूरत चड्ढिये, जिम आगे जीताइ ॥

स० ४४, पृ० १२०१, छं० १८

ब्यास आन दिक्खिय लगन, धी महूरत जोइ।
इन समये जो सज्जिये, सही जैत तो होई ॥

समय ४४, पृ० १२०१, छं० १९

२ कहे व्यास जग जोति, राज चहुआन प्रमानिय।
गुज्जर गुज्जर-सयन, वैर सोमेसर ठानिय ॥
एक लक्ख आरुहहि, लक्ख लक्खन खग रुँधइ।
होय जैत चहुआन, पानि भीमंग सुबंधइ ॥
गुजरात होय तुव ग्रेहनिय, एक बत्त संमुह मँडौं।
जो मिटै बत्त इह जोग कोइ हत्थह पत्रह छंडौं ॥

समय ४४, पृष्ठ १२०, छंद २२

इसी मुहूर्त फल के अनुसार चढ़ाई करने पर पृथ्वीराज ने पिता का बदला लेकर जय-पत्र प्राप्त किया और दिल्ली को लौटा। संसार में उसकी कीर्ति फैली. राजा (पृथ्वीराज) के उद्देश्य को सामंतों ने माना, उसी के मार्ग का उन्होंने अवलम्बन किया और एक ही (वीर) रस को भोगा। इस प्रकार पंचमी रविवार को इन्द्रयोग नक्षत्र में उसने अपनी सेना, गज, अश्व, सामन्तादि द्वारा विजय प्राप्त की[1]।

इससे स्पष्ट है कि पिता की मृत्यु पर पृथ्वीराज ने भीम के सामन्तों को नष्ट करने की ही प्रतिज्ञा की थी। ज्योतिषी द्वारा मुहूर्त भी विजयार्थ दिखलाया गया था, ज्योतिषी ने भी मुहूर्त फल में विजय होना ही बतलाया है, उसीके अनुसार विजयी पृथ्वीराज ने जय-पत्र प्राप्त किया। अस्तु, रासो के कतिपय मूल पद्यों से सोमेश्वर का भीम के सामन्तों द्वारा मारा जाना और पृथ्वीराज द्वारा चालुक्य की सेना का परास्त होना तथा पृथ्वीराज का जयपत्र प्राप्त करना ही सिद्ध होता है।

अब हम भीम को बालक लिखे जाने के विषय पर अपने विचार प्रकट करते हैं—

रासो में यत्र-तत्र भीम को, "बालुक्क" और "अयाना" लिखा है। अयाना शब्द बच्चे के लिये प्रयुक्त होता ही है। संभवतया बालुक्क शब्द का प्रयोग भी बच्चे के लिए किया हो, तथा बालुक्क (बालुकाराय, बालराय, बालिकानाथ) बल्लभेश्वर उपाधि का विकृत रूप भी हो सकता है।[2] प्रसिद्ध

---

१ तात वैर संग्रह्यो, जीति जै–पत्त सु लिन्नो।
ढिल्ली पत्तो राज, कित्ति संसार समिन्नो॥
नृप सम्बन्ध सो उदर, सोइ सामन्तनि रक्खिय।
एक मग्ग उग्रहे, एक मग्गह रस भक्खिय॥
पंचमी दिवस रविवार वर, इन्द्र जोग तहां बरित तिथ।
दिन चढे राज पृथिराज जय, जै, हय गय नर भर समथ॥

समय ४४, पृष्ट १२२७, छंद २०

नोट:—इन पद्यों में संग्रह्यो, संग्रहों, संग्रहिय, आदि का प्रयोग रासो में पकड़ा और पकड़ो के लिये हुआ है। यहाँ भी यही अर्थ करना चाहिये।

२ '"अप्पाने घर बैठि, रीस कीनी चालुक्का।

इतिहासज्ञ स्व० पं० गौरीशंकर हीराचन्दजी ओझा भी "राज विलास" के निम्न पद्य 'नगर बल्लिका नाथ" का अर्थ करते हैं, 'इससे वाल-का नाथ, का अर्थ या तो वाल (भाल) क्षेत्र (काठियावाड़) का राजा या वल्लभी का राजा होना चाहिये।" इससे बालका शब्द गुर्जरेश्वरों के लिये उपाधि रूप में भी होना कहा जा सकता है[१]।

तदुपरान्त घांतोड़ (जयसमुद्र-मेवाड़) से प्राप्त दान पत्र, जो गुहिलोत (अमृतपाल) का वि० सं० १२४२ का है, उसमें वह अमृतपाल अपने को अपने ही दान-पत्र में चालुक्यों से विरोधी वंश का (चालुक्यों और गुहिलोतों का विरोध इतिहास प्रसिद्ध है) होते हुए भी भीम द्वितीय) के आतंक से ही प्रभावित होकर अपने को उस (भीम) का कृपापात्र लिखता है। इस वाक्य पर विचार करें, तो भीम वि० सं० १२४२ के निकट शत्रुओं पर आतंक फैलाने योग्य था, यही निश्चय होना है, जिससे वह सोमेश्वर की मृत्यु के समय बालक नहीं भी माना जा सकता है, क्योंकि १२३५-३६ के निकट उस (भीम) को बिलकुल बालक माने तो, इस दान पत्र के समय उसकी अवस्था ९-१० वर्ष की होती है, जो शत्रु पक्षीय (गुहिलोत वंश) के वीर पर प्रभाव डालने के योग्य नहीं मानी जा सकती[२]।

'हीय खटक्के साल, बात संभरि बालुक्का ॥"

स०४० पृ० १,१५३, छं० ४

"बालुक्का-हिन्दू, कमध और सु गोरी साहि ॥"

स०४१ पृ० ११५७ छं० १

"आइ खबर चहुआन-सुदल बालुक्कराय सजि।"

स०४१ पृ० १,१५७ छं० २

१. देखो— उदयपुर राज्य का इतिहास भाग १. पृ० ८४

टि०न०१ लेखक श्री गौरीशंकर हीराचन्दजी ओझा

२. ओम् स्वस्ति श्री नृप विक्रम कालातीत संवत्सर द्वादश शतेषु द्विचत्वारि शदधिकेषु अंकतोपि संवत् १,२४२ वर्षे कार्तिक सुदी १५ रवौ अद्येह श्री मदणहिल पाटकाधिष्ठित परमेश्वर परम भट्टारक श्री उमापति वर लब्ध प्रासाद राज्य लक्ष्मी स्वयं वर प्रौढ़ प्रतापी श्री चौलुक्य-कुलोद्यान मार्तण्ड अभिनव सिद्धराज श्री महाराजाधिराज श्रीमद् भीमदेव कल्याण विजय राज्ये ·········
·····························अस्यच परम प्रभोः प्रासाद पत्तलायां भुज्यमान वागड़

इससे सोमेश्वर की मृत्यु के समय उसे बालक मानने में शंका भी हो सकती है और यदि बालक हो तो भी रासो में उसके लिये बालुक्का और अयाना प्रयोग होने से उसमें इतिहास के विरुद्ध वर्णन नहीं कहा जा सकता। विजय पराजय का श्रेय सेना को नहीं मिलता; स्वामी को ही मिलता है। इसलिये इन युद्धों में भीम को ही श्रेय दिया गया हो, ऐसा होना संभव है। अन्य ग्रन्थों में भी ऐसा हुआ है। 'प्रबन्ध चिन्तामणि' में बाल मूलराज के बालक होते हुए भी उसकी माता द्वारा विपक्षियों से युद्ध करने में विजय का श्रेय बच्चे (बाल मूलराज) को दिया गया था। भोले भीम के इस युद्ध के पूर्व के युद्ध भी उसमें सामंतों द्वारा होना पाया जाता है इसका स्पष्टीकरण हमारे द्वारा होने वाले रासो के संपादित ग्रन्थ में पाठक देख सकेंगे। तदुपरान्त सोमेश्वर की मृत्यु का समय संदिग्ध है। केवल १२३६ के आसपास के प्रमाण पृथ्वीराज के राजपद युक्त होने के लिखने से ही सोमेश्वर का मर जाना निश्चय नहीं होता। क्योंकि पिता की उपस्थिति में ही वह दिल्ली जैसे विशाल राज्य का स्वामी हो चुका था। अतएव राजा लिखा जा सकता था। पिता की उपस्थिति में सिंहासनारूढ़ कर देने का वर्णन पृथ्वीराज विजय और हम्मीर महाकाव्य में भी हुआ है, फिर भी रासो के पूर्ण संपादित होने पर हम निश्चित कर सकेंगे।

शंका ६—रासो में पृथ्वीराज का ११ वर्ष से ३६ वर्ष की आयु तक १४ विवाह होना लिखा जाना निम्न ५ विवाहों के समान निर्मल हैं—

(१) मंडोवर के नाहरराय परिहार की पुत्री से पृथ्वीराज की ११ वर्ष की अवस्था में प्रथम शादी होना इसलिए नहीं माना जा सकता कि वह (नाहरराय) तो कई सौ वर्ष (सं० ८९४ से) पूर्व हो चुका था और उस समय (सं० १२०० से पूर्व ही) मंडोवर पर प्रतिहारों का शासन भी नहीं था।

(२) आबू के राजा सलख की पुत्री से भी शादी होना इसलिये नहीं माना जा सकता कि सलख जैत्र नाम का कोई राजा हुआ ही नहीं, आबू पर उस समय (सं० १२२० से १२७४ तक) जो राजा था, उसका नाम धारावर्ष था।

(३) दाहिमा चावण्ड की बहिन से पृथ्वीराज का विवाह होना और

वट पद्रक मण्डले महाराजाधिराज श्री अमृतपाल देवीय राज्ये.................

.................शासन पत्रमि लिख्यते यथा।

नोट:—इस दान पत्र में जो जो विशेषण भीम के लिये दिये गये, वे विचारणीय हैं। इनमें से कुछ विशेषण ऐसे हैं, जो बाल नरेश के लिए शायद ही शोभा देते हों।

क्रमशः

उससे युवराज रैणसी का होना भी गलत है; क्योंकि पृथ्वीराज का पुत्र गोविन्दराज था और वही पृथ्वीराज के बाद अजमेर का राजा हुआ। उसका अपने चाचा हरिराज से विगाड़ होने पर वह रणथंभोर में जाकर रहा।

(४-५) देवगिरी के यादव राजा भान और रणथंभोर के यादव राजा भानराय की पुत्रियों से पृथ्वीराज का विवाह होना भी कल्पित है, क्योंकि देवगिरी पर भान नाम का कोई राजा ही नहीं हुआ और रणथंभोर पर कभी यादवों का राज्य ही नहीं रहा। रणथंभोर चोहानों के ही अधिकार में था।

उत्तर—रासौ के पढ़ने से ज्ञात होता है कि पृथ्वीराज के १४ रानियाँ नहीं बल्कि दस ही रानियाँ थी। इतर छन्दों में पृथ्वीराज के जन्म लग्न के वर्णन में ज्योतिषी कहता है कि यह (पृथ्वीराज ८ और २) दस रानियाँ ब्याहेगा।[1]

शुक चरित्र में भी दस ही रानियों का उल्लेख हुआ है। बड़ी लड़ाई के प्रस्ताव में युद्ध के लिये विदाई करते समय का वर्णन करता हुआ कवि लिखता है, दसों रानियाँ राजा (पृथ्वीराज) के आसपास इस प्रकार फिरीं जैसे भ्रमर पुष्प के आस पास फिरते हों।[2] बड़ी लड़ाई के अन्त में जहाँ वीरांगनाओं का सती होना लिखा, वहाँ भी लिखा है कि स्वामी के निधन पर पृथा कुँवरी और राजा (पृथ्वीराज) की दसों रानियाँ सती होने को तैयार हुई।[3] इससे स्पष्ट है कि पृथ्वीराज के दस रानियाँ थीं। रासौ में विवाह समय निरर्थक प्रतीत होता है, क्योंकि रानियों का वर्णन प्रस्तावों में यथास्थान हो चुका है। तब कवि को इस प्रकार विषय दोहराने की आवश्यकता नहीं थी। इसीलिये चार विवाहों के प्रति हमें शंका है। किन्तु पृथ्वीराज के समस्त विवाहों को निर्मूल मानना हमारी समझ में ठीक नहीं जँचता और जिन पाँच विवाहों के लिये शंका की गई उनका वर्णन भी रासौ में शंकाओं के विरुद्ध इस प्रकार हुआ है।

(क) [नाहराय की पुत्री के वर्णन में]

---

१ बरनी सु अष्ट दुय लेइ ब्याह।

समय १ पृष्ठ १४७ छंद ७११.

२ दह रवन्नि दह घटति, फिरिग कुसुमंग भँवर जिमि।

स० ६६ पृ० २१५० छं० २८२.

३ पृथा सत्थ सह गवन, रवनि साजिय सुराज दह।

स० ६६ पृ० २२७०-७१ छं० १६२१.

जिस समय पट्टन पर ब्रह्मक्षत्रिय चालुक्य भीम, अब्बू (अब्बूआ-आबू राजवंशी) जैत्र प्रमार, मेवाड़ पर रावल समर, दिल्ली पर अनंगपाल था; उस समय नाहरराय प्रतिहार भी था, जिसके विरुद्ध मंडोवरराय और मारू मरद थे।[1]

जब पृथ्वीराज आठ वर्ष का था, तब अपनी ननिहाल दिल्ली को गया। उसका नाना अनंगपाल था, जिसका शासन मारवाड़ (मंडोर, नागौर आदि) सिंध, जलमार्ग पैसोर, लाहौर, काशी, प्रयाग और देवगिरी (देवगढ़ या गिरी) के नरेश भी मानते थे। तथा सीमा पर रहने वाले सब उसकी सेवा करते थे।[2] उस (अनंगपाल) की सेवा को स्वीकार करके उसके चरणों में नाहर-

---

१. उत पट्टन भीमंग, बह्म चालुक लोह लुअ।
अब्बु जैत पंवार, लोह लगि जानि अचल ध्रुअ॥
समरसिंघ मेवार, दंड देवार अजर जरि।
दिल्ली पति अनंग, लरन अड्ढो सु लोह लरि॥
परिहार नाह नाहर नृपति, इतन बीच अप बल रहै।
मंडोवराइ, मारू मरद, वर विरद बंके वहै॥

समय ७ पृष्ठ सं० ३३४ छं० २४,

२ वरस अट्ठ प्रथिराज, गयौ मूसाल दिल्ली थह।
राजकरै अनगेस, सेव मरु धरा करै सह॥
मंडोवर नागोर, सिन्धि जल वट्ट सु पुट्ठे।
पैसौरां लाहोर, धरा कंगुर लगि कट्ठे॥
कासी प्रयाग गढ़ देवगिर, इत्तौ सेव आज्ञा धरे।
सीमावहियाँ संके पुपहु, अत अनंग सेवा करै॥

समय ७ पृष्ठ ३३५ छं० २५

नोट:—(ऊपर के पद्य में आये हुये देवगिर स्थान का स्पष्टी करण) जैन साहित्य से ज्ञात होता है कि दौलताबाद (मलखेड़ा इलाका-निजाम) भी देवगिरि कहलाता था। रासो से देवगिरी (देवास मालवा) भी देवगिरी कहलाता हो ऐसा

राय आया, जिसने अद्भुत नूर वाले पृथ्वीराज को देख कर उसके गले में माला पहना कर कहा-मैंने अपनी पुत्री रुक्मांगी इन्हें दी, यह सुन राजा तेज (विमाता का पिता, नाना तेजल) और अनंगपाल को प्रसन्नता हुई। किन्तु जब दस वर्ष (सम्बन्ध किये या पृथ्वीराज की दुय अट्ठ १६ वर्ष का आयु हो गई) हो गये तब वह बदल गया।[1]

कवि कहता है, शनिश्चरी दृष्टिवश से परे है। जिसके कारण दुर्जनों के घर का नाश होता है। इसी तरह परिहार का नाश करने वाला प्रमार, यादव और चौहानों का वैर है। वह गिरनारी (गिरनार प्रान्त का रहने वाला) प्रतिहार (नाहरराय) समस्त कलाओं में कुशल होते हुए भी अपने नाश के कारण युद्ध की ओर (भावी युद्ध के परिणाम को) नहीं देखा और बाला (पुत्री के कारण घर में तिगुना वैर बसाया। सच है स्त्री के कारण किस किस के राज्य नहीं गये।[2]

नाहरराय के इस प्रकार बदलने पर सोमेश्वर और पृथ्वीराज की ओर से

मालूम होता है। अस्तु यह देवगिरी कैसा है निश्चय नहीं होता या यहाँ देवगढ़ और गिरि दो स्थान भिन्न हों यह भी संभव है। नाहरराय के वर्णन में "सोजती" भी लिखा है; अत सोजत्री (गुजरात-भड़ौंच) से उसका तात्पर्य है। मारवाड़ के सोजत स्थान से नहीं जान पड़ता (देखो जैन साहित्य और इतिहास पृष्ठ ३४६)।

[1] आयो नाहरराय, सेव आदरय दिलेसर।
दिक्खि कुँवर प्रथिराज, नूर अद्भूत नरेसर॥
अम्बर माला इक्क, अंक पहिराइ कह्यो इह।
मैं दिन्हीं रुकमंगि, सबै उच्छाह कियो गृह॥
आनन्द "तेज" राजा "अनँग," पृथ्वीराज आयौ घरह।
दुय अट्ठवरस जब बीति गय, ब्याहुं कह्यौ देवह गिरह॥

समय ७ पृष्ठ ३३५ छं० २६

[2] दिश्टी दिष्ट सनीचरी बस हिनो, हन्नोपि दुज्जं घरम।
पावारा परिहार वैर गुरयं, जद्दौरु चौहानयम॥
सो गिरनारि समस्त संयुत कला, भारत्थ नो द्रिष्ट्यम।
सा वाला वर बैर गेह तिगुना, के कै न गे राजयम॥

समय ७ पृष्ठ ३३१ छं० १६

उसे पत्र लिखा गया, वह उसके पास पहुँचा, जिसे उसने दूसरे दिन जगने पर पढ़ा, जो आबू राजवंशी सलखानी द्वारा गिरिनारी बोली (गिरिनारवासी होने से उसकी भाषा) में लिखा गया। १

गिरिनार का श्रेष्ठ राजा, सिन्धु वट्टी, (हट्ठ वट्टी, सेखा वाटी, इसी तरह सिन्धु वट्टी शब्द का रूप है, जिसका अर्थ होता है सामुहिक देश या रास्ते) का शाह, तेज का समूह, शत्रुओं को हाथों से नष्ट करने वाला, गुजरात का सहायक, शस्त्र बल से संसार की अगेला रूप, प्रतिहारों के स्वामी नाहरराय ने दूत के आने पर अपने दूत चौहान (सोमेश्वर और पृथ्वीराज) के पास पठाये, जिससे दोनों में द्रोह, जरा योवन के समान बढ़ गया और एवं सामंतों में असंतोष छा गया (सब लड़ने को तैयार हुए)। २

पक्षी को देखकर बाज, मृगों को देखकर मृगराज, गाओं को वन वन में हाँकने को ग्वाल, दूसरी शाखा पर लगने को जैसे मुहाल (मधुमक्खी) और हवा के बल से जैसे बद्दल चलते हैं; उसी प्रकार नाहरराय (नाहरराय के बदलने) को देखकर युद्ध के लिये पृथ्वीराज सत्र नहीं कर सका, अर्थात् अपने कार्य के लिये चल पड़ा और लंका के त्रिकूट की शंका देने वाले भारी गिरिन्दगढ़ (गिरिनार

---

१ भयो प्रात जागत दुतिय, वंचि सु कग्गद पानि।
आबूरा सलखानि लिखि, वर गिरिनारी बानि॥

समय ७, पृष्ठ २३२, छंद १९

नोट—ऊपर के दोहे में सलखानि द्वारा पत्र लिखे जाने का उल्लेख है उसका तात्पर्य यह है कि, प्रमार क्षत्रियों का बागड़ और गुजरात से सम्बन्ध रहा है। संभव है आबू राजवंशी सलख जैत्र उधर की भाषाओं से जानकारी रखता हो, इसलिये उससे पत्र लिखवाया गया हो।

२ वर गिरिनारि नरेश, सिन्धु वट्टी सुरतानम्।
तेज तुंग तप तेज, बैर भंजे अरि पानम्॥
वर गुज्जरवैसाहि, जगत अड्डो सु शस्त्र बल।
तिन मुक्कलि दिय दूत, राज संभरिय खिति खल॥
परिहार नाह नाहर नृपति, दूह बढ्यो इक इक्क अग।
जानेकि जरा जुब्बन दुवन, सामन्तां संतोष भग॥

समय ७ पृष्ठ २३२ छंद २१

गढ़) को गिरा कर निरर्थक करने का विचार किया।[१]

अष्टमी रविवार को जब योगिनी आठों दिशाओं पर सहायक थी, बारहवें स्थान पर सूर्य, अनिष्ट-स्थान पर मंगल, चौथे गृह पर चन्द्रमा था, तब दूत आगे बढ़े और पृथ्वीराज शकुन मना कर पिता की आज्ञा ले उनके चरणों में वन्दना करके वज्रभुश्र (श्री कृष्ण के पौत्र वज्र दामन का शासन द्वारिका पर रहा इसलिए उस ओर की पृथ्वी को वज्रभू लिखा गया, या कठोर पृथ्वी) की ओर प्रयाण किया।[२] उधर अपने सामन्तों को बुला कर नाहरराय कहने लगा, आखेट के बहाने युद्ध के लिए पृथ्वीराज सजा है, यह बात दूत सुन कर आये हैं, अतः अब अपने को असावधान नहीं रहना चाहिये और भूमिधर (गिरी, गिरिनार या पहाड़ों) को दृढ़ गहना चाहिये। क्योंकि सोमेश्वर के प्रेम के कारण ही पृथ्वीराज को माला पहनाई थी और उनमें व हमारे में भेदभाव नहीं था, किन्तु अब तो कुछ और ही बात हो गई है।[३]

---

१ चलत पंखि पिखि बाज, पिक्खि मृगनिमन।
गोधन चरत गुवाल, हंकि ले चलत बननि बन ॥
महु तजि चलत मुहाल, अन्य तरु शाख लगन कहँ।
बद्दल बिसद विशाल, चलत वसि पवन गगन महँ ॥
तिमि नाहरराय नरिंद पिखि समर (सत्रर) सहिन सक्कहि सकज।
गिरि लंक संक सम गड़ गरुअ, मिरिदँ पारि किज्जै अफज ॥

स० ७ पृ० ३३८ ॥ छंद सं० २२

२ दिन अष्टमि रविवार; राज शुभ मण्डि प्रस्थानम्।
अष्ट दिशा जोगनिय, भई सहाय सु ध्यानम् ॥
अष्ट च्यारि भय भान, राज दे अर्व वधाइय।
इनमें भौम अनिष्ट, चंद चौथे ग्रह आइय।
चल्ले नरिंद घप (घमि) दूत तब, मन आनन्द सु चंद हुअ।
पृथिराज तात अग्या सगुन, चर वन्दि चलि वज्ज भुअ ॥

स० ७ पृ० २४० छं ५५

३ सुभट सकल लिय बोलि, पुच्छि परिहार तिनहिं मत ॥

इधर पृथ्वीराज ने आगे बढ़ने के लिये योवनराय को नियुक्त किया और कहा को मरुधर के अगुए (उपाधि रूप में मरुधर का अगुआ नाहरराय को कहा गया) के गुजरात खण्ड में जो ग्राम हैं, उसके रास्तों की जाँच करता हुआ आगे बढ़ना; अब उस (नाहरराय) का सम्बन्ध स्वप्न तुल्य है, इसलिये हमें चढ़ाई करना आवश्यक है। परन्तु वहां के रास्ते अंध-प्रकृति के समान टेढ़े मेढ़े हैं और वन-पंक्ति युक्त तथा बिना देखे (बिना जांच किये) नहीं देखे जा सकते, जिनके आडे पर्वत (पहाड़ और पर्वतराय) हैं। अतएव बिना भेद लिये काम नहीं चलेगा[1]।

जोवनराय ने सूचित किया कि, सत्य है गुजरात के आडी पर्वत श्रेणी है। लोहाना आनाजबाहु ने वहां के पल्ली (भील मीणों आदि के निवास स्थान) मार्ग को रोका है, किन्तु नाहरराय तिरछा होकर निकल गया। बहुत प्रयत्न करने पर भी वह नहीं मिला[2]। उधर जंगली जाति का जहाँ निवास था, उस

चाहुवान पायान, कहत आखेट जुद्ध वत ॥
तनक भनक सी कान, दूत इत्तह सुनि आये।
अप्प अचेत न रहो, धरो "धरभूमि" सदायें ॥
सोमेस हसहिं कछु ह्वै नहीं, तिन सु हित्त माला दई।
तब तो सनेह कछु और हो, अब तो कछु औरे भई ॥
स० ७ पृ० ३२१ छं० ६५

[1] तग्गै सु जोवनराइ, सूर साह्यौ चहुवानम्।
तुम गुज्जर वै खण्ड, ग्राम मुरधर अगिवानन् ॥
पंथ पंथ परवान, धाइ अगिवानी किज्जै।
सगा सपन जंपिये, हमनि आरोहि सु लिज्जै ॥
वामान पंथी अंधी प्रकृति, बिन दीट्ठे दिट्ठे न कछु।
वन पंत अद्धु प्रब्बत रहे, भेद बिना जाना हिं न कछु ॥
स० ७ पृ० ३४३ छं० ७०

[2] तब्ब सु जोवनराय, वत्त जपै चहुआनन् ॥
अद्ध पंथ परवत्त, सत्त गुज्जर घर मानम् ॥
लोहानो आजान, पंथ बंध्यो चालुक्की।
नाहरराय नरिंद, गयो तिरछौ भुव मुक्की ॥

पर्वतीय घाटे (नाके) पर वह नाहरराय का भेजा हुआ पर्वतराय, पर्वत के समान होकर डट गया[१]।

युद्ध के बाद नाहरराय ने भाग कर पट्टन के कोट में प्रवेश किया। आगे देव दशमी के दिन पट्टन नगर में पृथ्वीराज का अभिषेक (विजयोत्सव) हुआ, तब गुरु रवि नवम पाँचवें, शशि ग्यारहवें, मंगल तीसरे, और शुक्र सातवें था। तथा केन्द्राय बुद्ध और राहु.................हीन था[२]। नाहरराय युद्ध को छोड़ कर भाग गया और पृथ्वीराज ने विजय करके यश प्राप्त किया। चन्द लिखता है, मल्ल परिहार ने बुरी सम्मति की (यहाँ मल्ल शब्द संज्ञा वाचक मानाजाय तो नाहरराय का नाम मल्ल भी हो सकता है, एक जगह इसी समय में मेलान भी लिखा गया है, उसका अर्थ मल्ल और कूंच करना होता है। मल्ल शब्द संज्ञा वाचक नहीं मानें तो उसका अर्थ "मिलकर" भी होता है। जिससे पूरे चरण का अर्थ 'परिहार" ने मिलकर बुरी सम्मति की) जिसके कारण युद्ध हुआ, किन्तु युद्ध के बाद शादी के लिये पृथ्वीराज ने सु सलाह स्वीकार की, इसलिये पंचमी रविवार की रात्रि को जिस दिन गंज नामक गुरु योग था, उस समय में गिरि (गिरिनार) पर नाम करने को शादी के लिये जिसके हृदय में वीरता का अंश है, ऐसा वीर पृथ्वीराज चढ़ा[३]।

... तिहि ठाम चूक चित्यौ हुतो, नाहरराइ न पाइया ॥

स० ७ पृ० ३४२ छं० ७१

१. जहँ पब्बय घाटी हुतो, मीना मेर मवास।
प्रब्बत सों प्रब्बत मंड्यो, अनमी जोधन त्रास ॥

स० ७ पृ० ३४२ छं० ७६

२ देव दसमि के दीह, नयर पट्टन चहुआनम।
गुरु पंचम रवि नवम्, सुधर ग्यारह ससि मानम्॥
तीय थान वर भौम, शुक्रसत्तम वल किन्नौ।
केइन्द्री वल बुद्ध, राह सव कौंद अहिन्नो ॥
आनन्द चंद वरदाइ धन, राज भिषेखन पट्टि करि।
साजन्त भूमि जीते सुभर, तेज तुंग दुज्जन सुहरि ॥

स०७पृ०२६२ छं०१६६

३ नट्टा नाहरराय, खेत दुंढ्यौ चहु आनम्।

इतर छंदों में भी नाहराय को चालुक्य के गृह पट्टन का मुखिया बतलाया है,[1] और इस युद्ध के लिये पृथ्वीराज का अजमेर छोड़कर पट्टन प्रान्त को पहुँचना,[2] चौहानी सेना के समूह इकट्ठे होकर गिरनार और सिन्धुवट्टी (समुद्र-तटीय प्रदेश पर गर्जना,[3] तथा विजय के पश्चात् एकत्रित होकर गिरनार ग्राम में मुकाम करना लिखा है।[4]

उपरोक्त वर्णन से मंडोवराय (मंडोवरह, "मंडोवर", मंडोवरा) मारू-मरद और मुरधर का अगुआ नाहरराय (मल्ल) के वंश सूचक विरुद थे।

नाहरराय को गिरनारी लिखा जाना, गिरनारी भाषा में उसे पत्र लिखना गिरनार नरेश और सिन्धुवट्टी का शाह उसके लिये कथन किया जाना, उसका अपने वीरों को भूमिधर (गिरि, गिरिनार या पहाड़ों) को दृढ़ गहने का कहना, गुजरात खण्ड में उसके ग्राम होना, उसकी भूमि के आसपास जंगली

राज जीति जस लब्भि, शीश लग्गा असमानम् ॥
तुम "मल्लह" परिहार, मम किन्नो अमित्त जुध।
वरन वीर संमुहो, राज लग्गो सुमत्त सुध ॥
पंचमो व र रत्ति रात दिन, गंज नाम वर जोग गुर।
"गिरि" नाम करन राजन्न वर, चल्यो वीर वीरंस उर ॥

स० ७. पृ० ३६५, छं० १७६

नोट:—इस पद्य में "मल्ल" शब्द संज्ञा वाचक आया है। अतः सम्भव है, इसका मुख्य नाम मल्ल प्रतिहार हो। नाहरराय मुख्य पूर्वज की तुलना की शैली के रूप में लिखा गया हो। इसी तरह महंसी प्रतिहार को भी उसी शैली के रूप में एक दो स्थान पर कवि ने नाहरराय लिखा है।

१ चालुक्का परधान गृह पट्टन नाहरराय।

स० ७, पृ० ३४४, छंद ७३

२ मुक्की सु भूमि अजमेर राज, पत्तो सु जाय पट्टन समाज।

स० ७, पृ० ३४८, छं० ६६

३ गिरिनार देश अरु सिंधु वट्ट, गज्जें सु गाज सजि घट्ट-घट्ट।

स० ७, पृ, ३४८, छं० ५७

४ सब सत्थ तत्थ हुअ एक ठाम, मुक्काम कीन गिरिनार ग्राम।

स० ७, पृ० ३६४, छं० १७२

जाति का निवास बतलाना, युद्ध के बाद पट्टन के कोट में उसका शरण लेना तथा पृथ्वीराज का गिरिन्दगढ़ (गिरि, गिरिनार) को ध्वंस करने का विचार करना और वज्र भू (द्वारिका के ओर की पृथ्वी) को जाना, जुब्बन (यौवन) राय से पृथ्वीराज का कहना कि शत्रु की भूमि के रास्ते विकट हैं, तिस पर यौवनराय का सूचित करना कि गुजरात के आड़े पर्वत हैं, वहाँ के पल्ली भागों को लोहाना आजान-बाहु ने रोका, लेकिन शत्रु निकल गया।

युद्ध के बाद पृथ्वीराज का पट्टन में विजयोत्सव मनाना और गिरि (गिरिनार) पर शादी होना लिखा जाना, तदुपरान्त इतर छंदों में भी पट्टन-पति के गृह का मुखिया नाहरराय को कहा जाना, पृथ्वीराज का अजमेर छोड़ युद्ध के लिये पट्टन प्रान्त को जाना। सेना का गिरिनार और सामुद्रिक प्रदेशों पर गर्जना करना और युद्ध के बाद गिरनार ग्राम में मुक्काम होना, इत्यादि विषय नाहरराय का सम्बन्ध गुजरात और गिरनार प्रान्त से बतलाता है और युद्ध भी गुर्जर और गिरिनार भूमि पर ही हुआ, जिसमें चालुक्यों का भी हाथ था, यह सिद्ध होता है। तदुपरान्त शादी भी गिरिनार पर ही होना पाया जाता है।

यह भी निश्चय है कि पृथ्वीराज की प्रथम शादी ग्यारह वर्ष की अवस्था में न होकर, इन प्रमाणों से उसके आठ वर्ष के होने पर सम्बन्ध हुआ और सम्बन्ध के दस वर्ष बाद (या पृथ्वीराज के सोलह वर्ष का होने पर) नाहरराय बदल गया, जिससे युद्ध हुआ और बाद में नाहरराय की पुत्री से पृथ्वीराज को शादी हुई।

(ख) सलख जैत्र के वर्णन सम्बन्ध में—

आबू राजवंशी सलख जैत्र किस स्थान के थे, यह बतलाने से पूर्व रासोकार (चंद) की विविध शैलियों में से एक शैली का यहां दिग्दर्शन कराते हैं। कविचंद प्रत्येक प्रमार क्षत्रिय को आबूपति, धाराधनी और उज्जयनी राव कहता है[1]।

---

१ पावस प्रमार के सम्बन्ध में—"उन्नयो धार धारहधनी"

सं० ७, पृ० २५, छ० १०७

सलख प्रमार के सम्बन्ध में—

"सो जुझ्झ पार धारहधनी"

॥ सं० ६१, पृ० १७७० छंद १३०१

जैत्र प्रमार के भाई के सम्बन्ध में— [इतर छंदो में]

"नृमं जैत-बंधं परथो धारनाथम्" ॥ सं० १२, पृ० ५१७ छं० ३६५

प्रतिहार वीर को मंडोवराय;[1] गौर वीर को अजमेर पति;[2] कछवाहे वीर को नरवर-नरेश व आमेर-पति;[3] गुहिलोत वीर को आहुट्ट-नरेश, आहुट्ट पति

जैत्र प्रमार के सम्बन्ध में—

"दइ दुवाह धारहधनी" ॥ सं०६१, पृ०१६६५, छं० ६६

"चढ़े धार धारहधनी" ॥ सं०६६, पृ०२१६०, छं०५०४

"अब्बूपति जप सब्ब किय" ॥ सं०६१, पृ०१६३०, छं०२३६२

सारंगीपुर के प्रमार भीम के वर्णन में—

"वर उज्जैनीराव, जीति पावार सु भीमं" ॥ सं०३२, पृ०६६५, छं० २,

"बंधि लीनें उज्जैनी" ॥ सं०३३, पृ०१०२४ ॥ छं०४८,

"वर वीर धार पँवार सेना परे सोम अलुभभ्भयम्" ॥ सं०३३,

पृ०१०२४ ॥, [इतर छंद] छं० ४७

१ नाहरराय प्रतिहार के सम्बन्ध में—

उसका सम्बन्ध गुजरात काठियावाड़ (गिरनार और द्वारिका के आसपास की भूमि) से होते हुए भी उसे मंडोवग्रह (मंडोवरा), मंडोवरराय, मारू-मरद, मरुधर का अगुआ लिखा गया है, जिसका उल्लेख पहले कर चुके हैं।

२ केहरी गौर के संबन्ध में—

"केहरी गौर अजमेर पति, पर्यो जुभ्भि मन भाइनो" ह० लि० प्रति

(गौड़ क्षत्रीय पहले अजमेर के शासक रह चुके। इसलिये अजमेर-पति लिखा गया)।

गोरंग गोर के सम्बन्ध में:—

"गोरंग गरुव अजमेरु पति" ॥ सं०६१, पृ०१८८६, छं०२०६७

३ आमेर पति कछवाहे पज्जून के वर्णन में:—

"नलह वश नलवर नरेश, ईश दिल्ली दल गल्यौ ॥ छं०५३, पृ०१४०५, छं०२६

(कछवाहों के पूर्वज पहले नरवर पर राज्य करते थे इससे नरवर नरेश लिखा गया)।

और चित्रकूट नरिन्द [1] चालुक्य वीर को पट्टनराय, [2] उनके पूर्वजों और स्थानादि की स्मृति दिलाने को शासक रूप में नहीं, बल्कि विरुद रूप में लिखता है।

इस शैली को चंद या उसके जाति बन्धुओं ने ही अपनाई हो, यह बात नहीं है; बल्कि अन्य जाति के कवि भी अपनाते रहे हैं [3]। आज भी प्राचीन शैली के कविगण इसी शैली का उच्चारण करके राजाओं को आशीर्वाद देते और काव्य रचना में भी उसका उपयोग करते हैं, अस्तु. रासो के प्रेमी पाठकों को केवल पद्य के वाच्यार्थ पर ही खयाल कर अर्थ नहीं करना चाहिये, उन्हें स्थानादि के विषय में गहरे उतरकर पता लगाना चाहिये वाच्यार्थ के अनुसार सलख जैत्र आबूके ही नहीं, धार के स्वामी भी कहे जा सकते हैं, किन्तु हम उपरोक्त शैली से समझ सकते हैं कि वे आबू और धार के राजा नहीं, वहाँ के राजघराने के थे।

अब हम भोराराय समय वर्णित तेजगढ़, आगरगढ़ और नागोर व आबू के आसपास तथा गुजरात प्रान्त के अन्तर्गत सोजत्री आदि स्थानों पर सलख जैत्र के पक्ष पर पृथ्वीराज के सामन्तों और चालुक्यों के साथ जिस कारण से युद्ध हुए उसको बतलाते हुए सलख जैत्र प्रमार का स्थान कहाँ था, उसे रासो से ही स्पष्ट करते हैं।

---

१ गोइन्दराय गुहिलोत के सम्बन्ध में—

"राज अग्ग गोइन्द, वीर आहुट्ठ नरेसर।" स०६१, पृ०१६३४, छं०३८१

"गोइन्दराज आहुट्ट- पति,सुगति मग्ग खुल्लिय दरिग।" स०६१, पृ०१७६७ छं०१७७४

चित्तौड़ पति रावल समर-विक्रम के भतीजे कन्हा के बारे में:—

"चित्रकूट कन्हा नरिन्द।" स०६६ पृ०२११० छं०, ३७

२ जुब्बनगढ़ के चालुक्य रणधीर के वर्णन में—

"खबर भई रावर समर, दोर्‍यो पट्टनराय।" स० ६६, पृ० २११०, छं०३३

३ देखो "कर हेरिया रायसो;" जिसमें करहेरिया के प्रमार क्षत्रियो का वर्णन करता हुआ वि०सं० १८०० के आसपास गुलाब कवि माथुर चतुर्वेदी आंतरी निवासी ने उन्हें कई जगह "धाराधनी" लिखा है। इसका तात्पर्य यही हो सकता है कि करहेरिया के प्रमार क्षत्रिय धार के प्रमार राजवंश में थे। ऐसे प्रमाण कई दिये जा सकते हैं, किन्तु स्थानाभाव से यहाँ केवल एक ही उदाहरण दिया गया।

भोराराय समय में लिखा है कि भोलाभीम के अंग स्वरूप वीरों ने जैन धर्मावलम्बी होने से शिवपुरी मारवाड़ में शियाना या नागोर के समीप संभवतः कोई देवस्थान हो) को जला दिया, जिसकी सूचना सलख जैत्र ने पृथ्वीराज को दी [1]। वह वीर चाहुवान दिल्ली का सूर्य, रानी इच्छिनी का पति, साक्षात् वीर रसावतार, दृढ़ प्रतिज्ञ था [2]।

उधर आबू राज वंशज (सलख जैत्र) भी अभंग वीर था [3]। उसने तलवार जमीन पर फटकार कर अपने भाइयों से कहा—"हल्लों (हमला, आक्रमण) और गल्लों (झूठी धमकी) से पृथ्वी देदेने की मूर्खता कैसे की जा सकती है ? भोरा भीम के भ्रातागण पाखण्ड प्रकट करते हैं। उनके यहाँ आकर्षण, मोहन-मंत्र और तंत्र की ही (यंत्र-तन्त्रादि की यति और जैन धर्मावलम्बियों में अधिकता मानी गई है) प्रमुखता है। वे मुख्यतः द्रव्य बल से ही देशको वश में करना जानते हैं; किन्तु उन्हें यह ज्ञात नहीं कि मैं उत्तर में (आबू के उतरी भाग पर) अड़ा हुआ हूँ [4]।

---

१ भोरा राय भीमंग, सोर शिवपुरी प्रजारिय।
आरज सांड् सलक्ख, राज संभरि संभारिय ॥

स० १२ पृ० ४४७ छंद १

२ तपै तेज चाहुवान भान ढिल्ली इच्छावर।
वीर रूप उपन्नो, पन्नु रक्खै करि वर कर ॥

स० १२, पृ० ४४७, छंद २

३ "अब्बू नै अनभंग" .... स० १२, पृ० ४४७ छं २

४ तेग झारि पंमार, जैत जग हथ्थ वत्त किया।
मंगै हैल सु गल्ह, तात अविवेक छित्ति दिय ॥
भोरा भीम नरिन्द, वंध पाषंड प्रगट्टे।
आकर्षन मोहन मंत्र, जंत्र जुग जुग जे घट्टे ॥
धन द्रव्य देस वलि बल करन, जाने ना उत्तार अरयो।
धाराधिनाथ धारी धराने, बल वेलह नायह भरयो ॥

सं० १२, पृ० ४५४, छंद ३८

उस वीर सलख जैत्र ने विपक्षी द्वारा अपनी प्रजा को उजाड़ी व जलाई जाने पर युद्ध में रत होकर सामना किया। इसके बाद सामन्तों के स्वामी पृथ्वीराज से मिलकर एकता करने को उद्यत हुआ और उस मरु देश स्थित नागोर प्रान्त निवासी अर्बुद राजवंशीय सलख-पुत्र-जैत्र ने तेजगढ़ पर होने वाले आक्रमणों के उद्धार का भार क्षेमकर्ण और खगार के सिरपर छोड़ा[१]। साथ ही सलख जैत्र के भाइयों में क्षेम करण खंगार महनसी, गोविन्द और त्रिलोचन नामक पांचों भाई पाण्डवों के समान स्वामी की युद्ध जनित आपत्ति को दूर करने वाले थे। इनके सिर पर दुर्ग-रक्षा का भार सौंपा गया। उसमें से गोविन्द-सलखानी, राजा जैत्र की प्रभा बनी रखने जैसा और युद्ध में भ्रम फैलाने वाला था। इन पाँचों भाइयों ने स्वामी धर्म का भली प्रकार पालन करते हुए अपने स्वामी को बड़ी कठिनाई के साथ दुर्ग से विदा किया। वह सलख जैत्र, अर्बुद से उत्तर प्रान्त के दुर्ग का स्वामी आबू नरेश से विलग होकर रहा[२]।

वह विदा होकर पृथ्वीराज के भूभाग की ओर देवता को साक्षी बनाता

धन द्रव्य देस बलि बल करन, जाने ना उत्तर अरयौ
धाराधिनाथ धारी धराने, बलह वेल नाथ हधरयौ

स० १२ पृ० ४५४ छं० ३८

१. प्रजा जारी उज्जारि, ममहि संमुह रण रत्तिय।
ता पच्छे सामंत नाथ इक्कहि मिलि वत्तिय ।।
आरब्ध तेजगढ़ उद्धरण, खीम करण खँगार सिर।
मुर देस सलख सुत जेतसी नव सु कोंट नागौर नर ।।

देवलिया प्रति ह० लि० छं० ७५

२ खेम करन खंगार, महन गोयन्द त्रिलोचन।
पंच भृत्त पंचौ सुबन्ध, स्वामि संकट रन मोचन ।।
लै सुंप्यौ सिर भार, मनो पण्डिवति पंच सम।
गोयन्द सलख नरिंद, जोति रक्खन भारत भ्रम ।।
उत्तरिय गढ़ आबू धनी, रहिय विनय आबू नृपति।
कढ्यौ सु भृत्त नृप नीठ कै, स्वामि ध्रम्म रक्खन सुमति ।।

स० १२ पृ० ४५६ छं० ५०

हुआ आगे बढ़ा और जाते समय उसने अपनी प्रजा को खट्टू की ओर रक्खा। इस प्रकार वीर सलख जैत्र को अपना बल छोड़ते हुए (विपत्ती के कारण दुर्ग छोड़ते हुए) देखकर पृथ्वीराज ने उस (सलख जैत्र) को अपने हाथ से परवाना लिखा। इस परवाने में लिखा कि मुझ सोमेश्वर के पुत्र पृथ्वीराज को कुमारी इञ्छिनी देकर सम्बन्ध जोड़ लो, जिससे आई हुई आपत्ति से बच सको[1]।

इधर राजा के उद्धार के लिये (आपत्ति दूर करने को) क्षेम कर्ण ने दृढ़ता पूर्वक गढ़ को पकड़े रक्खा और कहा—"वीर पुरुष योग-पथ द्वारा मोक्ष को प्राप्त नहीं करते, किन्तु तलवार के रास्ते मोक्ष प्राप्त करते हैं। सिद्ध पुरुष बहुत से साधन कर योग का आरम्भ विचारते हैं; किन्तु हम उपरोक्त साधनों को छोड़ देते हैं और सत, तम, रज के फल को ग्रहण करते हैं। हम क्षमा का भी पालन करते हैं, किन्तु हमारे क्षमा पालन में कोई स्थिरता नहीं रहती (अर्थात् शत्रु की रक्षा के लिए कोई स्थान नहीं)। इसलिए जब हम पाँचों मर कर पृथ्वी पर पड़ जायँगे, तब ही शत्रु हमारी इस पृथ्वी को दबा सकेगा और हमारे बड़े भाई गोविन्द के पड़ने पर ही गुर्जर प्रान्त निवासी तथा आबू वाले की दुहाई हमारे दुर्ग पर फिर सकेगी[2]।

---

१ बध्यौ राव धर्मनि, वीर पामर सुर सक्खी।
प्रजा पुलंत नरेश, ग्राम खट्टू दिसि रक्खी॥
वर मुक्कि वीर धारह धनिय, हथ्थ राज परवान लिखि।
सोमेस पुत्र पृथिराज को, दै इंछिनि सगपन सु विखि॥

स० १२ पृ० ४५६ छंद ४२

२ वर उद्धरन नरिंद, खेम कन्नह गढ़ साहिय।
जोग मग्ग लभ्भियन, खग्ग मग्गह मुति पाइय॥
वहुत सिद्ध साधन सुमंडि, जोग आरंभ विचारिय।
मुक्कि त्रिगुन गुन गहै, छिमा सद्धै क्रम नारिय॥
हम परत भूमि पंचह सुभग, पहिलै मोधर चंपि है।
गोइन्द परै वड़ गुज्जरै, आबू आनि सु जंपि है॥

स० १२ पृ० ४५६ छं० ४३

वीरों का आदर कर; उनके गर्व पर आसोजें (ओसिया) वेहाने, सोनगिरि, संथार और शिवाने के प्रमारों को दुर्ग छोड़ने का आदेश दिया. वह छत्रपति उनके शरीर को ग्रहण रूप होकर लगा। इस पर राजाओं के गुरू पृथ्वीराज ने क्रोध में आकर तरकस बाँधा[1]। इधर से खट्टू की ओर प्रस्थान करने का साधन कर जैत्र प्रमार ने अपने परिवार को एकत्रित किया और पृथ्वीराज को पत्र लिखा[2]। तिस पर पृथ्वीराज ने मतवाली मेवात भूमि और हिंसार उसके खर्च के लिये देकर उसको शरण में रख लिया[3]। इसकी सूचना चालुक्यराय को मिली कि पृथ्वीराज के साथ राजकुमारी इन्छिनी का विवाह कर सलख प्रमार पृथ्वीराज को शरण में चला गया है और उसके भाइयों ने अपने दुर्ग को दृढ़ता पूर्वक पकड़ रखा है। तब उसने मंत्री को सजने के लिये कहा। भयंकर बाजे बजने लगे[4]।

सलख जैत्र के भू भाग पर पहुँचने पर पूरी अर्द्ध रात्रि भी न हो पाई थी। उस समय उसके (भोरा भीम के) सामंतगढ़ में प्रवेश कर गये। जिससे हल चल मच गई यह सब कार्यवाही भेद नीति से हुई, जिससे प्रमारों का बल नष्ट होगया,

---

१ आसौजे राणिग, राइ पर्वत बैहानैं।
सोनगिरी संथारि राइ सव्वंत सिवानैं॥
चारुवक्कि चालुक्क, राउ भोरा भुव पत्तिय।
कढ़ि अफौं पामार, पिंड लग्गौ छत्र पत्तिय॥
आरध उधाईं मंडली, गुज्जर राइ गव्विरयौ।
प्रथिराज राज राजंग गुरु, तक्कि तरक्कस बंधियौ॥
सं० १२, पृ० ४५६, छंद ५४

२ सकल परिग्गह एक किय, खट दिस पूजा सद्धि।
कागर दै चहुआन कौं, पठइय दूत समद्धि॥
सं० १२, पृ० ४५८, छंद ६१

३ धर मत्ती मेवात, धन्न हंसार सुखंचम्।
सं० १२, ४५९ छंद ६७

४ गढ़ साह्यौ सुनि भीम नै, कन्या वर प्रथिराज।
बोलि मंत्रि सज्जन कह्यौ, दुहूँ बाजयें बाज॥
सं० १२, पृ० ४५९, छंद ६९

फिर भी वे पाँचों प्रमार (खेम करन, खंगार आदि पाँचों भाई) युद्ध करते हुए पंच तत्व में मिल गये। केवल पराजय का अभिपाप (मिथ्यावाद) पृथ्वी पर रह गया[१]। इस युद्ध में चालुक्यों की विजय हुई और सलख जैत्र के गढ़ पर उनका अधिकार हो गया। गुजरेश्वर एक माह पाँच दिन गढ़ पर रह कर अपनी राजधानी पट्टन (अनहलपुर) को चला गया और सलख जैत्र के दुर्ग का भार आबू नरेश के सिर पर छोड़ गया[२]। पट्टन जाकर चालुक्य राज ने पृथ्वीराज से सलख जैत्र को शरण में रखा-उसका वैर लेना चाहा और शहाबुद्दीन गोरी को इस कार्य में साथ देने के लिए दूत द्वारा पत्र भेजा; किन्तु बादशाह चालुक्य से मिलकर पृथ्वी-राज से युद्ध करने के लिये मना कर गया और वह गोरीशाह अकेला पृथ्वीराज से युद्ध करने को उद्यत हुआ। इधर से चालुक्यों ने भी सलख जैत्र के प्रान्त नागोर की ओर आक्रमण किये; तब पृथ्वीराज ने कुछ सामंतों के साथ कैमास को नागोर रक्षा का भार सौंप कर[३] स्वयं बादशाह से सामना करने को दिल्ली से रवाना हो गया[४]। कैमास और उसके साथी सामन्तों ने नागोर, सोजत्री, आदि स्थानों पर युद्ध किया और उन जैन धर्मावलम्बी चालुक्यों और चालुक्य नरेश को पराजित किया[५]।

इस से यह स्पष्ट होता है कि, कवि का, जैत्र सलख को, अब्बूवा, अब्बूवै, धाराधिनाथ आदि लिखना शासक रूप में नहीं वरन वंश या पूर्व स्थान सूचक शैली को लिए हुए है। इससे सलख जैत्र को आबू और धार राज वंशज ही मानना चाहिये।

---

१ चल्यो मौर मीमद सुभग, अच्छरिणी निसिअद्ध। रोरि परी गढ़ उप्परै, भेद सबै बलु रुद्ध॥

स० १२ पृ० ४६२ छंद ६२

पामार पंच पंचह मिलै, रह्यो इक्कु औसाफ धर। स० १२ पृ० ४६४ छंद १०७

२ एक मास दिन पंच रहि, गढ़ मुक्यौ तिनबार।

पट्टन वै पट्टन गयो, अब्बू वै सिर भार॥ स० १२ पृ० ४६५ छंद ११९

३ मतो मंडि नागोर, राइ कैमास विचारं। ह० लि० प्रति

४ रोकि मुक्ख सुरतान को, चाहुवान दै वान॥ स० १२ पृ० ४७८ छंद १८६

५ जिन थक्का जरि देव, सेन थकी मातगी। स० १२ पृ० ५१० छंद ३५६

अर्थात्—वे जैन धर्मावलम्बी देवालयों को जला जला कर थक गये और उसके उत्तर में पृथ्वीराज के वीरों की मस्तानी तलवार विपक्षियों पर चल चल कर थक गई।

"भोराराय समय" में भोरा भीमं के योद्धाओं का सलख जैत्र के बंधु-क्षेम कर्ण खंगार आदि के साथ युद्ध होने का कारण राजकुमारी इच्छिनी नहीं कही जा सकती। इस युद्ध का हेतु इसी समय में चालुक्यों का जैन धर्मावलंबी होने से शिवपुरी (मारवाड़ में शिवाना या नागोर के पास कोई देवस्थान) तथा अन्य देवस्थानों को जलाया जाना बताया जा चुका है। अतः इच्छिनी के कारण जो युद्ध होना लिखा गया है, उन छंदोंको क्षेपक छन्द ही मानना चाहिये। इच्छिनी-विवाह समय अलग लिखा गया है। वह भी किसी अन्य कवि द्वारा ही विवाह के विषय वर्णन का विस्तार हुआ है। इसी समय में हम ऊपर बता चुके हैं कि छंद संख्या २ में पृथ्वीराज को इच्छावर (इच्छिनी का पति) लिखा जा चुका है। इसी प्रकार छंद संख्या १८ में "कन्यावर पृथ्वीराज" लिखकर कवि संक्षेप में स्पष्ट कर देता है कि सलख जैत्र ने अपनी सहायता के लिये पृथ्वीराज को अपनी कन्या (राज कुमारी इच्छिनी) ब्याही थी। सलख जैत्र के स्थान के विषय में इस समय द्वारा यही निश्चय होता है कि वह आबू से उत्तरी भूभाग का स्वामी था और नागोर (मारवाड़) के आसपास उसका दुर्ग था; जिसका नाम तेजगढ़ या आगरगढ़ (अगर गढ़) था। चालुक्यों ने सलख जैत्र पर ही नहीं, वरन् आसोजे, वेहाने, सोनगिरी, संथार और सिवाने वाले जो कि उसी के वन्धु प्रमार क्षत्रिय थे उनपर भी आक्रमण किया था। अस्तु सलख जैत्र का स्थान नागोर के निकट ही माना जा सकता है और वह आबू राजवंशी होते हुए भी आबू-पति से अलग होकर रहा एव पृथ्वीराज की शरण में गया। अस्तु शंका-कर्त्ताओं का क्षेपक अंशों के आधार पर सलख जैत्र को आबूपति मानना केवल भ्रम मात्र है। पृथ्वी-राज को जो राजकुमारी इच्छिनी ब्याही गई वह आबू की राजकुमारी नहीं थी, वरन् आबू राजवंश की राजकुमारी थी।

(ग) दाहिमी रानी के सम्बन्ध में:—

जिन सु ब्रह्म सावन खुलै,। सं० १२, पृ० ५१० छंद ३५८

अर्थात्:—जैन धर्मावलम्बियों के लिये उन वीरों ने ब्रह्म-सम्पर्क के साधन का द्वार खोल दिया।

"जन सहू धरि छत्र, मंत्र निव्वह्यौ मंडि सिर" सं० १२ पृ० ५१६ छंद ३९२

अर्थात्:—प्रत्येक जैनी ने चाहुवानीं वीरों की मंत्रणा को छत्र पर धारण किया।

रासो में स्पष्ट होता है कि चावंड और कैमास (कदम्ब वास) दोनों भाई थे। यह दाहिमी रानी उन्हीं की बहिन थी। कैमास पृथ्वीराज का मंत्री था. यह बात इतिहास प्रसिद्ध है। तब कैमास और चावण्ड की बहिन से शादी पृथ्वीराज की शादी होने में कोई शंका नहीं रहती। शंका-कर्त्ताओं ने इस विषय पर शंका करते हुए यही एक प्रमाण उद्धृत किया है कि पृथ्वीराज के पुत्र का नाम रेणसी नहीं गोविन्दराज था; किन्तु रासो के इतर छंदों से ज्ञात होता है कि पृथ्वीराज के रेणसी के अतिरिक्त और भी संतान थी। अन्तिम युद्ध के समय चित्तौड़पति के आने पर पृथ्वीराज के दोनों पुत्र उससे जाकर मिले थे[1]। अन्तिम युद्ध के लिये प्रस्ताव किया गया, तब उससे पूर्व पृथ्वीराज ने अपने पाटवी (बड़े) पुत्र रेणसी को बुलाया[2]। और उनसे कहा कि तुम अपने भाई को नय्यर (अजमेर) पर रक्खो[3]; पाटवी पुत्र राज्य नहीं छोड़ता, अतः तुम यहीं पर (दिल्ली) रहो[4]। इनसे समझा जा सकता है कि पृथ्वीराज के दो पुत्र थे, जिनमें बड़ा पुत्र रेणसी (चावण्ड और कैमास का भानजा) था। अन्तिम युद्ध में प्रस्थान करते समय पृथ्वीराज बड़े पुत्र से कह गया था कि तुम यहीं (दिल्ली) रहना और तुम्हारे छोटे भाई को नयर (अजमेर) पर रखना। उसी के अनुसार रेणसी दिल्ली पर रहा और अपने छोटे भाई (सभव है उसका नाम गोविन्दराज हो) का अजमेर का शासक नियुक्त किया। रेणसी पिता के बाद दिल्ली का शासक कुछ ही समय के लिये हुआ अर्थात् पिता के साथ ही उसका भी सर्वनाश हो गया। अजमेर का शासक रेणसी का छोटा भाई गोविन्दराज) हुआ, जिसका संभव है अपने चाचा हरिराज से बिगाड़ हुआ हो। रासो से पृथ्वीराज के भाइयों में हरिसिंह (हरिराय) का वर्णन हुआ है, उसी को हरिराज मानना चाहिये[5]।

---

१ "लगे पायँ कुम्मार दोनों सती।" स० ६६ पृ० २२५३ छं० २२०३

२ "बोले अगर रेंन कुमार" स० ६६ पृ० २२०४ छं० ४५४

३ "राखहु बंध (बंधु) नयर शुभ सजं" स० ६६ पृ० २२०४ छं० ४५६

४ "पाटवी पुत्र छंडहीं न रज्ज" स० ६६ पृ० २२०५ छं० ५०६

५ "बली बांह हरिसिंघ, रेह रक्खे चहुवानय"

स० मीम कैमास युद्ध पृ० १२६, २७, ६० लि० प्र० १,७७०)।

अर्थात्— बलवान (पृथ्वीराज) की भुजा स्वरूप (भाई को भुजा व्यवहारिक रूप में कहा जाता है) चौहानों की रीति को रखने वाला हरीसिंह।

(च) शशिवृत्ता के सम्बन्ध में: —

शशिवृत्ता के लिये रासो में लिखा है कि उसकी सगाई के नारियल लेकर द्विज (पुरोहित) जयचंद के यहाँ गया। उसके आने की सूचना हेजम (अश्वारोही) द्वारपाल ने कन्नौजपति को दी और वह सामने बुलाया गया। द्विज ने जयचंद से निवेदन किया कि यह सगाई के नारियल 'देवसुगिरा' (देवास गिरी) के राजा के भाई पुंज की पुत्री शशिवृत्ता के हैं और आपके भाई वीरचंद को समर्पण करने के लिये भेजे गये हैं। विवाह की नियत तिथि एक महीना पांच दिन (अर्थात् अति ही निकट) है। यह बात एक गंधर्व (गायक) ने सुनी और वह दक्षिण (कन्नौज से दक्षिण की ओर) को देवधर (देवभूमि, देवस्थल, देवस्थान, देववास देवास) की ओर चला[१]। इधर द्विज ने पुंज द्वारा भेजे हुए श्रीफल कमधज्ज को समर्पित किये[२]। उधर हंस रूप में वह (गंधर्व)[३] शशिवृत्ता के पास पहुँचा।

---

१ नालकेर दुज गहिय, द्वार जे चन्द गयो नृपु (विप)।
करी खबर हेजमहँ, आप अन्दर बुलाइ नृप ॥
नालकेर दुज आनि, कह्यो राजन अब धारी!
देवसु गिरि नृप भ्रात, पुंज शशि—वृत्त कुमारी ॥
सो दइय बंधु नृप बीर कहु लगन मास दिन पंच वर।
सुनि श्रवन एह गंध्रव्व कथ, चल्यो सु दच्छम देव धर ॥

स० २५ पृ० ७७० छंद ६६

२ "सोइ श्रीफल कमधज्ज, दियौ सुइ अब्ब पुंज नृप"।

स० २५५ पृ० ७८८ छंद १६०

३ गंधर्व (गायक) हंस रूप में शशिवृत्ता के पास भेजना कवि कल्पना है, इससे यही समझना चाहिये कि शशिवृत्ता की सगाई वीरचंद से हुई उसकी सूचना शशिवृत्ता को गायक द्वारा मिली! इसी प्रकार हंस (गायक) का कहना कि, हे शशिवृत्ता तू पहले चित्ररेखा अप्सरा थी, इससे यही मानना चाहिये कि शशिवृत्ता चित्ररेखा सी सुन्दर थी। तदुपरान्त पृथ्वीराज के पास शशिवृत्ता का संदेश लेकर हंस के जाने से भी गायक का ही जाना समझना चाहिये। इत्यादि कल्पनाएँ कथा को सुन्दर रूप देने के लिये की गई हैं, यह शैली प्राचीन ग्रन्थों और पुराणादि में अधिकतर देखी गई।

तब उससे राजकुमारी शशिवृत्ता ने पूछा, मैं पूर्व जन्म में कौन थी और मेरे इस जन्म में कौन पति लिखा है ? तब हंस (गायक) बोला, हे राजकुमारी तुम पूर्व जन्म में चित्ररेखा नामक अप्सरा थी और तुम में गुण रूप विशेष था। उसका तुझे गर्व होने से इन्द्र द्वारा शापित होकर तान (तवनपाल) दक्षिण नरेश (दक्ष नरेश, या दिल्ली से देवास दक्षिण में है इसलिये वहाँ का राजा) के भाइयों में पुंज है, उसके यहाँ तूने सुमन सदृश अवतार ग्रहण किया १। फिर वह (हंस रूप गायक) पृथ्वीराज के पास पहुँचा और कहने लगा–शशिवृत्ता के पिता पुंज ने अपनी पुत्री को जयचंद के भाई वीरचंद को व्याहना निश्चित किया है, इसीलिये हे राजन आपके पास देवास की पुंज कुमारी शशिवृत्ता ने यह संदेश देने को मुझे भेजा है। २ यही सूचना चन्द्रोदय नामक नर्तक ने भी दी। वह दक्षिण दिशा (दिल्ली से दक्षिण की ओर) से आया जो मध्य प्रदेश में रहता था। ३ इसलिये पृथ्वीराज ने उससे वहाँ का (मध्य प्रदेश का) वृतान्त पूछा। ४ उसने कहा वहाँ का यादव राजा, तान (तवनपाल) गुणों को प्राप्त करने

---

१ कहे बाल सुन हंस, कवन हम पुब्ब जम्ज कह ।
कवन पत्ति हम लहहिं, लेख बिच्चार लहो इह ॥
तबें हंस उच्चरयो, सुनहि शशिवृत्ता नारी ।
चित्रेरख अपछरी, सुगन (सुगुन) अति रूप धरारी ॥
तिहिं गरम इन्द्र सम कलह करि, क्रोध देव छण्डी सुरम ।
दच्छिन नरेश नृप तान बँध, पुंज गृहे अवतार सुभ ॥

स०२५ पृ० ७७१, छन्द ७२

२ वीर चंद जैचन्द बंधु, देवसु पुंज कुमारि ।
नृप पठये चंहुआन पै, दे ससिवृत्ता नारि ॥

स० २५ पृ० ७७५ छन्द १०६

३ "दिसि दक्खिन पर देशं, नायक आइ चन्द्रोदय नामं" ॥

स० २५ पृ० ७५६ छन्द ४

४ "पुच्छिय विगति देश रह मझ्झं" ॥

स० २५ पृ० ७५६ छन्द ५

केलिये अपने शुभ गुण से भेद नीति को विचारता है[1]। ऐसा वह मेरा स्वामी (भान) सोमवंशी है, जिसने देवगिरी बसाया[2] (ग्रन्थ समाप्ति तक देवगिरी बस चुका था। इससे उसका वर्णन होना असंगत नहीं या इसका प्रयोग देवास के लिये किया गया हो।) यह सूचना पाकर पृथ्वीराज के मन में तान (तवनपाल) के राज (देवास) को देखने की इच्छा हुई[3]। पावस व्यतीत होने पर पृथ्वीराज ने दक्षिण दिशा (दिल्ली से दक्षिण की ओर) का जाने का विचार किया[4] और कुछ ही दिनों में शिकार के बहाने स्वयं क्रीड़ा (सैर) करता हुआ मध्य प्रदेश में पहुँचा[5]। उधर प्रातः काल होने पर शशिवृत्ता पूजा के लिये चली। साथ में ढाल, त्र्यम्बक, शहनाई बजाने वाले दो सहस्र बाजित्र थे। पूजा का समय सोचकर पुंज (शशिवृत्ता के पिता) की अनुपस्थिति में चंगी मति के एकता, स्थिरता और सुचित्तता धारण करने वाले यादव और कमधज्ज वीर अरिकुल को विकल करने के लिये शशिवृत्ता के निरीक्षक के रूप में सज धज कर साथ में चल पड़े[6] इतने में शिवकी पूजा के बहाने से वर (वीरचंद) का भी वहाँ (शिवशिवा के स्थान) पर जाना सुनकर शशिवृत्ता के पिता पुंज भी सज्जित होकर सामन्तों को साथ

---

१ "तान मान गुण लहन, भेद शुभ ज्ञान विचारम्" ॥

टिप्पणी १, २ स० २५ पृ० ७६१ छन्द १६

२ तव नट नमिकरि उच्चरिय, सुनहु राज दिल्लीश ।
सोमवंश जद्दव नृपति, देवगिरि वसि जोस ॥

स० २५ पृष्ठ ७६१ छन्द १५

३ "मन जाने वर अप्प, लग्गिओ तान राज उर" ॥

स० २५ पृष्ठ ७६४ छन्द ३४

४ "किय सुमंन दिसा दक्खिन करम्म" ॥ ह० लि० प्रति

५ "करन राज क्रीला आखेटं, संक्रमि देश मध्य मन भेटं" ॥

स० २५ पृष्ठ ७६६ [इतर छन्द]

६ "अरुणोदय उग्गमह, सुच्छ लीने सुबंध भर ।
उभय सहस बाजित्र, ढोल तुम्बक्किसु मत्त गुर ॥
अद्ध सहस नफ्फेरि, सहस सहनाय सुरंगी ।
सुवर वीर पूजा प्रमान, कीनी मति चंगी ॥
विन पुंज संग सेना सकल, अकल अपूरब वत्तवर ।

में लेकर वहाँ पहुँचा [१]। पूजा के लिये आई हुई शशिवृत्ता का पृथ्वीराज ने हरण किया और युद्धारंभ हुआ। पांच घड़ी दिन शेष रहे यादव ने सन्नाह की और कमधज्ज (वीरचंद) से मिल कर शकट व्यूह की रचना इस प्रकार की, अपनी आधी सेना पैरों के स्थान पर, जुए के स्थान पर पुंज, दूसरे पहिये के स्थान पर राजा (पुंज का बड़ा भाई) और मध्य भाग में अपने स्वजन और वर (वीरचंद) को पुंज ने स्थापित किया। इस समय लक्ष्मण नामक (कोई) वीर ऐसा शोभित था, मानो राम की सेना का वर्ती लक्ष्मण स्वयं आ उपस्थित हुआ हो [२]। उस विकट युद्ध में पृथ्वीराज, पुंज और वीरचंद की सेना से घिर गया। उस समय वीरों के धड़ धरणी पर थे, किन्तु सिर तलवार की धार पर डोल रहे थे [३]। युद्ध के अन्त में पृथ्वीराज के भाग्य से काका कन्ह बच गया और सामंतों ने पुंज (शशिवृत्ता के पिता) को बाँध लिया, [४] इस

भर सकल विकल अरि कुलन को, सुचित, मित्त इक्कर सुथिर ॥

स० २५ पृ० ८०४ छं० ३२०

१ चढ्यो पुंज नव साज वर, अरु मरलीने सत्थ।
शंभुथान पूजन मिसह, चलिवर आयो तत्थ ॥

स० २५ पृ० ८०६ छं० ३४३

२ घरिग पंच दिन रह्यो मंत जद्दव आरंभिय।
मिलि कमधज्ज नरिंद, सकट व्यूह सु प्रारंभिय ॥
अर्ध सत्थ आपनो, चरन मण्डीय वाम दिसि।
व्यूह चक्र विय पाइ, सत्थ उभौ नरिन्द कसि ॥
उद्धवन भार अंगत सकट, सवर पुंज अप्पनसजिय।
रघुनाथ साथ वलियं विहँसि, हँकि सु लछिमन्न तहँरजिअ ॥

स० २५ पृ० ८१३ छं० ३८५

३ चावद्दिसि नृप विंट्यौ, पुंजु सेनाय सेनयो वीरम्।
धर धरनी आधारं, साधारं डुल्लयम शीशम् ॥

स० २५ पृ० ८१८ छं० ४३२

४ उव्वर्यो कन्ह पृथिराज क्रम, जुट्टिम्म पुंज बंध्यौ सुभट ॥

स० २५ पृ० ८२५ छं० ४९२

प्रकार युद्ध करके पृथ्वीराज ने जय-पत्र प्राप्त किया और शत्रु सेना को मोड़ दिया तथा पुंज को बांध कर यादवों के मुखियाओं को टटोल लिया (परीक्षा करली) लक्ष्मण धराशाई हुआ और घायल अवस्था में कन्ह को उठाया गया तथा रणस्थल में मृत और घायल वीरों को ढूँढ कर उठाये। इतने में सूर्यास्त हो गया और दोनों सेनाओं ने विश्राम किया; किन्तु कमधज वीर (वीरचंद) की मस्ती न मिटी। वह क्रोध रूपी हलाहल से परिपूर्ण हो गया[१]। रासो में शशिवृत्ता के पिता का नाम पुंज होना[२] और इन यादवों का देवास से सम्बन्धित होने का कई जगह अन्यत्र भी उल्लेख है[३]। तथा समय के प्रारम्भ में पट्टन (राजगढ़ रियासत मालवा के पास)[४] और हरसिद्धि (देवास के निकट देवी का

---

१ जीति लियौ जै-पत्त, चारु चतुरंग सु मोरी।
बर बंध्यो नृप पुंज, ढाल जद्दव ढंढोरी॥
बर लच्छिन परिखेत, कन्ह चहुवान उपारिय।
खेत ढूंढि पृथिराज, सु भृत भोरी करि डारिय॥
इतनै सु भान अस्तिम भये, दोउ सेन घर उत्तरिय।
मुक्की न बग्ग कमधज्ज की, रोस राह विसरन भरिय॥

स० २५ पृ० ८१५ छं० ४६४

२ "सुने पुंज राजी, चल्यो वीर बाजी"॥

स० २५ पृ० ८१२ [इ० छं०] छं० २८६

"मिले धाय निग्घाय सा पुंज राजे"॥

स० २५ पृ० ८१५ [इ०छं०] छं० ४००

"देवालय भगवती पुज्जेवं, पुंजयो बालन (पुंज पुत्री)"॥

स० २५ पृ० ८७५ छं० ४६४

३ "देवस (देवास) भान जद्दव नृपति"॥

स० २५, पृ० ७७० छं० ६८

"देवास थान तपि भान नृप"॥ स० २५ पृ० ७८३ छं० १६३

"हो देवस दुजराज" (अहो देवास के द्विज राज)"॥

स० २५ पृ० ७८६ छं० २०२

४ "वर पट्टने जद्दवन दूत राज पै पठाइय" स० २५ पृ० ७६५ छं० ४७

स्थान)[1] का तथा युद्धके अन्तमें वाणगंगा[2] (एक नदी) और सुटिहार[3] (सुँठालिया) ग्राम का उल्लेख भी हुआ है। इन बातों से स्पष्ट होता है कि शशिवृत्ता के पिता का नाम भान नहीं वरन् पुंज था; जो भान का छोटा भाई था। ये यादव राजा (तवनपाल) के भाइयों में से थे[4]। तवनपाल और उसके पिता के लेख देवास के निकट इगणोड़ा ग्राम से प्राप्त हुए हैं[5]। तान शब्द संज्ञा वाचक है जो तवन का विकृत रूप "तौंन होकर तान" है। शशिवृत्ता के पिता पुंज का बड़ा भाई भान था, जिसने आगे जाकर देवगिरि को बसाया। अन्य विद्वान् देवगिरि के बसाने वाले का नाम भिल्लम मानते हैं[6]। भिल्लम शब्द भी भान का "भानम् भिन्नम्"; होकर भिल्लम बना हो, ऐसा ज्ञात होता है। तदुपरान्त देवस. देवधर शब्द देवास के लिये ही उपयुक्त हुए हैं. तथा स्पष्टतया देवास भी लिखा है। साथ ही नृतक का मध्य प्रदेश से आना तथा पृथ्वीराज का मध्यदेश (मालव) की ओर जाना भी स्पष्ट लिखा गया है। इस वर्णन में पट्टन, हरसिद्धि, वाणगंगा और सुँठालिया का भी उल्लेख हुआ है ये स्थान भी देवास के आसपास मालवे में ही हैं। ऐसी हालत में इस युद्ध का और इन यादवों का सम्बन्ध मालवा प्रान्त से ही माना जा सकता है

(ङ) हँसावती के सम्बन्ध में:—

इस वर्णन में सर्व प्रथम रणथंभ शब्द पर विचार किया जाता है। रणथंभ शब्द का प्रयोग दुर्ग के लिये किया जाना तो स्पष्ट है ही. किन्तु उपाधि रूप

---

१. "तेरसि ऊज्जल माधे व्याहन वरनोय थात्र हरसिद्धिम्" ॥
सं० २५, पृ० ७८८

२ "लूब खेत त्रिधि गाम, वानगंगा पथ झारिय" ॥
सं० २५, पृ० ८६३, छं० ७७७

३. "सुटिहार राज पृथिराज को, घरे सुवद् चोटोल धर" ॥
सं० २५, पृ० ८६३, छं० ७७७

४ तवनपाल के अठारह भाई होना माना गया है, यह यादव-संभव है, उन्हीं में से हो।

५ देखो राजपूताने का इतिहास भाग १, पृष्ठ ५९९–६००. ले० श्री जगदीशसिंहजी गुहिलोत।

६ देखो पृथ्वीराज चरित्र, ले० रामनारायजी दुगड़।

में यादव वीर को रण में स्तम्भस्वरूप भी लिखा गया हो, ऐसा भी अर्थ हो सकता है, जिससे इस समय का सारा अर्थ बदल जाता है और वर्णन में नवीनता आ जाती है[1]। फिर भी विद्वानों के मतानुसार हम रणथंभ शब्द का सम्बन्ध रणथंभोर दुर्ग से ही मानते हैं। यादव भान को रणथंभोर का स्वामी मानने के लिये रासो में हमें कोई मुख्य कारण उपलब्ध नहीं होता! रासो से स्पष्ट होता है कि-उस समय यादव भान ने वहाँ आकर शरण ली थी; अतः युद्ध के समय रणथंभोर पर प्राप्त की हुई शरण का परित्याग करके उसने सब

---

१. " राजद्दव रिनथंभ, भान पंचायन भारी " ॥ स० ३६

(रण में स्तम्भ स्वरूप यादव राज भान और पंचायन)

" रणथंभ मुक्कवे दूतं "

(रण में स्तम्भ स्वरूप यादव राजा के पास दूत भेजे)

" रा-जद्दव रिन-भान " (रिनभान यादव राज)

" वर रनथंभ उत्तरी "

(उत्तरी यादव शाखा वाला रन में स्तम्भ स्वरूप यादव राज)।

" रिन थम्भह वर उप्परे " (श्रेष्ठ रणमें स्तम्भ स्वरूप यादव उमड़ा)

" सव तीरथ रनथंभ " (सर्व तीर्थ स्वरूप रणथंभ यादव राज)

" रिन थंमह दिसि थंम " (रण में स्तंभ स्वरूप यादव की ओर प्रस्थान किया)

" जस वेली रनथंभ नृप " (यश की वेली के समान रण में स्तंभ स्वरूप यादव)

" वर आयो रनथंमह पर " (रण में स्तंभ स्वरूप यादव चढ़कर आया)

" थह रनथंभह काज " (रण में स्तंभ स्वरूप यादव की भूमि के लिये)

" चढ़ि चल्यौ रन राज " (रनराज यादव चढ़कर चला)

" फिरी पंति रायं रनथंभ घेर्यो "

(राजाओं की पंक्ति ने रण में स्तंभ स्वरूप यादव को घेरा)

" वर रनथंभ सु काज "

वीरों को लड़ने के लिये कहा [1]। इसी समय आगे युद्ध पृथ्वीराज की ओर से चित्तौड़पति को निमंत्रण देने के लिये कन्ह चौहान भेजा गया, जब कन्ह ने महायुद्ध के आरम्भ होने से वापिस रवाना होने का मन किया, तब वह रावल से कहने लगा, "मेरे प्रस्थान के आठ दिन पूर्व तेरस को पृथ्वीराज ने युद्ध हेतु घर (दिल्ली) छोड़ दिया था, क्योंकि राजा भान का शशिपाल वंशी दबाने लग गया था। यादव की धवल धरा (निष्कलंक देवास धरा) उससे छूटी हुई है। इसलिये क्या वह सहज ही (विना प्रतिरोध किये) पुत्री (हंसावती) का दान करेगा ? इन बुरे ग्रहों (आपत्ति) के कारण यादव राज ने रणथंभोर को ग्रहण करने (रणथंभोर पर शरण लेने) की सोची, इसकी सूचना हे मित्र ! मैं आपको देने आया हूँ। हे कलंकनाशक ! इस युद्ध में आपका भी सम्मिलित होना आवश्यक हैं [2]। चित्तौड़पति रावल समर विक्रम ने कहा "कन्ह चौहान ! सुनो ! हम आहड़ों (गुहिलोतों) के घर और वंश की यह रीति हमेशा से है, उसके लिये करोड़ों देवता बल करें तो भी हमने जिसे शरण दे दी

(रण मे स्तम्भ स्वरूप श्रेष्ठ यादव के कार्य के लिये)

"दुहुँन वीच रन थंभ"

(दोनों के वीच में रण में स्तम्भ स्वरूप यादव)

"रान (राज) रन भानु उबारे"

(पृथ्वीराज ने रनभान यादव को बचाया)

उपाधि रूप में मानने पर उपरोक्त भाँति से उपरोक्त पद्यों का अर्थ बदला जा सकता है। इन पद्यों को जो देखना चाहे, वह समय ३६ में देखे।

1. "रणथंभ मझि छंडी शरन, मिरन कह्यौ वर वीर सब"।

स० ३६ पृ० १०५७ छंद १०

2. महन रंभ आरंभ, कन्ह चालत मति मंडिय।
अठ दीह हम अग्ग, राज तेरसि ग्रह छंडिय॥
वर वंसी ससिपाल, गंज लग्गिय नृप भानं।
धरति धवर नहँ ताम, सेत मिस देही दानं॥
अग्रहन ग्रहन रणथंभ मति, इह सु मित्त आयौ पढन।
कालंकराय कप्पन विरद, महन रंभ बढ्यौ वढन॥

ह० लि० प्र० कानोड़ स० ३६ पृ० १२६, १३०

उससे किनारा नहीं काटते · जो संग्राम से हतोत्साह होकर भाग आता है और छल (शत्रुओं के छल द्वारा) से जिसके छत्र की छाया नम गई है, ऐसे राजपुत्र को हम युद्ध से बचाने को तत्पर हैं, तथा हम धर्म रक्षार्थ (भुजाओं में) बल और नेत्रों में अरुणाई धारण करते हैं। हमारा-कलंक नाशक विरुद इसलिये प्रसिद्ध है कि हम कीर्ति के लिये नवनिधि को भी तुच्छ समझते हैं अस्तु, शरणागत की रक्षा के लिये यह युद्ध हो रहा है, इसलिये हम अवश्य आवेंगे[1]। इससे भी यादव राज का रणथंभोर पर शरणागत ही होना पाया जाता है। वास्तव में रणथंभोर पर पृथ्वीराज का ही शासन था; इसलिये युद्ध के अन्त में पृथ्वीराज अपने वीरों की प्रशंसा करता हुआ कहता है, 'तुमने छापा मारकर (हमारा) ग्राम (रणथंभोर) रख लिया और भविष्य में तुम्हारे कंधों पर ही दिल्लीव नयर (अजमेर) का भार है[2]। अब हम हँसावती के पिता यादव भान (भानराय) के स्थान के विषय को स्पष्ट करते हैं। रासो की हमारे पास जितनी प्रतियाँ हैं उन सब में हँसावती समय के अन्त में इस प्रकार लिखा है कि, हंसराय (यादव भानराय के नाम का पर्याय रूप) की हंसनी (हंसावती) से पाणिग्रहण हुआ। उस खिली हुई नवलतिका का स्थान (पीहर) मालवे का दुर्ग देवास था। आदि धर्म और कर्म के अनुसार कीर्ति के लिये (दहेज में या दान में) हाथी घोड़े आदि दिये गये; उसी (हंसावती) के लिये ही चौहान (पृथ्वीराज) को रणस्थंभोर की ओर प्रीति ने खींच लिया; अर्थात् रणथंभोर

---

१ सुनि कन्हा चहुवान, रीति आहुट्ट ग्रेह कुल ।
सरन रक्खि कड्ढइन, मिलें जो कोटि देव बल ॥
संग्रामें हर्पेन, सुवर खत्री वर धायो ।
ग्न रक्खे रजपूत, छत्र छल छांह नवायो ।
द्रग रत्त बल्ल बंसै सुबर, वेद ध्राम बंध्यो चवे ।
कालंकराइ कप्पन बिरद,क्रित्ति काज नव निधि द्रवे ॥

स० ३३, पृ० १,०६१, छं० २७

२ रक्खियो ग्राम रतिवाह दे, तुम कंधे दिल्ली नयर ।

स० ३६, पृ० १,०६२, छं० २२०

प्रकाशित प्रति में दिये हुए शीर्षक को पढने से (इस युद्ध का) अन्तिम विषय, दिल्ली पर युद्धहोना प्रकट करता है, किन्तु वास्तव में यह युद्ध रणथंभोर पर ही हुआ था। पढ़ते समय विषय को सोचने से उक्त भ्रम नष्ट होगा ।

पर युद्ध हुआ, फिर चित्तौड़पति अपने स्थान को गये। यादव (भानराय) भी देव नामक राज (देवराज, देवस्थान, देवास) को गया, इस प्रकार वसन्त व्यतीत हुआ और संसार में अचल कीर्ति फैली'।

इससे निश्चय है कि हंसावती के पिता वही देवासवाले भान हैं, जो शशिवृत्ता के पिता पुंज के बड़े भाई थे। उक्त यादव राजा भान (भानराय) को भिन्न मानकर रणथंभोर का राजा मानना भ्रम मात्र है।

शंका ७—पंड्या मोहनलालजी के मतानुसार चालू सम्वत (विक्रमी) से कमी के ६१ वर्ष जोड़ने पर भी रासो में वर्णित सम्वत् (अनन्द) अशुद्ध पड़ते हैं।

(क) बीसल के सिंहासनारूढ़ का सम्वत् ८२१ लिखा, जिसमें ६१ वर्ष कमी के जोड़ने से वि० सं० ६११ होता है; किन्तु अजमेर बसने के बाद जो बीसल हुआ, वह चतुर्थ बीसल था। उसके समय से यह सम्वत् नहीं मिलता। उक्त बीसल का युद्ध गुजरात के बालुकाराय से होना लिखा, किन्तु गुजरात में बालुकाराय नाम कोई राजी नहीं हुआ। इससे पाया जाता है कि रासो का लेखक गुजरात के वृत्तान्त से भी अनभिज्ञ था।

(ख) पृथ्वीराज का जन्म अ० सं० ११११ लिखा; जिससे वि० सं० १२०६ होता है; लेकिन १२०६ में तो पृथ्वीराज का पिता सोमेश्वर भी बालक था। उसने वि० सं० १२१८ के बाद कर्पूर देवी से शादी की, जिससे पृथ्वीराज का जन्म १२२० से १२२४ के बीच माना जा सकता है।

(ग) पृथ्वीराज के सामन्त सलख और चामुण्ड का शहाबुद्दीन को अनन्द सम्वत् ११३६-३८ वि० सं० १२२७-२६ में कैद करना लिखा; किन्तु वि० सं० १२३२ में गोरी ने मुलतान जीत कर भारत पर चढ़ाई की थी। इससे पूर्व वह भारत में नहीं आया, इसलिये यह वर्णन भी कल्पित है।

---

१ हंसराय हंसनिय, पानि-ग्रहनी ग्रह हल्लिय।
मालव द्रुग देवास, वास मुद्दत नव वल्लिय॥
हय गय धुर भर भम्म, कम्म किती अति दानह।
ता पाछे रनथंभ, प्रीति खींचो चोहानह॥
चित्रंग राय रावर रमिय, 'देव-राज' जद्दव वहिय।
विचिय वसंत रिति अम्मरिय, अचल एक किती रहिय॥

स० ३६, पृ० १०६७, छंद २६२

(घ) पृथ्वीराज का अ० सं० ११३८ में दिल्ली की गद्दी पर बैठना, उसी वर्ष खट्टू वन से धन निकालना, अनन्द सं० ११३६ में समुद्र शिखर की राजकुमारी से विवाह करना। कर्नाटक देश की सुन्दर वैश्या को प्राप्त करना, जिससे क्रमशः १२१६, १२३० और १२३२ विक्रमी सं० होते हैं, किन्तु कल्पित हैं, क्योंकि उस समय तक तो पृथ्वीराज गद्दी पर भी नहीं बैठा था।

इसी प्रकार रासौ में दिये हुए सभी सं० कल्पित हैं

उत्तर—रासो में वर्णित अनन्द संवत्, वि० और शक सं० से भिन्न हैं। इस बारे में रासो में ही लिखा है कि पृथ्वीराज के शासन का यह सम्वत् तीसरा (विक्रमी और शक सम्वत् से भिन्न) है[1]। इतर छन्दों से भी स्पष्ट होता है कि "विक्रव विन" अर्थात् विक्रमी सम्वत् से रहित (भिन्न) सम्वत् बांधने वाला पृथ्वीराज क्रूर रूप से तपता है, जिस प्रकार कलियुग और द्वापर के संधिकाल में संवत् प्रवर्तक युधिष्ठर और उसके बाद विक्रमादित्य हुआ। उसी के पश्चात् उनके समान ही तीसरा सवम्त् बाँधने वाला पृथ्वीराज अवतरित हुआ[2]। पृथ्वीराज के सवत् विपयक पद्यों में भी लिखा है कि—

अनन्त (अनन्दराज) के विक्रम (पराक्रम) के शाक (शाके) को १११५ वर्ष बीतने पर शत्रुओं के नगरों को जीतने के लिये पृथ्वीराज हुआ[3]।

सम्वत् ११०० (ग्यारा सौ) जो लिखा गया वह विक्रम और युधिष्ठर सम्वत् के समान ही ब्राह्मणों ने गुनकर (गिनकर) गुप्त रूप से बतलाया, वही

---

१ "तृतीय शाक पृथ्वीराज को"। स० १, पृ० १३८, छंद ६६५

२ विक्रम विन सक बंधी सूरं, तपै राज पृथ्वीराज क्रूरं।

कलियुग अरू द्वापर की संधी, शाको धर्म–सुतह बल बंधी॥
ता पाछे विक्रम वर राजा, ता पाछे पिथल नृप साजा।

ह० लि० प्रति

३ एकादश से पंचदह, विक्रम शाक अनन्द।
तिहि–रिपु पुर जेहरन को, हुय पृथिराज नरिन्द॥

स० १, पृ० ३८, छंद ६६४

पृथ्वीराज का माना हुआ यह तीसरा संवत् है[1]।

इससे निश्चय है कि यह कोई तीसरा ही संवत् था। कुतुबुद्दीन की मसजिद के अहाते वाले लोह स्तम्भ पर जो अनंगपाल का लेख है, उसमें लिखा हुआ "दिल्ली-वाला-संवत्" भी यही अनन्द संवत् होना चाहिये[2]। तदुपरान्त पिपली (मेवाड़) के आचार्यों के पट्टे परवाने वाला संवत भी यही संवत् है।

इस अनन्द सवत का सम्बन्ध किसी अनन्दराज नामक व्यक्ति विशेष से है। वह व्यक्ति तँवर या चौहान वंश का होना चाहिये। हमारा जहाँ तक विचार है, यह व्यक्ति चौहान वंश का ही था, क्योंकि इस वंश में अनन्दराज नामक नरेश हुए हैं। आनन्दराज नाम का शिलालेखों में विकृत रूप-अरुणोराज, आना, आनल और अनल लिखा मिलता है[3]। इसी रूप में पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत चौहान वंश के मूल पुरुष चौहान को भी "अनल चौहान[4]" लिखा गया है। उसी "अनल" चौहान (आनन्दराज चौहान) के पराक्रम के उपलक्ष में इस संवत् की रचना हुई हो। यह संवत् अधिक समय तक नहीं चला और प्रचलित संवत् की भांति जनता में व्यवहृत भी नहीं हुआ। इसीलिये संभव है प्रकाश में नहीं आया, किन्तु यह निश्चय है कि पंड्या मोहनलालजी के माने हुए वि० सं० से इसमें ६१ वर्ष की सर्वत्र कमी है जिसके मिला देने से ठीक वि० सं० बैठ जाता है[5]। ऐसा करने से रासो के संवतों में कहीं गड़बड़ मालूम नहीं होती.

---

१. एकादश समये सुक्रत, विक्रम जिमि भ्रम-सुत्त।
तृतिय शाक प्रथिराज को, लिख्यौ विप्र गुन गुप्त ॥
स०१, पृ० १३८, छं० ६६५

२ देखो शंका नं० ३ का उत्तर।

३ इसमें लिखे विकृत रूपों के लिये चौहानों के लेख और प्राचीन पुस्तकादि को देखना चाहिये।

४ उप्पज्यो "अनल चौहान" तब, चवसु बाहु असि बाह भर" ।
स० १, पृ० ५९, छं० २५५

अनल कुण्ड आमंग उपजि, "चहुवान अनल भल ॥
स० १, पृ० ५५, छं० २८०

५ संवतों का मिलान ।

संवतों के मिलान को जानने के लिये टिप्पणी में दिये हुए विषय सम्बन्धित सवतों को देखें।

किन्तु कहीं-कहीं लेख दोष हो या समझने में हमारा दोष हो तो उनका ध्यान रख कर जाँच द्वारा ठीक कर लेना आवश्यक है।

पृथ्वीराज का जन्म अ० सं०१११५-वि० सं० १२०६

नाहरराय की पुत्री से विवाह-अं०सं० ११३३-वि० सं०१२२४; इस संवत् के उल्लेख में "गुन" और "तीस" के २६ सख्या नहीं मानकर गुन की संख्या तीन को तीस में मिलाकर कुल संख्या तैंतीस माननी चाहिये। कथा के वर्णन से भी ऐसा करना उपयुक्त है। क्योंकि पृथ्वीराज की शादी उसके १८ वर्ष के होने पर हुई थी।

भीम कैमास युद्ध— अ०सं ११४४ या ११४८ वि०सं० १२३५ या १२३६

दिल्ली दान:— अ०सं० ११३८ या ११४१ वि०सं०१२२६ या १२३२

धन कथा— खट्टू वन से धन प्राप्ति अ०सं० ११४६ वि०सं०१२३७ (इस संवत् की संख्या में सम्पत (सम्पत्ति) आठ प्रकार की मानी गई है,उसकी संख्या ८ मिलानी चाहिये जो कि अब तक छोड़ दी गई है।

करणाटी प्राप्त— अ०सं० ११४१ वि०सं० १२३२

पहाड़राय समय— अ०सं० ११४५ वि०सं० १२३६ इस संवत् की संख्या में "संवत्-सर" में सर कामदेव की पंच वाण की संख्या ५ भिन्न मानने पर ११४५ होगी।

कैमास युद्ध— अ०सं० ११४० का अन्त वि०सं० १२३२ का प्रारंभ, शाह का पंजाब तक आना।

राजसूयज्ञ (राजसू यज्ञ विषयक विचार) अ०सं० १२४४ वि०सं० १२३५

इस संवत् में संयोगिता का जन्म होना मानना भ्रम है। कवि ने "त्रिखण्ड" लिखकर उसकी कुल आयु २६ वर्ष का अर्ध भाग कहा है।

कन्नौज समय— अ०सं० ११५१ वि०सं० १२४२ प्रकाशित प्रति में "इक्कानवे" पाठ है; किन्तु हमारे पास देवलिया (अजमेर) वाली हस्तलिखित प्रति में "ग्यारह से इक्यावन" लिखा सो ठीक है। इसी समय में जयचन्द का देशों को विजय करना अ०सं० ११३४ वि०सं० १२२५ में लिखा गया। अस्तु, यह संवत् जयचन्द के विजय प्रसंग का है, गोरीशाह से युद्ध होने का नहीं है।